1.1 प्रस्तावना

आर्थिक विश्लेषण अथवा अर्थशास्त्र का अध्ययन एवं विश्लेषण जिन दो प्रमुख दृष्टिकोणों से किया जाता है, वह हैं- (1) सूक्ष्म (अथवा व्यष्टि, अथवा मैक्रो) आर्थिक विश्लेषण। इसी आधार पर प्रोफेसर केनथ इ. बोल्डिंग ने आर्थिक विश्लेषण का वर्गीकरण (1) सूक्ष्म अर्थशास्त्र एवं (2) व्यापक अर्थशास्त्र के रूप में किया है।' इनमें पहले का संबंध व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों के अध्ययन से तथा दूसरे का संबंध समस्त अर्थव्यवस्था के अध्ययन से है। रेगनर फ्रिश ही वह पहले व्यक्ति थे जिन्होने 1933 में आर्थिक विश्लेषण के संदर्भ में सूक्ष्म तथा व्यापक शब्दों का प्रयोग किया, परंतु सूक्ष्म विश्लेषण का एडम स्मिथ के साथ तथा व्यापक विश्लेषण का कार्यपद्धति विषयक- मार्गों के रूप में वणिकवादियों के साथ आविर्भाव हो चुका था।

विश्लेषण की विधि के रूप में सूक्ष्म अर्थशास्त्र का सूत्रपात प्रो0 एडम स्मिथ ने किया। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की अधिकांश विचारधारा सूक्ष्म विश्लेषण पर ही आधारित है। एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियों का विश्वास था कि लोग स्वहित की भावना से ही प्रेरित होकर कार्य करते हैं तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था सुचारू रूप से संचालित होती है। उनकी यह धारणा थी कि निजी तथा सामाजिक हितों में पूर्ण सुचारू से संचालित करता है। इस प्रकार, अर्थशास्त्र में सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण विधि का प्रयोग एडम स्मिथ के साथ प्रारम्भ हुआ और रिकार्डो, जे0 बी0 से तथा जे0 एस0 मिल के साथ आगे बढ़ता रहा और अन्ततः मार्शल के ही हाथों इस विश्लेषण ने पूर्णता प्राप्त की।

यदि आर्थिक विचारों के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का प्रारम्भ ही व्यापक विश्लेषण से हुआ। 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में प्रचलित वणिकवादी विचारधारा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली पर आधारित थी। उनका विचार था कि देश की आर्थिक सम्पन्नता तथा प्रगति के लिए सरकार को उचित व्यवस्था करनी चाहिए ताकि अर्थव्यवस्था के समस्त साधनों का ज्यादा अच्छी तरह उपयोग किया जा सके। प्रकृतिवादियों ने भी व्यापक विश्लेषण का पक्ष लिया। 'फ्रांसिस केने' द्वारा प्रतिपादित आर्थिक तालिका इसका प्रमाण है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का प्रारम्भ व्यापक विश्लेषण से हुआ।

19वीं शताब्दी में, माल्थस, सिसमाण्डी तथा मार्क्स ने व्यापक आर्थिक समस्याओं पर विचार किया था। आधुनिक युग में केन्स से पूर्व वालरस, विक्सेल तथा फिशर ने व्यापक आर्थिक विश्लेषण के विकास में योगदान दिया। प्रथम विश्व युद्ध के बाद की दशाब्दी में कैसल, मार्शल, पीगू, राबर्टसन, हेयक तथा हाटे जैसे अर्थशास्त्रियों ने मान्य कीमतों तथा मुद्रा के सामान्य सिद्धांत का विकास किया। 1930 की विश्वव्यापी मंदी ने अर्थशास्त्रियों को व्यापक विश्लेषण की तरफ विशेष रूप से सोचने को प्रेरित किया। व्यापक विश्लेषण को लोकप्रिय बनाने तथा उसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में केन्स ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होने महान मंदी के समय में आय, उत्पादन एवं रोजगार के सामान्य

सिद्धांत का अंतिम रूप से विकास किया। इस प्रकार, महान आधुनिक अर्थशास्त्री केन्स की अप्रतिम रचना 'सामान्य सिद्धांत' का व्यापक विश्लेषण विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य है:-

- समष्टि अर्थशास्त्र के विषय की आवश्यकता एवं महत्व की जानकारी प्राप्त करना।
- व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र के बीच के अंतर का पता लगाना।
- आर्थिक प्रणालियों में परस्पर निर्भरता की जानकारी प्राप्त करना।
- सूक्ष्म विश्लेषण में व्यापक की भूमिका का अनुमान करना।
- व्यापक विश्लेषण में सूक्ष्म की भूमिका का अनुमान करना।

1.3 समष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र

व्यापक (या समष्टि) अर्थशास्त्र के अंतर्गत अर्थव्यवस्था का सामूहिक रूप से अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार, इसके अंतर्गत राष्ट्रीय आय, कुल उत्पादन, कुल उपयोग, कुल बचत, कुल विनियोग जैसी यौगिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, इसलिए इसे सामूहिक अर्थशास्त्र या यौगिक अर्थशास्त्र भी कहते हैं। व्यापक अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए बोल्डिंग ने लिखा है, '' व्यापक अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का वह भाग है जो समूहो तथा औसतों का अध्ययन करता है, न कि विशिष्ट मदों का, और इन समूहों को उपयोग ढंग से परिभाषित करने का प्रयास करता है तथा इसके पारस्परिक संबंधों की जांच करता है।'' व्यापक अर्थशास्त्र को समझाते हुए प्रो0 गार्डनर एक्ले लिखते हैं, ''व्यापक अर्थशास्त्र समूहों अथवा समस्त अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले औसतों का अध्ययन है जैसे कि कुल रोजगार, राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय, कुल विनियोजन, कुल उपभोग, कुल बचत, समग्र मॉग, सामान्य कीमत स्तर, सामान्य मजदूरी स्तर सामान्य लागत ढॉचा।'' प्रो0 शुल्ज के अनुसार, ''व्यापक अर्थशास्त्र का मुख्य यंत्र राष्ट्रीय का विश्लेषण करना है।'' प्रो0 चेम्बरलिन के अनुसार, ''व्यापक मॉडल (अर्थशास्त्र) कुल सम्बंधों की व्याख्या करता है।'' प्रो0 माइल्स फ्लेमिंग के अनुसार, ''व्यापक अर्थशास्त्र व्यय के स्पष्ट प्रवाह को 'समग्रता' प्रदान करता है। यह मूल्य यंत्र की सम्पूर्ण 'कार्यविधि' की विश्लेषण प्रणाली को बनाता है।''

व्यापक अर्थशास्त्र की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था के बड़े समूहों, योगों औसतों का अध्ययन किया जाता है। आधुनिक आर्थिक सिद्धांत के बहुत से विषय

जैसे- राष्ट्रीय आय एवं रोजगार सिद्धांत, व्यापार चक्र सिद्धांत, मौद्रिक एवं बैकिंग समस्याएं , अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, विदेशी विनियम, सामान्य कीमत स्तर, राजस्व इत्यादि व्यापक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।

1.4 समष्टि अर्थशास्त्र की आवश्यकता एवं महत्व

व्यापक अथवा समष्टि अर्थशास्त्र के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक महत्व को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है-

आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायक - व्यापक विश्लेषण आर्थिक नीतियों के निर्धारण की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। आर्थिक नीतियों का संबन्ध व्यक्ति विशेष से न होकर सम्पूर्ण समाज या अर्थव्यवस्था से होता है। अतः सरकार समाज को ध्यान में रखकर ही नीतियों का निर्माण करती है, जिसके लिए सामूहिक (अर्थात् व्यापक) विश्लेषण आवश्यक है। प्रो0 बोल्डिंग के शब्दों में, ''सरकारें निश्चय ही जनसमूहों से व्यवहार करती हैं।'' आधुनिक विशेष कर अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं वाली सरकारों को अति जनसंख्या, मुद्रा स्फीति, प्रतिकूल भुगतान शेष , सामान्य अल्प उत्पादन आदि की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन सरकारों का प्रमुख दायित्व यह होता है कि वे अति जनसंख्या, सामान्य कीमत स्तर, सामान्य उत्पादन स्तर, व्यापार की सामान्य मात्रा आदि का नियमन एवं नियंत्रण करें। अतः सरकारें व्यक्तिगत इकाइयों से नहीं बल्कि समूहों एवं औसतों से व्यवहार करती हैं। इस तरह, यह आवश्यक है कि उचित सरकारी नीतियों के निर्माण के लिए समूहों के बारे में सही और विश्वसनीय ऑकड़े उपलब्ध हों। यह जानकारी केवल व्यापक आर्थिक विश्लेषण के माध्यम से ही ज्ञात की जा सकती है। टिन्बर्गन का कथन है कि, ''अपने समय की बड़ी समस्याओं के समाधान में योगदान देने के लिए व्यापक आर्थिक सिद्धांतों का कार्यकरण नितान्त आवश्यक है।'' व्यक्तिगत व्यवहार के आधार पर कोई भी सरकार इन समस्याओं को हल नहीं कर सकती।

इस प्रकार, समष्टि आर्थिक विश्लेषण राष्ट्रीय आय, रोजगार, व्यापक चक्र आदि के विश्लेषण एवं उनसे संबंधित व्यवहारिक नीतियों के प्रतिपादन में सहायक हैं।

समूची अर्थव्यवस्था के अध्ययन में सहायक- व्यापक आर्थिक विश्लेषण किसी अर्थव्यवस्था को उसके समष्टि रूप में अध्ययन करने के लिए उपयोगी है। अर्थव्यवस्था में सामान्य रोजगार का स्तर, कुल उत्पादन, कुल राष्ट्रीय आय, जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण, प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के उपयोग की स्थिति, अर्थव्यवस्था में कुल उपभोग, कुल बचत, पूँजी निर्माण, सामान्य मूल्य स्तर आदि के अध्ययन एवं विश्लेषण के लिए व्यापक आर्थिक विश्लेषण का ही सहारा लेना पड़ता है।

सूक्ष्म अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक- सूक्ष्म अर्थव्यवस्था के विकास में भी व्यापक विश्लेषण की महत्वूपर्ण भूमिका होती है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र के निर्धारण में व्यापक विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है।

जैसे- उपयोगिता ह्रास नियम व्यक्तियों के समूहों के व्यवहार की विवेचना से ही प्रतिपादित किया जा सकता है।

आर्थिक विकास में उपयोग- विकास के अर्थशास्त्र का अध्ययन भी व्यापक अर्थशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है। एक अर्थव्यवस्था के विभिन्न स्रोतों एवं उनकी क्षमताओं का मूल्यांकन समष्टि आधार पर ही किया जा सकता है। राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार में कुल वृद्धि की योजनाएं बनाई तथा लागू की जाती हैं ताकि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास का स्तर बढ़े।

सामान्य बेरोजगारी के अध्ययन में सहायक- कीन्स का रोजगार सिद्धांत समष्टि विश्लेषण का ही एक अंग है। कीन्स के अनुसार अर्थव्यवस्था में रोजगार का सामान्य स्तर प्रभावपूर्ण मॉग पर निर्भर करना है, जो कुल मॉग एवं कुल पूर्ति फलनों पर निर्भर करती है। इस तरह, बेरोजगारी का कारण प्रभावपूर्ण मॉग में कमी होना है। इसे दूर करने के लिए कुल विनियोजन, कुल उत्पादन, कुल आय और कुल उपभोग को बढ़ाकर प्रभावपूर्ण मॉग में वृद्धि की जानी चाहिए। इस तरह, व्यापक अर्थव्यवस्था का महत्व इस तथ्य मे निहित है कि यह सामान्य बेरोजगारी के कारणों, प्रभावों तथा उपचार का अध्ययन करता है।

राष्ट्रीय आय के विश्लेषण में सहायक- राष्ट्रीय आय के रूप में अर्थव्यवस्था के समस्त कार्यों के मूल्यांकन हेतु व्यापक अर्थव्यवस्था का अध्ययन आवश्यक होता है। 1930 की विश्वव्यापी मंदी के आगमन के साथ ही आवश्यक हो गया कि सामान्य अति उत्पादन तथा सामान्य बेरोजगारी के कारणों का विश्लेषण किया जाय। इस अध्ययन के परिप्रेक्ष में राष्ट्रीय आय के ऑकड़ों की आवश्यकता महसूस की गई। राष्ट्रीय आय के ऑकड़ों से आर्थिक सक्रियता के स्तर का पूर्वानुमान लगाने और अर्थव्यवस्था में लोगों के विभिन्न वर्गों में आय के वितरण को समझने में सहायता मिलती है।

अंतर्राष्ट्रीय तुलना - अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के मध्य उनकी आर्थिक प्रगति की तुलना करने के लिए आवश्यक जानकारियॉ व्यापक आर्थिक विश्लेषण के आधार पर ही प्राप्त की जा सकती है। उदाहरण के लिए किन्हीं दो देशों के बीच उनकी राष्ट्रीय आय, उपभोग अथवा बचत तथा विदेशी व्यापार आदि की तुलना करके उनके आर्थिक विकास के संबंध में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

मौद्रिक समस्याओं के अध्ययन में सहायक- व्यापक अर्थशास्त्र की सहायता से मौद्रिक समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण समुचित ढंग से किया जा सकता है। मुद्रा के मूल्य में होने वाले परिवर्तन, मुद्रा स्फीति अथवा अपस्फीति अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। समस्त अर्थव्यवस्था के लिए मौद्रिक एवं राजकोषीय उपाय तथा सीधे नियंत्रण उपाय अपनाकर इनका

निराकरण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, मुद्रा मूल्य निर्धारण के सिद्धांत की व्याख्या व्यापक विश्लेषण की सहायता से ही संभव है।

व्यापार चक्रों के अध्ययन में उपयोगी- व्यापक अर्थशास्त्र का महत्व इस बात में निहित है कि यह आर्थिक उतार-चढ़ावों के कारणों के विश्लेषण एवं उपचार में सहायक हैं।

एक परिवर्तनशील वास्तविक जगत में नित्य नई आर्थिक समस्याएं उत्पन्न होती रहती हैं जिनके विश्लेषण में यह विधि बड़ी उपयोगी है। इस तरह, सरकार के साथ-साथ अर्थशास्त्रियों के लिए भी व्यापक विश्लेषण महत्वपूर्ण हैं।

निष्कर्ष- इस तरह, राष्ट्रीय आय, उत्पादन, विनियोग, बचत तथा उपभोग के व्यवहार का अध्ययन करके व्यापक अर्थशास्त्र एक अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के सम्बंध में हमारा ज्ञान बढ़ाता है तथा बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, आर्थिक स्थिरता एवं आर्थिक विकास की समस्याओं के समाधान में सम्बंध में उचित मार्गदर्शन करता है।

1.5 व्यापक विश्लेषण के प्रयोग

व्यापक अर्थशास्त्र का प्रयोग दिन-प्रति-दिन बढ़ाता ही जा रहा है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र की कमियों एवं सीमाओं के कारण व्यापक अर्थशास्त्र की उपयोगिता और बढ़ती जा रही है। संक्षेप में इसके महत्व को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

1. व्यापक विश्लेषण आर्थिक नीतियों के निर्धारण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आर्थिक नीतियों का सम्बंध व्यक्ति विशेष से न होकर सम्पूर्ण समाज या अर्थव्यवस्था से होता है। अतः सरकार समस्त समाज को ध्यान में रखकर ही आर्थिक नीतियों का निर्माण करती है, जिसके लिए सामूहिक (अर्थात व्यापक) विश्लेषण आवश्यक होता है।
2. व्यापक विश्लेषण एक गतिशील एवं जटिल अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली को समुचित रूप से मझने में सहायक है।
3. गतिशील अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेष ताओं जैसे- व्यापार चक्र, राष्ट्रीय आय तथा रोजगार आदि विश्लेषण तथा समाधान ढूढ़ने एवं व्यवहारिक नीतियों के प्रतिपादन में यह विधि सहायक है।
4. मुद्रा-मूल्य निर्धारण के सिद्धांत की व्याख्या व्यापक विश्लेषण की सहायता से सम्भव है क्योकि उसमें मुद्रा-मूल्य के परिवर्तनों का सम्पूर्ण समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या की जाती है।
5. व्यापक विश्लेषण, सूक्ष्म अर्थशास्त्र के विकास में भी सहायक होता है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र के नियमों के निर्धारण में व्यापक विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है जैसे-उपयोगिता ह्रास नियम व्यक्तियों के समूहों की विवेचना से ही प्रतिपादित किया जा सकता है।

6. एक परिवर्तनशील वास्तविक जगत में नित्य नई आर्थिक समस्याएं पैदा होती रहती है जिनके विश्लेषण में यह विधि बड़ी उपयोगी है। अतः सरकार के साथ-साथ अर्थशास्त्रियों के लिए भी व्यापक विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

1.6 समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएं

समष्टि अर्थशास्त्र इतना उपयोगी होते हुए भी निम्न सीमाओं से युक्त है-

संरचना की भ्रांति - व्यापक आर्थिक विश्लेषण की संरचना की भ्रांति रहती है। अर्थात कुल व्यवहार व्यक्तिगत क्रियाओं का कुल योग होता है परंतु व्यक्तिगत इकाइयों के योग के आधार पर व्यापक अर्थशास्त्र के लिए निकाले गए निष्कर्ष सदैव खरे नहीं उतरते। इस प्रकार, यह आवश्यक नहीं है कि कुछ व्यक्तियों या उनके छोटे ग्रुपों के सम्बंध में सत्य निष्कर्ष सम्पूर्ण समाज या अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में भी सत्य होंगे। उदाहरणार्थ-

(अ) व्यक्तिगत दृष्टिकोण से बचत एक अच्छी बात है। लेकिन यदि समाज के सभी व्यक्ति बचत करने लगें तो यह अभिशाप बन सकती हैं। अर्थव्यवस्था में बढ़ी हुई बचतें मंदी की स्थिति ला सकती है, यदि उनका विनियोजन न किया जाए। इस संदर्भ में केन्स का कथन है कि ''व्यक्तिगत बचत भले ही सद्गुण हो लेकिन राष्ट्रीय बचत निश्चित ही बुराई है।''

(ब) यदि कोई व्यक्ति बैंक में जमा अपना रूपया निकालता है तो इससे कोई हानि नहीं होती। परंतु यदि सभी जमाकर्ता एक साथ ही बैंक से अपनी सारी जमा धनराशि निकालना शुरू कर दें तो बैंक ही फेल हो जाएगी और बैंकिंग व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

समूह या योग के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष भ्रामक हो सकते हैं- व्यापक विश्लेषण की दूसरी कमी यह है कि इसमें समूह पर ध्यान दिया जाता है, व्यक्तिगत इकाइयों पर नहीं जबकि समूह (या योग) की अपेक्षा समूह की बनावट, रचना, या अंग अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। अतः प्राप्त निष्कर्ष भ्रामक हो सकते हैं। उदाहरणार्थ- मान लीजिए भारत में 1995 तथा 1996 में सामान्य मूल्य-स्तर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ अर्थात मूल्य-स्तर स्थिर रहा। अब यदि हम इससे यह निष्कर्ष निकाले कि इन देनों वर्षों में राष्ट्रीय आय का वितरण भी स्थिर रहा होगा, यह गलत भी हो सकता है। यह हो सकता है कि इन वर्षों में कृषि पदार्थों के मूल्यों में में कमी आयी हो और औद्योगिक उत्पादों की कीमतों में वृद्धि हुई हो। इससे सामान्य मूल्य स्तर तो स्थिर बना रहा परंतु समाज में आय के वितरण में असमानता रही। मूल्य परिवर्तन से किसानों की आय में तो कमी आई जबकि व्यापारियों एवं उत्पादकों की आय में वृद्धि हो गयी। इस प्रकार स्पष्ट है कि जब तक समूह की आंतरिक संरचना की जानकारी न हो, केवल समूह के आधार पर निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है।

यदि समूह का निर्माण करने वाले घटक परस्पर असम्बद्ध हों तो परिणाम दोश पूर्ण हो सकते हैं-

1. यदि समूह का निर्माण करने वाले विभिन्न अवयव परस्पर सम्बंधित न हों तो प्राप्त निष्कर्ष वास्तविकता से दूर हो सकते हैं। उदाहरणार्थ- यदि सामान्य मूल्य-स्तर को ही लिया जाय तो

विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के मूल्यों का औसत होता है। इसमें कुछ वस्तुएं ऐसा होती है जिनके मूल्यों में बहुत तेजी से परिवर्तन होता है, जैसे-सोना-चॉदी आदि और कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं, जिनके मूल्यों में अपेक्षाकृत बहुत धीमी गति से परिवर्तन होता है या स्थिर रहते हैं। यदि इन परस्पर असम्बद्ध वस्तुओं के मूल्यों के योग द्वारा सामान्य मूल्य स्तर का निर्माण किया जाता है। तो परिणाम दोश पूर्ण हो सकते हैं।

2. **समूह की माप संबन्धी कठिनाइयॉ-** व्यापक आर्थिक विश्लेषण में समूह की माप संबंधी कठिनाइयॉ भी होती है। जैसे 10 किलो चीनीन और 8 लीटर पेट्रोल का योग किस प्रकार किया जाय। स्पष्ट है इसका योग करने के लिए मुद्रा रूपी पैमाने का सहारा लिया जाता है परन्तु स्वयं मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होने के कारण योगों को अच्छी तरह ज्ञात करना कठिन हो जाता है।

1.7 सूक्ष्म अर्थशास्त्र

सूक्ष्म अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो कि विशिष्ट आर्थिक इकाइयों तथा अर्थव्यवस्थाओं के 'छोटे खण्डों' के व्यवहार तथा उनके पारस्परिक सम्बंधों का अध्ययन करता है। इस प्रकार, सूक्ष्म अथवा विशिष्ट अर्थशास्त्र के अंतर्गत अर्थव्यवस्था की विशिष्ट आर्थिक इकाइयों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जैसे- विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट उपभोक्ताओं, विशिष्ट वस्तुओं या विशिष्ट साधनों की कीमतों का अध्ययन आदि। सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए प्रो0 बोल्डिंग ने लिखा है, '' सूक्ष्म अर्थशास्त्र, विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट परिवारों, व्यक्तिगत कीमतों, मजदूरियों, आयों, व्यक्तिगत उद्योगों तथा विशिष्ट वस्तुओं का अध्ययन हैं।''

सूक्ष्म (या व्यष्टि) अर्थशास्त्र का क्षेत्र- जैसा कि इसकी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत उत्पादन, उपभोग तथा वितरण का अधिकांश भाग आता है। उपभोग के नियम जैसे- उपयोगिता ह्रास नियम, सम सीमांत उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की बचत जो सीमांत विश्लेषण पर आधारित हैं, सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अंतर्गत आते हैं। उत्पादन के क्षेत्र में, व्यक्तिगत फर्मों एवं उद्योगों में उत्पादन, आय तथा कीमत निर्धारण सूक्ष्म विश्लेषण के विषय हैं। उत्पादन के विभिन्न साधनों के मध्य आय का वितरण किस प्रकार किया जाता है, यह भी सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय हैं। सूक्ष्म अर्थशास्त्र का प्रयोग आर्थिक कल्याण की दशाओं की जॉच के लिए किया जाता है, अर्थात् व्यक्तियों को वस्तुओं तथा सेवाओं से प्राप्त संतुष्टियों का अध्ययन सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है। इसके अंतर्गत इस बात का अध्ययन करते हैं कि सरकार की आर्थिक नीतियों का विशिष्ट वस्तुओं की कीमतों तथा मजदूरियों पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा सरकार की नीतियॉ साधनों के विरण को किस प्रकार प्रभावित करती हैं, इत्यादि।

1.8 सूक्ष्म अर्थशास्त्र की आवश्यकता एवं प्रयोग

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अंतर्गत अर्थव्यवस्था की व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन किया जाता है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को समझने के लिए यह आवश्यक है कि जिन इकाइयों को मिलाकर अर्थव्यवस्था

बनी है, उनका विधिवत् अध्ययन किया जाय। इस प्रकार सूक्ष्म सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को समझने में सहायक होता है।

सूक्ष्म विश्लेषण के अंतर्गत उत्पादन के विभिन्न साधनों के बीच उनके पुरस्कारों का वितरण तथा वस्तु विशेष की कीमत निर्धारण का अध्ययन किया जाता है।

सूक्ष्म विश्लेषण व्यक्तिगत फर्मों, उद्योगों परिवारों तथा व्यक्तियों को अपने-अपने क्षेत्र के आर्थिक व्यवहारों के संबंध में निर्णय लेने में सहायक है।

यह व्यक्तिगत इकाइयों की कार्यक्षमता का अध्ययन कर उनकी समस्याओं के समाधान में सहायक है।

यह व्यक्तिगत आय, बचत तथा विनियोग के स्रोतों तथा उनके स्वभावों की विश्लेश णात्मक विवेचना करता हैं।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र, आर्थिक नीतियों के निर्धारण में भी प्रमुख भूमिका निभाता है। इसके अंतर्गत सरकार की आर्थिक नीतियों का अध्ययन इस दृष्टि से किया जाता है कि उनका व्यक्तिगत या विशिष्ट इकाइयों के कार्यकरण पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

1.9 सूक्ष्म तथा व्यापक अर्थशास्त्र में अंतर

सूक्ष्म अर्थशास्त्र और व्यापक अर्थशास्त्र आधारभूत रूप से भिन्न नहीं हैं। दोनों मानव व्यवहार काअध्ययन करते है! दोनो ही अर्थव्यवस्था समस्याओं का विश्लेषण करते हैं। जब अर्थशास्त्र का अध्ययन इस रूप में किया जाता है कि वह अपने ''सम्पूर्णत्व'' में (समष्टि रूप में) अध्ययन का विषय बनता है तो इसे व्यापक (समष्टि) अर्थशास्त्र कहते हैं। किन्तु जब अर्थव्यवस्था की अलग-अलग (व्यष्टि) इकाइयों का अलग-अलग अध्ययन किया जाता है तो इसे सूक्ष्म अर्थशास्त्र कहते हैं। यहाँ ''व्यापक'' शब्द अर्थव्यवस्था की ''समग्रता'' या ''सम्पूर्णता'' को दिखलाता है।

व्यापक अर्थशास्त्र अंग्रेजी के ''मैक्रो इकॉनामिक्स'' और सूक्ष्म अर्थशास्त्र अंग्रेजी के ''माइक्रो इकॉनामिक्स'' के पर्याय के रूप में हिन्दी रूपान्तर है। 'मैक्रो' शब्द सामान्य रूप से ''वृहत'' या ''बड़े'' के अर्थ में और ''माइक्रो'' शब्द ''लघु'' या ''सूक्ष्म'' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जब ''इकॉनॉमिक्स'' के पहले ''मैक्रो'' अथवा ''माइक्रो'' शब्दों का प्रयोग होता है तो ये अर्थशास्त्र की ''बृहता'' अथवा ''लघुता'' का संकेत नहीं करते, बल्कि अर्थशास्त्र के अध्ययन की विषय वस्तु अर्थव्यवस्था को देखने के कोण की वृहता अथवा लघुता का संकेत करते हैं। व्यापक अर्थशास्त्र के अंतर्गत देखने का कोण इतना वृहत होता है कि पूरी व्यवस्था अथवा अर्थव्यवस्था का समग्रीकृत अंग इसके अंतर्गत आ जाते हैं जबकि सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अंतर्गत यह कोण इतना लघु होता है कि अर्थव्यवस्था का एक अंश ही सामने आ पाता है। इस तरह, इन दोनों में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर भी है। संक्षेप में, दोनो के अंतर को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अंतर्गत ''विशिष्ट आर्थिक इकाइयों के व्यवहार'' का अध्ययन किया जाता है जबकि व्यापक अर्थशास्त्र के अंतर्गत अर्थशास्त्री ''समस्त'' या समग्र अथवा सम्पूर्ण पर विचार करता है।

व्यापक अर्थशास्त्र इसलिए व्यापक अथवा समष्टिभावी अध्ययन है कि वह अपने में पूर्ण है। इस अध्ययन को प्रभावित करने वाले किन्हीं चरो को छोड़ा नहीं गया है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र किसी वस्तु या सेवा के मूल्य एवं उत्पादन के निर्धारण हेतु ''दी हुई परिस्थितियों'' की मान्यता पर आधारित है। इस अध्ययन को प्रभावित करने वाले कुछ चरों को छोड़ दिया गया है। अतः सूक्ष्म अर्थशास्त्र का अध्ययन अपने में अपूर्ण या अधूरा अध्ययन है।

प्रो0 जे. के. मेहता व्यापक विश्लेषण को सारांशतः तथा मूलतः 'राबिन्सन कूरसो के अर्थशास्त्र के रूप में देखते हैं जिसका अर्थशास्त्र है कि कूरसों यद्यपि एक व्यक्तिगत इकाई के रूप में है, फिर भी उसके व्यवहार का अध्ययन व्यक्तिगत रूप में भी अपने आप में पूर्ण है। वही उत्पादन करता है, वही उपभोग करता है, वही उपभोग और बचत करता है। इस तरह, कूरसो एक समवायी व्यवस्था है।

व्यवहार में कोई भी व्यक्ति (उदाहरण के लिए राबिन्सन क्रूसों) अथवा व्यवस्था ''पूर्ण'' नहीं होती। प्रत्येक व्यवस्था किसी अन्य बड़ी व्यवस्था का अंग होती है। ऐसी व्यवस्था एक खुली व्यवस्था होती है। इस रूप में एक खुली अर्थव्यवस्था पर ''बाह्य प्रभाव'' की उपेक्षा करें तो ऐसी अर्थव्यवस्था एक बंद व्यवस्था कहलाएगी। इस रूप में एक बंद अर्थव्यवस्था व्यापक अर्थव्यवस्था है जिसका अध्ययन व्यापक अर्थशास्त्र का विषय है।

व्यापक अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का ''सामान्य'' अध्ययन करता है, सूक्ष्म अर्थव्यवस्था इसके अंगो के अध्ययन के माध्यम से इस (अर्थशास्त्र) का आंशिक अध्ययन करता है। इस तरह व्यापक अर्थशास्त्र में साम्य या संतुलन की अवस्था ''सामान्य'' हो जाती है, सूक्ष्म अर्थशास्त्र में संतुलन (या साम्य) की अवस्था आंशिक अथवा विशिष्ट हो जाता है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य किस प्रकार निर्धारित किए जाते हैं जबकि व्यापक अर्थशास्त्र सामान्य वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य निर्धारण की कार्यप्रणाली का अध्ययन करता है। यहाँ सामान्य मूल्य का अर्थ सभी मूल्यों के जोड़ (योग) के औसत से है जिसे ''कुल विक्रय आगम'' कहा जाता है। व्यापक अर्थशास्त्र में कुल विक्रय आगम तथा राष्ट्रीय आय व रोजगार के परस्पर संबंध पर विचार किया जाता है।

प्रो0 बोल्डिंग सूक्ष्म विधि की तुलना पहले तराशने से करते हैं और व्यापक विधि की तुलनाएकमुश्त करने से करते हैं। बोल्डिंग महोदय के अनुसार व्यापक अर्थशास्त्र एक बुलडोजर अर्थशास्त्र हैं।

उपर्युक्त व्याख्या से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि व्यापक आर्थिक विश्लेषण (व्यापक अर्थशास्त्र) के बढ़ते हुए महत्व का अर्थ सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण (सूक्ष्म अर्थशास्त्र) को महत्वहीन बनाना कदापि नहीं है। व्यापक अर्थशास्त्र को सूक्ष्म अर्थशास्त्र का स्थापन्न नहीं मानना चाहिए। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक तथा सहयोगी है।

1.10 प्रणालियों की परस्पर निर्भरता

सूक्ष्म तथा व्यापक अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की दो अलग-अलग रीतियाँ हैं फिर भी ये दोनों एक-दूसरे से घनिष्ट रूप से संबंधित, पूरक तथा सहयोगी हैं। इनमें से कोई प्रणाली अपने आप में पूर्ण नहीं है। प्रत्येक की अपनी-अपनी सीमाएं तथा कमियाँ है। एक प्रणाली की सीमाएं तथा दोश दूसरी प्रणाली द्वारा दूर कर लिए जाते हैं। दोनो प्रणालियाँ की अन्तः निर्भरता निम्नवत व्यक्त की जा सकती हैं।

1.11 सूक्ष्म विश्लेषण में व्यापक की भूमिका

1. एक व्यक्तिगत फर्म साधनों (श्रम, कच्चा माल, मशीन आदि) को जो पुरस्कार देती है वह उस फर्म विशेष द्वारा साधनों की माँग पर ही निर्भर नहीं करती। साधनों की कीमत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में उनकी माँग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है।

2. एक व्यक्तिगत फर्म किसी वस्तु को कितनी मात्रा में बेच सकेगी, यह उस वस्तु की फर्म द्वारा निर्धारित कीमत पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि समाज में सम्बंधित वस्तु की माँग के लिए क्रय-शक्ति कितनी है।

3. एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत केवल उसकी उत्पादन लागत पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि उद्योग की अन्य फर्मों की वस्तुओं की कीमतों से भी प्रभावित होती है।

इस प्रकार सूक्ष्म अर्थशास्त्र को विभिन्न व्यक्तिगत समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के लिए व्यापक अर्थशास्त्र पर निर्भर रहना पड़ता है।

1.12 व्यापक विश्लेषण में सूक्ष्म की भूमिका

व्यापक विश्लेषण में अर्थव्यवस्था का समग्रता में अध्ययन किया जाता है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की कार्य-प्रणाली को समझने के लिए उन व्यक्तिगत इकाइयों का विश्लेषण एवं अध्ययन करना आवश्यक हैं जिनसे मिलकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था बनी होती है। कभी-कभी व्यापक विश्लेषण पर आधारित निष्कर्ष भ्रामक सिद्ध होते हैं, अतः उनकों सूक्ष्म-विश्लेषण द्वारा प्रमाणित करने की आवश्कता होती है। इसे निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

1. यह मान लिया जाय कि कुल मॉग में वृद्धि होती है तो हम यह सोच सकते हैं कि सभी फर्में अपना उत्पादन बढ़ाएंगी लेकिन यह निष्कर्ष उन फर्मों पर लागू नहीं होता जो लागत-वृद्धि नियम के अंतर्गत कार्य कर रही हैं।

2. इसी तरह, जब कुल मॉग में वृद्धि होती है तो यह हो सकता है कि कुल मॉग में हुई यह वृद्धि किसी वस्तु विशेष की मॉग में वृद्धि के फलस्वरूप हो, जबकि अन्य वस्तुओं की मॉग मे कोई परिवर्तन न हुआ हो।

3. सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत इकाइयों द्वारा निर्मित होती हैं, अतः सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की क्रिया-कलाप को अच्छी तरह से समझने के लिए हमें उन सिद्धांतो का ज्ञान होना चाहिए जो व्यक्तिगत इकाइयों से सम्बन्धित हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक विश्लेषण की ये दोनो रीतियॉ एक दूसरे की प्रतियोगी न होकर पूरक है। इनकी परस्पर निर्भरता को नकारा नहीं जा सकता तथा एक के बिना दूसरे की व्याख्या नहीं की जा सकती है। अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को सही रूप में समझने के लिए दोनो की आवश्यकता है। जैसा कि प्रो0 सैम्युल्सन ने इंगित किया है, '' वास्तव में सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं है। दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि आप एक को समझते है और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं, तो आप केवल अर्ध-शिक्षित हैं।''

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. सूक्ष्म अर्थशास्त्र किसे कहते है?
2. व्यापक अर्थशास्त्र किसे कहते है?

1.13 सारांश

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि समष्टि अर्थशास्त्र समस्त अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले औसतो को अध्ययन है। जैसे कुल रोजगार, बेरोजगारी, राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उत्पादन, कुल उत्पादन, कुल निवेश, कुल उपभोग, कुल बचत, कुल आपूर्ति, कुल मॉग और सामान्य कीमत स्तर, मजदूरी स्तर, ब्याज दरें तथा लागत ढॉचा। दूसरे शब्दों में यह सामूहिक अर्थशास्त्र है, जो विभिन्न समूहों के आपसी सम्बन्धों, उनके निर्धारण और उनमें होने वाले उतार-चढावो की जाच करता है। इस प्रकार एक्ले के अनुसार ''समष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं से वृहद् रूप से व्यवहार करता है यह आर्थिक जीवन के कुल आयामों से सम्बन्ध रखता है। यह आर्थिक अनुभव के 'हाथी' के व्यक्तिगत अंगो के कार्यकरण, हड्डियों के जोड़ो और आयामों को देखने के बजाय, उसके कुल परिमाण और

आकार तथा कार्यकरण को देखता है यह उन वृक्षों से स्वतंत्र रहकर, जंगल की प्रकृति का अध्ययन करता है, जिनसे वह (जंगल) बना है।''

1.14 शब्दावलियाँ -

सूक्ष्म अर्थशास्त्र - अर्थव्यवस्था के किसी एक अंग या भाग का अध्ययन सूक्ष्म अर्थशास्त्र कहलाता है।

व्यापक अर्थशास्त्र - सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन व्यापक अर्थशास्त्र कहलाता है।

व्यापार चक्र - अर्थव्यवस्था में होने वाले उतार-चढ़ाव को व्यापार चक्र कहते है।

1.15 संदर्भ ग्रंथ

1. Stanley Bober, The Economics of Cycles and Growth, 1968, Chapter 1.
2. Edward Shapiro , Macroeconomic Analysis, Fifth Edition, 1984, Chapter 3.
3. Gardner Ackley, Macroeconomic Theory, 1962, Chapters 1 and 20.
4. Frederick Brooman and Henry D. Jacoby, Macroeconomics, 1970, Chapter 1

1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समष्टि अर्थशास्त्र किसे कहते है? इसकी आवश्यकता एवं महत्व को बताइए।
2. सूक्ष्म अर्थशास्त्र किसे कहते हैं? सूक्ष्म अर्थशास्त्र की आवश्यकता एवं प्रयोग को स्पष्ट कीजिए।
3. सूक्ष्म विश्लेषण में व्यापक की क्या भूमिका है? सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र में अंतर स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2 समष्टि स्थैतिक और समष्टि गतिकी

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 समष्टि स्थैतिक
2.4 तुलनात्मक स्थिर समष्टि अर्थशास्त्र
2.5 गत्यात्मक समष्टि आर्थिक अर्थशास्त्र
2.6 व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र की ओर संक्रमण
2.6.1 मान्ताओं में अन्तर
2.6.2 कीमत स्तर
2.6.3 व्यापार चक्र
2.6.4 आर्थिक वृद्धि
2.6.5 नीति उपाय
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्न
2.10 संदर्भ ग्रंथ

2.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक सिद्धांत को व्यष्टि आर्थिक विश्लेश णों में विभक्त किया गया है। किसी आर्थिक घटना का अध्ययन स्थैतिक, तुलनात्मक स्थैतिक एवं गत्यात्मक विश्लेश णों की विधि द्वारा किया जा सकता है। इस माप-दण्ड के आधार पर आर्थिक सिद्धांत को स्थैतिक आर्थिक सिद्धांत, तुलनात्मक स्थैतिक आर्थिक सिद्धांत एवं गत्यात्मक आर्थिक सिद्धांत में वर्गीकृत किया गया है। आर्थिक सिद्धांत की एक शाखा होने के कारण समष्टि अर्थशास्त्र को भी स्थैतिक समष्टि अर्थशास्त्र, तुलनात्मक स्थैतिक समष्टि अर्थशास्त्र एवं गत्यात्मक समष्टि अर्थशास्त्र में विभक्त किया जा सकता है। समष्टि अर्थशास्त्र के इन तीनों स्वरूपों का संक्षेप में नीचे वर्णन किया गया है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होगी -

- समष्टि स्थैतिकी विश्लेषण अर्थव्यवस्थाओं की स्थैतिक संतुलन की व्याख्या करता है।
- तुलनात्मक स्थैतिक समष्टि आर्थिक विश्लेषण मे हम तात्कालिक गुणक की एक चर में हुए परिवर्तन द्वारा उत्पन्न प्रतिक्रिया का अध्ययन करते हैं।
- तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण संतुलन की एक स्थिति से दूसरी स्थिति पर परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने में सहायक है।
- समष्टि प्रावैगिक विश्लेषण साम्य आय के स्तर में हुए परिवर्तन के मार्ग की व्याख्या करता है।
- प्रावैगिक आर्थिक प्रणाली में आय में परिवर्तन न होने के फलस्वरूप उपभोग एवं निवेश व्यय दोनो में प्रेरित परिवर्तन होगें।

2.3 समष्टि स्थैतिकी

Statics ग्रीक भाषा के Statike शब्द से बना है जिसका अर्थ है स्थिर करना। भौतिकी में इसका अर्थ है स्थिरता की वह स्थिति जहाँ किसी प्रकार की गति न हो। अर्थशास्त्र में इसका अर्थ है एक विशेष स्तर पर गति की वह विशिष्ट स्थिति में जिसमें कोई परिवर्तन न हो। क्लार्क के अनुसार यह वह स्थिति है जहाँ वह अनुपस्थिति में पॉच प्रकार के परिवर्तन प्रमुख रहते हैं: (1) जनसंख्या का परिमाण, (2) पूँजी की पूर्ति (3) उत्पादन के तरीके, (4) व्यापार संगठन के रूप में, और (5) लोगों की आवश्यकताएं स्थिर रहती हैं, परंतु अर्थव्यवस्था समान गति से काम करती रहती है। प्रो0 मार्शल का कहना है, ''इस सक्रिय परंतु अपरिवर्तनशील प्रक्रिया के लिए 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' शब्दावली का व्यवहार होना चाहिए। '' इस प्रकार स्थैतिक अवस्था वह काल-रहित अर्थव्यवस्था

है जहाँ कोई परिवर्तन नहीं होता और जो निश्चय से संतुलन में होती है। सूचकांकों, चालू माँग उत्पादन, और वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों का अपने आप समायोजन होता है। स्थैतिक अवस्था में न तो अतीत होता है और न ही भविष्य, इसलिए इसमें अनिश्चितता का तत्व बिल्कुल नहीं होता। इस प्रकार प्रो. कुज़नेट्स का विश्वास है, ''यह मान लेने पर कि निरपेक्ष अथवा सापेक्ष तौर से शामिल आर्थिक मात्राओं में समरूपता और स्थिरता होती है, स्थैतिक अर्थशास्त्र संबंधों और प्रक्रियाओं पर विचार करता हैं।''

समष्टि-स्थैतिकी विश्लेषण अर्थव्यवस्थाओं की स्थैतिक संतुलन अवस्था की व्याख्या करता है। इसे प्रो. कुरीहारा द्वारा बहुत अच्छे ढंग से इन शब्दों में समझाया गया है, ''यदि उद्देश्य समस्त अर्थव्यवस्था की 'स्थिर तस्वीर' दिखाना हो, तो समष्टि स्थैतिकी तरीका सही तकनीक है। क्योंकि यह तकनीक संतुलन की अंतिम अवस्था में निहित समायोजन की प्रक्रिया के निर्देश के बिना समष्टि चरों में सम्बन्धों की खोज की है।'' ऐसी संतुलन की अंतिम अवस्था को इस समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, $Y = C + I$ यहाँ Y कुल आय है, C कुल उपभोग व्यय और I कुल निवेश व्यय है। यह बिना किसी समायोजन प्रक्रिया के एक काल-रहित समानता समीकरण कुल निवेश व्यय है। यह बिना किसी समायोजन प्रक्रिया के एक काल-रहित समानता समी. दिखाती है।

यदि अर्थव्यवस्था से सबंद्ध कुल उपभोग $C = a+bY$ फलन दिया हुआ है, निजी क्षेत्र में कुल स्वायत्त निवेश एवं कुल सरकारी व्यय का स्तर स्थिर है एवं कुल राष्ट्रीय आय का परिवेश $Y= C+I+G$ साम्य की स्थिति के परिचायक के रूप में होता है तो उपलब्ध सूचनाओं एवं तथ्यो के आधार पर हम निम्नलिखित परिणाम प्राप्त करते हैं।

$$C = a + bY$$

$$I = \bar{I}$$

$$G = \bar{G}$$

अतः $$Y= a + bY + \bar{I} + \bar{G}$$

अर्थव्यवस्था को स्थैतिक साम्य-आय (Y_e) की स्थिति में विचारते हुए हम यह कह सकते हैं कि साम्य-आय $Y_e=Y$ अर्थात्

$$Y_e = a + bY + \bar{I} + \bar{G}$$

अर्थात् स्थैतिक साम्य आय (Y_e) के निर्धारण हेतु हम यह कहेंगे कि

$$Y_e = \frac{1}{1-b}(a + \bar{I} + \bar{G})$$

स्थैतिक साम्य आय का यह स्तर निजी स्वायत्त निवेश $\bar{I}$, स्वायत्त सरकारी व्यय $\bar{G}$ तथा उपभोग फलन विद्यमान धनात्मक अचल संख्या a के संदर्भ में निवेश गुणक की क्रिया से प्राप्त होता है। समी.

में प्रस्तुत स्थिर संख्या b सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (b = $\Delta C/\Delta Y$) है जिसका वर्णन आगे किया जायेगा।

यदि उपरोक्त समी. में विभिन्न राशियाँ आंकिक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत की जायें कि

a = 25 करोड़ रूपए

$\bar{I}$ = 25 करोड़ रूपए

$\bar{G}$ = 25 करोड़ रूपए

b = 0.75

तो अर्थव्यवस्था में साम्य की स्थिति में कुल साम्य-आय निम्नलिखित प्रकार ज्ञात होगी।

$Y_e = Y = \frac{1}{1-0.75}(25 + 25 + 25) = \frac{1}{0.25}.75 = 300$ करोड़ रूपयें।

इस कुल साम्य-आय का चित्रीय विश्लेषण चित्र में प्रस्तुत किया गया है।

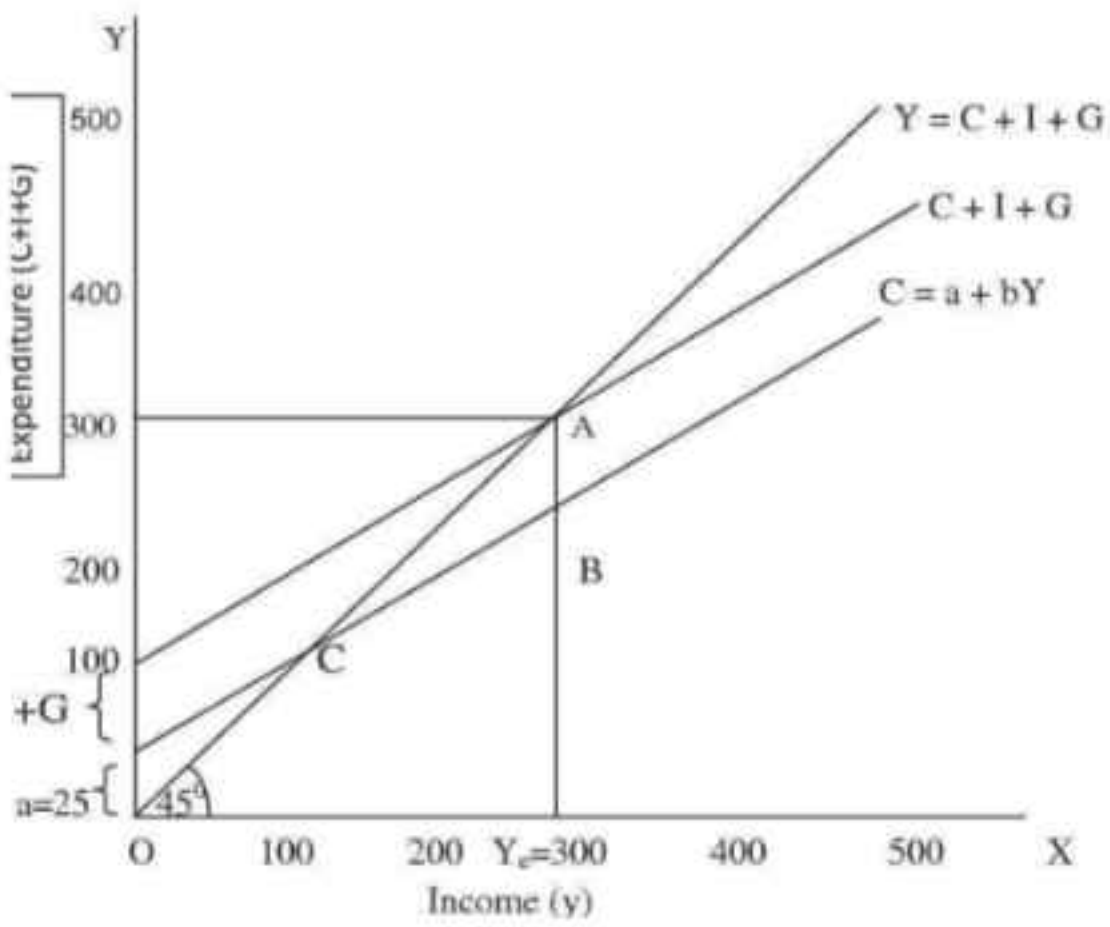

तुलनात्मक स्थिर समष्टि अर्थशास्त्र

अब साम्य की स्थिति का तुलनात्मक स्थैतिक समष्टि आर्थिक मॉडल कीजिए। उपर्युक्त उदाहरण में संशोधन करते हुए मान लीजिये कि आरम्भिक स्वायत्त सरकारी व्यय में 50 करोड़ रूपए की वृद्धि कर दी जाती है अर्थात् $\Delta\bar{G}$ = 50 करोड़ रूपयें है। यद्यपि सरकारी व्यय के अतिरिक्त अन्य सारी स्वायत्त राशियाँ स्थिर हैं परंतु सरकारी व्यय में 50 करोड़ राशि की वृद्धि होने के फलस्वरूप आरम्भिक कुल साम्य आय (300 करोड़ रूपये) की राशि में परिवर्तन (वृद्धि) हो जायेगा। यदि उपर्युक्त समीकरण $Y_e = C + \bar{I} + \bar{G}$ में दाईं ओर की राशियाँ कुल व्यय तथा बाईं ओर की राशि

साम्य आय को इंगित करती है तो सरकारी व्यय में $\Delta\bar{G}$ राशि की वृद्धि हो जाने पर कुल व्यय कुल आय से अधिक हो जाएगा। फलस्वरूप, 50 करोड़ रूपये के अतिरिक्त सरकारी व्यय को बनाये रखने हेतु कुल साम्य आय में भी वृद्धि होना आवश्यक होगा। परंतु यह तभी सम्भव होगा जब आरम्भिक साम्य आय उच्चतर नई साम्य आय ल्म को प्राप्त होकर 500 करोड़ रूपये हो जाएगी। इस निष्कर्ष को निम्नलिखित समीकरणों के द्वारा समझाया जा सकता है।

$$Y_e = \frac{1}{1-b}(a + \bar{I} + \bar{G} + \Delta\bar{G})$$

$$Y_e = \frac{1}{1-0.75}(25 + 25 + 25 + 50) = 500$$

साम्य आय में कुल परिवर्तन $\Delta Y = Y_e - Y_e = 200$ करोड़ रूपये है।

हम यह देख सकते हैं कि सरकारी व्यय में 50 करोड़ रूपये की वृद्धि होने से साम्य-आय में 200 करोड़ रूपये की वृद्धि हो जाती है तथा अर्थव्यवस्था पुरानी साम्य स्थिति से विचलित होकर नई साम्य स्थिति में पहुँच जाती है जहाँ कुल साम्य आय 500 करोड़ रूपये है। यही तुलनात्मक स्थैतिक समष्टि आर्थिक विश्लेषण है तथा चित्र में प्रस्तुत किया गया है।

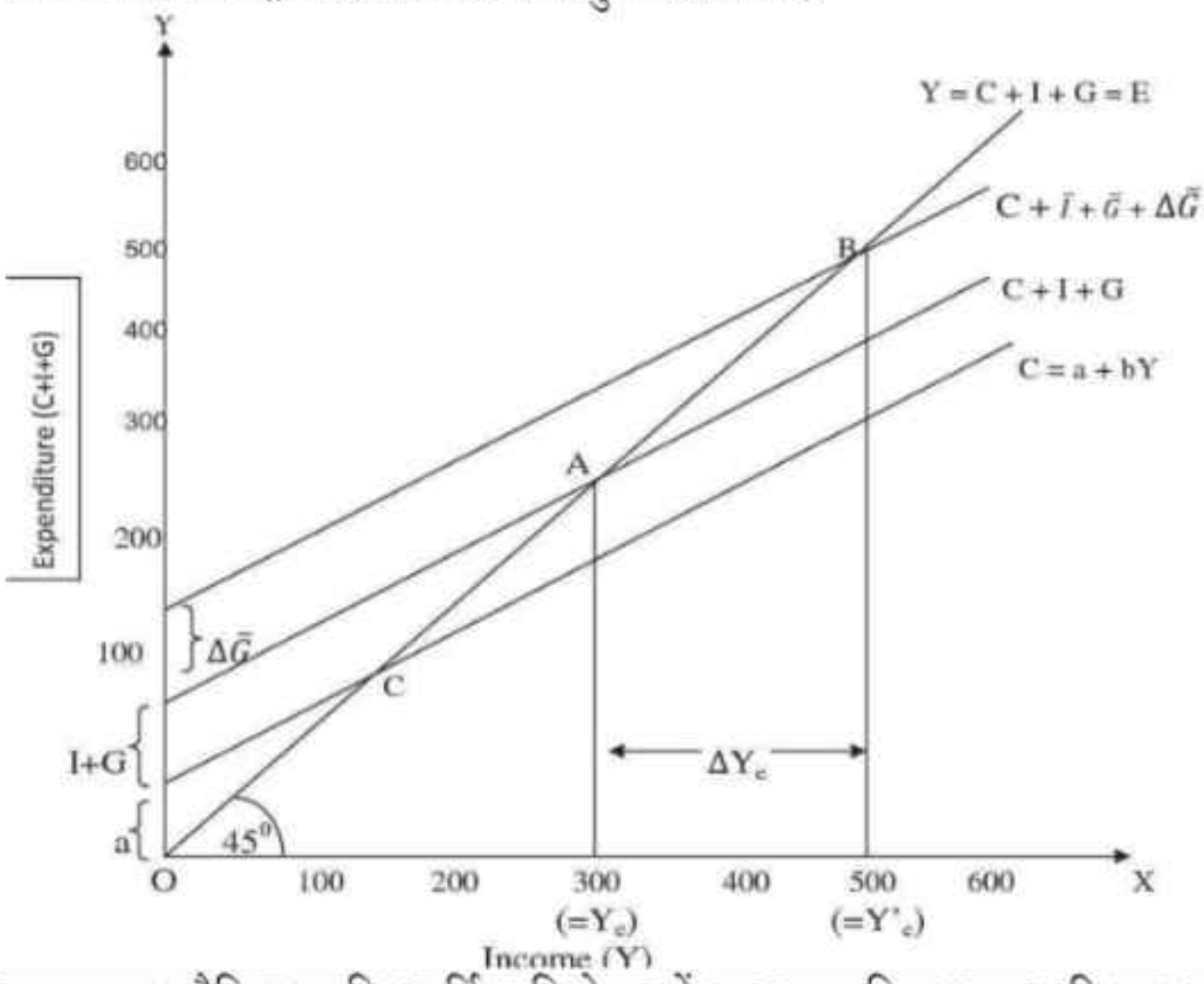

तुलनात्मक स्थैतिक समष्टि आर्थिक विश्लेषण में हम तात्कालिक गुणक की एक चर अथवा परिमापी में हुए परिवर्तन द्वारा उत्पन्न प्रतिक्रिया का अध्ययन करते हैं। जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, कुल सरकारी व्यय में 50 करोड़ रूपये राशि की वृद्धि होने के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में कुल साम्य-

आय 300 करोड़ रूपये से बढ़कर 500 करोड़ हो जाती है, अर्थात् कुल साम्य आय में 200 करोड़ राशि में वृद्धि हो जाती है।

2.4.1 इसकी सीमाएं

तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण की अनेक सीमाएं हैं। **प्रथम,** इसका क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह बहुत-सी महत्वपूर्ण आर्थिक समस्याओं को शामिल नहीं करता। ये आर्थिक उतार-चढ़ाव तथा विकास की समस्याएं हैं जिनका अध्ययन केवल प्रौद्योगिक अर्थशास्त्र को विधि से ही किया जा सकता है।

दूसरे, तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण संतुलन की एक स्थिति से दूसरी स्थिति पर परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाने में असमर्थ है। यह केवल गतियों की आंशिक झलक ही देता है क्योंकि हमें केवल दो 'स्थिर तस्वीरों' की तुलना करनी होती है, जबकि प्रौद्योगिकी हमें एक चलचित्र देगा।

तीसरे, हमें इस बात का निश्चय नहीं कि नया संतुलन कब स्थापित होगा क्योंकि यह विधि संक्रमण अवधि की अवहेलना करता है। यह तुलनात्मक स्थैतिकी को आर्थिक विश्लेषण की अपूर्ण और अवास्तविक विधि बनाता है।

2.4.2 इसका महत्व

बावजूद इन कमियो के हिक्स ने इस विधि की प्रशंसा की है। उसके अनुसार यह विधि गड़बड़ी करने वाले कारणों के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए सराहनीय है। यह परिवर्तन की प्रक्रिया में स्थिरता पुनः स्थापित करती है। यदि आर्थिक चरों में कुछ परिवर्तन होते हैं जो सतत् परिवर्तनों की प्रक्रिया को चालू करते हैं तो यह बताना संभव नहीं कि यह प्रक्रिया कब समाप्त होगी। इसी प्रकार यदि संतुलन मे एक बार गड़बड़ हो जाती है जिससे असंतुलन की निरंतर प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है तो उसके पुनः संतुलन की स्थिति में जाने को निश्चित तौर से बताना संभव नहीं होता। ऐसी स्थितियों में तुलनात्मक स्थैतिकी संतुलन के कुछ निश्चित बिन्दुओं को दर्शाकर परिवर्तन की दिशा को बता सकती है। इस प्रकार यह विश्लेषण अनिश्चित स्थित में निश्चितता प्रदान करता है।

2.5 गत्यात्मक समष्टि आर्थिक अर्थशास्त्र

गत्यात्मक विश्लेषण साम्य आय के स्तर में हुए परिवर्तन के मार्ग की व्याख्या करता है। यह अवधि गुणक की विधि द्वारा किसी चर अथवा परिमापी में हुए परिवर्तन द्वारा उत्पन्न प्रतिक्रिया का अध्ययन करता है। गत्यात्मक समष्टि आर्थिक विश्लेषण हमें यह बताता है कि सरकारी व्यय में किसी दी हुई

राशि की वृद्धि होने के बाद आय में वृद्धि की प्रक्रिया क्रमिक समय-अवधियों में उस समय तक विद्यमान रहती है। जब तक अंततः स्थैतिक साम्य आय का स्तर स्थापित नहीं हो जाता है। इस प्रकार, गत्यात्मक आर्थिक विश्लेषण उन ''गतिमान साम्य स्थितियों'' का विश्लेषण है जिनकी उत्पत्ति प्रत्याशित एवं वास्तविक स्थिर साम्य की स्थितियों के बीच होती है।

कुल आय की प्रारम्भिक साम्य स्थिति से लेकर अंतिम कुल साम्य आय की स्थिति के बीच साम्य आय में हुई कुल वृद्धि की प्रक्रिया को समझने के लिए हमें इसको आय के समय अनुवर्तन विस्तार मार्ग के संदर्भ में देखना चाहिए। मान लीजिए कि आरम्भिक समय में कुल साम्य आय का स्तर 300 करोड़ रूपये रखते हुए हम अगली समय अवधि में कुल निवेश व्यय में 50 करोड़ रूपये की वृद्धि करते हुए सभी पश्चातवर्ती समय अवधियों में निवेश को इसी नए ऊँचे स्तर पर बनाये रखते हैं। समय अवधि 1 में कुल आय में वृद्धि सरकारी व्यय में हुई आरम्भिक वृद्धि $\Delta G = 50$ करोड़ रूपए राशि के समान होगी, अर्थात $\Delta Y_1 = \Delta G = 50$ करोड़ रूपये। परंतु चूँकि हमारी मान्यता के अनुसार किसी एक दी हुई समय अवधि t का कुल उपभोग व्यय तात्कालिक पूर्व समय अवधि t -1 की आय द्वारा निर्धारित होता है, समय अवधि 1 में आय में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप उपभोग व्यय में तुरंत कोई वृद्धि नहीं होगी। परंतु समय अवधि 2 में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (हम यह मानते है कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति स्थिर है) तथा इसका आंकिक मूल्य धनात्मक परंतु एक से कम है, अर्थात $0<\bar{b}<1$ है। इसके आधार पर समय अवधि 1 में बढ़ी हुई आय ΔY_1 का b प्रतिशत भाग अतिरिक्त उपभोग व्यय में प्रयुक्त होगा, अर्थात समय अवधि 2 में अतिरिक्त कुल उपभोग व्यय की राशि निम्नलिखित प्रकार निर्धारित होगी।

$$\Delta C_2 = b\,\Delta Y_1 = b\,\Delta G$$

कुल उपभोग व्यय में हुई यह वृद्धि तथा नया निवेश स्तर कुल आय में पुनः वृद्धि करेंगे।
परंतु गुणक प्रभाव धीरे-धीरे अगली पश्चातवर्ती समय अवधियों में कम होता जाएगा तथा आय की वृद्धि भी तदानुसार घटती जाएगी। अन्ततः कुल आय की साम्य स्थिति एक नए स्थिर बिन्दु पर पहुच कर समाप्त हो जाएगी जहाँ पर कुल बचत एवं कुल निवेश परस्पर समान हो जाते है। आय प्रसारण की इस गत्यात्मक प्रणाली में गत्यात्मक तत्व अवधि की तात्कालिक पूर्व समय अवधि $t-1$ की आय द्वारा निर्धारित होता है।

$$Y_0 = Y_e = Y_1 = a + bY_{-1} + I + G$$

जबकि, $Y_0 = Y_e = Y_1 = 300$ करोड़ रूपए

तथा, $S = I + G = 50$ करोड़ रूपए

प्रथम समय अवधि में कुल स्वायत्त सरकारी व्यय में हुई वृद्धि

$$\Delta G = 50 \text{ करोड़ रूपयें}$$

फलस्वरूप , $Y_1 = 25 + 0.75\,(300) + 25 + 25 + 50 = 350$ करोड़ रूपए

$\Delta Y_1 = Y_1 - Y_0 = 50$ करोड़ रूपए द्वितीय समय अवधि में हमें Y_2 अग्रांकित साम्य आय प्राप्त होगी।

$Y_2 = 25 + 0.75\ (350) + 25 + 25 + 50 = 387.50$ करोड़ रूपए

$\Delta Y_2 = Y_2 - Y_1 = 37.50$ करोड़ रूपए

तीसरी और चौथी समय अवधियों में कुल आय बढ़कर क्रमशः 415.62 करोड़ रूपए एवं 436.72 करोड़ रूपए होगी। आय की यह क्रमिक वृद्धि तब तक जारी रहेगी जब तक अनन्तः समय अवधि ज में कुल साम्य आय का स्तर बढ़कर 500 करोड़ रूपए नहीं हो जाता है क्योंकि आय के इस स्तर के समक्ष कुल आय एवं कुल व्यय के मध्य समानता स्थापित हो जाती है। इस स्थिति में,

$$Y_t = C + I + G + \Delta G$$
$$= 25 + 0.75\ (500) + 25 + 25 + 50$$
$$= 25 + 375 + 25 + 25 + 50$$
$$Y_t = Y_e = 500 \text{ करोड़ रूपए और}$$
$$S = I + G + \Delta G = 100 \text{ करोड़ रूपए}$$

कुल आय में सरकारी व्यय में हुई वृद्धि ΔG राशि के समान 50 करोड़ रूपये की वृद्धि होगी। परंतु आगामी समय अवधियों में जैसे-जैसे कुल उपभोग व्यय में होने वाली प्रेरित वृद्धि मंद होती जाती है, वैसे-वैसे आय-वृद्धि की गति भी धीमी होती जाती है। अन्त में जब समय अवधि में आय वृद्धि की गति शून्य को प्राप्त होती जाती है तब साम्य आय 500 करोड़ रूपये की राशि को प्राप्त हो जाती है।

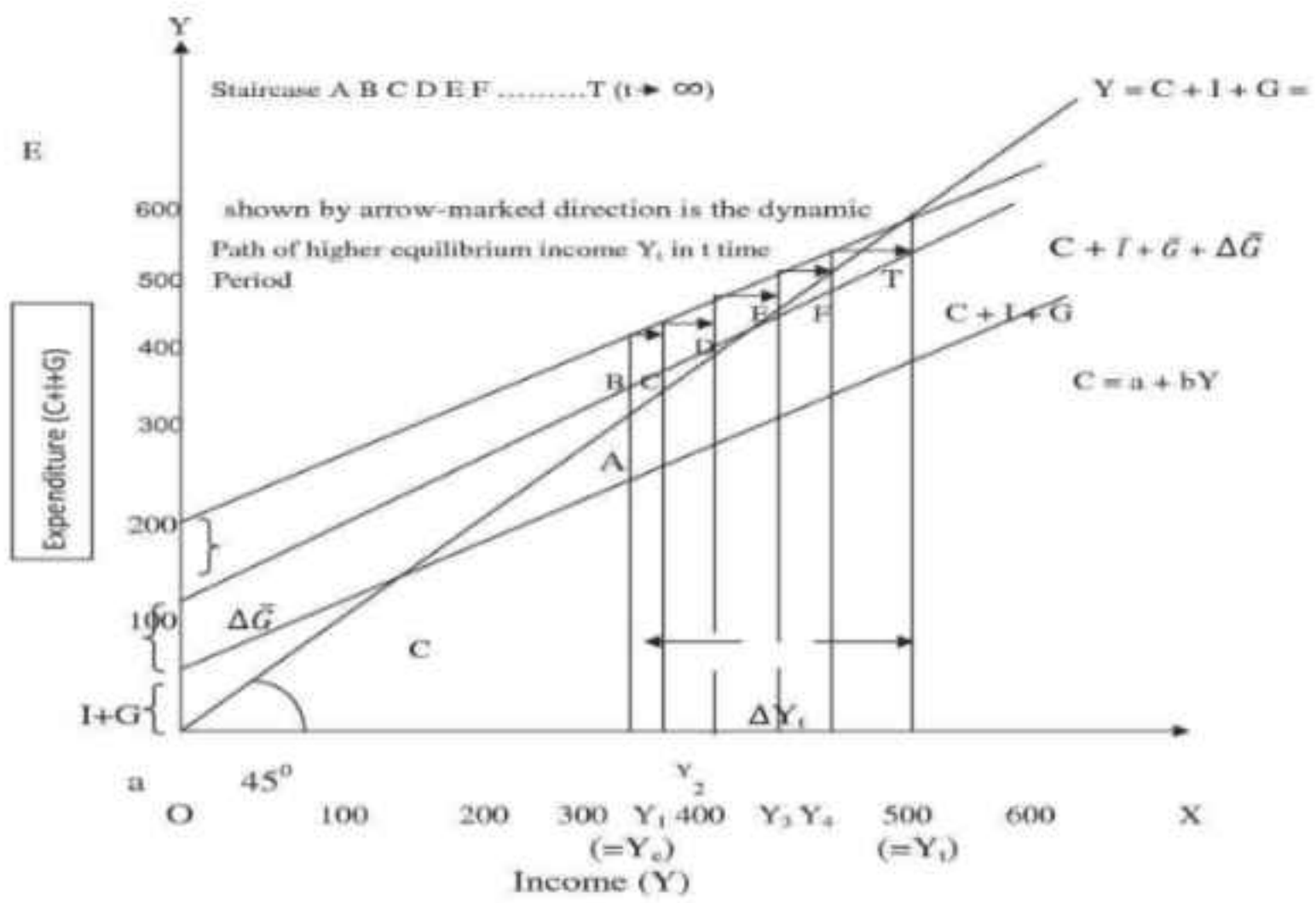

एक अधिक जटिल गत्यात्मक आर्थिक प्रणाली में आय में परिवर्तन होने के फलस्वरूप उपभोग व्यय एवं निवेश व्यय दोनों में प्रेरित परिवर्तन होगे। उस स्थिति में आय विस्तारण के मार्ग का निर्धारण निवेश गुणक एवं त्वरक की संयुक्त क्रिया द्वारा होगा। निवेश गुणक तथा त्वरक की परस्पर क्रिया के संबंधी मॉडल का पुस्तक में आगे वर्णन किया गया है।

2.6 व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र की ओर संक्रमण

क्लासिकी तथा नवक्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने अपनी रचनाओं में व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र, दोनों को प्रणालीतंत्रीय दृष्टिकोण के रूप में अपनाया है। परंतु व्यष्टि अर्थशास्त्र को आर्थिक विश्लेषण की प्रणाली के रूप में विकसित और सम्पन्न करने का श्रेय मार्शल को जाता है। इसी प्रकार, आर्थिक सिद्धांत में केन्ज़ ने समष्टि अर्थशास्त्र को विशिष्ट प्रणाली के रूप में विकसित किया। इसलिए, व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र की ओर परिवर्तन की वास्तविक प्रक्रिया तब शुरू हुई जब केन्ज़ की *General Theory* का प्रकाशन हुआ। यह संक्रमण अर्थशास्त्र की निम्नलिखित शाखाओं में हुआ हैं:

व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत व्यक्तियों के तथा कुछ व्यक्तियों के छोटे ग्रुपों के आर्थिक कार्यों का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत विशेष परिवारों, विशेष फर्मों, विशेष उद्योगों, विशेष वस्तुओं, व्यक्तिगत कीमतों, मजदूरी एवं आय का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि विशेष वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में संसाधनों का आवंटन किस प्रकार और उनका वितरण कितनी कुशलता से किया जाता है। परंतु व्यष्टि अर्थशास्त्र अपने आप में इस समस्या का अध्ययन नहीं करता कि समस्त अर्थव्यवस्था में संसाधन-बंटवारा किस प्रकार किया जाए। जैसा कि बोल्डिंग ने लक्ष्य किया है, ''व्यक्तिगत मदों के रूप में आर्थिक प्रणाली जैसे विशाल एवं जटिल तथ्यों के समूह का विवरण प्रस्तुत करना असम्भव है।'' इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र द्वारा किया गया अध्ययन अर्थशास्त्रियों ने व्यष्टि अर्थशास्त्रीय विश्लेषण को अर्थव्यवस्था का अधूरा चित्र ही प्रस्तुत करता है। परंतु पीगू जैसे परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने व्यष्टि में आर्थिक प्रणाली जैसे विशाल एवं जटिल तथ्यों के समूह का विवरण प्रस्तुत करना असम्भव है।'' इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र द्वारा किया गया अध्ययन अर्थशास्त्रियों ने व्यष्टि अर्थशास्त्रीय विश्लेषण को अर्थव्यवस्था का अधूरा चित्र ही प्रस्तुत करता है। परंतु पीगू जैसे परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने व्यष्टि अर्थशास्त्रीय विश्लेषण को अर्थव्यवस्था की समस्याओं पर लागू करने का प्रयत्न किया। केन्ज़ का विचार उनसे भिन्न था। उसने समष्टि अर्थशास्त्र का पक्ष लिया, क्योंकि यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के समूहों का - जैसे कुल रोजगार, कुल आय, कुल उत्पादन, कुल निवेश, कुल उपभोग, कुल बचत, समस्त पूर्ति, समस्त मॉग और सामान्य कीमत स्तर, मजदूरी स्तर तथा लागत संरचना का - अध्ययन करता है। अर्थव्यवस्था को समझने के लिए केन्ज़ ने समष्टि दृष्टिकोण अपनाया और व्यष्टि से समष्टि में परिवर्तन किया।

2.6.1 मान्यताओं में अन्तर :- व्यष्टि अर्थशास्त्र यह मानकर चलता है कि कुल रोजगार की मात्रा दी हुई है और इस बात का अध्ययन करता है कि अर्थव्यवस्था के व्यक्तिगत क्षेत्रों में रोजगार - परिमाण का आवंटन किस प्रकार होता है। परंतु केन्ज़ ने संसाधनों के - विशेष रूप से श्रम के - पूर्ण रोजगार की धारणा अस्वीकार कर दी। समष्टि के विशेष दृष्टिकोण से, वह पूर्ण रोजगार को एक विशेष स्थिति मानता है। सामान्य स्थिति तो अल्प रोजगार की स्थिति होती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में श्रम का अनैच्छिक बेरोजगार विद्यमान होना सिद्ध करता है कि अल्प रोजगार संतुलन की स्थिति तो सामान्य स्थिति है और पूर्ण रोजगार की स्थिति असामान्य और आकस्मिक अथवा सामयिक।

केन्ज़ ने पीगू के इस मत का खंडन किया कि मंदी के दौरान नकद मजदूरी में कटौती बेरोजगारी को समाप्त कर सकती है और अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति ला सकती है। पीगू के तर्कों में गलती यह थी कि उसने वह तर्क सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू कर दिया जो मात्र एक विशेष उद्योग पर ही लागू होता था। नकद मजदूरी दर घटाने से किसी उद्योग में रोजगार बढ़ सकता है क्योंकि नकदी मजदूरी में कटौती उसकी उत्पादन-लागत और उत्पादन की कीमत घटा देगी जिनके परिणामस्वरूप उसकी मॉग बढ़ जाएगी। परंतु अर्थव्यवस्था के लिए इस तरह की नीति अपनाने से रोजगार गिरेगा। जब अर्थव्यवस्था से सभी वर्करों की नकद मजदूरी घटा दी जाती है, तो उनकी आय भी उतनी घट जाती है। परिणामतः समस्त मॉग गिर जाती है जिससे अर्थव्यवस्था में कुल मिलाकर रोजगार गिर जाता है।

2.6.2 कीमत स्तर :-व्यष्टि अर्थशास्त्र निरपेक्ष कीमत स्तर को दिया हुआ मानकर चलता है और वस्तुओं तथा सेवाओं की सापेक्ष कीमतों से ही संबंध रखता है। वह इन प्रश्नों पर विचार करता है- किसी विशिष्ट पदार्थ की, जैसे चावल, दूध, पंखा, स्कूटर आदि की, कीमत कैसे निर्धारित होती है? विशेष प्रकार के श्रम की मजदूरी, विशेष प्रकार की परिसंपत्ति पर ब्याज, विशेष भूमि पर लगान और व्यक्तिगत उद्यमी के लाभ का निर्धारण किस प्रकार होता है? परंतु अर्थव्यवस्था सापेक्ष कीमतों से मतलब नहीं रखती अपितु कीमतों के सामान्य स्तर से मतलब रखती है। सामान्य कीमत-स्तर के बढ़ने या गिरने से स्फीति अथवा अवस्फीति और समृद्धि अथवा मंदी आती है। केन्ज़ के *General Theory* के प्रकाशित होने के पहले अर्थशास्त्री सापेक्ष कीमतों के निर्धारण से ही संबंध रखते थे और स्फीति तथा अवस्फीति अथवा समृद्धि तथा मंदी के कारणों की व्याख्या करने में असफल रहते थे। वे मुद्रा की मात्रा में वृद्धि या कमी को कीमत स्तर के बढ़ने या गिरने का कारण मानते थे। दूसरी ओर, केन्ज़ ने बताया कि समस्त मॉग की कमी के कारण अवस्फीति तथा मंदी आती है और समस्त मॉग बढ़ने से स्फीति तथा समृद्धि आती है। इस प्रकार समस्त मॉग का बढ़ना या गिरना ही सामान्य कीमत-स्तर को प्रभावित करता है, न कि मुद्रा की मात्रा।

2.6.3 व्यापार चक्र:-फिर, क्योकि व्यष्टि अर्थशास्त्र पूर्ण रोजगार की पूर्वधारणा पर आधारित है, इसलिए वह व्यापार-चक्रों के घटित होने की समुचित व्याख्या प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं। वह व्यापार -चक्रों के मोड़ बिन्दुओं की व्याख्या नहीं कर पाता था। पूर्णरोजगार की अयथार्थ पूर्वधारणा

को रद्द करके, केन्ज़ तथा उसके अनुयायियों ने ऐसे मॉडल निर्मित किए जो चक्रीय उतार-चढ़ावों के मूल में निहित समष्टि अर्थशास्त्रीय शक्तियों की ही नहीं अपितु चक्र के मोड़ बिन्दुओं की भी व्याख्या करते हैं।

2.6.4 आर्थिक वृद्धि :-व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र में परिवर्तन का एक अन्य कारण यह भी था कि व्यष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था की वृद्धि से संबंधित समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ है। व्यष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था की वृद्धि से संबंधित समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ है। व्यष्टि अर्थशास्त्र केवल व्यक्तिगत परिवार, फर्म अथवा उद्योग के अध्ययन से ही मतलब रखता है। परंतु हो सकता है कि जो नियम विशिष्ट परिवार, फर्म अथवा उद्योग पर लागू होते हैं, वे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू न हो। इसका कारण यह है कि व्यष्टि सिद्धांत में समूहन का स्तर समष्टि सिद्धांत से भिन्न होता है। जैसा कि बोल्डिंग ने लक्ष्य किया है, ''केवल व्यक्तिगत उपादानों के आचरण एवं व्यवहार से सामान्य नियम बनाकर ही समूहन के आचरण एवं व्यवहार की उपलब्धि नहीं हो सकती।'' क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने यह मूर्खता की कि आर्थिक वृद्धि की व्याख्या करते समय उन्होनें व्यष्टि सिद्धांत को समस्त अर्थव्यवस्था पर लागू कर दिया। उन्होने आर्थिक वृद्धि के पूँजी निर्माण में बचत या किफायत पर जोर दिया। परंतु समष्टि सिद्धांत में बचत एक निजी गुण और सार्वजनिक दोश है। इसका कारण यह है कि समस्त बचत के बढ़ने पर समस्त उपभोग और मॉग गिर जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर गिर जाता है। इसलिए, बेरोजगारी दूर करने के लिए और आर्थिक वृद्धि लाने के लिए बचत की बजाय समस्त निवेश बढ़ाने की जरूरत होती है। आर्थिक वृद्धि के लिए, हैरड तथा डोमर ने निवेश की दोहरी भूमिका पर बल दिया है। एक तो यह है कि निवेश से समस्त आय बढ़ती है और दूसरे, यह अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता बढ़ाता है।

2.6.5 नीति उपाय व्यष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक प्रणाली की अहस्तक्षेप नीति पर आधारित है जिसमें सरकार किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती। क्लासिकी अर्थशास्त्री अहस्तक्षेप नीति के भक्त थें। उनका विश्वास था कि जब अर्थव्यवस्था के कार्यकरण में गड़बड़ होती हैं, तो समायोजन भी अपने आप हो जाता है। इसलिए, अर्थशास्त्र की गड़बड़ी दूर करने के लिए वे न तो मौद्रिक नीति में विश्वास रखते थे और न ही राजकोषीय नीति में। संतुलित बजटों की नीति में भी उनका विश्वास था। केन्ज़ ने व्यष्टि से समष्टि चिन्तन की ओर प्रवृत्त किया था और उसने अहस्तक्षेप की नीति को रद्द कर दिया था। वह मानता था कि इस प्रकार की नीति सार्वजनिक हितों के अनुकूल नहीं है और इसी नीति के परिणामस्वरूप 1930 के दशक की विश्वव्यापी मंदी आई थी। इसलिए वह राज्य द्वारा हस्तक्षेप के पक्ष में था और उसने इस बात पर बल दिया कि अवस्फीति के दौरान घाटे के बजट बनाएं जाएं और सस्ती मुद्रा उपलब्ध कराई जाएं तथा स्फीति के दौरान आधिक्य बजट बनाए जाएं और महंगी मुद्रा उपलब्ध कराई जाए। विश्व के पूजींवाद देशों ने प्रत्यक्ष नियंत्रणों के साथ-साथ केन्जीय नीति उपाय भी अपना लिये हैं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. स्थैतिक अर्थशास्त्र किसे कहते है?

2. प्रावैगिक अर्थशास्त्र किसे कहते हैं?

2.6 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि समष्टि स्थैतिकी विश्लेषण अर्थव्यवस्था की स्थैतिक संतुलन अवस्था की व्याख्या करता है। इसे प्रो0 कुरिहारा द्वारा बहुत अच्छे ढंग से इन शब्दों में समझाया गया है कि ''यदि उद्देश्य समस्त अर्थव्यवस्था की 'स्थिर तस्वीर' दिखाता हो, तो समष्टि स्थैतिक तरीका सही तकनीक है क्योंकि यह तकनीक संतुलन की अंतिम अवस्था में निहित समायोजन की प्रक्रिया के निर्देश के बिना समष्टि चरों में सम्बन्धों की खोज की है। वास्तव में आर्थिक प्रावैगिकी समय पश्चताओं, परिवर्तनों की दरों तथा चरों और प्रत्याशित मूल्यों से सम्बन्ध रखती है। प्रावैगिक अर्थशास्त्र में स्वीकृति तत्वों में परिवर्तन होते हैं। प्रो0 कुरिहारा के अनुसार ''समष्टि प्रावैगिकी समष्टि चरों की निरंतर गतियों या परिवर्तन की दरो का विवेचन करती है।'' शुम्पीटर के अनुसार तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण की एक विधि है जिसमें विभिन्न संतुलन अवस्थाओं की तुलना की जाती है। इसमें कई प्राचल जैसे जनसंख्या, पूँजी स्टॉक, प्रौद्योगिकी, उत्पादन की तकनीके आय स्तर रूचिया आदतें आदि स्थिर मान लिये जाते है।

2.8 शब्दावली -

स्थैतिक अर्थशास्त्र - जब परिवर्तन के साथ परिवर्तन की दर में परिवर्तन न हो तो उसे स्थैतिक अर्थशास्त्र कहते है।

प्रावैगिक अर्थशास्त्र - जब परिवर्तन के साथ परिवर्तन के दर में परिवर्तन होता है तो उसे प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहते हैं।

आर्थिक विकास - जब सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, समस्त प्रकार के गुणात्मक एवं परिमाणात्मक परिवर्तन ऐसे होते है तो उसे आर्थिक विकास कहते है।

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. A.H. Hansen, A Guide to Keynes, 1953, pp. 44-45
2. Robert L. Crouch, Macroeconomics, 1972, Chapter 1
3. Milton Friedman, Essays in Positive Economics 1953, Chapter 1.
4. R.G. Lipsey, An Introduction to Positive Economics, Third Edition, 1972, Chapter 1.

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समष्टि स्थैतिक एवं समष्टि गतिकीय अर्थशास्त्र को स्पष्ट कीजिए।
2. तुलनात्मक स्थिर समष्टि अर्थशास्त्र क्या है? इसकी सीमाओं एवं महत्व को स्पष्ट कीजिए।
3. व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र की ओर होने वाले संक्रमण को स्पष्ट कीजिए।

इकाई -3 समष्टि अर्थशास्त्र की बुनियादी आवधारणाएं

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र की विषयवस्तु
3.4 समष्टि आर्थिक सिद्धांत
3.5 समष्टि अर्थशास्त्र का पृथक अध्ययन क्यों?
3.6 समष्टि तथा व्यष्टि अर्थशास्त्र का परस्पर सम्बन्ध
3.7 केन्ज का समष्टि अर्थशास्त्र तथा विकासशील देश
3.8 समष्टि तथा व्यष्टि आर्थिक सिद्धांतों के मिश्रण की आवश्यकता
3.9 समष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न मॉडल
    3.9.1 प्रतिष्ठित समष्टि अर्थशास्त्र
    3.9.2 केन्जीयन समष्टि अर्थशास्त्र
    3.9.3 मुद्रावार
    3.9.4 पूर्तिपक्ष का अर्थशास्त्र
3.10 नव-प्रतिष्ठित समष्टि अर्थशास्त्रः विवेकपूर्ण आशंसाओं का सिद्धांत
3.11 सारांश
3.12 शब्दावली
3.13 संदर्भ ग्रन्थ
3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

एडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस तथा जे. एस. मिल आदि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने जिस आर्थिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया था वह मुख्यतः समष्टिपरक विश्लेषण था क्योंकि उन्होने राष्ट्रीय आय तथा सम्पत्ति में वृद्धि के निर्धारण, राष्ट्रीय आय का विभिन्न सामाजिक वर्गों में वितरण (अर्थात राष्ट्रीय आय का कुल मजदूरी, कुल लगान तथा कुल लाभ में विभाजन) सामान्य कीमत स्तर का निर्धारण तथा तकनॉलोजी में प्रगति तथा जनसंख्या-वृद्धि के आर्थिक विकास पर प्रभावों का वर्णन किया। इसके विपरीत नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र जिसमें पींगू तथा मार्शल की कृतियॉ प्रमुख हैं, मुख्यतः व्यष्टिपरक विश्लेषण है। नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने यह कल्पना की कि अर्थव्यवस्था में साधन पूर्ण रोजगार की अवस्था में होते हैं और मुख्यतः इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के लिए साधनों का आवण्टन किस प्रकार होता है तथा पदार्थों तथा साधनों की सापेक्ष कीमतें किस प्रकार निर्धारित होती हैं। अपनी पूर्ण रोजगार की कल्पना के कारण ही ये अर्थशास्त्री यह नहीं समझा पाये किस निजी मुक्त-उद्यम वाले अथवा पूँजीवादी देशों में मंदी-काल के दौरान अनैच्छिक बेरोजगारी क्यों होती है और उत्पादन क्षमता का पूरा-पूरा प्रयोग क्यों नहीं किया जाता। इस प्रकार वे निजी उद्यम अर्थव्यवस्था में व्यापार-चक्रों के प्रचलन की उचित व्यवस्था नहीं कर पाये। सबसे बुरी बात तो यह है कि व्यक्तिगत उद्योग पर जो आर्थिक नियम लागू होते हैं उनको ही नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था तथा समष्टिपरक आर्थिक चरों पर भी लागू करने का प्रयत्न किया।

उदाहरण के लिए पीगू ने इस बात पर बल दिया कि मंदी काल में बड़ी मात्रा में फैल जाने वाली बेरोजगारी को मजदूरी में कमी करके दूर किया जा सकता है तथा रोजगार का विस्तार किया जा सकता है। यह पूर्णतया गलत है। यद्यपि यह सत्य है कि मजदूरी में कमी करके एक उद्योग में रोजगार के स्तर को बढ़ाया जा सकता है, परन्तु यदि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में मजदूरी को कम कर दिया जायगा तो श्रमिक वर्ग को प्राप्त होने वाली आय गिर जाएगी और इससे समस्त मॉग का स्तर गिर जाएगा। समस्त मॉग में गिरावट आने से रोजगार का स्तर बढ़ने के स्थान पर गिर जाएगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित उद्देश्य प्राप्त होते है-

- केन्जीयन सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विश्लेषण का समष्टिपरक अध्ययन करना है।

- समष्टि अर्थशास्त्र आय व रोजगार के स्तर के निर्धारण के अतिरिक्त कीमतों के सामान्य स्तर के निर्धारण का अध्ययन करता है।
- समष्टि आर्थिक सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य कुल राष्ट्रीय आय में से समाज के विभिन्न वर्गों के सापेक्षिक भागों के निर्धारण का विश्लेषण करना है।
- समष्टि अर्थशास्त्र का उद्देश्य व्यापार चक्रो में उच्चावचन का विश्लेषण करना है।

3.3 समष्टि अर्थशास्त्र की विषय वस्तु

निःसन्देह केन्ज़ से पूर्व के व्यापार चक्रों तथा सामान्य कीमत स्तर के सिद्धांत समष्टिपरक प्रकृति के थे। परन्तु जे.एम. केन्ज ने समष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण को अधिक महत्व दिया और 1936 में प्रकाशित अपनी क्रांतिकारी पुस्तक '*A General Theory of Employment, Interest and Money*' में आय व रोजगार के सामान्य सिद्धांत का प्रतिपादन किया। केन्ज़ का सिद्धांत वास्तविक रूप में नव-प्रतिष्ठित सिद्धांत से भिन्न था जिसने आर्थिक चिन्तन में इतना मूलभूत व अत्यधिक परिवर्तन किया कि उसका समष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण केन्ज़ियन क्रांति तथा नया अर्थशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हो गया। केन्ज़ ने अपने विश्लेषण में नव-प्रतिष्ठित से के बाजार नियम जिसके आधार पर नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूर्ण रोजगार की कल्पना की थी, की तीव्र आलोचना की और नव-प्रतिष्ठितों की इस धारणा को चुनौती दी कि निजी उद्यम अर्थव्यवस्था में अनैच्छिक बेरोजगारी नहीं हो सकती। उसने यह बताया कि कुल मॉग व कुल पूर्ति के द्वारा राष्ट्रीय आय तथा रोजगार का संतुलन स्तर किस प्रकार निर्धारित होता है और यह कि मुक्त निजी उद्यम अर्थव्यवस्था में आय व रोजगार का संतुलन स्तर पूर्ण रोजगार स्तर से नीचे कैसे निर्धारित हो सकता है जिसके कारण एक ओर तो श्रमिकों में अनैच्छिक बेरोजगारी फैल जाती है और दूसरी ओर अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता अर्थात् वर्तमान पूँजी की क्षमता से कम उपयोग उत्पन्न हो जाता है। उसके समष्टिपरक आर्थिक मॉडल से पता लगता है कि उपभोग फलन, निवेश फलन, तरलता अधिमान फलन की परस्पर क्रियाओं द्वारा आय, रोजगार, ब्याज तथा सामान्य कीमत-स्तर का निर्धारण किस प्रकार होता है। इस प्रकार यह बताने से पहले कि आय व रोजगार का स्तर किस प्रकार प्रकार निर्धारित होता है हमको उपभोग फलन तथा निवेश फलन के निर्धारक कारकों का अध्यन करना होता है। उपभोग फलन तथा निवेश फलन का विश्लेषण समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत के महत्वपूर्ण विषय हैं। एक देश में आय व रोजगार के स्तर में निर्धारण में समस्त मॉग के स्तर का विशेष महत्व है जो कुल उपभोग मॉग तथा कुल निवेश की मॉग का योग है।

अर्थव्यवस्था में आय व रोजगार के स्तर के निर्धारण के अध्ययन के अतिरिक्त, समष्टि अर्थशास्त्र कीमतों के सामान्य स्तर के निर्धारण का भी अध्ययन करता है। यह सिद्ध करके कि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने पर कीमतों में सदा वृद्धि नहीं होती, केन्ज़ ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत में महत्वपूर्ण सुधार

किया। इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण विषय मुद्रास्फीति के कारणों को स्पष्ट करना है। केन्ज़ ने द्वितीय महायुद्ध से पूर्व यह स्पष्ट किया कि अनैच्छिक बेरोजगारी तथा मंदी समस्त मॉग के कारण उत्पन्न होती हैं। युद्धकाल में जबकि कीमतें बहुत अधिक बढ़ गई तो उन्होनें एक पुस्तक '*How to Pay for War*' में बताया कि जिस प्रकार समस्त मॉग में कमी के कारण बेरोजगारी व मन्दी फैलती हैं, उसी प्रकार मुद्रा-स्फीति अत्यधिक समस्त मॉग के कारण होती है। केन्ज़ के पश्चात् मुद्रास्फीति का अधिक विकास हुआ है और विभिन्न कारणों पर आधारित विभिन्न प्रकार की मुद्रा-स्फीतियों का वर्णन किया गया है। मुद्रा-स्फीति आजकल एक गम्भीर समस्या बन गई है जोकि विकासशील तथा विकसित दोनों प्रकार के देशों में पाई जाती है। मुद्रा-स्फीति का सिद्धांत समष्टिपरक अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण विषय है।

समष्टिपरक अर्थशास्त्र की एक और महत्वपूर्ण शाखा, जिसका विकास अभी हाल ही में हुआ है, आर्थिक विकास का सिद्धांत है जिसको संक्षेप में 'विकास अर्थशास्त्र' कहा जाता है। विकास की समस्या एक दीर्घकालीन समस्या है और केन्ज़ ने इस पर विचार नहीं किया था। वस्तुतः केन्ज़ ने तो कहा था कि ''दीर्घकाल में हम सब मर जायंगे''। परन्तु केन्ज़ के इस कथन से हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उन्होनें दीर्घकाल को बिल्कुल महत्वहीन समझा। इस कथन से तो उन्होनें आर्थिक क्रियाओं के उच्चावन की अल्पकालीन समस्या अर्थात् अनैच्छिक चक्रीय बेरोजगारी, मंदी, मुद्रा-स्फीति के महत्व पर अधिक बल दिया। हैरड तथा डोमर ने केन्ज़ के विश्लेषण को विकास की दीर्घकालीन समस्याओं पर लागू किया। उन्होने निवेश के द्वैत पक्षों के महत्व को बताया- एक आय सर्जन का, जिस पर केन्ज़ ने विचार किया था, और दूसरे उत्पादन क्षमता में वृद्धि का जिसकी केन्ज़ ने अवज्ञा की थी क्योंकि वह अल्पकाल की समस्याओं को सुलझाने में ही व्यस्त था। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि निवेश से उत्पादन क्षमता (पूँजी भण्डार) में वृद्धि होती है, यदि स्थिरता के साथ विकास अर्थात् बिना दीर्घकालीन मंदी अथवा दीर्घकालीन मुद्रा-स्फीति को प्राप्त करना है तो आय या मॉग में इस दर से अवश्य वृद्धि होनी चाहिए कि बढ़ती हुई उत्पादन क्षमता का पूरा-पूरा प्रयोग किया जा सके। इस प्रकार हैरड तथा डोमर के समष्टिपरक मॉडल आय की उन विकास दरों को बताते हैं जो अर्थव्यवस्था के स्थायी विकास के लिए आवश्यक है। हैरड तथा डोमर के उपरान्त विकास के अर्थशास्त्र का अधिक विकास तथा विस्तार किया गया है। यद्यपि एक सामान्य विकास सिद्धांत, विकसित तथा विकासशील दोनों अर्थव्यवस्थाओं पर लागू होता है परन्तु उन विशेष सिद्धांतों का भी प्रतिपादन किया गया है जो अल्पविकास के कारणों अथवा अल्प-विकसित देशों में निर्धनता की व्याख्या करते हैं तथा इन देशों में विकास को प्रारम्भ करने तथा तीव्र करने के लिए आवश्यक प्रविधियों अथवा रणनीतियों का सुझाव भी देते हैं।

समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत का एक और महत्वपूर्ण विषय कुल राष्ट्रीय आय में से समाज के विभिन्न वर्गों, मुख्यतः श्रमिकों तथा पूँजीपतियों , के सापेक्ष भागों के निर्धारण का विश्लेषण करना

है। इस विषय में रूचि रिकार्डों के समय से है। रिकार्डों ने केवल यह ही नहीं बताया कि भूमि की उपज का समाज के तीन वर्गो- भूस्वामियों, श्रमिकों तथा पूँजीपतियों में विभाजन अर्थशास्त्र की प्रमुख समस्या है बल्कि कुल राष्ट्रीय आय में लगान, मजदूरियों तथा लाभों के सापेक्ष भागों के निर्धारण सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया। रिकार्डों के समान मार्क्स ने भी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में साधनों के सापेक्ष हिस्सों के निर्धारण में विशेष रूचि दिखाई। परन्तु मार्क्स के बाद अर्थशास्त्रियों की रूचि इस विषय में कम हो गई और वितरण के सिद्धांत का वर्णन मुख्यतः व्यष्टिपरक रूपों में किया जाने लगा; अर्थात् वितरण का सिद्धांत केवल साधनों की कीमतों के निर्धारण की व्याख्या करने लगा; सामाजिक वर्गोके सापेक्षा सामूहिक हिस्सों की नहीं। एम. कलेस्की तथा निकोलस केलडर का धन्यवाद हो जिनके कारण वितरण के समष्टिपरक सिद्धांत में पुनः रूचि जाग्रत हुई। कलेस्की ने यह विचार प्रस्तुत किया कि राष्ट्रीय आय में मजदूरियों तथा लाभों के सापेक्ष हिस्से अर्थव्यवस्था में एकाधिकार की मात्रा पर निर्भर करते हैं। दूसरी ओर, केलडर ने केन्जियन विश्लेषण का प्रयोग करके बताया कि राष्ट्रीय आय में मजदूरियों तथा लाभों के सापेक्ष हिस्से अर्थव्यवस्था में उपभोग प्रवृत्ति तथा निवेश की दर पर निर्भर करते है।

हमने, संक्षेप में, समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत में सब पक्षों व विषयों का वर्णन कर दिया है। समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत के विभिन्न विषयों को निम्न चार्ट में दिखाया गया है:

3.5 समष्टि अर्थशास्त्र का पृथक् अध्ययन क्यों?

अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सम्मुख आता है कि सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था या इसके विशाल समूहों के पृथक् अध्ययन की आवश्यकता क्यों है? क्या यह सम्भव नहीं है कि अर्थशास्त्र द्वारा निर्मित उन नियमों के द्वारा, जो व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहारों को स्पष्ट करते हैं, से ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या समस्त उपभोग, समस्त बचत, समस्त निवेश आदि विशाल समूहों के व्यवहारों का भी विवेचन किया जाए। दूसरे शब्दों में, क्या हम व्यक्गित फर्मों व उद्योगों के व्यवहारों से प्राप्त निष्कर्षों को जोड़कर, गुणा करके या उनके औसत निकाल कर समष्टिपरक अर्थशास्त्र के चरों जैसे कुल राष्ट्रीय उत्पादन, कुल रोजगार, कुल आय, कीमत-स्तर आदि को नियंत्रित करने वाले नियमों को प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था या समष्टिपरक समूह के व्यवहार को समूह की इकाइयों की क्रियाओं को केवल जोड़कर या गुणा करके या उनमें औसत निकालकर ही प्राप्त नहीं किया जा सकता है। वास्तव में जो अर्थव्यवस्था की इकाइयों के बारे में सत्य है, आवश्यक नहीं कि वह समूह के बारे में भी सत्य हो। इसलिए व्यष्टिपरक तरीके से सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था या समष्टिपरक समूहों के व्यवहारों का विवेचन करना गलत है और इससे भ्रामक निष्कर्ष निकल सकते हैं। जब आर्थिक नियम व्यक्तिगत इकाइयों पर लागू होता होते हैं परन्तु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर नहीं तो इससे बहुत से विरोधाभास उत्पन्न हो जाते हैं। बोल्डिंग ने इन विरोधाभासों के कारण ही समष्टिपरक आर्थिक विरोधाभास कहा है। इन समष्टिपरक आर्थिक विरोधाभास के कारण ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था अथवा इसके विशाल आर्थिक समूहों के व्यवहार के समष्टिपरक विश्लेषण को न्यायोचित ठहराया जाता है। अतः प्रो0 बोल्डिंग का कथन ठीक है कि ''किसी भी अन्य कारक के बढ़कर ये विरोधाभास ही हैं जो समस्त आर्थिक व्यवस्था के पृथक् अध्ययन को 'न्यायोचित ठहराते है।''बोल्डिंग ने अर्थव्यवस्था की तुलना एक वन वे से तथा व्यक्तिगत फर्मों या उद्योगों की तुलना वन के वृक्षों से करके अपने तर्क को और विकसित किया। उन्होने बताया कि वन वृक्षों का समूह है, परंतु इसकी विशेष ताएं तथा व्यवहार-कलाप व्यक्तिगत वृक्षों के समान नहीं हैं, बल्कि उनसे भिन्न हैं। अतः व्यक्तिगत वृक्षों को नियंत्रित करने वाले नियमों के आधार पर वन के व्यवहार का अनुमान करना भ्रामक होगा।

आर्थिक क्षेत्र से समष्टिपरक विरोधाभास (अर्थात् जो नियम इकाइयों के लिए सत्य हैं परन्तु समूह के लिए नहीं) के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। यहाँ हम बचत तथा मजदूरी से सम्बन्धित दो उदाहरण देंगे जिनके आधार पर केन्ज़ ने व्यष्टिपरक विश्लेषण से भिन्न समष्टिपरक विश्लेषण के विकास व प्रयोग पर बल दिया।

प्रथम हम बचत को लेते हैं। बचत एक व्यक्ति के लिए सदा ठीक है क्योंकि वह बचत किसी उद्देश्य से करता है, जैसे वृद्धावस्था के लिए, अपने बच्चों की शिक्षा के लिए, मकान, कार आदि टिकाऊ पदार्थों के खरीदने के लिए व्यापार के प्रारम्भ अथवा विस्तार के लिए, द्रव्य एकत्र करने तथा बैंक व

अन्य को ऋण देने के लिए जिससे ब्याज प्राप्त हो सके। परंतु समूचे समाज के लिए बचत को सदा अच्छा नहीं कहा जा सकता। यदि एक अर्थव्यवस्था मंदी के चक्र में फंसी हुई है और समस्त समर्थ मॉग की कमी के कारण बेरोजगारी फैली हुई है, तो व्यक्तियों द्वारा अधिक बचत किए जाने पर (जो उनके लिए लाभदायक है) समाज की समस्त मॉग और घट जाएगी जिसके परिणामस्वरूप मंदी व बेरोजगारी और अधिक फैल जाएगी। अतः बचत जोकि एक व्यक्ति के लिए सदा एक सद्गुण है, समाज के लिए, बेरोजगारी एवं मंदी काल में अवगुण बन जाती है। इसी को बचत-विरोधाभास कहा गया है।

यह सिद्ध करने के लिए कि जो एक व्यक्ति के लिए ठीक है परंतु पूरे समाज के लिए ठीक नहीं, एक सामान्य उदाहरण मजदूरी-रोजगार सम्बन्ध का दिया जाता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, प्रतिष्ठित व नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों, मुख्यतः ए.सी. पीगू का विचार था कि मंदी व बेरोजगारी के काल में मौद्रिक मजदूरियों में कमी से रोजगार में वृद्धि होगी तथा बेरोजगारी व मंदी की अवस्थाएं दूर हो जाएंगी। यद्यपि यह सत्य है कि एक व्यक्तिगत उद्योग में मजदूरी गिरने से उस उद्योग में रोजगार स्तर बढ़ जाता है। (यह व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र का सरलतम निष्कर्ष है कि यदि श्रम की मॉग दी हुई है तो कम मजदूरी पर अधिक श्रमिकों की मॉग होगी), परंतु पूरे समाज या अर्थव्यवस्था के लिए यह निष्कर्ष अत्यधिक भ्रामक है। यदि अर्थव्यवस्था में मजदूरी की दरों में सामान्य रूप से कमी कर दी जाये, जैसा कि पीगू व उसके समर्थक अर्थशास्त्रियों ने एक उद्योग में मजदूरी रोजगार में सम्बन्ध के आधार पर सुझाया था, तो समाज में वस्तुओं और सेवाओं की समस्त मॉग घट जाएगी क्योंकि समाज में अधिकांश व्यक्तियों को मजदूरी से ही आय प्राप्त होती है।समस्त मॉग में गिरावट के कारण बहुत से उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मॉग में कमी हो जाएगी। श्रम की मॉग व्युत्पन्न मॉग होने के कारण वस्तुओं की मॉग में कमी होने से श्रम की मॉग भी कम हो जायेगी जिससे रोजगार बढ़ने के स्थान पर घट जायेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जो नियम अधिनियम व्यक्तिगत उपभोक्ता, फर्म या उद्योग के व्यवहार के बारे में ठीक हैं, उनकों यदि समूची अर्थव्यवस्था के व्यवहार पर लागू किया जाय तो भ्रामक व गलत निष्कर्ष प्राप्त होंगे। इस प्रकार यह संरचना की भ्रान्ति है। ऐसा व्यक्तिगत इकाइयों के संबंध में जो सत्य है वह सम्पूर्ण समूह पर लागू न होने के कारण होता है। जैसा ऊपर बताया गया, इनको समष्टिपरक आर्थिक विरोधाभास कहा जाता है, और इन्हीं विरोधाभासों के कारण उन बहुत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सामूहिक अध्ययन आवश्यक है।

समष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण उन बहुत से सम्बन्धों पर विचार करता है जो कि व्यक्तिगत इकाइयों पर लागू नहीं होते। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति जितना विनियोग करता है इससे अधिक बचत कर सकता है, अथवा जितनी बचत करता है उससे अधिक विनियोग कर सकता है परंतु पूर्ण अर्थव्यवस्था में वास्तविक बचत सदा वास्तविक विनियोग के बराबर होती है और यह अभ्युक्ति ही

केन्ज़ियनसमष्टिपरक अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण नियम है। इसी प्रकार एक व्यक्ति की आय उसके व्यय से कम या अधिक हो सकती है परंतु अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय सदा राष्ट्रीय व्यय के बराबर होती है। वस्तुत राष्ट्रीय आय व राष्ट्रीय व्यय एक ही तथ्य के दो पहलू हैं। 'इसी प्रकार पूर्ण रोजगार की स्थिति में एक व्यक्तिगत उद्योग अन्य उद्योगों से श्रमिकों को आकृष्ट करके अपने उत्पादन व रोजगार की मात्रा में वृद्धि कर सकता है, परंतु एक अर्थव्यवस्था इस प्रकार से अपने उत्पादन व रोजगार के स्तर में वृद्धि नहीं कर सकती। अतः व्यक्तिगत उद्योग पर जो नियम लागू होता है, वह प्रायः सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू नहीं होता।

अतः यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि यदि हम सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था के वास्तविक कार्यचालन का समझना चाहते है तो इसके लिए पृथक तथा विशेष समष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण आवश्यकत है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत बिल्कुल बेकार है और इसलिए इसको त्याग देना चाहिए। वास्तव में, समष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं, प्रतियोगी नहीं। ये दो सिद्धांत विभिन्न विषयों का अध्ययन करते हैं, एक मुख्यतः वस्तुओं और सेवाओं की सापेक्ष कीमतों की व्याख्या करता है और दूसरा मुख्यतः समाज में आय व रोजगार के अल्पकाल में निधारण की तथा इसके दीर्घकालीन विकास की। इस प्रकार समष्टिपरक व व्यष्टिपरक दोनों अर्थशास्त्रों का अध्ययन आवश्यक हैं। प्रो0 सेम्युलसन ने ठीक लिखा है कि ''वास्तव में व्यष्टिपरक तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं है। दोनों अत्यावश्यक हैं। यदि आप एक से अनभिज्ञ रह कर केवल दूसरे को ही समझने का प्रयत्न करेंगे तो आप अर्ध-शिक्षित रहेंगें।''

3.6 समष्टि तथा व्यष्टि अर्थशास्त्र का परस्पर सम्बन्ध

वास्तव में व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र परस्पर निर्भर हैं। कुछ समष्टिपरक आर्थिक समूहों (सब नहीं) के व्यवहार सम्बन्धी कुछ सिद्धांत व्यक्तिगत व्यवहार के सिद्धांतों से ही निकलते अथवा व्युत्पादित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए निवेश का सिद्धांत जोकि समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत का महत्वपूर्ण सिद्धांत है, व्यक्तिगत उद्यमकर्ता के व्यवहार से व्युत्पादित किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार एक उद्यमकर्ता अपनी विनियोग सम्बन्धी क्रियाओं में, एक ओर, प्रत्याशित लाभ की दर और दूसरी ओर, ब्याज की दर से प्रभावित होता है। यही बात समस्त निवेश फलन के बारे में सत्य है। इसी प्रकार, समस्त उपभोग फलन व्यक्तिगत उपभोक्ताओं के व्यवहार-कलाप पर आधारित है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि समस्त निवेश फलन तथा उपभोग फलन, व्यक्तिगत इकाइयों की क्रियाओं का योगीकरण हैं क्योकि इस संदर्भ में व्यक्तिगत इकाइयों का व्यवहार-कलाप समूह के व्यवहार से भिन्न नहीं है। इसके अतिरिक्त हम इन समूहों के व्यवहार को तभी व्युत्पन्न कर सकते हैं जबकि या तो समूहों का गठन स्थिर हो या गठन में किसी नियमित रूप से परिवर्तन हों जब समूह के आकार में परिवर्तन हैं जबकि या तो समूहों का गठन स्थिर हो या गठन में किसी नियमित रूप से

परिवर्तन हों जब समूह के आकार में परिवर्तन होता है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि समस्त समष्टिपरक आर्थिक सम्बन्धों की व्यवहार-विधि उनका गठन करने वाली इकाइयों के व्यवहार-कलापों के अनुरूप होती है। जैसा कि हमने ऊपर देखा कि एक अर्थव्यवस्था में बचत-निवेश सम्बन्ध तथा मजदूरी-रोजगार संबंध व्यक्तिगत भागों के सम्बन्धों से भिन्न होते हैं।

व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत को एक और प्रकार से भी सहायता प्रदान करता है। सामान्य कीमत-स्तर के निर्धारण की व्याख्या के लिए पदार्थों तथा साधनों की सापेक्ष कीमतों का सिद्धांत आवश्यक है। केन्ज़ ने भी देश में मुद्रा-पूर्ति की वृद्धि के परिणाम-स्वरूप कीमत वृद्धि को स्पष्ट करने के लिए व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत का सहारा लिया। केन्ज़ के अनुसार जब मुद्रा-पूर्ति और तद्रूरूप समस्त मॉग वृद्धि के कारण कीमत बढ़ जाती है। केन्ज़ के अनुसार, उत्पादन है तो उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। उत्पादन लागत में वृद्धि के कारण कीमत बढ़ जाती है। केन्ज़ के अनुसार, उत्पादन लागत दो कारणों से बढ़ती है: (1) ह्रासमान प्रतिफल का नियम के लागू होने के कारण तथा (2) अर्थव्यवस्था के पूर्ण रोजगार स्तर के निकट पहुंचने के कारण कच्चे माल की कीमतें तथा मजदूरियॉ बढ़ जाने के कारण। उत्पादन लागत, ह्रासमान प्रतिफल आदि का कीमत निर्धारण पर प्रभाव व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र का ही भाग है।

केवल समष्टिपरक अर्थशास्त्र ही व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र पर निर्भर नीं करता बल्कि व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र भी कुछ सीमा तक समष्टिपरक अर्थशास्त्र पर निर्भर है। लाभ की दर तथा ब्याज की दर का निर्धारण व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र के सुप्रसिद्ध विषय हैं परंतु समष्टिपरक समूहों पर इनकी निर्भरता अत्यधिक है। व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत में, लाभों को अनिश्चितता वहन करने का पारितोषिक माना जाता है, परंतु व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत यह स्पष्ट नहीं कर पाता कि उद्यमकर्ता को प्राप्त होने वाले लाभों के आकार को कौन सी आर्थिक शक्तियॉ निर्धारित करती हैं और इनमें उच्चावन क्यों होते हैं। लाभों का आकार अर्थव्यवस्था में समस्त मॉग के स्तर, राष्ट्रीय आय और सामान्य कीमत-स्तर पर निर्भर करता है। हम जानते है कि मंदी काल में जबकि समस्त मॉग, राष्ट्रीय आय तथा सामान्य कीमत-स्तर निम्न होते हैं तो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उद्यमकर्ता को हानि होती हैं। दूसरी ओर, जब समस्त मॉग, राष्ट्रीय आय तथा सामान्य कीमत-स्तर में वृद्धि होती है और तेजी की दशाएं प्रचलित होती हैं तो उपक्रमियों को अत्यधिक लाभ होते हैं।

अब ब्याज की दर का उदाहरण लीजिए। वास्तव में ब्याज की दर का सिद्धांत अब समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत का ही विषय बन गया है। ब्याज का आंशिक संतुलन सिद्धांत उन सब शक्तियों का वर्णन नहीं करता जो ब्याज की दर का निर्धारण करती है। केन्ज़ ने स्पष्ट किया कि ब्याज की दर अर्थव्यवस्था में तरलता अधिमान फलन तथा मुद्रा की पूर्ति से निर्धारित होती है। अर्थव्यवस्था में तरलता अधिमान फलन तथा मुद्रा की पूर्ति समष्टिपरक आर्थिक धारणाएं हैं। निसंदेह इस सम्बंध में केन्ज़ के सिद्धांत को अनिर्दिष्ट बताया गया है परंतु ब्याज के आधुनिक सिद्धांत में तरलता अधिमान

तथा मुद्रा-पूर्ति की सामूहिक धारणाएं ब्याज के निर्धारण की व्याख्या में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके अतिरिक्त ब्याज के आधुनिक सिद्धांत (अर्थात *LM* तथा *IS* वक्रों द्वारा ब्याज का निर्धारण) में तरलता अधिमान तथा मुद्रा की पूर्ति के साथ-साथ दो अन्य शक्तियॉ, जो कि ब्याज का निर्धारण करती हैं, वे बचत व निवेश फलन हैं जिनका वर्णन भी सामूहिक अथवा व्यष्टिपरक मदों मे किया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि समष्टिपरक अर्थशास्त्र के उपकरणों तथा धारणाओं के बिना लाभों व ब्याज की दरों के निर्धारण को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र विभिन्न विषयों का अध्ययन करते हैं, परंतु इन दोनों में गहन परस्पर निर्भरता है। विभिन्न आर्थिक तथ्यों की व्याख्या में समष्टिपरक व व्यष्टिपरक अर्थशास्त्रों के उपकरणों तथा धारणाओं का प्रयोग करना होता है। परस्पर निर्भरता के संबंध में प्रो0 ऐकले का कथन महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार, ''समष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा व्यक्तिगत व्यवहार सिद्धांत के सिद्धांत के संबंध में दो और यातायात है। एक ओर व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत हमारे सामूहिक सिद्धांतों के लिए निर्माण ब्लाक प्रदान करता है। दूसरी ओर समष्टिपरक अर्थशास्त्र व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र को समझने में सहायक है। उदाहरण के लिए, यदि हमे ज्ञात हो कि अनुभवमूलक स्थायी समष्टिपरक नियम जो कि व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धांतों से मेल नहीं खाता या व्यवहार के उस पहलू का वर्णन करता है जिसकी व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र ने अवहेलना की है तो समष्टिपरक अर्थशास्त्र व्यक्तिगत व्यवहार को समझने में हमारी सहायता कर सकता हैं।''

3.7 केन्ज़ का समष्टि अर्थशास्त्र तथा विकासशील देश

अन्त में, यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि औद्योगिक विकसित देशों में विकसति समष्टि अर्थशास्त्र का भारत जैसे देशों मे सीमित प्रयोग है। केन्ज़ ने जिस समष्टिपरक अर्थशास्त्र का विकास किया वह मुख्यतः समस्त मॉग की कमी के कारण उत्पन्न मंदी तथा बेराजगारी से पीड़ित अर्थव्यवस्था के लिए था। इन देशों में पूँजी के भण्डार की कोई कमी नहीं थी। इनमें समस्त मॉग में गिरावट से क्षमता-आधिक्य अर्थात् वर्तमान पूँजी भण्डार का सम्पूर्ण क्षमता से कम प्रयोग की समस्या उत्पन्न हो जाती है और इस बेरोजगारी फैलती है। परंतु भारत के समान अल्प-विकसित देशों में समस्या एकदम भिन्न है। यहॉ बड़ी मात्रा में बेरोजगारी है तथा पूँजी की कमी अथवा न्यून उत्पादन क्षमता के कारण राष्ट्रीय आय का स्तर निम्न है। भारत जैसे अल्प-विकसित देशों में जनसंख्या में वृद्धि की दर की तुलना में पूँजी संचय की दर बहुत कम रही है। आधुनिक काल में उपकरण, मशीनरी, फैक्टरियों आदि के समान पूँजीगत वस्तुएं , व्यक्तियों को उत्पादन क्रियाओं में रोजगार उपलब्ध कराने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। जनसंख्या वृद्धि के दर के पूँजी-निर्माण की दर से अपेक्षाकृत अत्यन्त भिन्न होने के कारण, व्यक्तियों के लिए रोजगार-सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं की जा सकी हैं। इसके परिणामस्वरूप इन देशों में बेरोजगारी तथा अर्ध-रोजगारी विशाल मात्रा में विद्यमान है। जब व्यक्तियों

को पूँजी-निर्माण तथा औद्योगीकरण की निम्न दरों के कारण कृषि के बाहर अधिक मात्रा में रोजगार नहीं मिल पाता, तो वे कृषि-कार्यों में ही संलग्न रहते हैं और इससे भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ता रहता है। इसके परिणामस्वरूप कृषि में प्रच्छन्न बेरोजागारी उत्पन्न हो गई है जिसका तात्पर्य यह है कि कृषि में इतने अधिक लोग लगे हुए है कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य हो गई है। इन दशाओं में यदि श्रमिकों की एक काफी बड़ी संख्या को भूमि पर से हटा लिया जाए तो कुल कृषि उत्पादन मे कोई कमी नहीं आएगी।

विकासशील देशों में पूँजी स्टाक- औद्योगिक फैक्टरियॉ, मशीनें, उपकरण, कृषि-भूमि, परिवहन के साधन, सिंचाई कार्यक्रम आदि के कम मात्रा में उपलब्ध होने के कारण ही इन देशों में उत्पादन क्षमता का स्तर निम्न है और राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय कम है। इस प्रकार हम देखते हैं कि औद्योगिक रूप से विकसित देशों तथा विकासशील देशों की प्रकृति तथा ढॉचें में बहुत अन्तर है। इसलिए अल्पविकसित देशों पर लागू समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत आवश्यक रूप से उन समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांतो से भिन्न होंगे जो उन्नत देशों के लिए निर्धारित किए गए है।

3.8 समष्टि तथा व्यष्टि-आर्थिक सिद्धांतों के मिश्रण की आवश्यकता

हमने देखा कि कैसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विश्लेषण करने में केवल व्यष्टि दृष्टिकोण को ही अपनाया। हमने यह भी देखा कि यह उनकी भारी भूल थी और अर्थव्यवस्था के विश्लेषण में समष्टि दृष्टिकोण को न अपनाने से अर्थव्यवस्था की सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या अर्थात् देश में रोजगार तथा देश के समस्त उत्पादन और आय की उपेक्षा की गई। अतः व्यष्टिपरक ढंग कई आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए बिल्कुल अपर्याप्त या अधूरा है। केवल यह अधूरा ही नहीं, वरन् इसके अपनाने से हम कई बार बिल्कुल गलत परिणाम पर पहुँच जाते हैं। इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र में यह आवश्यक नहीं कि जो बात या नियम अर्थव्यवस्था के भागों के विषय में सत्य हो या लागू हो, वह समूची अर्थव्यवस्था पर भी लागू हो या इसमें सत्य हो। यह बात उदाहरण की सहायता से समझ में आ जायेगी। किफायत को लें मंदी मे किफायत करना जहॉ किफायत वाले व्यक्तियों के लिए अच्छी बात होती है, वहॉ यदि सभी लोग किफायत करने लग जाए तो मंदी और बढ़ जाती है। इसे किफायत की विरोधोक्ति कहा जाता है। ऐसा क्यों होता है, इसकी हम आगे चलकर व्याख्या करेंगे। यहॉ केवल हमें यह बताना है कि समष्टिपरक दृष्टिकोण का ढंग क्यों आवश्यक है।

वास्तव में हमे आर्थिक विश्लेषण में इन दोनों ढंगों की आवश्यकता पड़ती है। हमारी मुख्य आर्थिक समस्याओं का हल प्रायः इन दोनों ढंगों को प्रयोग में लाने से ही ढूंढा जा सकता है। उदाहरणतया अर्थव्यवस्था में भारी तेजी की अवस्था को लीजिये। ऐसी अवस्था में अधिकतर यह देखने में आता है कि जहॉ रोजगार तथा आय समूचे रूप से या तो बड़े उच्च स्तर पर होते हैं, वहॉ कई ऐसे उद्योग भी

होते हैं जो घटे पर चल रहे होते हैं या जीवन की अंतिम सॉस ले रहे होते हैं। इसी प्रकार भारी मंदी के दिनों में भी कई ऐसे उद्योग देखने में आते हैं जो असाधारण लाभ कमाते हुए दिन दूनी रात-चौगनी उन्नति कर रहे होते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में भी व्यष्टिपरक विश्लेषण द्वारा उन उद्योगों के विषय में कोई नीति बनाना कितना गलत और हानिप्रद होगा और उसी प्रकार के इन्हीं इक्के-दुक्के उद्योगों के व्यष्टिपरक विश्लेषण के आधार पर ही समूची अर्थव्यवस्था के संबन्ध में नीति निश्चित करना भी उतनी ही भारी भूल होगी तथा उससे भी कहीं अधिक हानिकारक होगी।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि ऐसी समस्याओं में हमे समष्टिपरक तथा व्यष्टिपरक दोनों ही विश्लेश णों का समुचित मिश्रण या संकलन करना चाहिए। सत्य तो यह है कि ऐसी व्यष्टिपरक समस्याएं शायद ही हों जिनके समष्टिपरक पहलू बिल्कुल न हो और इसी प्रकार शायद ही ऐसी समष्टिपरक समस्याएं जिनका कोई न कोई व्यष्टिपरक पहलू न हो। अतः उचित ही है कि चाहे तो हमें आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण करना हो और चाहे हमें इन्हें हल करने के लिए नीति निश्चित करनी हो, इन दोनों ढंगों को आवश्कतानुसार प्रयोग में लाया जाय। यदि हम एक की उपेक्षा करके केवल दूसरे ढंग की शरण लेंगे तो अधिकतर ऐसा होगा कि हमारी व्याख्या न केवल अधूरी या गलत होगी, वरन् यह भी हो सकता है कि इसके आधार पर अनुचित या विनाशकारी नीति को अपना लें।

3.9 समष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न मॉडल (अथवा विचारधाराएं)

समष्टि अर्थशास्त्र की विभिन्न विचारधाराएं है जिनमें समूची अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली के विषय में विभिन्न मॉडल प्रस्तुत किए गए हैं। हम नीचे इन विभिन्न विचारधाराओं अथवा मॉMलों की संक्षिप्त व्याख्या करेंगे और उनमें मुख्य अंतरो को स्पष्ट करेंगे।

3.9.1 प्रतिष्ठित समष्टि अर्थशास्त्र सन् 1930 से पूर्व अधिकांश अर्थशास्त्री यह समझते थे कि पूर्ति तथा मॉग की शक्तियों के स्वतंत्र रूप से कार्य करने से अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति रहेगी जिससे कोई अनैच्छिक रूप से बेरोजगार नहीं रहेगा। जब किसी कारण से पूर्ण रोजगारी की स्थिति से अर्थव्यवस्था विचलित हो जाती है तो प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार मॉग और पूर्ति की शक्तियों के स्वयंमेव कार्य करके कीमतों तथा मजदूरी में परिवर्तन द्वारा पूर्ण रोजगार संतुलन पुनः स्थापित हो जाएगा जिससे कोई अनैच्छिक बेरोज़गारी नहीं रहेगी। प्रतिष्ठित समष्टिपरक आर्थिक मॉडल निम्नलिखित दो आधारभूत नियमों पर आधारित हैं

(1) से का नियम

(2) मुद्रा की तटस्थता

एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री द्वारा प्रस्तुत इस से के नियम के अनुसार प्रत्येक पूर्ति मॉग स्वयं उत्पन्न करती है। इसका तात्पर्य यह है कि समस्त मॉग में कमी के कारण उद्यमकर्ताओं द्वारा उत्पादन व निवेश करने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी। जब उत्पादन के साधन बेराज़गारी पड़े होते हैं तो निजी उद्यमकर्ता उन्हें प्रयोग में लाने के लिए निवेश करेंगे तथा उनसे वस्तुओं का उत्पादन करेंगे और इस उत्पादन क्रियाओं से साधनों (जिनमें श्रमिक भी शामिल हैं) की आयें बढ़ेंगी जिससे उत्पादित वस्तुओं की मॉग सर्जित होगी। इस प्रकार प्रतिष्ठित समष्टि अर्थशास्त्र के अनुसार जब तक श्रम अथवा अन्य साधन अप्रयुक्त अथवा बेराज़गार रहते हैं, उद्यमियों के लिए यह लाभकारी होगा कि उनको उत्पादन कार्यों में प्रयोग करें और इस प्रकार उनके लिए बेरोजगार उपलब्ध कराएं। जब किसी कारण से वस्तुओं की मॉग घट जाती है जैसा कि मंदी की स्थिति में होता है जिससे श्रमिकों की मॉग कम हो जाती है तो क्लासीकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार ऐसी स्थिति में यदि अन्य शक्तियॉ बाधा उत्पन्न करें तो मजदूरी दर कम हो जाएगी और इस मजदूरी की दर पर श्रमिकों को काम पर लगाया जाएगा जिससे अनैच्छिक बेरोज़गारी दूर हो जाएगी और पूर्ण रोजगार, सरकारी हस्तक्षेप के बिना, पुनः स्थापित हो जाएगा।

प्रतिष्ठित समष्टि अर्थशास्त्र के दूसरे महत्वपूर्ण नियम मुद्रा की तटस्थता के अनुसार मुद्रा वास्तविक चरों की मात्राओं जैसे कि वास्तविकता सकल राष्ट्रीय उत्पादन, वास्तविक मजदूरी की दर, वास्तविक ब्याज की दर इत्यादि को प्रभावित नहीं करती। इन वास्तविक चरों की मात्राएं वास्तविक शक्तियों जैसे कि साधनों की उत्पादकता, टेक्नोलॉजी, उपभोक्ताओं के अधिमानों आदि द्वारा निर्धारित होती हैं। मुद्रा में परिवर्तन इनके केवल मौद्रिक परिमाणों को प्रभावित करता है, उनकी वास्तविक मात्राओं को नहीं। मुद्रा पूर्ति में वृद्धि से चरों की केवल कीमतें बढ़ेंगी, उनके वास्तविक परिणाम नहीं।

यहॉ यह उल्लेखनीय है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अबन्धनीति में विश्वास करते थे और इसलिए सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करके उसे सुचारू रूप से संचालित करने को आवश्यक नहीं समझते थे क्योंकि उनके अनुसार मॉग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा स्वयंमेव समायोजन द्वारा पूर्ण रोजगार की स्थिति बनी रहती है और आर्थिक विकास सुनिश्चित होता है।

3.9.2 केन्ज़ीयन समष्टि अर्थशास्त्र :- 1929-33 में लगभग सभी पूँजीवादी देशों में महामंदी की स्थिति उत्पन्न हुई जिससे उनमें बड़ी मात्रा में बेरोजगारी फैल गई तथा राष्ट्रीय उत्पादन में भीश ण कमी हुई। उस समय पूर्ति और मॉग की शक्तियों द्वारा स्वतंत्र रूप से क्रियाशील होकर बेरोज़गारी को दूर करना तथा इस प्रकार पूर्ण रोजगार स्थापित करना अवास्तविक समझा जाने लगा। इससे प्रभावित होकर ब्रिटेन के एक विख्यात अर्थशास्त्री जे. एम. केन्ज़ ने एक प्रसिद्ध पुस्तक में अपना एक नया समष्टिपरक सिद्धांत या मॉडल प्रस्तुत किया। अपनी इस पुस्तक में केन्ज़ ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र क्रे से के नियम की कटु आलोचना की और यह सिद्ध किया कि पूर्ति अपनी मॉग पूरी तरह उत्पन्न नहीं

करती जिससे समस्त मॉग की कमी की समस्या का सामना करना पड़ता है। समस्त मॉग की इस कमी के कारण देश में अर्थव्यवस्था का पूर्ण रोजगार पर संतुलन नहीं हो पाता जिससे अनैच्छिक बेरोज़गारी पैदा हो जाती है। केन्ज़ के अनुसार निवेश जो कि उद्यमकर्ता की लाभ आशंसाओं पर निर्भर करता है, के घट जाने के कारण समस्त मॉग कम हो जाती है जो अर्थव्यवस्था में मंदी के सर्जन का कारण बनती है। केन्ज़ ने बल देकर कहा कि वास्तविक मजदूरी में कमी से बेरोजगारी दूर नहीं होगी क्योकि समूची अर्थव्यवस्था में मजदूरियों के घटा देने से अर्थव्यवस्था में समस्त मॉग घट जाएगी जिससे रोज़गार व उत्पादन की मात्रा पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त केन्ज़ ने पूर्ण रोजगार के स्तर पर स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा सक्रिय भूमिका निभाने पर बल दिया। समस्त मॉग में कमी के कारण सर्जित भीश ण मंदी और बेराज़गारी दूर करने के लिए केन्ज़ ने सरकार द्वारा अपने व्यय में वृद्धि करने (अथवा करों में कटौती करने) की राजकोषीय नीति पर बल दिया। केन्ज़ ने मुद्रा की तटस्थता के सिद्धांत को भी चुनौती दी। उसके अनुसार मुद्रा की पूर्ति मुद्रा के लिए मॉग के साथ मिलकर ब्याज की दर को निर्धारित करती है और यह ब्याज की दर देश में निवेश को प्रभावित करती है जिस पर देश की वास्तविक राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोज़गार निर्भर करते हैं। यहॉ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि बेरोज़गारी दूर करने के लिए केन्ज़ ने मौद्रिक नीति के बजाय राजकोषीय नीति पर अधिक बल दिया। इसके अतिरिक्त केन्ज़ ने अपने समष्टि अर्थशास्त्र के मॉडल में उपभोग फलन, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, गुणांक का सिद्धांत, नकदी अधिमान आदि महत्वपूर्ण धारणाएं प्रतिपादित की जो सूची अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली की व्याख्या के लिए आवश्यक है। इस पुस्तक में हम केन्ज़ के सिद्धांत की विस्तारपूर्वक विवेचना करेंगे।

3.9.3 मुद्रावाद

केन्ज़ के समष्टिपरक सिद्धांत के विरूद्ध मुद्रावाद का जन्म हुआ जिसके प्रमुख पक्षपोश क अमेरिका के विख्यात अर्थशास्त्री फ्रीडमैंन है। मुद्रावादी अर्थशास्त्रियों का केन्ज़वादी अर्थशास्त्रियों में मुख्यतः दो विषयों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण अन्तर है। प्रथम विषय है मुद्रास्फीति तथा मुद्रा की मात्रा में परस्पर सम्बन्ध। दूसरा विषय है सरकार की अर्थव्यवस्था में भूमिका। मुद्रावादी यह मानते हैं कि मुद्रास्फीति सदा एक मौद्रिक घटना होती है और मुद्रास्फीति का कारण मद्रा में अत्यधिक वृद्धि होना है। फ्रीडमैंन ने ऐतिहासिक अध्ययन द्वारा यह सिद्ध किया कि मंदी का कारण भी केन्द्रीय बैंकों द्वारा मुद्रापूर्ति अथवा साख को बहुत संकुचित करना है। मुद्रास्फीति के समाधान के लिए वे मुद्रा पूर्ति को कम गति से वृद्धि करने का प्रस्ताव करते हैं। मंदी से बचने के लिए वे व्यवसायों के लिए साख की एक स्थायी समुचित व्यवस्था पर बल देते हैं।

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया मुद्रावाद के विषय में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह अर्थव्यवस्था में स्थिरीकरण की प्राप्ति के लिए सरकार की सक्रिय-भूमिका के विरूद्ध है। इसके विपरीत केन्ज़वादी अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने तथा आर्थिक स्थिरता लाने के लिए सरकार द्वारा सक्रिय भूमिका निभाने पर बल देते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की तरह मुद्रावादियों का विचार है कि अर्थव्यवस्था स्वभाविक रूप से स्थिर होती है और पूर्ण रोजगार की संतुलन की स्थिति में आ जाती है। इसलिए वे मुद्रा-पूर्ति में एक स्थिर दर से वृद्धि करने को एक नियम के रूप में अपनाने का सुझाव देते हैं। वे सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा-पूर्ति में परिवर्तन की विवेकपूर्ण नीति के विरूद्ध हैं।

इसके विपरीत, जैसा कि हम ऊपर पढ़ चुके हैं केन्ज़वादी सरकार द्वारा क्रियावादी नीति अपनाने पर बल देते हैं। इस विषय में केन्ज़वादी मंदी व मुद्रास्फीति की समस्याओं के समाधान के लिए विवेकपूर्ण राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियॉ अपनाने पर बल देते हैं। इसके अतिरिक्त केन्ज़वादी अर्थशास्त्री यह बताते है कि मुद्रा-पूर्ति में वृद्धि सदा मुद्रा स्फीति उत्पन्न नहीं करती। मुद्रा पूर्ति में वृद्धि से कीमत स्तर बढ़ेगा या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसके फलस्वरूप उत्पादन में कितनी वृद्धि होती हैं। यदि अर्थव्यवस्था में मंदी पाई जाती है और सरकार मुद्रा-पूर्ति में वृद्धि करती है, तो इससे कीमतों में वृद्धि नहीं होगी क्योंकि मंदी की दशा में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि से उत्पादन बढ़ जाता है जो कीमतों को बढ़ने से रोकता है।

इसी प्रकार मुद्रावादी सरकार के बजट के घाटे तथा सार्वजनिक ऋण के बहुत विरूद्ध हैं। वे करों की कम दरों तथा कम सार्वजनिक व्यय के पक्ष में तर्क देते हैं ताकि सरकार की आर्थिक भूमिका को घटाया जा सके।

3.9.4 पूर्ति-पक्ष अर्थशास्त्र

1970-80 के दशक के कुछ अंतिम वर्षों तथा 1980-84 के पॉच वर्षों में अर्थशास्त्री यह समझने लगे कि बेरोजगारीव मुद्रास्फीति की समस्याएं मॉग-पक्ष में गड़-बड़ होने के कारण उत्पन्न नहीं होती हैं जैसा कि केन्ज़वादी अर्थशास्त्री मानते थे बल्कि पूर्तिपक्ष की समस्याओं के कारण उत्पन्न होती हैं। इन समय अवधियों में एक ओर बड़ी मात्रा में बेरोजगारी तथा दूसरी ओर ऊँची दर की मुद्रा-स्फीति दोनों एक साथ पाई जाती थीं जोकि केन्ज़ के समष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत के विरूद्ध घटना थी। ऐसी समस्या को जबकि ऊँची दर की मुद्रास्फीति तथा अधिक मात्रा में बेरोजगारी (अथवा आर्थिक विकास का अभाव) के एक साथ पाये जाने को गतिहीनस्फीति कहते हैं। गतिहीनस्फीति एक विचित्र समस्या है। इसका समाधान केन्ज़वादी तथा मुद्रावादी समष्टि-अर्थशास्त्र द्वारा सुझाई गई नीतियों से सम्भव न था। पूर्ति-पक्ष के समर्थक उत्पादन में वृद्धि करने तथा परिणामस्वरूप रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के लिए अधिक कार्य करने, बचत व निवेश में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहन देने की आवश्यकता पर बल देते हैं।

उनके मतानुसार श्रम-कार्य तथा निवेश में वृद्धि से समस्त पूर्ति व उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। समस्त पूर्ति व उत्पादन में वृद्धि से एक और रोजगार बढ़ेगा जिससे बेरोजगारी दूर होगी और दूसरी ओर मुद्रास्फीति कम होगी। पूर्ति-पक्ष के अर्थशास्त्र समर्थको का विचार है कि आय कर की ऊँची दरें अधिक कार्य, बचत तथा निवेश करने को हतोत्साहित करती हैं। इसलिए उनकी आर्थिक नीति में आय करों की दरों को बहुत कम कर देने का सुझाव देते हैं ताकि अधिक कार्य, बचत तथा निवेश करने को प्रोत्साहन मिल सके जिससे उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि प्राप्त होगी। उत्पादन में विस्तार से कीमतें घटेंगी तथा रोजगार में भी वृद्धि होगी अर्थात् उत्पादन में वृद्धि से मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी का एक साथ समाधान सम्भव होगा। इसके अतिरिक्त पूर्ति-पक्ष के अर्थशास्त्र के समर्थकों का विचार है कि आय व अन्य करों की दरों को घटाने से राष्ट्रीय उत्पादन व आय में इतनी अधिक वृद्धि होगी कि कम दरों पर भी सरकार को अधिक सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त होगा जिससे सरकार का बजट घाटा कम हो जाएगा। इस सम्बन्ध में लैफर वक्र की धारणा विकसित की गई है जिसके अनुसार जब आरम्भ में करों की दर बढ़ती है तो सरकार के राजस्व में वृद्धि होती है और एक बिन्दु के पश्चात् करों की दर में राजस्व घटता जाता है। अतः उनके अनुसार करों की वर्तमान ऊँची दरें (जो 50 से 60 प्रतिशत तथा इससे भी अधिक हैं) कम राजस्व के लिए भी उत्तरदायी हैं। अतः उनके मतानुसार आय कर तथा अन्य प्रत्यक्ष करों की दरों में कमी से न केवल राष्ट्रीय उत्पादन, आय व रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी बल्कि सरकार का राजस्व भी बढ़ेगा जिससे बजट घाटे की समस्या का समाधान भी हो जाएगा।

3.10 नव प्रतिष्ठित समष्टि-अर्थशास्त्र: विवेकपूर्ण आशंसाओं का सिद्धांत

हाल के कुछ वर्षों में समष्टि-अर्थशास्त्र का एक नया मॉडल विकसित किया गया है जो केन्ज़वादी समष्टि-अर्थशास्त्र विरूद्ध नीति सम्बन्धी सुझाव देता है। इस विचारधार के पक्षपोश क यह मानते हैं कि उपभोक्ता तथा उत्पादक विवेकपूर्ण व्यवहार करते हैं और अपने हित व कल्याण को बढ़ावा देने के लिए अपनी विवेकपूर्ण आशंसाओं पर कार्य करते हुए अपने आर्थिक व्यवहार में शीघ्रता से समायोजन कर लेते हैं। परिणामस्वरूप नव प्रतिष्ठित समष्टि-अर्थशास्त्र के अनुसार अनैच्छिक बेरोजगारी नहीं हो सकती है। इस सिद्धांत के समर्थक यह समझते हैं कि उत्पादक तथा उपभोक्ता आवश्यक सूचनाएं एकत्रित करते हैं और उन और आधारित विवेकपूर्ण आशंसाओं के अनुसार अपना आर्थिक व्यवहार निश्चित करते हैं। इस विवेकपूर्ण आशंसाओं के सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति विभिन्न आर्थिक घटनाओं तथा सरकार नीतियों के सही परिणाम निकालते हैं व सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा उनके आधार पर आशंसाएं निश्चित करने में वे कभी गलती नहीं करते। उदाहरणतः जब सरकार अपना घाटे का बजट बनाती है तो उपभोक्ता, श्रमिक व उत्पादक ये आशंसाएं करेंगे कि

इससे ब्याज की दरें बढ़ जाएगी। अतः इससे पहले कि ब्याज की दरें वास्तव में बढ़ें वे ऋण ले लेंगे ताकि बाद में ऊँची ब्याज की दरों से बचा जा सके। दुर्भाग्य से उनके इस व्यवहार से ब्याज की दरें तुरंत ही बढ़ जाती हैं न कि भविष्य में। केन्ज़ के सिद्धांत के अनुसार सरकारी बजट के घाटे के कारण सरकार के व्यय में वृद्धि होती है जिससे समस्त मॉग बढ़ती है जो आय तथा रोज़गार में वृद्धि करती हैं। विवेकपूर्ण आशंसाओं की विचारधार के अनुसार बजट घाटे से ब्याज दर बढ़ जाएगी जो निजी निवेश को घटा देगी। अतः इस सिद्धांत के अनुसार सरकारी व्यय की वृद्धि से समस्त मॉग में बढ़ोत्तरी निजी निवेश में कमी द्वारा कैंसल को जाती है। परिणामस्वरूप बजट घाटे से राष्ट्रीय उत्पादन, आय तथा रोजगार की मात्राएं अप्रभावित रहती हैं।

इसी प्रकार विवेकपूर्ण आशंसाओं के सिद्धांत के अनुसार सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा-पूर्ति में वृद्धि की जाती है तो उपभोक्ता, श्रमिक व उत्पादक ये आशंसाए करेंगे कि इससे कीमतें बढ़ जाएगी। इन आशंसाओं पर कार्य करते हुए श्रमिक अपनी मज़दूरियॉ बढ़ायेंगे, मालिक अपने किराये बढ़ायेंगे, बैंकर अपनी ब्याज दरें बढ़ाएंगे, उत्पादक लोग अपने लाभ-मार्जिन में वृद्धि करेंगे। इन समायोजनों द्वारा मुद्रा-पूर्ति में वृद्धि का विभिन्न व्यक्तियों पर पड़ने वाला प्रभाव रद्द हो जाएगा। व्यक्तियों तथा उत्पादकों द्वारा अपने हितों की रक्षा करने के लिए बचाव कार्य करने पर नव प्रतिष्ठित सिद्धांत के पक्षपोश क सरकार द्वारा आर्थिक स्थिरता हेतु समष्टिपरक नीति अपनाने की आवश्यकता नहीं समझते। उनका यह विचार मुद्रावादियों की तरह है। अतः विवेकपूर्ण आशंसाओं के सिद्धांत के समर्थक भी सरकार द्वारा क्रियावादी भूमिका अपनाने के विरूद्ध तर्क देते हैं। उनका विचार है कि क्रियावादी नीति को सफलता से क्रियान्वन करना अति कठिन है। उनका विचार है कि मार्किट प्रायः संतुलन में रहती है और लोग अपने हितों की रक्षा के लिए अच्छी प्रकार अपने कार्य-व्यवहार को समायोजिक करते हैं। आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अपनी सक्रिया भूमिका द्वारा सरकार कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सकती। सरकार की तुलना में व्यक्ति स्वयं अपने हितों की रक्षा के लिए बेहतर स्थिति में होते हैं।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. से का बाजार नियम किसे कहते है?
2. सामान्य कीमत स्तर के बारे में केन्स का क्या विचार हैं?
3. क्या रोजगार का सिद्धांत समष्टि का विषय है?

3.11 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि समष्टि अर्थशास्त्र को 'आय और रोजगार का सिद्धांत'या केवल 'आय विश्लेषण' भी कहते है। बेरोजगारी, आर्थिक उतार-चढ़ाव, मुद्रा-स्फीति, अपस्फीति, स्थिरता, गतिहीनता, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आर्थिक विकास की समस्याओं से इसका सम्बन्ध है। यह

बेरोजगारी के कारणों तथा रोजगार के विभिन्न निर्धारकों का अध्ययन करता है। व्यापार चक्रों के क्षेत्र में, या कुल उत्पादन, कुल आय, तथा कुल रोजगार पर पड़ने वाले निवेशो के प्रभावों से अपना सम्बन्ध रखता है। मौद्रिक क्षेत्र में यह सामान्य कीमत स्तर पर मुद्रा की कुल मात्रा के प्रभाव का अध्ययन करता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के भुगतान-शेष तथा विदेशी सहायता की समस्याएं समष्टि आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में आती है। इन सबसे बढ़कर, समष्टि आर्थिक सिद्धांत, एक देश के कुल आय के निर्धारण की समस्याओं और उसके उतार-चढ़ाव के कारणों पर विचार करना है। अंतिम, या उन कारणों का अध्ययन करता है जो विकास में रूकावट डालते है और उनका, जो अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास के मार्ग पर लाते है।

3.12 शब्दावली

उपभोग फलन - आय एवं उपभोग के बीच पाये जाने वाले सम्बंध को उपभोग फलन कहते है।

निवेश - जब आय को इस उद्देश्य से लगाया जाय कि राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उत्पादकता, रोजगार तथा पूँजी निर्माण में वृद्धि हो तो उसे निवेश कहते है।

'से' का नियम - ''पूर्ति अपनी मॉग का सृजन स्वयं करती है''।

राष्ट्रीय आय - एक वर्ष में एक देश में अंतिम रूप से उत्पादित समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं का बाजार मूल्य जिसमें शुद्ध विदेशी प्राप्तियों को जोड़ देते है और मूल्य ह्रास को निकाल देते है, वही राष्ट्रीय आय कहलाता है।

3.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. Martin J. Bailey, National Income and the Price Level Second Edition, 1971, Chapter2, pp.3-11.
2. Stanley Bober, The Economics of Cycles and Growth, 1968, Chapter 1.
3. Edward Shapiro , Macroeconomic Analysis, Fifth Edition, 1984, Chapter 3.
4. R.G.D. Allen, Macro-economic Theory, Macmillan, 1967, Chapter 1.

3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्ज के समष्टि अर्थशास्त्र का विकासशील देशों पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
2. समष्टि अर्थशास्त्र के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. समष्टि अर्थशास्त्र में केन्जीयन दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
4. समष्टि तथा व्यष्टि अर्थशास्त्र के बीच परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
4 समष्टि अर्थशास्त्र का अलग अध्ययन क्यों किया जाता है?

इकाई-4 राष्ट्रीय आय की अवधारणा एवं परिभाषा

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय उत्पाद का अर्थ

4.4 राष्ट्रीय आय की परिभाषाएँ

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

4.8 संदर्भ ग्रन्थ

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय की विचारधारा बहुत अधिक पुरानी है। राष्ट्रीय आय सम्बन्धी आवधारणा का विकास बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से माना जाता है। किसी देश के लिए उसकी राष्ट्रीय आय की जानकारी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि राष्ट्रीय आय के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में होने वाली प्रगति की माप सम्भव है, जिसके माध्यम से कोई देश विकास सम्बन्धी नीतियों का निर्माण कर सकता है। किसी देश के लिए राष्ट्रीय आय उसकी आर्थिक स्थिति का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:-

- राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय उत्पाद का अर्थ एवं उनके पारस्परिक सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेगें,
- राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं से परिचित होंगें,
- राष्ट्रीय आय की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा की विशेष ताओं को जान सकेंगें।

4.3 राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय उत्पाद का अर्थ

' राष्ट्रीय आय' की अवधारणा का अर्थशस्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्रीय आय से अभिप्राय वस्तुओं एवं सेवाओं के उस प्रवाह से है, जो किसी राष्ट्र को एक वर्ष के दौरान उपलब्ध होता है। सामान्यता किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित सभी वस्तुओं एवं सेवाओं के कुल मौद्रिक मूल्य को राष्ट्रीय आय कहते हैं। राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय लाभांश, राष्ट्रीय व्यय, राष्ट्रीय उत्पादन, आदि शब्द एक- दूसरे के स्थान पर एवं पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं।

राष्ट्रीय उत्पाद, राष्ट्रीय आय का प्रतिरूप है। अतः जब किसी देश की आर्थिक क्रियाओं के प्रतिफल को एक वर्ष में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के योग के रूप में प्रकट करते हैं, तो उसे राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है। दूसरी ओर, जब इसे ही एक वर्ष में औसत साधन आय अर्थात् मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ के योग के रूप में प्रकट करते हैं, तो इसे राष्ट्रीय आय कहा जाता है।

4.4 राष्ट्रीय आय की परिभाषाएँ

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय आय की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन्हें हम मुख्यतया दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की परिभाषाएँ:- इसके अन्तर्गत प्रो0 मार्शल, पीगू एवं फिशर की परिभाषाएँ सम्मिलित हैं।

आधुनिक परिभाषाएँ:- इसके अन्तर्गत प्रो0 साइमन कुजनेट्स, सैम्युअलसन, बाउले एवं राबटर्सन, पाल स्टूडेन्स की परिभाषाएँ आती हैं।

नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की परिभाषाएँ:- नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मार्शल, पीगू, फिशर आदि की राष्ट्रीय आय की अलग-अलग परिभाषाएँ इस प्रकार हैं -

(1) मार्शल की परिभाषा:- प्रो0 मार्शल के अनुसार,''किसी देश का श्रम व पूँजी उस देश के प्राकृतिक साधनों पर कार्य करते हुए प्रति वर्ष भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओं एवं सभी प्रकार की सेवाओं का एक विशुद्ध योग उत्पन्न करते हैं। यही किसी देश की वास्तविक विशुद्ध वार्षिक आय या आगम अथवा राष्ट्रीय लाभांश है।''

विशेषताएँ:- मार्शल की परिभाषा की निम्नलिखित विशेष ताएँ हैं- (1) राष्ट्रीय आय की गणना साधारणतः वार्षिक आधार पर की जाती है। (2) कुल उत्पादन में से मशीनों की टूट-फूट एवं घिसावट घटा देनी चाहिए। (3) इसमें विदेशी विनियोगों से प्राप्त विशुद्ध आय जोड़ देनी चाहिए। (4)इसमें उन सेवाओं को सम्मिलित नहीं करना चाहिए जो व्यक्ति अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के लिए या मित्रों के लिए निःशुल्क करता है।

संक्षेप में - शुद्ध राष्ट्रीय आय:- (वस्तुओं तथा सेवाओं का वार्षिक उत्पादन$विदेशी विनियोगों से प्राप्त शुद्ध आय-कच्ची सामग्री की लागत-ह्रास)।

मार्शल की परिभाषा की आलोचनाएँ:- यद्यपि मार्शल की परिभाषा सरल तथा व्यापक है फिर भी इसमें कुछ व्यवहारिक कठिनाइयाँ हैं जो निम्न प्रकार हैं -

(1) सही अनुमान की कठिनाई:- किसी वर्ष में उत्पादित उपभोग वस्तुओं एवं सेवाओं तथा उनकी असंख्य किस्मों की मात्रा का ठीक-ठीक अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है।

(2) वस्तुएँ जिनका बाजार में विनिमय नहीं होता:- बहुत सी वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनका विनिमय बाजार में नहीं होता। उदाहरणार्थ, कृषि फसल का एक भाग उत्पादक अपने परिवार के प्रयोग के लिए रख लेता है,ऐसी वस्तुओं का मौद्रिक मूल्य ज्ञात नहीं किया जा सकता है, अतः राष्ट्रीय आय की सही गणना सम्भव नहीं है।

(3) दोहरी गणना का भय:- मार्शल की परिभाषा के अनुसार, राष्ट्रीय आय की गणना करने पर दोहरी गणना की सम्भावना रहती है। उदाहरणार्थ, कृषि उत्पादन में गेहूँ के मूल्य को भी शामिल किया जा सकता है तथा औद्योगिक उत्पादन में उसी गेहूँ के आटें से बने उत्पादन मूल्य को भी शामिल किया जा सकता है।

पीगू की परिभाषा:- पीगू के अनुसार, '' किसी समुदाय की राष्ट्रीय आय वस्तुगत आय का वह भाग है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय सम्मिलित होती है जिसको मुद्रा द्वारा मापा जा सकता है।''

संक्षेप में -

राष्ट्रीय आय:- मौद्रिक आय + विदेशों में विनियोगों से आय

विशेष ताएँ:- पीगू ने राष्ट्रीय आय की परिभाषा में दो बातों पर विशेष महत्व दिया है:

(1) विदेशों में किये गये विनियोगों से प्राप्त आय:-देश के उत्पादन के अतिरिक्त देश के नागरिकों द्वारा विदेशों में किये गये विनियोगों से प्राप्त आय का समावेश भी राष्ट्रीय आय में किया जाना चाहिए।

(2) मुद्रा का मापदण्ड:- केवल उन्हीं वस्तुओं व सेवाओं का समावेश राष्ट्रीय आय में किया जाना चाहिए जिन्हें मुद्रा के मापदण्ड द्वारा मापा जा सके।

पीगू की परिभाषा की अलोचनाएँ:- प्रो0 पीगू की परिभाषा सरल एवं कार्य योग्य होते हुए भी त्रुटिरहित नहीं कहीं जा सकती। इनकी परिभाषा के दोश निम्मनिलिखत हैं

(1) संकीर्ण तथा विरोधाभासयुक्त:-प्रो0 पीगू के विचार बहुत ही संकीर्ण तथा विरोधाभास से परिपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपनी नौकरानी को उसकी सेवाओं के लिए 100 रूपये प्रति माह चुकाता है तो उस नौकरानी की सेवाएँ राष्ट्रीय आय में सम्मिलित की जायंेगी क्योंकि उसकी सेवाओं की कीमत मुद्रा के रूप में व्यय की गई है। अब यदि व्यक्ति अपनी नौकरानी से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाएँ राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं की जायेंगी क्योंकि अब उस नौकरानी को अपनी सेवाओं के बदले में मुद्रा के रूप में कोई पुरस्कार नहीं मिलता है। स्पष्ट है कि नौकरानी की सेवाएँ तो वही हैं लेकिन कभी तो वह राष्ट्रीय आय में सम्मिलित होती हैं और कभी नहीं।

(2) केवल मौद्रिक अर्थव्यवस्था में ही लागू:- यह परिभाषा केवल मौद्रिक अर्थव्यवस्था में ही लागू हो सकती है और जिन देशों में अधिकांश वस्तुओं एवं सेवओं का विनिमय नहीं किया जाता वरन् प्रत्यक्ष रूप से अदल-बदल किया जाता है, वहाँ इस परिभाषा का कोई महत्व नहीं है।

प्रोफेसर फिशर की परिभाषा:- प्रो0 फिशर की परिभाषा मार्शल तथा पीगू की परिभाषाओं से बिल्कुल भिन्न है। मार्शल और पीगू ने राष्ट्रीय आय में वे वस्तुएँ और सेवाएँ सम्मिलित की हैं जिनका प्रतिवर्ष उत्पादन किया जाता है, जबकि फिशर ने राष्ट्रीय आय में केवल वही वस्तुएँ व सेवाएँ सम्मिलित की हैं जिनका प्रतिवर्ष उपयोग किया जाता है।

फिशर के अनुसार, - '' राष्ट्रीय लाभांश या आय में केवल वे ही सेवाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो अन्तिम उपभोक्ता को प्राप्त होती हैं चाहे ये वस्तुएँ भौतिक अथवा मानवीय वातावरण से प्राप्त हुई हों।'' फिशर ने उपभोग के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है कि '' इस प्रकार एक पियानो या ओवरकोट जो कि मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है, वह इस वर्ष की आय नहीं है बल्कि वह तो पूँजी में वृद्धि है। केवल वे ही सेवाएँ, जो कि इन वस्तुओं के प्रयोग से मुझे मिलेंगी, वार्षिक आय है।''

परिभाषा का स्पष्टीकरण:- प्रो0 फिशर द्वारा प्रस्तुत की गयी परिभाषा एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। मान लीजिए कि सन् 2002 में 10,000 रूपये की कीमत की एक मोटर तैयार की जाती है। अब मार्शल तथा पीगू के अनुसार सम्पूर्ण 10,000 रूपये को सन् 2002 की राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जायेगा लेकिन प्रोफेसर फिशर समूचे 10,000 रूपये को सन् 2002 की राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं करते। उनके अनुसार सन् 2002 की राष्ट्रीय आय में उस वर्ष में किये गए

मोटर के उपयोग के मूल्य को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। मान लीजिए कि मोटर का जीवनकाल 10 वर्ष है। अतः सन् 2002 की राष्ट्रीय आय में फिशर के अनुसार केवल 1,000 रूपये ही जोड़ने चाहिए, 10,000 रूपये नहीं।

विशेष ताएँ:- (1)फिशर ने उपभोग के आधार पर राष्ट्रीय आय की परिभाषा प्रस्तुत की है, जबकि मार्शल तथा पीगू ने उत्पादन को राष्ट्रीय आय की गणना का आधार बनाया है। (2) फिशर की परिभाषा आर्थिक कल्याण के अधिक निकट है क्योंकि उपभोग का कल्याण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। मात्र उत्पादन से ही कल्याण में वृद्धि नहीं होती। (3) फिशर की परिभाषा अधिक वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण है।

प्रोफेसर फिशर की परिभाषा की अलोचनाएँ:- मार्शल की अपेक्षा फिशर की परिभाषा अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होती है क्योंकि फिशर के अनुसार किसी वर्ष में वस्तुओं के उपभोग मूल्य को ही सम्मिलित किया जाता है लेकिन व्यवहारिक दृष्टिकोण से इसमें भी त्रुटियां हैं :

(1) उपभोग का विस्तृत क्षेत्र:- किसी निश्चित अवधि में एक समाज के कुल उपभोग की मात्रा को ज्ञात करना अधिक कठिन है क्योंकि शुद्ध उत्पादन की अपेक्षा शुद्ध उपभोग का क्षेत्र व्यापक होता है। किसी एक व्यक्ति द्वारा उत्पादित की गई वस्तुएँ समाज के हजारों व्यक्तियों द्वारा उपभोग की जाती हैं।

(2) टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ:- टिकाऊ वस्तुओं (कम से कम एक वर्ष से अधिक चलने वाली वस्तओं)के जीवनकाल का ठीक - ठीक अनुमान लगाना कठिन होता है क्योंकि किसी वस्तु का जीवन उसके टिकाऊपन तथा प्रयोग करने के तरीके एवं बरती गई सावधानी पर निर्भर करता है।

(3)वस्तुओं का हस्तान्तरण:- वस्तु का हस्तान्तरण हो सकता है और टिकाऊ वस्तु अपने प्रारम्भिक स्वामी से जिसने कि इसे पहले खरीदा था, दूसरे तथा तीसरे के हाथ जा सकती है। इससे भी उस वस्तु के निर्माण की तारीख का पता लगाना कठिन हो सकता है।

कौन सी परिभाषा सर्वश्रेष्ठ:- यद्यपि तीनों ही परिभाषाओं के अपने-अपने गुण दोश हैं, फिर भी यदि इनमें से किसी परिभाषा को सर्वश्रेष्ठ बताना हो तो इसका उत्तर इस उद्देश्य की पृष्ठभूमि से दिया जा सकता है कि किस उद्देश्य से राष्ट्रीय लाभांश का प्रयोग किया जाए। यदि राष्ट्रीय आय की गणना करते समय हमारा उद्देश्य कुछ वर्षों के लिए आर्थिक कल्याण को मापना हो (लोगों के जीवन स्तर के विषय में जानकारी प्राप्त करना हो) तो इस कार्य के लिए निःसन्देह तीनों में से फिशर की परिभाषा श्रेष्ठ है क्योंकि फिशर के अनुसार राष्ट्रीय आय में केवल उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं का समावेश होता है जोकि किसी वर्ष विशेष में उस देश के निवासी उपभोग करते हैं। फिशर की परिभाषा उस दशा में भी अधिक उपयोगी प्रमाणित होती है जबकि हमें यह ज्ञात करना हो कि एक देश के युद्ध के लिए कुछ वर्षों तक कितनी सामग्री मिल सकती है क्योंकि इसके लिए यह जानना आवश्यक है कि कितनी सामग्री बचायी जा सकती है और कितनी का उपभोग होता है।

परन्तु जब हमारा उद्देश्य शान्तिकाल की स्थिति में यह ज्ञात करना हो कि कौन से कारण आर्थिक कल्याण को प्रभावित कर रहे हैं तो पीगू तथा मार्शल की परिभाषाएँ अधिक उपयुक्त होंगी, फिशर की नहीं क्योंकि ऐसी दशा में आर्थिक कल्याण एक-दूसरे के कुल उपभोग द्वारा सम्बन्धित होते हैं, न

कि तत्कालीन उपभोग द्वारा। उदाहरणार्थ, पूँजी की वृद्धि से भविष्य में अधिक उपभोग बढ़ाने की सम्भावना रहती है।

आधुनिक परिभाषाएँ:- कई आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय आय की परिभाषा निम्न प्रकार से दी हैं :

(1) राष्ट्रीय आय समिति:- राष्ट्रीय आय समिति ने अपनी पहली रिपोर्ट में कहा कि '' राष्ट्रीय आय के अनुमान से बिना दोहरी गिनती के एक दी हुई अवधि में उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा की माप की जा सकती है।''

आलोचना:- यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक है, जिससे व्यावहारिक दृष्टि से राष्ट्रीय आय को मापना अन्यन्त कठिन है।

(2) प्रो0 साइमन कुजनेट्स:- '' राष्ट्रीय आय वस्तुओं व सेवाओं की वह विशुद्ध उत्पत्ति है जो एक वर्ष की अवधि में देश की उत्पादन प्रणाली में अन्तिम उपभोक्ताओं के हाथों में पहुँचती है।''

आलोचना:- यह परिभाषा भी अव्यवहारिक है क्योंकि यह मालूम करना अत्यन्त कठिन है कि किसी देश के विरूद्ध उत्पादन का कितना भाग स्टॉक में स्थानान्तरित किया गया और कितने भाग का उपभोग किया गया।

(3) सैम्युअलसन:- '' यह (राष्ट्रीय आय) एक नाम है, जो हम एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की वार्षिक गति के मौद्रिक माप के लिए देते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं ''किसी देश की राष्ट्रीय आय साधारणतः वहाँ एक वर्ष में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य का योग होती है, जिसमें से वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन हेतु प्रयोग की गई मशीनों एवं पूँजी की घिसावट को घटा दिया जाता है तथा विदेशों से प्राप्त विशुद्ध आय को जोड़ दिया जाता है।''

(1) राष्ट्रीय आय किसी देश की एक वर्ष या निश्चित समयावधि की आय है।

(2) यह वस्तुओं एवं सेवाओं दोनों के द्राव्यिक मूल्य का योग है।

(3) इसमें से पूँजी की घिसावट (D) को घटा दिया जाता है।

(4) इसमें विदेशों से प्राप्त विशुद्ध आय (निर्यात-आयात) को जोड़ दिया जाता है। सूत्र रूप में

राष्ट्रीय आय = उपयोग व्यय + विनियोग व्यय + सरकारी व्यय- मशीनों का घिसावट व्यय + निर्यात एवं आयात के मूल्यों का अन्तर

$$\textbf{National Income} = C+I+G-D+(X-M)$$

अभ्यास प्रश्न:-

लघु उत्तरीय प्रश्न:-

1. राष्ट्रीय आय को परिभाषित कीजिए?
2. राष्ट्रीय आय की पीगू द्वारा दी गयी परिभाषा विशेष ताओं सहित लिखिए?
3. राष्ट्रीय आय की आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ लिखिए?

4. प्रो0 फिशर की परिभाषा दीजिए तथा उनकी परिभाषा की प्रमुख आलोचनाएँ बताइये?

बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1. ''राष्ट्रीय आय समुदाय की वस्तुपरक आय का वह भाग है जो मुद्रा में मापा जा सकता है और इस आय में विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित हो''।उपरोक्त परिभाषा दी गई है-

(अ) मार्शल द्वारा, (ब) राष्ट्रीय आय समिति द्वारा

(स) पीगू द्वारा (द) योजना आयोग द्वारा

2. ''एक पियानो या ओवरकोट जो कि मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है, वह इस वर्ष की आय नहीं है बल्कि वह तो पूंजी में वृद्धि है''। यह कथन सम्बन्धित है-

(अ) पीगू की परिभाषा से (ब) फिशर की परिभाषा से

(स) मार्शल की परिभाषा से (द) शैम्युलसन की परिभाषा से

3. राष्ट्रीय आय के अनुमान से बिना दोहरी गिनती के एक दी हुई अवधि में वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा की माप की जा सकती है।यह परिभाषा सम्बन्धित है-

(अ)मार्शल से (ब) पीगू से

(स)राष्ट्रीय आय समिति से (द) कुजनेट्स से

सत्य/असत्य कथन -

निम्न कथनों में सत्य एवं असत्य कथन बताइये?

1.राष्ट्रीय आय से अभिप्राय वस्तुओं एवं सेवाओं के उस प्रवाह से है जो किसी राष्ट्र को एक माह के दौरान उपलब्ध होता है।

2. साइमन कुजनेट्स द्वारा राष्ट्रीय आय की आधुनिक परिभाषा दी गयी है।

3. प्रो0 फिशर ने राष्ट्रीय आय की आधुनिक परिभाषा दी है।

4.5 सारांश

वर्तमान समय में राष्ट्रीय आय किसी देश की आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण सूचक है। राष्ट्रीय आय के माध्यम से ही कोई देश आर्थिक नीतियों का निर्माण कर, आर्थिक विकास कर सकता है।

राष्ट्रीय आय की अवधारणा का विकास प्राचीन काल से माना जाता है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसे अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। सार रूप में, किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित समस्त वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक मूल्य ही राष्ट्रीय आय है।

4.6 शब्दावली

राष्ट्रीय आय: राष्ट्रीय आय से अभिप्राय एक राष्ट्र के सामान्य निवासियों को किसी विशेष अवधि में उनकी उत्पादक सेवाओं के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली कुल साधन आय अर्थात लगान, मजदूरी, ब्याज और लाभ है।

राष्ट्रीय उत्पाद: जब हम किसी देश की आर्थिक क्रियाओं के प्रतिफल को एक वर्ष में उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के योग के रूप में प्रकट करते हैं तो इसे राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।

स्टॉक: किसी आर्थिक तत्व की वह मात्रा है जो समय के एक निश्चित बिन्दु पर पाई जाती है।

प्रवाह: प्रवाह किसी आर्थिक तत्व की वह मात्रा है जो समय की एक निश्चित अवधि जैसे-प्रतिदिन या प्रतिमास में पाई जाती है।

बन्द अर्थव्यवस्था: बन्द अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसका अन्य देशों या शेष विश्व से कोई आर्थिक संबंध नहीं होता।

खुली अर्थव्यवस्था: यह वह अर्थव्यवस्था है जिसका अन्य देशों से आर्थिक सम्बन्ध होता है।

4.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तरः-

लघु उत्तरीय प्रश्न-

(1) उत्तर 4.3 में देखें। ,(2) उत्तर 4.4 में देखें। ,(3) उत्तर 4.4 में देखें। ,(4) उत्तर 4.4 में देखें।

बहुविकल्पीय प्रश्नः- (1)-स, (2)-ब, (3)-स

सत्य/असत्य कथन- (1)-असत्य, (2)-सत्य ,(3)-असत्य

4.8 सन्द्रर्भ ग्रन्थ

1. ऐक्ले, जी0: मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एन0वाई0, मैकमिलन,1961
2. आहूजा, एच0एल0: एडवान्स मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली।
3. द्विवेदी, डी0एन0: मैक्रोइकोनामिक्स: थीयरि एण्ड पॉलिसी, टाटा एमसी ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
4. लाल, एस0एन0: समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण (सिद्धान्त, समस्यायें तथा नीतियाँ) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
5. शपीरो, एडवर्ड: मैक्रोइकोनामिक एनालिसिस, गलगोटिया पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1. राष्ट्रीय आय का क्या अर्थ है? राष्ट्रीय आय की विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाएं उनकी विशेष ताओं सहित बताइये।
2. राष्ट्रीय आय की नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ उनकी विशेष ताओं सहित लिखिए।

इकाई 5: राष्ट्रीय आय की संरचना

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 राष्ट्रीय आय के विभिन्न समुच्चय

5.3.1 सकल घरेलू उत्पाद

5.3.2 शुद्ध घरेलू उत्पाद

5.3.3 सकल राष्ट्रीय उत्पाद

5.3.4 विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

5.3.5 राष्ट्रीय आय

5.3.6 व्यक्तिगत आय

5.3.7 व्यय योग्य या स्वायन्त आय

5.3.8 प्रति व्यक्ति आय

5.3.9 राष्ट्रीय आय प्रचलित तथा स्थिर कीमतों पर

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्द्रर्भ ग्रन्थ

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1-प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय की संरचना से तात्पर्य राष्ट्रीय आय के विभिन्न समूहों या समुच्चयों की संरचना एवं इनके परस्पर सम्बन्धों से सम्बन्धित लेखा-जोखा के अध्ययन से है। राष्ट्रीय आय की संरचना में अनेक समुच्चय सम्मिलित हैं जिनका प्रयोग किसी अर्थव्यवस्था के विकास के सूचकों के रूप में किया जाता है।इस दृष्टि से प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए इनका अध्ययन अति महत्वपूर्ण है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

- राष्ट्रीय आय के विभिन्न समुच्चयों से परिचित हो सकेंगें,
- सकल घरेलू उत्पाद एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद में अंतर कर सकेगें।
- 3राष्ट्रीय आय के विभिन्न समुच्चयों की गणना विधि को समझ सकेंगे।

5.3-विभिन्न राष्ट्रीय आय समुच्चय

राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण समुच्चय निम्नलिखित हैं

1. **सकल घरेलू उत्पाद Gross Domestic Product-GDP**
2. **शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product-NDP)**
3. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product-GNP)**
4. **बाजार कीमत पर विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product on Market Price-NNPMP)**
5. **राष्ट्रीय आय या साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (National Income or Net National Product at Factor Cost-NNPFC)**
6. **व्यक्तिगत आय (Personal Income)**
7. **व्यय-योग्य या स्वायत्त आय (Disposable Income)**
8. **प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)**
9. **राष्ट्रीय आय प्रचलित कीमतों पर तथा स्थिर कीमतों पर (National Income on Current and Constant Prices)**

सकल घरेलू उत्पाद Gross Domestic Product-GDP - सकल घरेलू उत्पाद से हमारा आशय एक देश की घरेलू सीमा में एक वर्ष में उत्पादित सभी वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य से है।

अर्थव्यवस्था में अनेक क्षेत्रों में उत्पादन क्रिया चलती रहती है, जिसमें चीनी, कपड़ा, स्टील, खाद, गेहूँ आदि वस्तुओं तथा सरकारी प्रकाशन,बैंक,बीमा तथा परिवहन आदि सेवाओं का निर्माण होता है। इन वस्तुओं एवं सेवाओं के बाजार मूल्य के जोड़ ही सकल घरेलू उत्पाद कहते हैं।

उदाहरण 1- सकल घरेलू उत्पाद को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

एक देश में उत्पादन की स्थिति इस प्रकार है:-	(करोड़ रू0)
(1) उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन	1,500
(2) पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन	1,000
(3) उपभोक्ता एवं पूँजीगत सेवाओं का उत्पादन	500

सकल घरेलू उत्पाद ज्ञात करो।

हल- कुल घरेलू उत्पाद में पूँजीगत तथा उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन एवं इन दोनों की सेवाओं के उत्पादन मूल्य शामिल होता है।

अतः **GDP = 1,500+1,000+500**

= 3,000 करोड़ रू0

सकल घरेलू उत्पाद की गणना बाजार कीमत पर किये जाने के कारण इसे बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद भी कहा जाता है।

सूत्र रूप में,

GDP_{MP}=P (O)+ P(S)

जहाँ पर, **P**= प्रति इकाई मूल्य, **O**= भौतिक वस्तुएँ, **S**= भौतिक सेवाएँ।

सकल घरेलू उत्पाद में निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्र के उत्पादन को शामिल किया जाता है। इसे निम्नलिखित रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है:

$GDP_{MP}=C_P+C_g+I_p+I_g$

जिसमें C_P= निजी क्षेत्र में उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन

C_g= सरकारी क्षेत्र में उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन

I_p= निजी क्षेत्र में पूँजीगत वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन

I_g= सरकारी क्षेत्र में पूँजीगत वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन

2 शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Dometsic Prosduct or NDP) - सामान्यतः उत्पादन के दौरन पूँजीगत वस्तुओं मशीनों, उपकरणों, औजारों, ट्रैक्टरों, फैक्टरी की इमारतों आदि का ह्रास होता है। एक समय- अवधि के बाद इन पूँजीगत वस्तुओं का प्रतिस्थापन आवश्यक हो जाता है इसलिए कुल

उत्पादन में से एक हिस्सा घिसावट व्यय के लिए अलग रखना होता है। इस प्रकार सकल घरेलू उत्पाद में से घिसावट-व्यय को घटाने पर शुद्ध घरेलू उत्पाद प्राप्त होता है।

सूत्र रूप में,

बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद - ह्रास

(NDP_{PM}= GDP_{MP}- Depreciation)

उदाहरण 2: निम्नलिखित उदाहरण द्वारा शुद्ध घरेलू उत्पाद;छक्च्द्ध को स्पष्ट किया जा सकता है- यदि एक देश में उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन 5,000 करोड़ रू0, पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन 4,000 करोड़ रू0, सेवाओं का उत्पादन 2,000 करोड़ रू0 तथा प्रतिस्थापना व्यय 1,000 करोड़ रू0 है तो शुद्ध घरेलू उत्पाद ज्ञात करो।

हल- शुद्ध घरेलू उत्पाद त्रउपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन + पूंजीगत वंस्तुओं का उत्पादन + सेवाओं का उत्पादन -प्रतिस्थापन व्यय

= 5,000+4,000+2,000−1,000

= 11,000−1,000

= 10]000 करोड़ रूपये

3. सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product-GNP)- सकल राष्ट्रीय उत्पाद राष्ट्रीय उत्पाद की एक प्रमुख अवधारणा है। यह राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित सबसे व्यापक अवधारणा है...। सकल राष्ट्रीय उत्पाद से हमारा आशय अर्थव्यवस्था में एक निश्चित वर्ष में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य से होता है। इसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय (निर्यात-आयात) भी शामिल की जाती है। अतः सकल राष्ट्रीय उत्पाद को सकल घरेलू उत्पाद तथा विदेशों से शुद्ध साधन आय के जोड़ के रूप में परिभाषित किया जाता है।

सूत्र के रूप में, बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद +विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय

(GNP_{MP}= GDP_{MP}+ Exccess of Exports)

सकल या कुल राष्ट्रीय आय की परिभाषा:- सकल या कुल राष्ट्रीय उत्पादन की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं -

(1) सैम्युअल तथा नौरहस के अनुसार, ''सकल राष्ट्रीय उत्पादन, सरकारी क्रय सहित, उपभोग तथा विनियोग वस्तुओं के मौद्रिक मूल्य का योग है।''

(2) बायर्न्स तथा स्टोन के अनुसार,'' सकल राष्ट्रीय उत्पादन किसी विशिष्ट समयावधि में समान्यतः एक वर्ष के समस्त उत्पादन के कुल बाजार मूल्य के रूप में परिभाषित है।''

संक्षेप में, सकल राष्ट्रीय उत्पादन किसी देश में एक वर्ष मे उत्पादित सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का माप है जिसका मूल्यांकन प्रचलित बाजार मूल्यों पर किया जाता है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद की विशेष ताएँ:- सकल राष्ट्रीय उत्पाद की निम्नलिखित विशेष ताएँ हैं-

(1) मौद्रिक माप:- सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना मुद्रा के रूप में की जाती है क्योंकि मुद्रा ही समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं को मापने का सामान्य मापदण्ड है।

(2) बाजार मूल्य:- सकल राष्ट्रीय उत्पाद में केवल अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के बारे में बाजार मूल्यों का योग किया जाता है। मध्य.वर्ती अथवा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं एवं सेवाओं का मूल्य नहीं जोड़ा जाता।

(3) मुद्रा विनिमय:- कुल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना में वही वस्तुएँ या सेवाएँ जिनका, बाजार में मुद्रा विनिमय या विक्रय होता है, सम्मिलित की जाती हैं।

(4) केवल चालू वर्ष के उत्पादन को शामिल किया जाता है :- कुल राष्ट्रीय उत्पाद में केवल चालू वर्ष का उत्पादन ही बाजार मूल्य के आधार पर शामिल किया जाता है। यदि हम 2011 का कुल राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात करना चाहते है, तो उसमें केवल 2011 में ही उत्पादित वस्तुओं को शामिल किया जायेगा, उसमें 2010 की वस्तुओं को शामिल नहीं किया जायेगा, भले ही उनका विक्रय 2011 में किया जाय।

(5) कुल राष्ट्रीय उत्पाद में मूल्य ह्रास नहीं घटाया जाता :- कुल राष्ट्रीय उत्पाद में कुल शब्द महत्वपूर्ण है। जब वस्तुओं का उत्पादन होता है तो मशीनों एवं यन्त्रों की घिसावट होती है जिससे उनमें मूल्य ह्रास होता है किन्तु कुल राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात करते समय उसमें से मूल्य ह्रास अथवा प्रतिस्थापन लागत को नहीं घटाया जाता है।

(6) अन्तिम उत्पाद:- राष्ट्रीय उत्पाद के माप को दोहरी गणना से बचाने के लिए अन्तिम उत्पादन अर्थात् पक्के माल को ही शामिल किया जाता है। अन्तिम उत्पादन या अन्तिम पदार्थों से अभिप्राय उन पदार्थों से है, जो अन्त में जिस उपभोक्ता या खरीददार द्वारा खरीदे जाते हैं, वह उनको आगे किसी और उपभोक्ता या खरीददार के पास नहीं बेचता बल्कि स्वयं ही उनका उपभोग कर लेता है।

(7) अनुमानित या आरोपित मूल्य:- इसमें उन वस्तुओं तथा सेवाओं के अनुमानित या आरोपित मूल्य को भी शामिल किया जाता है, जो बाजार में बिकने नहीं आतीं। इनमें चार प्रकार की क्रियाएँ शामिल हैं :

(अ) कर्मचारियों को निःशुल्क मकान, भोजन, वस्त्र आदि के रूप में मिलने वाली सुविधाओं की कीमत, (ब) उत्पादकों द्वारा अपने उपभोग के लिए रखे जाने वाले उत्पादन की कीमत, (स) मकान में स्वयं रहने वाले मकान मालिकों के मकान का किराया, (द) वित्तीय संस्थाओं, जैसे- बैंकों की अमौद्रिक आय, जैसे- एक बैंक चालू खातों पर जो सेवा करता है, उस पर कोई खर्च नहीं लेता।

(8) हस्तान्तरण भुगतान:- सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना में हस्तान्तरण भुगतानों को सम्मिलित नहीं किया जाता है क्योंकि ऐसे सौदों का सम्बन्ध चालू वर्ष के उत्पादन से नहीं होता है। पुरानी कम्पनी के अंश -पत्रों तथा ऋण पत्रों का क्रय-विक्रय भी सकल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्मिलित नहीं

किया जाता है क्योंकि इनसे सकल राष्ट्रीय उत्पादन में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती है। सामाजिक सुरक्षा एवं बीमा के अन्तर्गत प्राप्त भुगतान, जैसे- बीमा, भत्ता, पेंशन, आदि को सकल राष्ट्रीय उत्पादन में नहीं जोड़ा जाता है।

(9) वर्जित मदें:- सकल राष्ट्रीय उत्पाद में निम्नलिखित मदों को सम्मिलित नहीं किया जाता है:

(1) पूँजी सम्पत्तियों के मूल्यों में परिवर्तन :- पूँजी सम्पत्तियों के बाजार मूल्य में होने वाले परिवर्तनों के कारण होने वाले लाभ एवं हानियों को सकल राष्ट्रीय उत्पाद में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(2) कर:- कर के कारण सरकार द्वारा प्राप्त आय, जैसे- आय कर आदि को राष्ट्रीय उत्पाद की गणना में नहीं दिया जाता क्योंकि ऐसा करने में दोहरी गणना का भय रहता है।

(3) गैर-कानूनी क्रियाएँ:- यदि किसी अर्थव्यवस्था में तस्करी, जुआबाजी, अवैध शराब आदि क्रियाओं को गैर-कानूनी माना जाता है तो वहाँ इसकी गणना सकल राष्ट्रीय उत्पादन में नहीं की जाती है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद कुल व्यय व कुल साधन लागत के रूप में

अथवा

सकल राष्ट्रीय उत्पाद सकल राष्ट्रीय आय तथा सकल राष्ट्रीय व्यय में समानता

सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य, सकल राष्ट्रीय आय तथा सकल राष्ट्रीय व्यय ये तीनों एक-दूसरे के बराबर होते हैं अर्थात् GNP=GNI=GNE होता है क्योंकि उत्पादकों को अपनी उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के विक्रय से जो मूल्य मिलता है, वह खरीदारों के द्वारा व्यय की गयी राशि के बराबर होता है इसी प्रकार जो कुछ व्यय किया जाता है, वह तत्काल किसी न किसी आय के रूप में प्राप्त होता है। आय प्राप्त करने वाले उसको पुनः व्यय करते हैं।

जब सकल राष्ट्रीय उत्पाद को उपभोग व्यय के जोड़ के रूप में ज्ञात किया जाता है तो इसे सकल राष्ट्रीय व्यय कहते हैं। इसी प्रकार साधन लागत के जोड़ के रूप में इसको सकल राष्ट्रीय आय कहते हैं। एक अर्थव्यवस्था में सकल राष्ट्रीय उत्पाद,सकल राष्ट्रीय व्यय तथा सकल राष्ट्रीय आय का मूल्य सदैव एक समान हो जाता है। इन तीनों अवधारणाओं को निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है:

GNP=GNI=GNE यहाँ का चिन्ह इन तीनों अवधारणाओं की सर्वसमता को प्रकट करता है। संक्षेप में (1) उत्पादन से आय संचारित हीती है;(2) आय से व्यय संचारित होता है एवं (3)व्यय से उत्पादन संचारित होता है। इसी आधार पर राष्ट्रीय आय को तीन विधियों से मापा जाता हैं- (अ) उत्पादन विधि, (ब)आय विधि, (स) व्यय विधि।

4. बाजार कीमत पर विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product on Market Price-NNPMP) - उत्पादन कार्य में हम पूँजीगत यंत्र का भी उपयोग करते हैं जो धीरे-धीरे घिसते रहते हैं तथा कुछ मशीनें तथा यंत्र अप्रचलित हो जाते हैं, इसलिए सकल राष्ट्रीय उत्पादन का कुछ भाग घिसे तथा अप्रचलित यंत्रों को बदलने के

लिए चुकता किया जायेगा। अतः यादि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य ह्रास या घिसाई व्यय को घटा दें तो शेष विशुद्ध उत्पादन बचा रहेगा। इसको 'बाजार कीमत पर राष्ट्रीय आय' भी कहा जाता है। सूत्रानुसारः

विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन = सकल राष्ट्रीय उत्पाद -मूल्य ह्रास

NNP=G.N.P-Depreciation

शुद्ध घरेलू उत्पाद और शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में भेद

क्रम सं0	शुद्ध घरेलू उत्पाद	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद
1-	शुद्ध घरेलू उत्पाद का क्षेत्र सीमित होता है क्योंकि इसमें केवल अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुएँ शामिल की जाती हैं।	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद का क्षेत्र विस्तृत होता है क्योंकि इसमें विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल की जाती है।
2-	शुद्ध घरेलू उत्पाद का सम्बन्ध किसी देश की भौगोलिक सीमा या क्षेत्र से है।	राष्ट्रीय उत्पाद का सम्बन्ध वहाँ के निवासियों और उसकी राष्ट्रीयता से होता है।
3-	शुद्ध घरेलू उत्पाद कुल घरेलू उत्पाद मूल्य ह्रास।	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कुल राष्ट्रीय उत्पाद मूल्य ह्रास।
4-	शुद्ध घरेलू उत्पाद का सम्बन्ध बन्द अर्थव्यवस्था है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता।	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होता है क्योंकि इसमे आयात व निर्यात का मुख्य स्थान होता है।

उदाहरणः- 3- निम्नलिखित उदाहरण द्वारा सकल घरेलू उत्पाद, शुद्ध घरेलू उत्पाद, सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात किया जा सकता है-

एक अर्थव्यवस्था में एक वर्ष में उत्पादन से सम्बन्धित निम्न आंकड़े उपलब्ध हैं-

उपभोक्ता वस्तुएं एवं सेवाएं-		6500 करोड़ रू0
पूँजीगत वस्तुएं एवं सेवाए	-	5,000 करोड़ रू0
प्रतिस्थापन व्यय	-	500 करोड़ रू0
निर्यात	-	1,000 करोड़ रू0
आयात	-	600 करोड़ रू0

उपरोक्त आधार पर निम्न की गणना कीजिएः

सकल घरेलू उत्पाद एवं शुद्ध घरेलू उत्पाद (GDP and NDP)

सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (GNP and NNP)

हल-

(1) सकल घरेलू उत्पाद = उपभोक्ता वस्तुएं एवं सेवाएं$ पूंजीगत वस्तुएं एवं सेवाएं

= 6500+5000= 11,500 करोड़ रू0

(2) शुद्ध घरेलू उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद-प्रतिस्थापन व्यय

=11,500-500=11,000 करोड़ रू0

(3) सकल राष्ट्रीय उत्पाद त्रसकल घरेलू उत्पाद$ निर्यात-आयात का अन्तर

=11,500+1,000-600

=11,500+400=11,900करोड़

(4) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद-प्रतिस्थापन व्यय

=11,900-500=11,400 करोड़ रू0

5. राष्ट्रीय आय या साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद - शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन की गणना प्रायः बाजार कीमतों पर की जाती है क्योंकि बाजार कीमतों पर इसकी गणना करना सुविधाजनक होता है किन्तु कुछ दशाओं में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की गणना साधन लागत पर भी की जाती है जिसमें हम देखते हैं कि एक वर्ष की अवधि में जितना शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन होता है, उसे उत्पादित करने के लिए उत्पादन के साधनों को कितना प्रतिफल प्राप्त हुआ अर्थात भू-स्वामी को भूमि के बदले कितना लगान, पूँजीपति को पूँजी के बदले कितना ब्याज, श्रमिक को श्रम के बदले कितनी मजदूरी तथा साहसी को साहस के बदले कितना लाभ प्राप्त हुआ। अन्य शब्दों में , साधन लागत पर राष्ट्रीय आय से आशय होता है कि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के वितरण करने में उत्पादन के साधनों को कितनी आय प्राप्त हुई या उनकी सेवाओं के फलस्वरूप उन्हें कितना प्रतिफल प्राप्त हुआ। संक्षेप में, ''उत्पत्ति के विभिन्न साधनों-मजदूरों, भू-स्वामियों को लगान, पूँजीपतियों को ब्याज, प्रबन्धकों को वेतन तथा साहसी को लाभ के रूप में देश- विदेशों से जो आय प्राप्त होती है, उन सबका योग ही राष्ट्रीय आय है।'' गणितीय सूत्र के रूप में हम इस प्रकार भी प्रदर्शित करते हैं

राष्ट्रीय आय = (लगान + मजदूरी + वेतन + ब्याज + लाभ)

NI=(Rent+Wages+Salarty+Interest+Profit)

बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद तथा कुल राष्ट्रीय उत्पाद से राष्ट्रीय आय या साधन लागत पर राष्ट्रीय आय ज्ञात करना- राष्ट्रीय आय या साधन लागत पर राष्ट्रीय आय की गणना शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद के आधार पर भी की जा सकती है।

(अ) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के आधार पर राष्ट्रीय आय की गणनाः

साधन लागत पर राष्ट्रीयआय = बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद- अप्रत्यक्ष कर +सरकारी सहायता

NI=(NNP-Indirect Taxes+Govt. Subsidies)

(ब) कुल राष्ट्रीय उत्पाद के आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना:

साधन लागत पर राष्ट्रीय आय त्र बाजार कीमत पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद- ह्रास- अप्रत्यक्ष कर $ सरकारी सहायता

NI=(GNP- Depreciation-Indirect Taxes+Govt. Subsidies)

अब प्रश्न यह उठता है कि राष्ट्रीय आय की मात्रा, शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के बराबर क्यों नहीं होती? अर्थात् छछच् में से अप्रत्यक्ष कर क्यों घटा दिये जाते हैं तथा इसमें आर्थिक सहायता क्यों जोड़ दी जाती है? इसका उत्तर है:-

(अ) अप्रत्यक्ष कर क्यों घटाते हैं?- शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की गणना करने के लिए भी वस्तुओं एवं सेवाओं का मौद्रिक मूल्य, उनकी बाजार कीमत के आधार पर ज्ञात किया जाता है। इन वस्तुओं एवं सेवाओं की बाजार कीमतों में अप्रत्यक्ष कर (बिक्री कर, उत्पाद कर इत्यादि) भी शामिल होते हैं। अतः उत्पादकों को उत्पादन की समस्त बाजार कीमत प्राप्त नहीं होती बल्कि उसका एक अंश (वस्तु कर) सरकार को प्राप्त होता है। अतः बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में से सरकार द्वारा लगाये गये अप्रत्यक्ष करों को घटा दिया जाता है।

(ब) आर्थिक सहायता को क्यों जोड़ते हैं?- सरकार सामान्यतः किसी वस्तु के उत्पादक या वितरक को आर्थिक सहायता प्रदान करती है, ताकि वह निम्न कीमत पर वस्तु को बेच सके।

उदाहरण के लिए, एक किलोग्राम गेहूँ की साधन लागत 10 रूपये है किन्तु सरकार उपभोक्ता को कम कीमत पर गेहूँ देना चाहती है। इस उद्देश्य से गेहूँ के उत्पादकों को 4 रूपये प्रति किलो के हिसाब से आर्थिक सहायता देती है जिसके फलस्वरूप गेहूँ की बाजार कीमत 6 रूपये प्रति किलो हो जाती है। फलतः उत्पादकों द्वारा वस्तुओं और सेवाओं से प्राप्त विक्रय मूल्य उस सीमा तक कम हो जाता है जितनी कि आर्थिक सहायता की मात्रा से। इस उदाहरण में गेहूँ की साधन लागत 10 रूपये प्रति किलोग्राम है, जबकि बाजार कीमत केवल 6 रूपये प्रति किलोग्राम ही है। इस प्रकार साधनों को प्राप्त होने वाली आय बाजार कीमतों द्वारा प्रदर्शित आय से कम होती है इसलिए वस्तुओं और सेवाओं के सही साधन लागत मूल्य को ज्ञात करने के लिए हम वस्तुओं और सेवाओं में एवं बाजार मूल्य में आर्थिक सहायता की राशि जोड़ देते हैं।

जहाँ तक साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात करने का प्रश्न है, साधन लागत पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद में से यदि घिसावट व्यय अथवा प्रतिस्थापना व्यय को घटा दिया जाय तो साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात किया जा सकता है।

6.व्यक्तिगत आय - व्यक्तिगत आय से आशय उस आय से है जो किसी देश में एक वर्ष की अवधि में व्यक्तियों अथवा परिवारों द्वारा वास्तविक रूप से प्राप्त होती है।

इस प्रकार वैयक्तिक आय सदैव राष्ट्रीय आय से कम रहती है। संक्षेप में, उत्पादन के साधनों द्वारा जितनी आय निर्मित की जाती है, वह समस्त उन्हें उपलब्ध नहीं होता। इसका कारण यह है कि

राष्ट्रीय आय में से अनेक कटौतियाँ काटी जाती हैं तथा इसके बाद जो राशि शेष बचती है, वह वैयक्तिक आय कहलाती है।

वैयक्तिक आय की गणना:- वैयक्तिक आय की गणना निम्न प्रकार से की जाती है:

व्यक्तिगत आय = राष्ट्रीय आय - निगम कर - अवितरित व्यावसायिक लाभ - सामाजिक सुरक्षा अंशदान + अन्तरण भुगतान

व्यक्तिगत आय की गणना हेतु राष्ट्रीय आय में से निम्न कटौतियाँ की जाती हैं

(अ) निगम आय कर:- व्यापारिक निगमों को अपने लाभ का कुछ हिस्सा निगम करों के रूप में सरकार को चुकाना पड़ता है। इस प्रकार आय का यह भाग अंशधारियों को व्यक्तिगत आय के रूप में प्राप्त नहीं होता। अतः इसे राष्ट्रीय आय से घटा दिया जाता है।

(ब) निगमों की अवितरित आय:- निगम अपनी आय का एक भाग अंशधारियों में न बाँटकर इसे पुनः व्यवसाय में विनियोजित कर देता है, अतः व्यक्तिगत आय निकालने हेतु इस भाग को राष्ट्रीय आय में से कम कर दिया जाता है।

(स) सामाजिक सुरक्षा कटौतियाँ :- सामाजिक सुरक्षा हेतु जो कटौतियाँ प्रोविडेण्ट फण्ड व पेंशन आदि के रूप में की जाती हैं, उन्हें भी राष्ट्रीय आय में से व्यक्गित आय निकालने हेतु घटा दिया जाता है क्योंकि व्यक्तियों की आय इन कटौतियों से कम हो जाती है।

व्यक्तिगत आय की गणना हेतु राष्ट्रीय आय में से कटौतियों के घटने के बाद व्यक्तियों को जो हस्तान्तरण भुगतान प्राप्त होते हैं, उन्हें जोड़ दिया जाता है। इन भुगतानों में पेंशन, बेरोजगारी-भत्ता आदि सम्मिलित रहते हैं।

महत्व:- वैयक्तिक आय की धारणा में दो गुण हैं- वैयक्तिक आय की गणना से (1) व्यक्तियों या परिवारों की सम्भाव्य क्रय शक्ति का अनुमान हो जाता है तथा (2) राष्ट्रीय आय का कितना भाग वितरण में उत्पत्ति के साधनों को उनकी सेवाओं हेतु प्राप्त होता है, इसका ज्ञान हो जाता है। इस धारणा में केवल यह दोश है कि व्यक्तियों एवं परिवारों को वास्तव में कितनी राशि उपभोग हेतु उपलब्ध होती है, इसका ज्ञान नहीं हो पाता।

वैयक्तिक आय तथा राष्ट्रीय आय में अन्तर:- वैयक्तिक आय तथा राष्ट्रीय आय में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं:-

(1) वैयक्तिक आय की धारणा आय प्राप्ति सम्बन्धी धारणा है, जबकि राष्ट्रीय आय की धारणा आय के सृजन सम्बन्धी धारणा है।

(2) राष्ट्रीय आय में अवितरित लाभ तथा निगम कर शामिल होते हैं, जबकि वैयक्तिक आय में अवितरित लाभ तथा निगम करों को शामिल नहीं किया जाता।

(3) राष्ट्रीय आय में केवल साधन आय शामिल की जाती है। इसके विपरित, वैयक्तिक आय में साधन आय तथा हस्तांतरण भुगतान दोनों शामिल किये जाते हैं।

7.व्यय-योग्य या स्वायत्त आय - व्यक्तियों अथवा परिवारों को प्राप्त होने वाली व्यक्तिगत आय, व्यय करने योग्य उपलब्ध नहीं होती। इसका कारण यह है कि व्यक्गित आय का एक भाग व्यक्तियों

और परिवारो द्वारा व्यक्गित प्रत्यक्ष करो; जैसे-आय-कर, सम्पत्ति-कर, आदि के रूप में सरकार को चुकाना पड़ता है। अतः व्यक्तिगत प्रत्यक्ष करों को चुकाने के उपरान्त व्यक्तिगत आय का जो भाग शेष रहता है, उसे व्यय योग्य आय कहते हैं। अतः व्यय योग्य आय व्यक्तिगत आय का वह भाग है जो प्रत्यक्ष कर देने के बाद लोगों के पास शेष रह जाता है अर्थात्

(1) व्यय योग्य आय = व्यक्तिगत आय- व्यक्तिगत प्रत्यक्ष कर।

(2) इस आय का मुख्य भाग तो उपभोग पर व्यय हो जाता है और शेष बचा लिया जाता है। अतः व्यय योग्य आय = उपभोग + बचत।

स्वायत्त आय का महत्व:- स्वायत्त आय में निम्नलिखित गुण हैं-

(1) स्वायत्त आय की तुलना वैयक्तिक आय से करके प्रत्यक्ष करों के मुद्राभार का ज्ञान हो जाता है।

(2) यह धारणा विकास के अर्थशास्त्र के लिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे कुल बचत का ज्ञान हो जाता है जिस पर सम्पूर्ण विकास का ढाँचा आधारित है।

(3) यह धारणा कल्याण के अर्थशास्त्र हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि किसी देश का कल्याण उस देश के कुल उपभोग पर निर्भर करता है।

व्यय योग्य आय व वैयक्तिक आय में अन्तर:- व्यय योग्य आय की धारणा वैयक्तिक आय की तुलना में संकीर्ण है क्योंकि व्यय योग्य आय वैयक्तिक आय का एक भाग है।

वैयक्तिक आय वह आय है जो व्यक्तियों और परिवारों को सभी स्रोतों से वास्तव में प्राप्त होती है, जबकि व्यय योग्य आय व्यक्तिगत आय का ही वह अंग है जो सभी प्रकार के प्रत्यक्ष करों का भुगतान करने के पश्चात् लोगों के पास बचता है।

8.प्रति व्यक्ति आय - जब देश की राष्ट्रीय आय में देश की कुल जनसंख्या का भाग दिया जाता है तो जो भाज्यफल आता है, वही प्रति व्यक्ति आय कहलाती है:

प्रति व्यक्ति = राष्ट्रीय आय/जनसंख्या = NI/P

9.राष्ट्रीय आय प्रचलित कीमतों पर तथा स्थिर कीमतों पर - यदि हम किसी वर्ष में उत्पादित किसी वस्तु के मौद्रिक मूल्य को जानना चाहतें हैं तो हमें उत्पादन की मात्रा को चालू बाजार कीमतों से गुणा करना होगा। इस प्रकार से ज्ञात किये गये सभी उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के मुद्रा-मूल्य का जोड़ लगा लेने पर हमें चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय का अनुमान प्राप्त होता है।

वास्तविक स्थिति यह है कि सामान्य कीमतें निरन्तर बढ़ती घटती रहती हैं। अतः यह जानने के लिए कि उत्पादन में वास्तविक वृद्धि हुई है अथवा नहीं, हमें राष्ट्रीय आय में से कीमतों की वृद्धि के प्रभाव को अलग करना होगा। इसके लिए राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का समायोजन इस प्रकार किया जाता है कि उँची कीमतें होने पर इन्हें संकुचित तथा नीची कीमतें होने पर इन्हें विस्तृत कर दिया जाये। इस प्रकार के समायोजन द्वारा गणना करने से स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय का पता चलता है।

$$\text{स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय} = \frac{\text{चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय}}{\text{कीमत निर्देशांक}} \times 100$$

राष्ट्रीय आय के विभिन्न योगांकों में सम्बन्ध

राष्ट्रीय आय या उत्पाद के विभिन्न योगांकों की उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि ये सभी एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। इन योगांकों के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

राशि(करोड़ रू0 में)

(1)बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP_{MP})	20,000
घटाओ- वार्षिक मूल्य ह्रास (Depreciation)	(-) 1,000
	.....
(2) प्राप्त हुआ शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{MP})	19,000
(क्योंकि NNP=GNP - Depreciation)	
घटाओं- अप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कर (Indirect taxes)	(-1) 1,250
जोड़ों-सरकारी अनुदान(Subsidies)	(+) 250
	.....
(3) प्राप्ति हुई राष्ट्रीय आय(NI)	18,000
घटाओ-	
i. निगमों को रोके गये लाभ	(-) 10
ii. निगम लाभ कर	(-) 05
iii. सामाजिक सुरक्षा अंशदान	(-) 10
जोड़ो	
i. हस्तान्तरण भुगतान	(+) 25
ii. सरकार द्वारा शुद्ध ब्याज भुगतान	(+) 20
iii. उपभोक्ताओं द्वारा चुकाया गया शुद्ध ब्याज	(+) 5
	.....
	18,025

(4) प्राप्त हुई वैयक्तिक या व्यक्तिगत आय(PI)

(ऊपरी अनेक समायोजनाओं के कारण वैयक्तिक आय (PI)सामान्यतः राष्ट्रीय आय (NI) से अधिक होती है।)

घटाओ-	
i. प्रत्यक्ष कर	(-) 65
ii. सरकारी फीस एवं जुर्माने	(-) 10

	.....
(5) प्राप्त हुई व्यय योग्य आय या स्वायत्त आय (DI)	17,950

(क्योंकि व्यय योग्य आय DI= PI- Direct Taxes - Fees and Penalties)

अभ्यास प्रश्नः-

लघु उत्तरीय प्रश्न-

(1) राष्ट्रीय आय की संरचना के विभिन्न घटक बताइये।

(2) सकल घरेलू उत्पाद और सकल राष्ट्रीय उत्पाद में अंतर कीजिए।

(3) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय आय को स्पष्ट कीजिए।

(4) अंतिम उत्पाद को राष्ट्रीय आय में क्यों नहीं जोMतें हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न-

(1) एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के कुल मौद्रिक मूल्य को कहतें हैं-

(अ)सकल घरेलू उत्पाद (ब)शुद्ध घरेलू उत्पाद

(स)राष्ट्रीय आय (द)वैयक्तिक आय

2. GNP ज्ञात करनें के लिए GNP में जोMना होगा-

(अ)शुद्ध अप्रत्यक्ष कर (ब)निर्यात आधिक्य

(स)ह्रास (द)उपरोक्त सभी

3. बाजार मूल्य और साधन लागत पर राष्ट्रीय उत्पाद बराबर होतें हैं-

(अ)आर्थिक अनुदान शून्य हो (ब)अप्रत्यक्ष कर शून्य हो

(स)आर्थिक अनुदान व अप्रत्यक्ष कर बराबर हों (द)लाभ शून्य हो

4. वृद्धावस्था पेंशन राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं होगी क्योकि यह है-

(अ)अनुत्पादक क्रिया (ब)मध्यवर्ती क्रिया

(स)हस्तानांतरण भुगतान (द)इसका कोई मूल्य नहीं है

सत्य/असत्य कथन

1.बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद =सकल घरेलू उत्पाद - ह्रास

2. विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन = सकल राष्ट्रीय उत्पादन +मूल्य ह्रास

3. प्रति व्यक्ति आय = राष्ट्रीय आय/जनसंख्या

4. साधन लागत पर राष्ट्रीय आय = बजार कीमत पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद - ह्रास अप्रत्यक्ष कर + सरकारी सहायता

5.4 सारांश

वर्तमान समय में राष्ट्रीय आय किसी देश की आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण सूचक है। राष्ट्रीय आय के माध्यम से ही कोई देश आर्थिक नीतियों का निर्माण कर, आर्थिक विकास कर सकता है।

राष्ट्रीय आय की अवधारणा का विकास प्राचीन काल से माना जाता है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसे अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। सार रूप में, किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित समस्त वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक मूल्य ही राष्ट्रीय आय है।
राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित विभिन्न धाराणाएँ हैं, जैसे- कुल राष्ट्रीय उत्पाद, कुल घरेलू उत्पाद, शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद व शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद, बाजार कीमत पर कुल घरेलू उत्पाद व शुद्ध घरेलू उत्पाद, साधन लागत पर कुल घरेलू उत्पाद व शुद्ध घरेलू उत्पाद, आदि। इन धाराणाओं का प्रयोग कर देश के विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों की प्रगति को मापा जा सकता है तथा आवश्यक आर्थिक नीतियों का निर्माण करके देश के अर्थिक विकास की प्रक्रिया को तीव्र किया जा सकता है।

5.5 शब्दावली

साधन आय: साधन आय वह आय है जो उत्पादन के साधनों को उत्पादक क्षेत्र से उत्पादन प्रक्रिया में उनके योगदान के फलस्वरूप मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ के रूप में प्राप्त होता है।
शुद्ध अप्रत्यक्ष कर: अप्रत्यक्ष कर में से आर्थिक सहायता घटाने से हमें शुद्ध अप्रत्यक्ष कर प्राप्त होता है।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्न:- (1)-उत्तर 5.1 में देखें , (2)-उत्तर 5.3.1 एवं 5.3.3में देखें ,(3)-उत्तर 5.3.4 में देखें ,(4)-उत्तर 5.3.3 में देखें
बहुविकल्पीय प्रश्न:- (1)-अ, (2)-ब, (3)-स, (4)-स
सत्य/असत्य कथन:- (1)-सत्य, (2)-असत्य, (3)-सत्य, (4)-असत्य

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ऐक्ले, जी0: मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एन0वाई0, मैकमिलन,1961
2. आहूजा, एच0एल0: एडवान्स मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली।
3. द्विवेदी, डी0एन0: मैक्रोइकोनामिक्स: थीयरि एण्ड पॉलिसी, टाटा एमसी ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।

4. लाल, एस0एन0: समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण (सिद्धान्त, समस्यायें तथा नीतियाँ) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
5. शपीरो, एडवर्ड: मैक्रोइकोनामिक एनालिसिस, गलगोटिया पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. घरेलू उत्पाद, राष्ट्रीय उत्पाद तथा व्यक्तिगत आय की अवधारणाओं को समझाइएं आपस में ये एक-दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित हैं?
2. कुल राष्ट्रीय उत्पाद की संरचना से क्या आशय है? इसके विभिन्न अंगों के महत्व और पारस्परिक सम्बन्धों पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई-6: राष्ट्रीय आय का मापन एवं समस्यायें

इकाई संरचना

6.1-प्रस्तावना
6.2-उद्देश्य
6.3-राष्ट्रीय आय मापन की विधियाँ
6.3.1-उत्पाद विधि
6.3.2-आय विधि
6.3.3-व्यय विधि
6.3.4-उत्पाद विधि एंव आय विधि की मिश्रित रीति
6.3.5-सामाजिक लेखांकन विधि
6.4-विधियों का चुनाव
6.5-राष्ट्रीय आय गणना में होने वाली कठिनाइयाँ
6.6-राष्ट्रीय आय की गणना का महत्व
6.7-सारांश
6.8-शब्दावली
6.9-अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10-उपयोगी/सहायक ग्रंथ
6.11-निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय किसी देश की आथ्रिक स्थिति का सूचक होती है तथा उस देश के विकास को राष्ट्रीय आय के माध्यम से मापा जा सकता है। किसी देश की आर्थिक स्थिति कैसी है, इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए, राष्ट्रीय आय का मापन अनिवार्य हो जाता है।

पिछले कुछ वर्षो में, राष्ट्रीय आय की माप की वैज्ञानिक विधियों को विकसित किया गया है। विभिन्न उद्देश्यों के पूर्ति के लिए अलग-अलग विधियों का प्रयोग कर, कोई देश अपनी अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास सम्बन्धी नीतियों का निर्माण कर सकता है। अतः वर्तमान समय में प्रत्येक देश में राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:-

- राष्ट्रीय आय मापन की विभिन्न विधियों को जान सकेंगे,
- विधियों के चुनाव की समस्या को हल कर सकेंगे,
- राष्ट्रीय आय की गणना से संबंधित कठिनाइयों को समझ सकेंगे।

6.3 राष्ट्रीय आय की माप की विधियां

उत्पादन, आय एवं व्यय आर्थिक क्रियाओं का चक्राकर प्रवाह बनाते है। उत्पादन से आय संचरित होती है, आय से व्यय संचरित होता है एवं व्यय से उत्पादन संचरित होता है। इस प्रकार किसी देश की राष्ट्रीय आय को तीन वैकल्पिक विधियों द्वारा मापा जा सकता है- (अ) वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह के रूप में, (ब) आय के प्रवाह के रूप में, (स) व्यय के प्रवाह के रूप में।

राष्ट्रीय आय की गणना तीन स्तरों पर की जाती है –

1. उत्पादन स्तर
2. आय स्तर तथा
3. व्यय स्तर।

अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय आय को उसके तीनों पहलुओं अर्थात् उत्पादन, आय तथा व्यय के रूप में मापने का प्रयत्न किया है। ऐसा करने के लिए उनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था की संरचना तथा विकास के विभिन्न निर्धारकों; जैसे- उत्पादन, उपभोग, बचत या निवेश का उपयुक्त ज्ञान प्राप्त करना है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय के मापन की तीन महत्वपूर्ण विधियां है।

i. मूल्य वृद्धि विधि या उत्पादन विधि ,

ii. आय विधि या उत्पादन प्रक्रिया में साधन आय ,

iii. व्यय विधि । उपर्युक्त तीनों विधियों के अतिरिक्त राष्ट्रीय आय की मापन की दो और विधियां है।

i. उत्पादन विधि व आय विधि को मिलाकर

ii. सामाजिक लेखांकन विधि

6.3.1 उत्पादन विधि

इस रीति के अनुसार देश में उत्पादित समस्त वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य का योग ही राष्ट्रीय आय कहलाती है। ''उत्पादन से तात्पर्य कुल उत्पादन से नहीं है बल्कि शुद्ध उत्पादन से है। शुद्ध उत्पादन कुल उत्पत्ति में से अचल पूंजी की घिसावट तथा उसे बदलने का खर्च निकालकर माना जायेगा।

अतः इस रीति से देश में एक वर्ष में उत्पन्न वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध मूल्य ज्ञात किया जाता है और फिर उसे जोड़ लिया जाता है। प्रो0 शूप के शब्दों में, इस योग को अन्तिम उत्पादन योग भी कहा जाता है। चूंकि इस रीति से देश में एक वर्ष में 'वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह' का योग किया जाता है, इसलिए इस रीति को वस्तुओं और सेवाओं की प्रवाह रीति भी कहते हैं। राष्ट्रीय आय की गणना की यह रीति अर्थव्यवस्था के विभिन्न वर्गों की आयों का योग होती है।

परिभाषा - उत्पादन विधि या मूल्य वृद्धि विधि वह विधि है जो एक लेखा वर्ष में देश की घरेलू सीमा के अन्तर्गत प्रत्येक उद्यम के उत्पादन में योगदान की गणना करके राष्ट्रीय आय मापती है।

उत्पादन विधि या मूल्य वृद्धि विधि द्वारा राष्ट्रीय आय मापने के चरण

इस विधि द्वारा राष्ट्रीय आय मापने के निम्नलिखित चरण है।

प्रथम चरण - उत्पादक उद्वमों की पहचान तथा वर्गीकरण -इस विधि में सबसे पहले उन उत्पादक उद्यमों की पहचान की जाती है जो उत्पादन करते हैं। इनका वर्गीकरण निम्न तीन क्षेत्रों में किया जाता है।

1. कृषि या प्राथमिक क्षेत्र -इसमें कृषि, वन, मछलीपालन, पशुपालन, खनन एवं उत्खनन आदि सम्मिलित है।

2. उद्योग या द्वितीयक क्षेत्र -इसमें निर्माण उद्योग, बिजली की आपूर्ति, जल एवं गैस को सम्मिलित करते हैं।

3. सेवा या तृतीयक क्षेत्र -इसमे यातायात, संचार, व्यापार, सार्वजनिक प्रशासनिक, बैंक, बीमा आदि सम्मिलित करते हैं।

प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन को उसकी कीमत से गुणा करके कुल उत्पादन मूल्य ज्ञात किया जाता है। इस मौद्रिक मूल्य या उत्पादन मूल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं। सकल राष्ट्रीय उत्पादन की गणना

बाजार कीमत पर किये जाने के कारण इसे बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पादन भी कहा जाता है।

दूसरा चरण -उत्पाद के मूल्य की गणना -उत्पाद के मूल्य की गणना की दो विधियां है-(1) अन्तिम उत्पाद विधि एव **(2) मूल्य वृद्धि विधि**

(1) अन्तिम उत्पाद विधि -सकल राष्ट्रीय उत्पादन (जी0एन0पी0) में केवल अन्तिम वस्तुएं व सेवाएं ही सम्मिलित की जाती है। अन्तिम उत्पादन या अन्तिम पदार्थो से अभिप्राय उन पदार्थो से है जो अन्त में जिस उपभोक्ता या खरीददार द्वारा खरीदे जात हैं, वह उनको आगे किसी और उपभोक्ता या खरीददार के पास नहीं बेचता बल्कि व्वयं ही उनका उपभोग कर लेता है।

अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य निकालने के लिए इसमें से मध्यवर्ती वस्तुओ और सेवाओं का मूल्य घटा दिया जाता है।

(2) मूल्य वृद्धि विधि -उत्पाद विधि द्वारा राष्ट्रीय आय को मापने का दूसरा तरीका मूल्य वृद्धि विधि है। इस विधि में प्रत्येक फर्म द्वारा अपनी उत्पादन क्रिया के फलस्वरूप जो मूल्य वृद्धि की जाती है, उनके योग से राष्ट्रीय उत्पाद का अनुमान लगाया जा सकता है। मूल्य वृद्धि से अभिप्राय है कि उत्पादन की प्रत्येक अवस्था में प्रत्यक फर्म द्वारा वस्तु के मूल्य में कितना मूल्य जोड़ा गया है। मूल्य वृद्धि विधि वह विधि है जो देश की घरेलू सीमा के अन्तर्गत प्रत्येक उत्पादक उद्यम के योगदान को मापती है। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका 1-मूल्य वृद्धि विधि

उत्पादक का नाम	उत्पादनकी अवस्था	मध्यवर्ती उपभोग का मूल्य	उत्पादक का मूल्य	प्रत्येक अवस्था में कुल मूल्यवृद्धि
कृश क	गेहूँ	शून्य	2000	2000
आटा चक्की वाला	आटा	2000	2500	500
डबल रोटी बनाने वाला (बेकर)	डबल रोटी	2500	3000	500
दुकानदार	डबल रोटी की बिक्री	3000	3200	200
	योग	7500	10700	3200

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि:-1. किसान अपने परिवार द्वारा श्रम करके गेहूँ का उत्पादन करता है और उसका विक्रय कर 2000 रू0 प्राप्त करता है।

2. गेहूँ का आटा बनाकर बेचने वाले ने 2500 रू0 में आटे को डबलरोट बनाने वाले को बेचता है। इस प्रकार आटा चक्की वाले ने 2500 रू0-2000 रू0=500 रू0 की मूल्य वृद्धि की।

3. डबल रोटी बनाने वाले ने 2500 रू. में आटा खरीदा तथा 3000 रू0 में डबल रोटी, दुकानदार को बेची। इस प्रकार डबलरोटी बनाने वाले ने 3000 रू0 -2500 रू0 = 500रू0 की मूल्य वृद्धि की।

4. दुकानदार ने ग्राहकों को 3200 रू0 में डबल रोटी बेची। इस प्रकार दुकानदार ने 3200 रू0-3000 रू0 = 200रू0 की मूल्य वृद्धि की ।

5. इस प्रकार कुल मूल्य वृद्धि =2000 रू0 + 500रू0 + 500रू0 + 200रू0 = 3200रू0।

यदि सभी वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत का योग किया जाए तो कुल उत्पादन का मूल्य = 2000 रू0 + 2500रू0 + 3000रू + 3200रू0 = 10700 रू0 होता जिसे सम्मिलित नहीं किया जाएगा।

तीसरा चरण - राष्ट्रीय आय का अनुमान - इस विधि द्वारा राष्ट्रीय आय के विभिन्न संघटकों के मूल्यों का अनुमान निम्न प्रकार लगाया जाता है:

1. बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP at MP)- GDP_{MP} = बाजार कीमत में देश की घरेलू सीमा में (प) प्राथमिक क्षेत्र में सकल वृद्धि, (पप) द्वितीयक क्षेत्र में सकल वृद्धि तथा (पपप) तृतीयक क्षेत्र में सकल वृद्धि।

2. बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP at MP)- पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक (जैसे मशीनरी) को यथावत् रखने के लिए घिसावट व्यय की व्यवस्था की जाती है। घिसावट व्यय को स्थिर पूँजी के उपभोग का मूल्य या मूल्य ह्रास कहते है। अतः सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्य ह्रास घटाने पर बाजार कीमतों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद का मूल्य प्राप्त हो जाता है अर्थात्

$$NDP_{MP} = GDP_{MP} - \text{मूल्य ह्रास (Depreciation)}$$

3.साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (**NDP at FC**)- बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_M) की सहायता से साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC}) व साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय (NNP_{FC} or NI) की गणना की जा सकती है परन्तु अप्रत्यक्ष करों व आर्थिक सहायता का समायोजन करना पड़ता है अर्थात्

$$NDP_{FC} = NDP_{MP} - \text{अप्रत्यक्ष कर} + \text{आर्थिक सहायता}$$

नोटः- अप्रत्यक्ष करों में से आर्थिक सहायता की राशि घटाने से शुद्ध अप्रत्यक्ष कर की राशि प्राप्त होती है। अतः $NDP_{FC} = NDP_{MP}$ - शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

4. साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय (NNP at FC)-अन्त में साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद में विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय का समायोजन करने से साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय प्राप्त हो जाती है अर्थात्

NNP_{FC} or NI = NDP_{FC} + विदेशों से शुद्ध साधन आय

उत्पादन विधि द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना को नीचे चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है:

उत्पादन विधि या मूल्य वृद्धि विधि

(1) बाजार कीमत पर प्राथमिक क्षेत्र में सकल मूल्य वृद्धि
(2) बाजार कीमत पर द्वितीयक क्षेत्र में सकल मूल्य वृद्धि
(3) बाजार कीमत पर तृतीयक क्षेत्र में सकल मूल्य वृद्धि

(A) बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP})

(-)

मूल्य ह्रास(Depreciation)

↓

(B) बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP})

(-)

शुद्ध अप्रत्यक्ष कर अर्थात् अप्रत्यक्ष कर - आर्थिक सहायता

↓

(ब) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद(NDP_{FC})

(+)

विदेशों से शुद्ध आय

↓

(D) राष्ट्रीय (NI)

नोट-(1) उत्पादन विधि द्वारा उत्पादन का अनुमान बाजार कीमत द्वारा लगाया जाता है अतः उत्पादों की बाजार कीमत में से अप्रत्यक्ष कर घटा दिये जायें तथा आर्थिक सहायता जोड़ दी जाए तो साधन लागत पर आय प्राप्त की जा सकती है।

(2) अप्रत्यक्ष कर में से आर्थिक सहायता घटा दी जाये तो हमें शुद्ध अप्रत्यक्ष कर ही राशि प्राप्त हो जाती है।

महत्व - इस प्रणाली का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह अर्थव्यवस्था विभिन्न वर्गों के तुलनात्मक योगदान को प्रदर्शित करती है और इस प्रकार उनके सापेक्षिक महत्व को सामने लाती है परन्तु राष्ट्रीय आय की गणना की इस रीति का उपयोग वहीं पर किया जा सकता है जहाँ वर्ष के लिए उत्पादन की गणना होता है।

उदाहरण-एक उदाहरण द्वारा बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात किया जा सकता है:-

i.	गेहूं का उत्पादन	500 क्विण्टल, मूल्य 400 रू0 प्रति क्विण्टल
ii.	चावल का उत्पादन	700 क्विण्टल, मूल्य 600 रू0 प्रति क्विण्टल
iii.	शक्कर का उत्पादन	400 क्विण्टल, मूल्य 800 रू0 प्रति क्विण्टल
iv.	दालों का उत्पादन	300 क्विण्टल, मूल्य 900 रू0 प्रति क्विण्टल
v.	उक्त चारों उद्योगों में कच्चे माल का मूल्य	2,10,000रू0
vi.	शुद्ध अप्रत्यक्ष कर	10,000रू0
vii.	सरकार द्वारा अनुदान	5,000रू0

बाजार कीमत के अनुसार सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा साधन लागत के अुनसार सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना मूल्य वृद्धि रीति से कीजिए।

i. बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय आय

$GNP_{(MP)}$ = उत्पादित वस्तुओं का मूल्य - मध्यवर्ती उपभोग की वस्तुओं का मूल्य
= 2,00,000 + 4,20,000 + 3,20,000 + 2,70,000 - 2,10,000
= 12,10,000 - 2,10,000 = 10,00,000
= 10,00,000 उत्तर

ii. साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद

$GNP_{(FC)}$ = $GNP_{(MP)}$ - अप्रत्यक्ष कर + अनुदान
= 10,00,000 - 10,000+ 5,000
= 9,95,000 उत्तर

6.3.2-आय विधि:-उत्पादन के साधन, उत्पादन में योगदान इसलिए देते है क्योंकि उन्हें इनके लिए पुरस्कार मिलता है। उत्पादन के साधनों द्वारा अर्जित इस प्रकार का पुरस्कार 'साधनों की आय' कहलाता है। दूसरे शब्दों में, आय विधि के अनुसार उत्पादन के विभिन्न साधनों के द्वारा उत्पादन में उनकी सेवाओं के प्रतिफलस्वरूप मिलने वाले भुगतान अर्थात् साधनों की आये का योग करते है। इस योगफल को घरेलू आय कहते है। यदि इस योग में विदेशों से अर्जित शुद्ध आय जोड़ दें तो राष्ट्रीय आय बन जाती है। संक्षेप में, राष्ट्रीय आय = मजदूरी + लगान + ब्याज + लाभांश +

अवितरित लाभ +निगम लाभ कर + सार्वजनिक क्षेत्र का अधिशेष + मिश्रित आय + विदेशों से अर्जित शुद्ध आय।

इस विधि को साघन भुगतान विधि भी कहा जाता है।

परिभाषा -''आय विधि वह विधि है जो एक लेखा वर्ष में उत्पादन के साधनों (श्रम, पूँजी, भूमि व उद्यम) को उसकी उत्पादक सेवाओं के बदले में क्रमशः मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ के रूप में किये गये भुगतान की गणना करके राष्ट्रीय आय की माप करती है।''

आय विधि द्वारा राष्ट्रीय आय मापने के चरण -आय विधि के द्वारा राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के निम्नलिखित चरण है:

पहला चरण - साधान आय वर्गीकरण -साधन आय को मुख्य रूप से अग्रलिखित भागों में बाँटा जाता है।

(1) कर्मचारियों का पारिश्रमिक -इसके अन्तर्गत (A) मजदूरी तथा वेतन, (B) किस्म के रूप में आय तथा (C) सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में मालिकों के योगदान को शामिल किया जाता है।

(2) परिचालन अधिशेष -इसके अन्तर्गत सम्पत्ति तथा उद्यमशीलता से प्राप्त आये को शामिल किया जाता है। यह अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों अर्थात् निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों के ही उद्यमों में उत्पन्न होता है परन्तु सामान्य सरकारी क्षेत्र में परिचालन अधिशेष उत्पन्न नहीं होता। परिचान अधिशेष में निम्नलिखित मदें शामिल की जाती है:

(A) लगान, (B) ब्याज, (C) लाभ (लाभांश + निगम कर + उद्यमों की बचत या अवितरित लाभ)

(3) मिश्रित आय -स्वनियोजित आय को मिश्रित आय कहते हैं। वह व्यक्ति जो एक ओर साधन सेवाएँ प्रदान करते हैं और दूसरी ओर, स्वयं ही वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, मिश्रित आय प्राप्त करते हैं। एकांकी उत्पादन इकाइयों द्वारा अर्जित आयः जैसे-दुकान, वकील, डॉक्टर, बढ़ई तथा कृश क आदि की आय मिश्रित आय या स्वनियोजित आय कहलाती है। मिश्रित आय के अन्तर्गत कृषि कार्य, स्वामित्व से आय तथा पेशेवर आय लेते हैं। मिश्रित आय राष्ट्रीय आय की गणना करते समय अवश्य शामिल की जाती है।

उपर्युक्त तीनों मदों से प्राप्त आय जोड़कर शुद्ध घरेलू आय का अनुमान लगाया जाता है अर्थात्

शुद्ध घरेलू आय त्र कर्मचारियों का पारिश्रमिक + परिचालन अधिशेष + मिश्रित आय।

(4) विदेशों से शुद्ध साधन आय -किसी भी अर्थव्यवस्था के कुल आयात और निर्यात के अन्तर को विदेशी शुद्ध परिसम्पत्ति आय कहते हैं। इसे शुद्ध निर्यात भी कहते हैं। सामानतया पर विदेशों में निम्नलिखित भौतिक और अभौतिक वस्तुओं का निर्यात किया जाता है-(a) स्वदेश से विदेश में जनशक्ति तथा मौलिक वस्तुएँ पहुँचाना। (b) पर्यटकों द्वारा ऐतिहासिक एवं अन्य आकर्षक भवनों को देखने के लिए विदेशों से स्वदेश में आना (c) बैंको और बीमा कम्पनियों द्वारा सहायताएँ उपलब्ध करवाना।

शुद्ध विदेशी साधन आय को शुद्ध घरेलू आय में जोड़कर राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है अर्थात् राष्ट्रीय आय =कर्मचारियों का पारिश्रमिक +परिचालन अधिशेष + मिश्रित आय + शेष संसार से शुद्ध साधन आय।

दूसरा चरण -साधन आय का अनुमान -एक उद्योग के सभी उत्पादकों द्वारा भुगतान की गई साधन आय को जोड़कर इस उद्योग की कुल आय मालूम की जाती है और अर्थव्यवस्था के सभी उद्योगों द्वारा भुगतान की गई आय को जोड़कर शुद्ध घरेलू आय प्राप्त की जाती है।

शुद्ध घरेलू आय में उचित परिवर्तन करके राष्ट्रीय उत्पाद की शेष अवधारणाएँ ज्ञात की जा सकती है जैसा निम्न चित्र द्वारा समझाया गया है।

आय विधि

(1) कर्मचारियों का पारिश्रमिक
(2) परिचालन अधिशेष
(3) स्वनियोजितों की मिश्रित आय

↓

(1) शुद्ध घरेलू आय

+

विदेशों से शुद्ध साधन आय

↓

राष्ट्रीय आय

+

मूल्य ह्रास(Depreciation)

↓

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

+

शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

↓

बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

नोट-(1) आय विधि में आय का अनुमान साधनों की आय के अनुसार लगाया जाता है अतः साधन लागत में शुद्ध अप्रत्यक्ष कर जोड़ दिया जाय तो बाजार कीमत पर राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य ज्ञात किया जाता है।

(2)शुद्ध अप्रत्यक्ष कर = अप्रत्यक्ष कर - आर्थिक सहायता

महत्व -इस रीति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे समाज में विभिन्न वर्गों में आय-वितरण का पता लगता है और दोहरी गणना की सम्भावना बहुत कम रहती है परन्तु करोड़ों लोगों की आय का अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन हो जाता है, विशेष कर उस समय जब आय वस्तुओं और सेवाओं के रूप में प्राप्त होती है। भारत जेसे देश में जहाँ अधिकांश लोग आय का ठीक-ठीक हिसाब नहीं रखते, यह विधि उपयुक्त नहीं हो सकती है।

उदाहरण-2 एक उदाहरण द्वारा बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय आय की गणना की जा सकती है:-

		(करोड़ रू0 में)
i.	मजदूरी एवं वेतन	400
ii.	ब्याज	70
iii.	कर्मचारियों को अन्य सुविधाएँ	40
iv.	लगान	50
v.	अवितरित लाभ	10
vi.	विदेशों से शुद्ध आय	15
vii.	प्रत्यक्ष कर	8
viii.	सामाजिक सुरक्षा अंशदान	7
ix.	हस्तान्तरण भुगतान	5
x.	शुद्ध अप्रत्यक्षकर	9

हल-बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय आय = मजदूरी एवं वेतन+ ब्याज +कर्मचारियों को अन्य सुविधायें + लगान +अवितरित लाभ + विदेशों से शुद्ध आय + प्रत्यक्ष कर + सामाजिक सुरक्षा अंशदान

= 400 + 70 + 40 + 50 + 10 + 15 +8+7

= 600 करोड़ रू0

6.3.3 व्यय विधि:-यह विधि राष्ट्रीय आय को मापने की तीसरी विधि है। इस विधि को अन्तिम व्यय विधि या उपभोग विनियोग विधि के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इस विधि के अनुसार अन्तिम उपभोग और विनियोग व्यय को जोड़कर राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है। संक्षेप में,

$$Y = C + I$$

परिभाषा :- ''व्यय विधि वह विधि है जिसके द्वारा एक लेखा वर्ष में बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद पर किये गये अन्तिम व्यय को मापा जाता है। यह अन्तिम व्यय बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद के बराबर होता है।''

व्यय विधि के चरण:- व्यय विधि के द्वारा राष्ट्रीय आय ज्ञान करने के निम्नलिखित चरण हैं:

पहला चरण -अन्तिम व्यय की पहचान -यह प्रश्न उठता है कि कौन-सा व्यय अन्तिम व्यय है और कौन-सा व्यय मध्यवर्ती व्यय है? वस्तुतः इस प्रश्न का उत्तर व्यय की प्रकृति पर निर्भर करता है। यदि एक उद्यमी दूसरी उद्यमी से जो वस्तु या सेवा खरीदता है, उसका प्रयोग दोबारा बेचने के लिए या आगे उत्पादन करने के लिए करता है तो ऐसी वस्तु पर किया गया व्यय मध्यवर्ती व्यय कहलायेगा। इसके विपरीत, यदि किसी उद्यमी द्वारा अन्तिम उपभोग या पूँजी निर्माण के लिए वस्तुएँ तथा सेवायें खरीदी जाती है तो उन पर किया गया व्यय अन्तिम व्यय कहलाता है।

दूसरा चरण -अन्तिम व्यय करने वाली आर्थिक इकाइयों की पहचान -देश की घरेलू सीमा के अन्तर्गत उन सभी आर्थिक इकाइयों द्वारा किये जाने वाले अन्तिम व्यय का वर्गीकरण निम्नलिखित समूहों में किया जाता है- (1) परिवार क्षेत्र, (2) उत्पादक क्षेत्र, (3) सरकारी क्षेत्र तथा (4) शेष विश्व क्षेत्र।

तीसरा चरण -अन्तिम व्यय की गणना -अन्तिम व्यय में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है।

(1) अन्तिम उपभोग व्यय -अन्तिम उपभोग व्यय को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(अ) निजी उपभोग व्यय -देश के निवासिनों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए किया जाने वाला उपभोग व्यय है। यह व्यय निम्न प्रकार का हो सकता है।

(1) शीघ्र उपभोग की वस्तुओं पर व्ययः जैसे-खाद्यान्न, पेय पदार्थ इत्यादि। (2) टिकाऊ वस्तुओं पर किया जाने वाला व्ययः जैसे-फर्नीचर, कालीन, रेडियो, वीडियो तथा कार आदि। (3) विभिन्न सेवाओं पर व्ययः जैसे-शिक्षण, मनोरंजन, संचार, परिवहन।

उल्लेखनीय है कि निजी उपभोग पर व्यय विदेशी व्यक्तियों द्वारा उपभोग वस्तुओं पर किये गये व्यय को सम्मिलित नहीं करता। इस प्रकार उपभोग व्यय, सभी वस्तुओं तथा सेवाओं तथा सेवाओं पर किये गये व्यय के योग का प्रतिफल है।

(ब) सरकारी या शासकीय उपभोग व्यय -सरकारी अन्तिम उपभोग व्यय में मुख्य रूप से तीन मदों को सम्मिलित किया जाता है-(a) कर्मचारियों को दिया गया वेतन, (b) सरकार द्वारा सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध क्रय तथा (c) विदेशों में वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध क्रय।

यह उल्लेखनीय है कि सरकारी उपभोग व्यय में देशी व विदेशी हस्तान्तरण भुगतानों को सम्मिलित नहीं किया जाता।

(a) विनियोग या सकल पूँजी निर्माण -एक वर्ष के दौरान अर्थव्यवस्था की पूँजीगत सम्पत्तियों के मूल्य में होने वाली वृद्धि को विनियोग या पूँजी निर्माण कहते हैं। इसमें निजी विनियोग और सरकारी विनियोग सम्मिलित किये जाते हैं:-

(अ)निजी विनियोग -निजी विनियोग के अन्तर्गत निम्नलिखित मदों को सम्मिलित किया जाता हैः

i. मशीन व उपकरण पर व्यय -अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिए व्यावसायिक भवनों, मशीनों व उपकरणों का क्रय किया जाता है। वे वस्तुएँ उत्पादक होती हैं और इन्हें विनियोग में सम्मिलित किया जाता है

ii. स्टॉक या माल तालिकाओं पर व्यय - स्टॉक या इन्वेण्टरीज से तात्पर्य किसी विशेष तिथि पर कच्चे माल, अर्द्धनिर्मित एवं तैयार माल के स्टॉक से है। यदि वर्ष के अन्त में इस माल में वृद्धि होती है तो वृद्धि के मूल्य को स्टॉक में विनियोग माना जाता है।

स्टॉक में परिवर्तन-अन्तिम स्टॉक-प्रारम्भिक स्टॉकभवन निर्माण पर व्यय

iii. भवन निर्माण के दो मुख्य उद्देश्य हैं-पहला, यह टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु है जिसमें परिवार आवास करता है दूसरा, इन भवनों को किराये पर उठाया जाता है जो आय का विशेष साधन भी है। भवन निर्माण कार्य जो निजी विनियोग व्यय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, उसे जी.एन.पी. में शामिल किया जाता है।

(ब) सरकारी विनियोग -सरकारी विनियोग से हमारा आशय केन्द्रीय सरकार, राज्य एवं स्थानीय सरकारों से है। सरकार द्वारा नहरों, बाँधों, सड़कों, रेल, बिजली, संचार आदि पर किया गया व्यय सरकारी विनियोग कहलाता है। इसके अतिरिक्त, सरकार उपभोग तथा उत्पादन वस्तुओं का निर्माण भी करती है। इस पर किये गये व्यय को भी सरकारी विनियोग कहते हैं।

निजी विनियोग और सरकारी विनियोग को संयुक्त रूप से घरेलू पूँजी निर्माण कहा जाता है।

वस्तुओं एवं सेवाओं का शुद्ध निर्यात (**X-M**)-निर्यात और आयात के अन्तर को शुद्ध निर्यात कहते हैं। यदि आयात की तुलना में निर्यात अधिक होगा तो शुद्ध निर्यात धनात्मक और यदि आयात निर्यात से अधिक होता तो शुद्ध निर्यात ऋणात्मक होता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर व्यय विधि के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना निम्नलिखित सूत्र द्वारा की जा सकती है:

(A) बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (**GDP** $_{MP}$)त्रनिजी अन्तिम उपभोग व्यय (C_n) + सरकार द्वारा अन्तिम उपभोग व्यय (C_g) + निजी विनियोग या पूँजी निर्माण (I_n) + सरकारी विनियोग या पूँजी निर्माण (I_g) + शुद्ध निर्यात (X - M)

अथवा $GNP_{mg} = C_n + C_g + I_n + I_g + (X - M)$

(B) बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP}) & GNP_{MP} में से मूल्य- ह्रास की राशि घटा देने से NDP_Mज्ञात हो जाता है अर्थात्

$NDP_{MP} = GNP_{MP}$ - मूल्य ह्रास

(C) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC})-व्यय विधि द्वारा बाजार कीमत पर सकल या शुद्ध घरेलू उत्पाद मालूम होता है। साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC}) मालूम करने के लिए NDP_{MP} में शुद्ध अप्रत्यक्ष कर (अप्रत्यक्ष कर-आर्थिक सहायता) घटा देना चाहिए अर्थात्

NDP_{FC}=NDP+ शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

(D) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) या राष्ट्रीय आय (NI)-साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद आय मालूम करने के लिए NDP_{FC} में शुद्ध निर्यात (X-M) को जोड़ देते हैं, अर्थात्

$$\mathbf{NI = NDP_{FC}} + \text{शुद्ध निर्यात (विदेशों से शुद्ध साधन आय)}$$

व्यय विधि

1. निजी अन्तिम उपभोग व्यय
2. सरकारी अन्तिम उपभोग व्यय
3. सकल घरेलू पूँजी निर्माण
4. शुद्ध निर्यात (निर्यात-आयात)

↓

बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (**GDP_{MP}**)

↓ -

मूल्य ह्रास

↓

बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP})

↓ +

शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

↓

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC})

+

विदेशों से शुद्ध साधन आय

नोट-आय का अनुमान साधन लागत पर लगाया जाता है, जबकि व्यय का अनुमान बाजार कीमत पर लगाया जाता है। अतः बाजार कीमत में से अप्रत्यक्ष कर घटा दिये जायें और आर्थिक सहायता जोड़ दी जाय तो साधन लागत पर आय प्राप्त की जा सकती है।

महत्व - व्यय विधि अर्थव्यवस्था में उपभोग तथा विनियोग के अनुपात का ज्ञान कराती है और साथ ही अर्थव्यवस्था में विदेशी विनियोग, विदेशी सहायता व विदेशी पूँजी के योगदान का आभास कराती है।

राष्ट्रीय आय के तीनों मापन में मिलान -राष्ट्रीय आय के मापन की तीनों विधियाँ हमें राष्ट्रीय आय के तीन माप प्रदान करती है अर्थात् सकल राष्ट्रीय आय (आय विधि), सकल राष्ट्रीय उत्पाद (शुद्ध मूल्य वृद्धि या उत्पाद विधि) तथा सकल राष्ट्रीय व्यय (व्यय विधि)। राष्ट्रीय आय के मापन की किसी भी विधि का प्रयोग क्यों न किया जाये, राष्ट्रीय आय का मूल्य एक समान रहता है। संक्षेप में,

$$GNP \equiv GNI \equiv GNE$$

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि एक निश्चित समय में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य उत्पादन के साधनों की सेवाओं के लिए मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ के रूप में किये गये साधन भुगतान के बराबर होता है। समस्त उत्पादन साधन सेवाओं के स्वामियों को जो साधन आय प्राप्त होती है, उसे वे या तो उपभाग पर या विनियोग पर व्यय कर देते हैं। अतएवं राष्ट्रीय आय गणना की तोनों विधियों अर्थात उत्पाद विधि आय विधि तथा व्यय विधि एक ही प्रवाह अर्थात् राष्ट्रीय आय के प्रवाह को प्रकट करने के तीनों विभिन्न दृष्टिकोण है।

यह उल्लेखनीय है कि आय का अनुमान साधन लागत पर लगाया जाता है, जबकि उत्पादन और व्यय का अनुमान बाजार कीमत पर लगाया जाता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि साधन लागत और बाजार कीमत में समानता स्थापित की जाय। यह समानता अप्रत्यक्ष करों और आर्थिक सहायता के द्वारा स्थापित की जाती है। अतः यदि बाजार कीमत में से अप्रत्यक्ष करों को घटा दिया जाय और आर्थिक सहायता को जोड़ दिया जाय तो साधन लागत पर राष्ट्रीय आय प्राप्त की जा सकती है। इसका कारण यह है कि अप्रत्यक्ष कर बाजार मूल्य को बढ़ा देते हैं जो उत्पादन के साधनों को प्राप्त न होकर सरकार के खजाने में जमा हो जाता है। इसके विपरीत, आर्थिक सहायता बाजार मूल्य को कम कर देते है और यह साधनों को प्राप्त नहीं होता है। संक्षेप में,

राष्ट्रीय आय (NI) = बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{MP}) - अप्रत्यक्ष कर + आर्थिक सहायता

= शुद्ध राष्ट्रीय व्यय - अप्रत्यक्ष कर +आर्थिक सहायता

6.3.4- उत्पादन संगणना एवं आय संगणना प्रणाली की मिश्रित रीति

इस रीति का प्रयोग भारतीय अर्थशास्त्री प्रो.वी.के.आर. वी.राव ने किया है। इस रीति के अनुसार उन्होंने भारत की राष्ट्रीय आय की गणना की है। इस प्रणाली में उत्पादन व्यवसायों के संगणना उत्पादन के आधार पर तथा सरकारी एवं गैर सरकारी नौकरों की आय की गणना आय संगणना के आधार पर की जाती है।

6.3.5. सामाजिक लेखांकन विधि

इस विधि में देश की समस्त आर्थिक गतिविधियों को तीन प्रकार से विभक्त किया जाता है-प्रथम उत्पादन, द्वितीय-वितरण, तृतीय-व्यय। इस विभाजन के आधार पर ही सामाजिक लेखे को तीन खण्डों में प्रस्तुत किया जाता है।

1. व्यावसायिक संस्थाएँ 2. घरेलू एवं निजी गैर लाभ संस्थाएं एवं 3. सरकार।

प्रत्येक खण्ड में उत्पादन, उपभोग, बचत व विनियोग के सम्बन्ध में लेखा किया जाता है। इस प्रकार कई लेखे तैयार कर लिये जाते हैं। ये लेखें जहां एक ओर देश की राष्ट्रीय आय का ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं, वहीं दूसरी ओर, देश की आर्थिक नीतियों के निर्धारण एवं उनके मूल्यांकन के लिए भी आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। इस विधि की विस्तृत जानकारी अगले अध्याय में में दी गयी है।

6.4-विधियों का चुनाव

राष्ट्रीय आय की गणना की तीनों विधियों द्वारा राष्ट्रीय आय का मूल्य एक समान ही आयेगा परन्तु इसमें से कौन-सी प्रणाली श्रेष्ठ है, इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आय की गणना की किस विधि का प्रयोग किस समय किया जायेगा, यह निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर करता है:

(1) राष्ट्रीय आय की गणना अवस्था - किसी अर्थव्यवस्था मे राष्ट्रीय आय की गणना की किस विधि का प्रयोग किया जाए, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि राष्ट्रीय आय की गणना किस अवस्था में की जा रही है।

यदि राष्ट्रीय आय की गणना उत्पादन अवस्था में की जा रही हो तो मूल्य वृद्धि या उत्पादन विधि का उपयोग किया जाना चाहिए।

यदि राष्ट्रीय आय का अनुमान वितरण की अवस्था में किया जा रहा है तो आय विधि अधिक उपयोगी होगी।

इसके विपरीत, यदि उपभोग अवस्था में राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जा रहा हो तो व्यय विधि का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा।

(2) आर्थिक क्रिया -प्रत्येक अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं का कई क्षेत्रों जैसे-कृषि क्षेत्र, उद्योग क्षेत्र, व्यापार, यातायात, संचार क्षेत्र आदि में बांटा जाता है। इन विभिन्न क्षेत्रों में विभिान्न प्रकार की विधि का उपयोग कर राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है। प्रमुख क्षेत्रों में कौन-सी विधि अपनायी जानी चाहिए, इसका वर्णन संक्षेप में नीचे चार्ट में दर्शाया गया है।

आर्थिक क्रियाओं के अनुसार विधि का चुनाव

उत्पादन विधि	आय विधि	व्यय विधि
1. कृषि क्षेत्र	1. उद्योग क्षेत्र	1. आवास, गृह क्षेत्र
2. वन मछली पशुपालन व खनिज क्षेत्र	2. व्यापार, यातायात व संचार क्षेत्र	
	3. वित्तीय सेवाऐं	

(3)अर्थव्यवस्था की संरचना में अन्तर - विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को मुख्य रूप से अग्रलिखित दो भागों में बांटा जाता है:

(अ) विकसित अर्थव्यवस्थाएँ - इन अर्थव्यवस्थाओं में राष्ट्रीय आय की गणना के लिए आय विधि सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है क्योंकि इन देशों में सभी क्षेत्रों के आय सम्बन्धी आँकडे सरलता से उपलब्ध हो जाते है।

(ब) अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाएँ - अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाएँ कृषि प्रधान अर्थव्यवस्थाएँ होती है। इन अर्थव्यवस्थाओं में उद्योग, यातायात, संचार आदि क्षेत्र बहुत कम विकसित होते है। इसलिए इन अर्थव्यवस्थाओं में आय की गणना के लिए शुद्ध उत्पाद विधि प्रयोग अधिक किया जाता है।

(4) आँकड़ों की उपलब्धि- राष्ट्रीय आय की मापन विधि का चयन आँकड़ों की उपलब्धता का निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, अर्द्ध-विकसित देशों में आँकड़ों की उपलब्धता नहीं हो पाती क्योंकि अधिकांश क्षेत्र अंसगठित एवं अमौद्रिक होते है।

यदि ये आँकड़े पर्याप्त मात्रा तथा शुद्ध रूप में उपलब्ध है तो आय गणना की किसी भी विधि का प्रयोग उचित ढंग से किया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि आँकड़े पर्याप्त मात्रा में तथा शुद्ध रूप में उपलब्ध नहीं है तो उत्पादन विधि का ही अधिक प्रयोग किया जाता है।

अतएव राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। इनका चुनाव राष्ट्रीय आय की गणना की अवस्था, अर्थिक क्रिया की प्रकृति, अर्थव्यवस्था की संरचना तथा आँकड़ों की उपलब्धि पर निर्भर करता है।

राष्ट्रीय आय प्रचलित कीमतों पर तथा स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय की गणना दो प्रकार से की जाती है:

(1) चालू या प्रचलित कीमतों के आधार पर तथा (2) स्थिर कीमतों के आधार पर।

(1) चालू या प्रचलित कीमतों की आधार पर- चालू कीमतों से आशय उस वर्ष की कीमत से है जिस वर्ष की राष्ट्रीय आय मापी जा रही है। उदाहरण के लिए, यदि हम 2002-2003 वर्ष की राष्ट्रीय आय माप रहे है तो हमें 2002-2003 वर्ष की चालू कीमतें लेनी चाहिए।
जब चालू कीमतों के आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है तो इसको राष्ट्रीय आय का भौतिक रूप कहते है। चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय देश की वास्तविक प्रगति का सूचक नहीं होती क्योंकि कीमतें बढने पर वास्तविक उत्पादन में कोई वृद्धि हुए बिना भी राष्ट्रीय आय बढ़ जाती है और कीमतें कम होने पर वास्तविक उत्पादन मे कमी हुए बिना राष्ट्रीय आय कम हो जाती है।

(2) स्थिर कीमतों के आधार पर- स्थिर कीमतों से अभिप्राय किसी दिये गये मूल्य अथवा किसी दिये गये वर्ष की कीमतों से है, जैसे- उस समय भारत की राष्ट्रीय आय को 1993-94 की स्थिर कीमतों पर भी आँका जाता है।

स्थिर कीमतों का प्रयोग करने पर राष्ट्रीय आय वास्तविक कहलाती है तथा राष्ट्रीय आय में जो भी परिवर्तन होता है, वह उत्पादन में परिवर्तन के कारण होता है, कीमतों में परिवर्तन के कारण नहीं। इसलिए राष्ट्रीय आय में वास्तविक वृद्धि एवं कमी को जानने के लिए स्थिर कीमतों पर मापा जाना चाहिए।

इस प्रकार (1) स्थिर कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय आय किसी देश की एक वर्ष की शुद्ध राष्ट्रीय आय है जिसका अनुमान एक निश्चित वर्ष कहा जाता है। (2)इस आधार वर्ष की कीमतों को स्थिर कीमतें माना जाता है। (3) इन कीमतों के आधार पर किसी भी दूसरे वर्ष की राष्ट्रीय आय का अनुमान कीमत सूचकांक अथवा निर्देशांक की सहायता से लगाया जा सकता है। (4) सूचकांक अथवा निर्देशांक वह संख्या होती है जिसके द्वारा दो वर्षो की कीमत से होने वाले परिवर्तन को मापा जा सकता है। (5) स्थित कीमतों पर आय निकालने का सूत्र इस प्रकार है:

$$\text{स्थित कीमतों पर आय} = \frac{\text{चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय}}{\text{चालू वर्ष राष्ट्रीय निर्देशांक}} \times 100$$

उदाहरण1-यदि 1990 में राष्ट्रीय आय 100 करोड़ रूपये है तथा 2000 में प्रचलित कीमतों पर राष्ट्रीय आय 400 करोड़ रूपये है और इसी अवधि में कीमत निर्देशांक 100 से बढ़कर 200 हो जाता है तो स्थित कीमतों अर्थात् सन् 2000 की कीमतों पर राष्ट्रीय आय की गणना कीजिए:

सारणी 3

वर्ष	शुद्ध राष्ट्रीय आय	चालू कीमतों पर कीमत निर्देशांक	शुद्ध राष्ट्रीय आय स्थिर कीमतों पर
1990	100 करोड़ रूपये	100	100 करोड़ रूपये
2000	400 करोड़ रूपये	200	$\frac{400}{200} \times 100 = 200$

$$\text{स्थित कीमतों पर आय} = \frac{\text{चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय}}{\text{चालू वर्ष राष्ट्रीय निर्देशांक}} \times 100$$

वास्तविक राष्ट्रीय आय (वर्ष 2000) = $\frac{400}{200}$ x 100 =200

अर्थात 1990 से 2000 तक आय में कोई वास्तविक वृद्धि नहीं हुई है।

6.5 राष्ट्रीय आय की गणना में होने वाली कठिनाइयां

किसी देश की राष्ट्रीय आय की गणना करना काफी जटिल कार्य है। अधिकांश कठिनाइयां इस कारण उपस्थित होती है कि आय के सम्बन्ध में विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं होते। यदि आंकड़े उपलब्ध हो भी जाते है तो अधिकांश देशों मे ऐसी सांख्यिकी विधियां विकसित नहीं है कि राष्ट्रीय आय की सही गणना की जा सके। राष्ट्रीय आय की गणना में मुख्य रूप से निम्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

1. कुछ वस्तुओं और सेवाओं का मुद्रा में माप संभव नहीं होता-यद्यपि राष्ट्रीय आय की गणना मुद्रा में की जाती है। किन्तु कुछ वस्तुएं तथा सेवाएं ऐसी होती है जिनका माप मुद्रा में नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए, यदि एक चित्रकार शौक के लिए चित्र बनाता है तो वह राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं होता। यदि एक फर्म की सेक्रेटरी अपने मालिक से शादी कर लेती है तो फिर उसकी सेवाएं राष्ट्रीय आय मे नहीं गिनी जाती क्योंकि उनका मौद्रिक मूल्य नहीं होता।

2. दोहरी गणना की कठिनाई-यदि राष्ट्रीय आय की गणना करते समय, मध्यवर्ती तथा अंतिम उत्पादन में सही भेद नहीं किया गया तो आय की दोहरी गणना होने की आशंका रहती है जिससे राष्ट्रीय आय का वास्तविक से अधिक होने का अनुमान लगा लिया जाता है।

3. अपर्याप्त एवं अविश्वसनीय आंकड़े-विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित एवं पिछड़े देशों में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित आंकड़े उपलब्ध नहीं होते और यदि उपलब्ध होते भी है तो वे विश्वसनीय नहीं होते। अतः राष्ट्रीय आय का सही-सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

4. अर्थव्यवस्था में अमौद्रिक क्षेत्र-पिछड़े हुए देशों में काफी बड़ा क्षेत्र अमौद्रिक होता है जहां बिना मुद्रा प्रयोग के, वस्तु विनिमय होता है। जैसे कृषि क्षेत्र में अधिकांश सौदे बिना मुद्रा के किए जाते हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाना बहुत कठिन होता है।

5. कीमतों में होने वाले परिवर्तन के कारण कठिनाई-राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए मुद्रा के माप को महत्व दिया जाता है, किन्तु कीमतों में परिवर्तन के कारण राष्ट्रीय आय की सही गणना नहीं हो पाती। यदि कीमतों में वृद्धि होती है तो राष्ट्रीय आय अधिक रिकार्ड की जाती है, भले ही उत्पादन में गिरावट आई हो। यही कारण है कि इस समस्या को हल करने के लिए वास्तविक राष्ट्रीय आय की धारणा को विकसित किया गया है।

6. मूल्य-ह्रास की कठिनाई-शुद्ध राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए, कुल उत्पादन में से मूल्य- ह्रास को घटाया जाता है। किन्तु मूल्य- ह्रास (क्मचतमबपंजपवद) का अनुमन लगाना सरल नहीं होता।

यह इस बात पर निर्भर रहता है कि किसी मशीन का औसत-जीवन क्या है जिसका अनुमान लगाना कठिन कार्य है।

7. कुछ सार्वजनिक सेवाओं का सही आकलन नहीं हो पाता-राष्ट्रीय आय में कुछ ऐसी सार्वजनिक सेवाओं का भी समावेश किया जाता है जिनका सही-सही आकलन करना सभव नहीं होता। उदाहरण के लिए, मिलिट्री की सेवाएं, क्योंकि इनकी सेवाएं युद्ध के समय ही सक्रिय होती है, अतः उनकी सेवाओं का मौद्रिक अनुमान लगाना कठिन होता है।

8. गैर-कानूनी रूप से अर्जित आय को राष्ट्रीय आय में शामिल न किया जाना-राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाते समय केवल वैधानिक आर्थिक क्रियाओं का ही समावेश किया जाता है। किन्तु गैर-कानूनी रूप से संचालित आर्थिक क्रियाओं- जैसे चोरी छुपे शराब का उत्पादन एवं विक्रय, आदि का समावेश राष्ट्रीय आय में नहीं होता, अतः राष्ट्रीय आय वास्तविक रूप से न्यून आंकी जाती है।

9. स्टॉक मूल्यों में परिवर्तन से गणना में कठिनाई-उत्पादकों के पास माल का जो स्टॉक होता है, उसका समावेश भी राष्ट्रीय आय में होता है। किन्तु इस स्टॉक के मूल्यों में जो परिवर्तन होता है उसका समायोजन राष्ट्रीय आय की गणना में नहीं किया जाता, अतः राष्ट्रीय आय का अनुमान सही नहीं होता।

10. पूंजीगत लाभ या हानि को राष्ट्रीय आय में शामिल न किया जाना-उद्यमियों की परिसंपत्तियों व उनके मूल्य में परिवर्तन के कारण पूंजीगत लाभ या हानि होती है। किन्तु उन्हें राष्ट्रीय आय मं शामिल नहीं किया जाता क्योंकि इन्हें चालू आर्थिक क्रियाओं में शामिल नहीं किया जाता इस कारण राष्ट्रीय आय का सही-सही अनुमान लगाना संभव नहीं होता।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण राष्ट्रीय आय का अनुमान मात्र अनुमान ही रहता है, उसे शत-प्रतिशत सही एवं पूर्ण नहीं माना जा सकता।

6.6-राष्ट्रीय आय की गणना का महत्व

किसी देश की अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का बहुत महत्व है। यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आय किसी भी देश के आर्थिक विकास का मापक है। इसका महत्व निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

1. आर्थिक प्रगति का मापदण्ड-राष्ट्रीय आय का आर्थिक प्रगति का मापदण्ड माना जाता है किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जो प्रगति होती है, उसकी जानकारी राष्ट्रीय आय आय की गणना से ही प्राप्त होती है। आजकल उन्हीं देशों को विकसित माना जाता है जिनकी राष्ट्रीय आय अधिक है। प्रो. मिअर एवं बाल्डविन के शब्दों में, ''आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था में वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।''

2. आर्थिक नियोजन में महत्व-आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि एक देश की कल आय, उत्पादन, उपभोग एवं बचत के सम्बन्ध में आंकड़े उपलब्ध हों। ये आंकड़े राष्ट्रीय आय की गणना से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। आर्थिक नियोजन की विभिन्न उपयोजनाएं राष्ट्रीय आय के आधार पर ही तैयार किये जाते हैं।

3. आय वितरण की जानकारी-राष्ट्रीय आय के आंकड़ों से हमें देश में आय के वितरण की जानकारी प्राप्त होती है। राष्ट्रीय आय के अध्ययन से ही हमें मजदूरी, लगान, लाभ, ब्याज आदि मे वितरण के असमानता की जानकारी मिलती है। इसी से क्षेत्रीय असमानता की भी जानकारी मिलती है। इसके अध्ययन के आधार पर सरकार ऐसे उपाय अपना सकती है जिससे असमानता समाप्त की जा सके।

4. विभिन्न देशों की आर्थिक तुलना-राष्ट्रीय आय के आधार पर विभिन्न देशों के आर्थिक विकास का स्तर ज्ञात किया जाता है। इसी के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारत की तुलना में जापान अधिक विकसित देश है।

5. आर्थिक नीतियों में सहायक-राष्ट्रीय आय के आंकड़ों के आधार पर राष्ट्रीय नीतियों: जैसे रोजगार, विनियोग, आदि का निर्माण किया जा सकता है। राष्ट्रीय आय के आंकड़े ही हमें उस दिशा की जानकारी करते हैं जिसके अनुसार उत्पादन, बचत एवं विनियोग में परिवर्तन होता है तथा अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास में नीतियां बनाई जा सकती है।

6. शोध छात्रों के लिए महत्व-आर्थिक, सामाजिक एवं वाणिज्यिक विषयों को लेकर जो शोध कार्य किये जाते हैं, उनमें राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का बहुत महत्व होता है। इससे महत्वपूर्ण निष्कर्ष ज्ञात किए जाते हैं जो देश के लिए उपयोगी होते हैं।

अभ्यास प्रश्न:-

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) राष्ट्रीय आय को मापने की मुख्य विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

(2) राष्ट्रीय आय मापन की मूल्य वृद्धि विधि क्या है। संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

(3) व्यय विधि द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना से संबंधित सावधानियों का उल्लेख कीजिए।

(4) भारत में राष्ट्रीय आय की गणना के लिए किस विधि का प्रयोग किया जाता है, स्पष्ट कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न:-

(1) उत्पादन संगणना विधि के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है-

(अ) आरंभिक उत्पादन का योग (ब) मध्यवर्ती उत्पादन का योग

(स) अंतिम उत्पादन का योग (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(2) सामाजिक लेखा विधि का प्रतिपादन किया था-

(अ) फिशर (ब) मार्शल

(स) पीगू (द) रिचर्ड स्टोन

(3) दोहरी गणना की समस्या से बचने के लिए हम शामिल करतें हैं-

(अ) वस्तुओं का प्रारंभिक मूल्य (ब) वस्तुओं का मध्यवर्ती मूल्य

(स) वस्तुओं का अंतिम मूल्य (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

(4) राष्ट्रीय आय की गणना की रीतियाँ हैं-

(अ) बचत विनियोग एवं आय रीति (ब) उत्पादन घिसावट एवं आय रीति

(स) उत्पादन, बचत, विनियोग रीति (द) उत्पादन आय व्यय रीति

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताइये।

(1) राष्ट्रीय आय मापन की प्रमुख रूप से तीन विधियाँ हैं।

(2) भारत में राष्ट्रीय आय मापन के लिए मूल्य वृद्धि विधि का प्रयोग नहीं किया जाता है।

(3) उत्पादन संगणना एवं आय संगणना विधि को मिश्रित रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(4) राष्ट्रीय आय की आय-व्यय एवं उत्पादन तीनों विधियों द्वारा प्राप्त राष्ट्रीय आय का मूल्य भिन्न-भिन्न होता है।

6.7 सारांश

किसी देश के लिए राष्ट्रीय आय की माप करना बहुत महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय आय के मापन की मुख्य रूप से तीन विधियां प्रचलित है:-

1. उत्पादन विधि या मूल्य वृद्धि विधि 2. आय विधि तथा 3. व्यय विधि। राष्ट्रीय आय की तीनों विधियाँ राष्ट्रीय आय के तीन माप प्रदान करती है। तीनों विधियों द्वारा राष्ट्रीय आय का मूल्य एक समान ही आता है, किन्तु अलग-अलग उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अलग-अलग विधि का चयन करना उपयुक्त रहता है।

राष्ट्रीय आय की गणना काफी जटिल कार्य है, क्योंकि विश्वसनीय आंकड़ों के अभाव में, राष्ट्रीय आय की गणना त्रुटि युक्त हो जाती है। अतः गणना में विशेष सावधानी रखनी आवश्यक है।

किसी देश की अर्थव्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आंकड़े बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि राष्ट्रीय आय की माप करके कोई देश आर्थिक विकास सम्बन्धी नीतियों का निर्माण कर सकता है, साथ ही अन्य देशों की राष्ट्रीय आय से तुलना करके अपने आर्थिक विकास के स्तर की जानकारी प्राप्त कर सकता है। अतः वर्तमान समय में राष्ट्रीय आय की गणना करना प्रत्यक देश के लिए आवश्यक हो गया है।

6.8-शब्दावली-

मूल्य वृद्धिः उत्पादन की प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक फर्म द्वारा वस्तु के मूल्य में जोडा जाने वाला मूल्य।

दोहरी गणन: एक वस्तु के मूल्य की गणना जब एक बार से अधिक होती है तो इसे दोहरी गणना कहतें हैं।

परिचालन अधिशेष : सम्पत्ति तथा उद्यमशीलता से प्राप्त आय को जोMकर परिचालन अधिशेष ज्ञात किया जाता है। परिचालन अधिशेष में निम्न मदें शामिल की जाती हैं: (1) लगान या किराया रायल्टी (2)ब्याज तथा (3)लाभ(लाभांशनिगम करअवितरित लाभ)

लाभांश: शेयरधारियों में वितरित किये जाने वाले लाभ को लाभांश कहतें हैं।

मिश्रित आय: ऐसे व्यक्तियों की आय को सम्मिलित करतें हैं जो स्वयं का पेशा या धंधा करतें हैं। डाक्टर, वकील, किसान, इन्जीनियर की आय मिश्रित आय है।

6.9-अभ्यास प्रश्नो के उत्तरः-

लघु उत्तरीय प्रश्न- (1) उत्तर 6.3 में देखें ,(2) उत्तर 6.3.1 में देखें ,(3) उत्तर 6.3.3 में देखें , (4) उत्तर 6.3.4 में देखें

बहुविकल्पीय प्रश्नः-(1)-स, (2)-द, (3)-स, (4)-द

सत्य/असत्य कथन-(1)-सत्य, (2)-असत्य, (3)-सत्य, (4)-असत्य

6.10-उपयोगी/सहायक ग्रंथः-

1. ऐक्ले, जी0: मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एन0वाई0, मैकमिलन,1961

2- आहूजा, एच0एल0: एडवान्स मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली।

3- द्विवेदी, डी0एन0: मैक्रोइकोनामिक्स: थीयरि एण्ड पॉलिसी, टाटा एमसी ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।

4- लाल, एस0एन0: समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण (सिद्धान्त, समस्यायें तथा नीतियाँ) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।

5- शपीरो, एडवर्ड: मैक्रोइकोनामिक एनालिसिस, गलगोटिया पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

6.11 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1. राष्ट्रीय आय की परिभाषा दीजिए और उसे नापने की विधियाँ समझाइए।
2. राष्ट्रीय आय की गणना में जो समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ आती है, उनकी विवेचना कीजिए।
3. राष्ट्रीय आय का अर्थव्यवस्था में क्या महत्व है तथा उसके मापने के लिए कौन-सी विधियाँ अपनायी जाती है?

इकाई 7 राष्ट्रीय आय का सामाजिक लेखांकन एवं कल्याण

इकाई संरचना

7.1-प्रस्तावना
7.2-अध्ययन का उद्देश्य
7.3-राष्ट्रीय आय लेखांकन क्या है?
7.4-राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय आय लेखा में अन्तर
7.5-राष्ट्रीय आय लेखांकन तथा संख्यिकी में भेद
7.6-राष्ट्रीय आय लेखांकन की धारणा का विकास
7.7-भारत में राष्ट्रीय लेखा प्रणाली का विकास
7.8-राष्ट्रीय आय लेखे का वर्गीकरण
7.9-उदाहरण द्वारा सामाजिक लेखों अथवा राष्ट्रीय आय लेखांकन का प्रस्तुतीकरण
7.10-राष्ट्रीय आय लेखे का महत्व
7.11-राष्ट्रीय आय लेखे की कठिनाइयाँ
7.12-राष्ट्रीय आय व आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध
7.13-आर्थिक कल्याण क्या है?
7.14- राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण
7.15-आर्थिक कल्याण का सर्वश्रेष्ठ मापक क्या है?
7.16-सारांश
7.17-शब्दावली
7.18-अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.19-उपयोगी पुस्तकें/सहायक ग्रंथ
7.20-निबन्धात्मक प्रश्न

7.1-प्रस्तावना

किसी देश की राष्ट्रीय आय उसकी आर्थिक स्थिति का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है। एक देश के आर्थिक विकास को राष्ट्रीय आय के माध्यम से ही मापा जाता है। राष्ट्रीय आय लेखांकन या सामाजिक लेखांकन के अन्तर्गत किसी देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य अन्तर सम्बन्ध व्यक्त किया जाता है, जिससे देश की आर्थिक स्थिति को अच्छी तरह समझा जा सके। देश के आर्थिक कल्याण पर राष्ट्रीय आय का प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया राष्ट्रीय आय बढ़ने पर आर्थिक कल्याण भी बढ़ता है।

7.2 अध्ययन का उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

1. राष्ट्रीय आय लेखांकन को जान सकेंगे।

2. भारत में राष्ट्रीय लेखा प्रणाली के विकास से परिचित होंगे।

3. राष्ट्रीय आय लेखे का वर्गीकरण कर सकेंगे।

4. राष्ट्रीय आय लेखे के महत्व एवं गणना सम्बन्धी समस्याओं को समझ सकेंगे।

7.3-राष्ट्रीय आय लेखांकन क्या है?

राष्ट्रीय आय लेखा अथवा लेखांकन को सामाजिक लेखा एवं राजनैतिक अंकगणित भी कहा जाता है। राष्ट्रीय आय लेखा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का अन्तर-सम्बन्ध व्यक्त करने वाली एक संख्यिकीय विधि है ताकि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति को अच्छी तरह समझा जा सके। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि राष्ट्रीय आय देश के आर्थिक ढांचे के अध्ययन की विधि है। यहां हम राष्ट्रीय आय लेखा की कुछ प्रमुख परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे:

ऐडे, पीकाक एवं कापर:- के शब्दों में, '' राष्ट्रीय आय लेखा का सम्बन्ध मनुष्य की क्रियाओं एवं संस्थाओं के सांख्यिकीय वर्गीकरण से इस प्रकार रहता है जिससे हमें पूरी आर्थिक प्रणाली को समझने में सहायता मिलती है।''

फ्रेंक जान:- के अनुसार '' राष्ट्रीय आय लेखांकन वह विधि है जिसकी सहायता से सामूहिक आर्थिक क्रियाओं को समझा एवं मापा जाता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं में एक बात ध्यान देने योग्य है कि राष्ट्रीय आय लेखा में केवल आर्थिक क्रियाओं का वर्गीकरण ही शामिल नहीं होता वरन् आर्थिक प्रणाली में इनके व्यावहारिक प्रयोग का भी अध्ययन किया जाता है।

एक उपयुक्त परिभाषा - उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर राष्ट्रीय आय लेखांकन की एक अच्छी परिभाषा दी जा सकती है-

'' राष्ट्रीय आय लेखांकन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की आर्थिक क्रियाओं और उनके पारस्परिक सम्बन्धों की सांख्यिकीय व्याख्या प्रस्तुत करता है एवं साथ ही विश्लेषण का ढंाचा भी प्रदान करता है।''

7.4-राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय आय लेखा में अन्तर

राष्ट्रीय आय	राष्ट्रीय आय लेखा
1. राष्ट्रीय आय एक वर्ष के दौरान एक देश में कुल अंतिम वस्तुओं व सेवाओं के मौद्रिक मूल्य का माप है।	1. राष्ट्रीय आय लेखा राष्ट्रीय आय के बारे में सांख्यिकीय कथन और तालिकाएँ है।
2. राष्ट्रीय आय एक देश की समृद्धि का सूचक है।	2. राष्ट्रीय आय लेखे विभिन्न क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था के कार्य निष्पादन को बताते हैं।
3.राष्ट्रीय आय एक अर्थव्यवस्था की वर्तमान उपलब्धि को मापती है। यह विभिन्न क्षेत्रों के मूल सम्बन्धों की उपेक्षा कर देती है।	3. राष्ट्रीय आय लेखे एक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच पाये जाने वाले अंतर्सम्बन्धों को बताते हैं, और उनका विश्लेषण करते हैं।

7.5-राष्ट्रीय आय लेखांकन तथा संख्यिकी में भेद

राष्ट्रीय आय लेखांकन की व्याख्या करते समय सांख्यिकीय वर्गीकरण का प्रयोग किया जाता है। इससे यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि ये दोनों एक ही हैं। वास्तव मे, दोनों में भेद है। सांख्यिकी तो एक विज्ञान है जो उन समंको के संग्रहण, प्रस्तुतीकरण एवं विश्लेषण से सम्बन्धित है जो संख्यात्मक रूप में मापे जा सकते हैं। यद्यपि राष्ट्रीय आय लेखांकन के विश्लेषण में सांख्यिकी का

बहुलता से प्रयोग होता है, किन्तु सांख्यिकी से हम आर्थिक चरों के अन्तर्सम्बन्ध को ज्ञात नहीं कर सकते जबकि राष्ट्रीय लेखांकन हमें इसकी जानकारी देता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय आय और जनसंख्या में क्या सम्बन्ध है, यह हम राष्ट्रीय आय लेखांकन से जान सकते हैं।

7.6-राष्ट्रीय आय लेखांकन की धारणा का विकास

यद्यपि राष्ट्रीय आय की गणना की धारणा काफी पुरानी है, किन्तु राष्ट्रीय आय लेखांकन का विचार आधुनिक काल में ही विकसित हुआ है। इसे विकसित हुआ है। इसे विकसित करने का प्रमुख श्रेय 1936 में प्रकाशित प्रो0 जे0 एम0 केन्स की पुस्तक 'General Theory of Employment, Interest & Money' आर्थिक विकास की योजनाओं के मॉडल एवं द्वितीय विश्वयुद्ध की आर्थिक परिस्थितियों को है। प्रो0 केन्स ने अपने रोजगार सिद्धान्त के विश्लेषण में राष्ट्रीय आय और उसके घटकों का विश्लेषण किया है। अन्य जिन अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय आय लेखांकन को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है उनमें प्रमुख हैं साइमन कुजनेट्स, लियोन्टीफ, रिचर्ड स्टोन, इत्यादि। संयुक्त राष्ट्र संघ के सांख्यिकी विभाग की भी राष्ट्रीय आय लेखांकन को विकसित करने में उल्लेखनीय भूमिका है।

7.7-भारत में राष्ट्रीय लेखा प्रणाली का विकास

यद्यपि हमारे देश में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भी राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय का अनुमान लगाने की दिशा में अनेक प्रयास किये गये थे परन्तु इस दिशा में सरकारी स्तर पर विधिवत प्रयास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात ही शुरू हो पाये। 1949 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय आय समिति का गठन किया।

1950 में सरकार ने राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण निदेशालय का गठन किया। इस निदेशालय को राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में सम्बन्धित आँकडे एकत्र करने का कार्य सौंपा गया। एक केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन की भी स्थापना की गयी। यह संगठन प्रतिवर्ष ' राष्ट्रीय आय को श्वेत पत्र' प्रकाशित कर रहा है जिसे राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी के नाम से जाना जाता है।

7.8-राष्ट्रीय आय लेखे का वर्गीकरण

राष्ट्रीय आय लेखांकन अर्थव्यवस्था को निम्नलिखित क्षेत्रों में वर्गीकृत करते हैं:-

1. उत्पादन क्षेत्र . इसमें उन सभी व्यक्तियों और संस्थाओं को शामिल किया जाता है जो कि जो कि उत्पादन की क्रियाओं में संलग्न होते हैं। इसको 'फर्म-क्षेत्र' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। यह क्षेत्र गृहस्थों से साधन-सेवाएँ प्राप्त करता है तथा वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करता है। इस क्षेत्र का प्रमुख कार्य उत्पादन करना है।

2. परिवार क्षेत्र लेखा. गृहस्थ या परिवार क्षेत्र वह क्षेत्र है जो उत्पादन के साधनों अर्थात् भूमि, पूँजी, ऋण तथा उद्यम की सेवाएँ बेचता है। इसके फलस्वरूप लगान, ब्याज, मजदूरी तथा लाभ के रूप में क्रमशः जो आय होती है, उसका प्रयोग करके यह क्षेत्र उत्पादक क्षेत्र से वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदता है।

3. सरकारी क्षेत्र लेखा . सरकारी क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसमें सरकार के द्वारा किये गये क्रय-विक्रय को शामिल किया जाता है। सरकारी क्षेत्र उपभोग तथा उत्पादन दोनों कार्य करता है। सरकार क्षेत्र जब अर्थव्यवस्था के सामूहिक उपभोग के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य,आंतरिक तथा बाहरी सुरक्षा आदि प्रदान करने के लिए साधनों की सेवाओं को खरीदता है तो यह उत्पाद क्षेत्र कहलाता हे।

4. शेष विश्व क्षेत्र लेखा. शेष विश्व क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसमें दूसरे देशों के साथ किये गये सौदों को शामिल किया जाता है। इस क्षेत्र में विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय तथा विदेशों को किये जाने वाले निर्यात और विदेशों से किये जाने वाले आयात से सम्बन्धित सौदों को शामिल किया जाता है।

5. पूँजी क्षेत्र लेखा . पूँजी क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसमें सभी क्षेत्रों से प्राप्त बचत तथा सभी क्षेत्रों में किये गये निवेशों को शामिल किया जाता है। पूँजी क्षेत्र लेखे में परिवार उत्पादक तथा सरकारी क्षेत्र की बचतों तथा घरेलू निवेश और विदेशी निवेश को शामिल किया जाता है। इनकी व्याख्या इस प्रकार है:-

1. उत्पादन लेखा - उत्पादन लेखा का सम्बन्ध व्यापार क्षेत्र से है तथा इसमें समस्त उत्पादन क्रियाओं का समावेश होता है जैसे विनिर्माण एवं व्यापार इत्यादि। चूंकि इस क्षेत्र मे समग्र उत्पादन होता है, इस क्षेत्र के द्वारा अन्य क्षेत्रों को भुगतान किया जाता है। उत्पादन लेखा अग्र तालिका में स्पष्ट किया गया है:-

(करोड़ रूपये में)

भुगतान प्राप्ति	**प्राप्ति**
1. वैयक्तिक क्षेत्र के भुगतान (मजदूरी इत्यादि) 290	5. उपभोग व्यय 230
2. सरकार को भुगतान 15	6. सरकारी खरीद 30
3. व्यापार बचत 12	7. कुछ निजी घरेलू विनियोग 42
4. वस्तुओं और सेवाओं का आयात 12	8. वस्तु और सेवाओं का निर्यात 27
समग्र राष्ट्रीय आय 329	**कुछ राष्ट्रीय व्यय 329**

उपरोक्त तालिका में वैयक्तिक क्षेत्र को भुगतान से आशय लगान, मजदूरी, लाभांश, आदि के भुगतान से है। सरकार को भुगतान का अर्थ वास्तविक कर भुगतान से है। व्यापारिक बचत का अर्थ उत्पादन की उस बचत से है जिसका भुगतान नहीं किया जाता।

प्राप्ति पक्ष में उपभोग व्यय का तात्पर्य उस आय से है जो वैयक्तिक क्षेत्र द्वारा, उत्पादक वर्ग के वस्तुओं और सेवाओं के लिए भुगतान की जाती है। कुल निजी घरेलू विनियोग का आशय पूंजीगत

वस्तुओं के प्रवाह से है। शेष विश्व को माल के निर्यात से जो आय प्राप्त होती है, उसका सम्बन्ध निर्यात आय से है।

2. उपभोग लेखा :- उपभोग लेखा का अर्थ पारिवारिक क्षेत्र के आय-व्यय लेखे से है। इसे निम्न तालिका में व्यक्त किया गया है:

(करोड़ रूपये में)

भुगतान		**प्राप्तियाँ**	
1. उपभोग व्यय	230	5. व्यापार क्षेत्र से प्राप्ति	290
2. सरकार को भुगतान	50	6. सरकार से प्राप्ति	15
3. व्यक्तिगत बचत	12		
4. विदेशियों का हस्तान्तरण	08		
व्यक्तिगतआय	**305**	**वैयक्तिक आय**	**305**

उपरोक्त तालिका में मुख्य व्यय है जिसका भुगतान व्यापार क्षेत्र को किया जाता है। सरकार को भुगतान में करों का समावेश होता है। विदेशियों को हस्तान्तरण में विदेशी प्रतिभूतियों में विनियोग शामिल किया जाता है। प्राप्ति मद में वह राशि है जो मजदूरी, लाभांश, ब्याज, आदि के रूप में प्राप्त होती है। सरकार से प्राप्त होने वाले ब्याज को सरकार से प्राप्ति में शामिल किया गया है।

4. **सरकारी लेखा:-** सररकारी क्षेत्र को प्राप्त होने वाली आय एवं सरकार द्वारा किये जाने वाले भुगतान सरकारी लेखा में शामिल होते हैं। इसे निम्न तालिका में व्यक्त किया गया है:

(करोड़ रूपये में)

भुगतान		**प्राप्तियाँ**	
1. व्यापार क्षेत्र से भुगतान	30	5. व्यापार क्षेत्र से प्राप्ति	15
2. उपभोग क्षेत्र (व्यक्तियों) को भुगतान	15	6. व्यक्तियों से प्राप्ति	50
3. सरकारी आधिक्य	15		
4. विदेशियों का भुगतान	05		
सरकारी परिव्यय एवं आधिक्य	65	सरकारी प्राप्त	65

इस तालिका में यह उल्लेखनीय है कि इसमें सार्वजनिक उद्योगों को शामिल नहीं किया गया है क्योंकि उन्हें तालिका 1 में उत्पादन लेखा में शामिल कर लिया गया है। इसमें सरकार द्वारा क्रय की राशि को व्यापार क्षेत्र को भुगतान दिखाया गया है।

4. पूंजी खाता :- इस खाते में यह दिखाया गया है कि बचत, घरेलू और विदेशी विनियोग के बराबर होती है। इसे निम्न तालिका में दिखाया गया है:

(करोड़ रूपये में)

भुगतान		**प्राप्तियाँ**	
1. कुछ निजी घरेलू विनियोग	42	3. व्यापार बचत	12
2. वास्तविक विदेशी विनियोग	02	4. व्यक्तिगत बचत	17
		5. सरकारी आधिक्य	15
कुलविनियोग	44	कुल बचत	44

5. विदेशी खाता :- इस खाते में एक देश के शेष विश्व के साथ लेन-देन को दिखाया जाता है। इसमें आयात-निर्यात के अतिरिक्त चालू खाते के हस्तान्तर भुगतान को भी दिखाया जाता है जा निम्न तालिका से स्पष्ट है-

(करोड़ रूपये में)

भुगतान		**प्राप्तियाँ**	
1.वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात	27	2. वस्तुओं और सेवाओं का आयात	12
		3. व्यक्तियों द्वारा विदेशियों को भुगतान	08
		4. सरकार द्वारा विदेशियों को भुगतान	05
		5. निबल विदेशी विनियोग	2
विदेशियों से निबल प्राप्ति	**27**	**सरकारी प्राप्त**	**27**

उपरोक्त तालिका में निर्यातों को भुगतान मद में दर्शाया गया है तथा आयातों को प्राप्ति मद में। इसका कारण यह है कि निर्यातों से जो आय देश के लोगों को प्राप्त होती है, उसे आयात के लिए भुगतान कर दिया जाता है इसके साथ ही व्यक्तियों एवं सरकार द्वारा विदेशियों को हस्तान्तरण भुगतान भी किया जाता है।

ऊपर जिन पांच लेखों का विवेचन किया गया है, उनका सम्बन्ध अर्थव्यवस्था में होने वाले प्रवाहों से है। यदि ध्यान से देखा जाय तो इन लेखों के मद एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं जो आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। इन लेखों को कार्यात्मक लेखा भी कहते हैं क्योंकि ये सम्बन्धित कार्य पर आधारित हैं।

7.9 उदाहरण द्वारा सामाजिक लेखों का प्रस्तुतीकरण

हम एक उदाहरण लेकर सामाजिक लेखों के प्रस्तुतीकरण को स्पष्ट करेंगे।

उदाहरण के लिए मान लिजिए, एक अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनाएँ उपलब्ध हैं -

1.	सरकार की वस्तुओं व सेवाओं की बिक्री	060
2.	गृहस्थों को वस्तुओं व सेवाओं की बिक्री	240
3.	कर्मचारियों को पारिश्रमिक	300
4.	सकल घरेलू विनियोग	045
5.	अप्रत्यक्ष कर	045
6.	निगम कर	015
7.	निर्यात	060
8.	आयात	030
9.	सरकार द्वारा हस्तान्तरण भुगतान	015
10.	गृहस्थों पर प्रत्यक्ष कर	024

उपर्युक्त सूचनाओं के आधार पर हम अर्थव्यवस्था के सामाजिक लेखा को व्यूह के रूप में प्रस्तुत करेंगे। नीचे सारणी में अर्थव्यवस्था के 5 क्षेत्रों में रहने वाले व्यवहारों को दर्शाया गया है। सारणी देखने से स्पष्ट होता है कि एक क्षेत्र का भुगतान दूसरे क्षेत्र की प्राप्ति होती है और व्यूह के दोनों छोरों पर दिये गये जोड़ों का मूल्य बराबर है।

अर्थव्यवस्था का सामाजिक लेखा **(रूपयों में)**

द्वारा भुगतान → द्वारा प्राप्तियाँ ↓	फर्म (1)	गृहस्थ (2)	सरकार (3)	शेष विश्व (4)	पूँजी (5)	जोड़	सकल
i. फर्म	.....	240	60	60-30	45	375	राष्ट्रीय व्यय
ii. गृहस्थ	300	.....	15	.....	.....	315	वैयक्तिक आय
iii. सरकार	15+45	24	.....	.....	.....	84	सरकार की आय
iv. शेष विश्व	.....	.....	.....	.....	30	30	शेष विश्व से
v. पूँजी	15	51	9	.....	.....	75	सकलघरेलू आय
जोड़	375	315	84	30	75	879	कुल जोड़
	↑बाजार कीमत पर (GNP)	↑गृहस्थों का व्यय तथा बचत	↑सरकारी व्यय तथा बचत	↑चालू खाता	सकल घरेलू पूँजी निर्माण →		

उपर्युक्त सामाजिक लेखे की सहायता से राष्ट्रीय आय की व्यूह की सहायता से सकल राष्ट्रीय उत्पाद और सकल राष्ट्रीय व्यय दोनों ही ज्ञात किये जा सकते हैं।

(अ) सकल राष्ट्रीय उत्पाद - व्यूह की सहायता से सकल राष्ट्रीय उतपाद की गणना बाजार कीमतों के अनुसार तथा साधन लागत के अनुसार कर सकते हैं।

बाजार कीमतों के अनुसार सकल राष्ट्रीय उत्पाद के मूल्य को मालूम करने के लिए फर्म के खाना (1) की प्रविष्टियों का योग मालूम करते हैं जो कि उपर्युक्त व्यूह में 300 रू. + 15 रू. + 45 रू + 15 रू. = 375 रू. होगा।

यदि बाजार कीमतो के अनुसार सकल राष्ट्रीय उत्पाद के मूल्य 375 रू. में से परोक्ष करों की राशि को घटा दिया जाय तो हमें साधन के अनुसार सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होगा जो कि 375-45 = 330 रू. है।

(ब) सकल राष्ट्रीय व्यय- व्यूह में सकल राष्ट्रीय व्यय को मालूम करने के लिए हमको पंक्ति (1) में दी गयी प्रविष्टियों के मूल्य का योग करना होगा। ये प्रविष्टियाँ गृहस्थ, सरकार तथा शेष विश्व द्वारा वस्तुओं के उपभोग व्यय तथा विनियोग व्यय को व्यक्त करती हैं। उपर्युक्त व्यूह में इन प्रविष्टियों का मूल्य क्रमशः 240 रू. + 60 रू. + 30 रू. + 45 रू. =375 रू. है। अतः सकल राष्ट्रीय व्यय 375 रू. है।

उपर्युक्त सारणी के सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध में भी जानकारी उपलब्ध होती है, जैसे-

(अ) यदि गृहस्थ के खाना (2) का जोड़ प्राप्त किया जाय तो यह गृहस्थ क्षेत्र के व्यय और बचत के सम्बन्ध में जानकारी देगा जो कि सारणी में 315 रू. है। गृहस्थ की पंक्ति (1) का प्रविष्टियों का यदि क्षैतिज योग करें तो हमें व्यक्तिगत आय प्राप्त होगी जो कि 315 रू. है।

(ब) सरकार के खाने (3) का योग सरकार के व्यय और बचत की सूचना देता है और सरकार की पंक्ति (3) की प्रविष्टियों का क्षैतिज जोड़ सरकार की आय को प्रदर्शित करता है। सारणी में सरकार की आय व्यय एवं बचत की मात्रा बराबर है।

(स) शेष विश्व के खाने (4) की प्रविष्टियों का योग 30 रू. है जो कि चालू खाते में निर्यात और आयात के अन्तर को व्यक्त करते हैं। शेष विश्व पंक्ति (4) की प्रविष्टियाँ शेष विश्व क्षेत्र में किये गये विनियोग के परिणामास्वरूप पूँजी दावों के मूल्य को व्यक्त करती हैं जो 30 रू है।

(द) पूँजी के खाना (5) की प्रविष्टियों का योग 75 रू. है जो कि सकल घरेलू पूँजी निर्माण को बताती है। पूँजी की पंक्ति (5) की प्रविष्टियाँ, गृहस्थ, फर्म तथा सरकार की बचतों अर्थात् सकल घरेलू बचतों को व्यक्त करती हैं।

(य) सारणी के दायीं ओर अन्तिम छोर पर विभिन्न क्षेत्रों की आय का जोड़ सारणी के निचले छोर पर विभिन्न क्षेत्रों की आय के जोड़ के बराबर है। सारणी में जो कुल जोड़ का मूल्य 879 रू. अंकित किया गया है, उसका राष्ट्रीय लेखा की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है।

7.10-राष्ट्रीय आय लेखा का महत्व

राष्ट्रीय आय लेखा के निम्नलिखित महत्व हैं-

1. देश के आर्थिक ढाँचे की जानकारी:- राष्ट्रीय आय लेखा से हमें राष्ट्रीय आय की जानकारी के साथ ही उत्पादन, उपभोग, बचत, कर ढाँचा, आदि की भी जानकारी प्राप्त होती है।

2. विभिन्न क्षेत्रों के महत्व का ज्ञान :- राष्ट्रीय आय लेखा लेखांकन से हमें ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था में विभिन्न् क्षेत्रों का क्या महत्व है तथा राष्ट्रीय आय में किस क्षेत्र का कितना योगदान है।

3. लेन-देन की जानकारी:- अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं के विभिन्न क्षेत्र होते हैं, जिसमें आपस में लेन-देन होता है, जिसका सम्बन्ध क्रय-विक्रय, आयात- निर्यात, आदि से होता है। राष्ट्रीय आय लेखांकन की सहायता से न केवल हम लेन-देनों को उचित रूप से विभाजित कर सकते हैं वरन् इनसे राष्ट्रीय आय, बचत, विनियोग, आदि के बारे में निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं।

4. राष्ट्रीय आय के वितरण का ज्ञान:- राष्ट्रीय आय लेखांकन से हमें भी जानकारी मिलती है कि विभिन्न वर्गों के बीच राष्ट्रीय आय का वितरण किस प्रकार होता है।

5. जीवन स्तर का प्रतिबिम्ब:- स्थिर मूल्यों पर यदि हम प्रति व्यक्ति आय की जानकारी प्राप्त करें तो हमें जीवन स्तर में होने वाले परिवर्तन का ज्ञान हो सकता है। इसी प्रकार हम उत्पादकता स्तर के परिवर्तनों को भी जान सकते हैं।

6. राष्ट्रीय आय के आधारभूत तथ्यों की जानकारी:- राष्ट्रीय आय लेखांकन से हमें राष्ट्रीय आय के कुछ आधारभूत तथ्यों की जानकारी मिलती है जो आपस में सम्बन्धित होते हैं, जैसे साधन-लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (N.N.P. at Factor Cost) एवं बाजार कीमत पर समग्र राष्ट्रीय उत्पाद (G.N.P. at Market Price)

7. अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महत्व:- यदि विभिन्न देशों के राष्ट्रीय आय लेखांकन की तुलना की जाय तो उसके आधार पर हम विभिन्न देशों को विकसित, विकासशील एवं पिछड़े देशों की श्रेणी में रख सकते हैं। इसी आधार पर इन देशों को अन्तराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा सहायता दी जाती है।

8. सरकारी नीतियों का मूल्यांकन:- राष्ट्रीय आय लेखांकन की सहायता से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर सरकारी नीतियों के प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है एवं नई नीतियों का निर्माण किया जा सकता है।

9. अनुसंधानकर्ताओं के लिए पथ प्रदर्शक:- राष्ट्रीय आय लेखांकन की सहायता से अनुसंधानकर्ताओं को अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित करने में मदद मिलती है जिनका सम्बन्ध समग्र राष्ट्रीय उत्पादन, उपभोग व्यय एवं सरकारी व्यय से हो सकता है।

10. श्रम संघों को उपयोगिता:- श्रम संघों के लिए भी राष्ट्रीय आय लेखांकन उपयोगी है क्योंकि इससे उन्हें ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय आय में उनका क्या योगदान है तथा प्रतिफल के रूप में उन्हें कितना अंश प्राप्त हो रहा है।

11. उद्यमियों को उपयोगी:- राष्ट्रीय आय लेखांकन से विभिन्न क्षेत्रों की जो जानकारी मिलती है, उसके आधार पर व्यापारी एवं उत्पादक अपनी स्थिति का मूल्यांकन कर उसमें सुधार कर सकते हैं।

इस प्रकार राष्ट्रीय आय लेखांकन अर्थव्यवस्था के व्यवहार को जानने के लिए एक आधार का कार्य करता है तथा इसकी सहायता से आर्थिक सहायता से आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायता मिलती है।

7.11-राष्ट्रीय आय लेखांकन की कठिनाइयां

1. दोहरी गणना की समस्या:- राष्ट्रीय आय लेखांकन में सबसे बड़ी समस्या दोहरी गणना की है जो अन्तिम एवं मध्यवर्ती वस्तुओं में सही अन्तर न कर पाने के कारण पैदा होती है। उदाहरण के लिए, गेहूं का आटा परिवार के लिए अन्तिम उत्पाद एवं बेकरी के लिए मध्यवर्ती उत्पाद है। यदि इसे अन्तिम उत्पादन मानकर गणना की जाय तो निष्कर्ष गलत निकलेंगे।

2. मौद्रिक माप की कठिनाई:- जिन वस्तुओं एवं सेवाओं का माप मुद्रा में किया जा सकता है, उन्हें राष्ट्रीय आय लेखांकन में शामिल किया जा सकता है, किन्तु कुछ ऐसी वस्तुएं एवं सेवाएं है जिनका मौद्रिक माप सम्भव नहीं है जैसे एक गृहिणी की घरेलू सेवाएं, घर के बगीचे में पैदा की गई सब्जियां, इत्यादि। इनसे आय लेखांकन में कठिनाई होती है।

3. लोक सेवाओं की कठिनाई:- कुछ सेवाएं ऐसी होती हैं जिनका उत्पादन में कोई प्रत्यक्ष हाथ नहीं दिखता। अतः राष्ट्रीय आय लेखांकन में उनके शामिल किये जाने में कठिनाई होती है जैसे मिलिटरी एवं स्वास्थ्य सेवाएं। इनका मौद्रिक माप सम्भव नहीं हो पाता।

4. घिसावट के माप की कठिनाई:- उत्पादन के क्षेत्र में कुछ मशीनों की अवधि दीर्घकाल की होती है तथा उनमें प्रतिवर्ष कुछ न कुछ घिसावट होती है, किन्तु इसका मौद्रिक माप काफी कठिन होती है, किन्तु इसका मौद्रिक माप काफी कठिन होता है। पूंजीगत वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन से यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

5.लेखों की अपूर्णता:- राष्ट्रीय आय लेखांकन में कुछ लेखे अपूर्ण रह जाने के कारण उनसे अर्थव्यवस्था की सही जानकारी नहीं मिलती। इन अपूर्ण लेखों के कुछ उदाहरण हैं- पुराने क्रय-विक्रय से उत्पन्न भुगतान, पूंजी का हस्तान्तरण एवं विदेशों से प्राप्त उपहार, अनुदान, इत्यादि।

7.12-राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण

साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि लोगों का कल्याण उनके उपभोग स्तर पर निर्भर करता है। अतः यह कहा जाता है कि जैसे-जैसे राष्ट्रीय आय बढ़ती जाती है, लोगों का उपभोग भी बढ़ता जाता है और उनके कल्याण में वृद्धि होती जाती है परन्तु राष्टीय आय तथा आर्थिक कल्याण में इतना सरल सम्बन्ध नहीं है। इनके सम्बन्ध की वास्तविक प्रकृति का अध्ययन करने के लिए हम इनकी विस्तृत विवेचना करेंगे।

7.13-आर्थिक कल्याण क्या है?

प्रो0 पीगू के ने मुद्रा को एक आधार के रूप में स्वीकार करके कुल कल्याण को दो भागों में बाँटा है-

(अ) आर्थिक कल्याण

(ब) अनार्थिक कल्याण।

पीगू के अनुसार, '' आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का वह भाग है जिसकी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मुद्रा के रूप में माप की जा सकती है।'' अतः सामाजिक कल्याण के केवल एक भाग को आर्थिक कल्याण कहा जाता है। यह वह भाग है जिसे किसी न किसी रूप में मुद्रा से सम्बन्धित किया जा सकता है। सामाजिक कल्याण के बाकी भाग को, जिसे मुद्रा द्वारा नहीं मापा जा सकता, गैर-आर्थिक कल्याण कहा जाता है परन्तु बहुत-सी परिस्थितियों में यह बताना कठिन हो जाता है कि कौन सा कल्याण आर्थिक है और कौन-सा अनार्थिक।

7.14-राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण

राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का अध्ययन हम निम्नलिखित अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोणों का अध्ययन व विश्लेषण करके करेंगे।

1. पीगू का दृष्टिकोण,

2. कीन्स का दृष्टिकोण

3. प्रो0 सैम्युअलसन का दृष्टिकोण

4. नोढास एवं टोबिन का दृष्टिकोण

5. ओवरसीज विकास परिश द् संस्था का निर्देशांक।

1. पीगू का दष्टिकोण:- प्रो0 पीगू ने अपनी पुस्तक इकोनामिक वेलफेयर में राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण के बीच सम्बन्धों का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के आधार किया है:

(अ) राष्ट्रीय आय के परिमाण में परिवर्तन तथा आर्थिक कल्याण,

(ब) राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन तथा आर्थिक कल्याण,

(स) राष्ट्रीय आय का स्थायित्व और आर्थिक कल्याण।

(अ) राष्ट्रीय आय के परिमाण में परिवर्तन तथा आर्थिक कल्याण:- सामान्यतः 'राष्ट्रीय आय के परिमाण में परिवर्तन' तथा आर्थिक कल्याण में सीधा सम्बन्ध होता है अर्थात् कुल राष्ट्रीय उत्पाद में जब वृद्धि होती है तो इसका आशय होता है कि देश के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो रही है।

प्रो0 पीगू का मत है कि ''यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से आर्थिक कल्याण में भी सदैव वृद्धि होती हो। वह बढ़ने के स्थान पर घट भी सकता है अर्थात् इसके कुछ अपवाद भी हसे सकते हैं।'' जिन कारणों से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होती वे कारण निम्नलिखित हैं

i. **गरीबों का अंश**:- आर्थिक कल्याण में वृद्धि तभी होगी, जबकि राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि के साथ निर्धनों को प्राप्त होने वाली आय में कमी न हो।

ii. **रूचियों में अच्छा परिवर्तन:-** आय की दृष्टि के फलस्वरूप उपभोग में (और इस प्रकार रूचियों में) परिवर्तन अच्छाई की ओर होना चाहिए, तभी आर्थिक कल्याण बढ़ेगा अन्यथा नहीं। उदाहरणार्थ, यदि लोग अपनी बढ़ी आय को मादक पदार्थें के उपभोग, जुए आदि पर व्यय करने लगते हैं ता आर्थिक कल्याण घटेगा।

iii. **उत्पादन करने का ढंग:-** यदि किसी समय राष्ट्रीय आय में वृद्धि शासन तथा उत्पादन कला में सुधार एवं आविष्कार के कारण हुई है तो देश के आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होती है। इसके विपरित, यदि कार्य के घण्टे बढ़ाकर स्त्री तथा बच्चों को काम पर नियुक्त करके तथा अस्वास्थ्यकर वातावरण में काम करके राष्ट्रीय आय में वृद्धि की गई है तो इससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हुई है क्योंकि यहाँ आय की उत्पादन करने में जिस संतोश का त्याग करना पड़ा है, वह उस संतोश से अधिक है जो राष्ट्रीय आय का उपयोग करने से प्राप्त होता है।

iv. **उत्पादन की रचना:-** आर्थिक कल्याण में वृद्धि उसी दशा में सम्भव है, जबकि देश की प्रति व्यक्ति आय अधिक हो और देश की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि उसी दशा में सम्भ्व है, जबकि जनसंख्या स्थिर रहे या उसमें वृद्धि राष्ट्रीय आय के अनुपात में कमी हो।

v. **प्राकृतिक स्त्रोतों का उचित उपयोग:-** राष्ट्रीय आय के निर्माण में प्रकृतिक स्त्रोतों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जब किसी देश में प्राकृतिक स्त्रोतों का प्रयोग मितव्ययिता तथा कुशलता से होता है तो इससे समाज का आर्थिक कल्याण बढ़ता है। इसके विपरीत, यदि इन प्राकृतिक स्त्रोतों का उपयोग अकुशलता तथा अमितव्ययिता के साथ होता है तो समाज के आर्थिक कल्याण में कमी होती है।

vi. **कीमतो में वृद्धि:-** यदि राष्ट्रीय आय से हमारा तात्पर्य चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय अथवा मौद्रिक राष्ट्रीय आय ये है, तब निश्चित रूप से यह आर्थिक कल्याण का सही सूचक नहीं है। इसका कारण यह है कि आर्थिक कल्याण का सम्बध वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा से है, न कि उसके मौद्रिक मूल्य के परिवर्तन से जो कि चालू कीमतों में परिवर्तन के कारण सम्भव हो सकता है। कीमतों में वृद्धि होने से, वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में बिना वृद्धि हुए उनके मौद्रिक मूल्य में वृद्धि हो सकती है। इसके फलस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में बिना वृद्धि हुए मौद्रिक राष्ट्रीय आय में वृद्धि या चालू कीमतों के बढ़ने से राष्ट्रीय आय में वृद्धि आर्थिक कल्याण में कोई वृद्धि नहीं लायेगी।

(ब) राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन तथा आर्थिक कल्याण:- राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन का अर्थ है कि समाज के एक वर्ग विशेष के व्यक्तियों से आय का दूसरे वर्ग के व्यक्तियों का हस्तान्तरण होना। समाज में सामान्यतः दो वर्ग होते हैं-धनीवर्ग तथा निर्धन वर्ग। अतः राष्ट्रीय आय में वितरण के परिवर्तन की दो दिशाएँ हो सकती हैं

(अ) धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर आय का हस्तान्तरण।

(ब) निर्धन वर्ग से धनी वर्ग की ओर आय का हस्तान्तरण।

i. आय का हस्तान्तरण निर्धन वर्ग के पक्ष में होने पर जहाँ आय के वितरण की समानता बढ़ेगी, वहीं धनी वर्ग के पक्ष में होने पर आय के वितरण में असमानताएँ बढ़ेगी। आय की समानता बढ़ने पर या ''निर्धन वर्ग के पक्ष में आय का हस्तान्तरण होने पर आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।''

ii. निर्धनों के पक्ष मे राष्ट्रीय आय का पुनर्वितरणः- निर्धनों के पक्ष में राष्ट्रीय आय का पुनर्वितरण निम्न प्रकार से किया जा सकता हैः

प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन क्रय शक्ति के हस्तान्तरण द्वारा किया जा सकता है; जैसे- धनी वर्ग से क्रय शक्ति का कुछ भाग लेकर निर्धन वर्ग को हस्तान्तरित कर दिया जाय।

परोक्ष रूप से क्रय शक्ति के हस्तान्तरण की दो रीतियाँ हो सकती हैं- (क) उत्पादन प्रणाली में इस प्रकार सुधार कर दिया जाय कि वे वस्तुएँ, जिनका उपभोग निर्धन वर्ग करता है, सस्ती हो जायें और जिसका उपभोग धनी वर्ग करता है, महँगी हो जायें। इसका परिणाम यह होगा कि देश के बहुसंख्यक निर्धन लोग अपनी पहली आय से अधिक वस्तुओं तथा सेवाओं का उपभोग करके अधिक संतोश की प्राप्ति करेंगे।

(ख) दूसरी रीति यह हो सकती है कि राशनिंग अथवा युक्तियों द्वारा धनी व्यक्तियों को उन वस्तुओं के उपभोग को त्यागने के लिए विवश कर दिया जिनका उपभोग निर्धन वर्ग के अधिकतर लोग करते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि निर्धन व्यक्तियों को अधिक सेवाएँ एवं वस्तुएँ उपभोग के लिए उपलब्ध हो जायेंगी और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय के परिणाम में बिना किसी परिवर्तन के ही आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो जायेगी।

सामान्यतः यदि राष्ट्रीय आय के वितरण में निर्धनों के पक्ष में कोई परिवर्तन होता है, तो उससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है, बशर्ते राष्ट्रीय आय के परिमाण में किसी भी प्रकार का परिवर्तन न हो।

राष्ट्रीय आय का स्थायित्व और आर्थिक कल्याणः- देश का आर्थिक कल्याण राष्ट्रीय आय के स्थायित्व पर भी निर्भर करता है। जब राष्ट्रीय आय की मात्रा में अधिक परिवर्तन होते रहते हैं तो आर्थिक कल्याण घटता है क्योंकि जिन वर्षों में आय अधिक हो जाती है, तब लोग अपव्यय करते हैं और जिन वर्षों में आय कम होती है, तब लोग व्यय कम करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय का स्थायित्व आर्थिक कल्याण को बढ़ाता है क्योंकि सभी व्यक्तियों के पास दीर्घकाल की दृष्टि से व्यय के लिए प्रत्येक वर्ष में समान ही आय रहती हैं प्रो0 पीगू के शब्दों में, ''जो भी कारण सम्पूर्ण समाज के कुल उपयोग को कम परिवर्तनीय बनाता है, वह सामान्यतया आर्थिक कल्याण में वृद्धि करता है बशर्ते राष्ट्रीय आय की मात्रा न घटे तथा आय का वितरण निर्धनों के प्रतिकूल न हो।''

इस सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय आय के सभी अंगों में समान उच्चावन आवश्यक नहीं है। यदि आय के उस भाग में अपेक्षाकृत उच्चावन अधिक है जो निर्धनों को प्राप्त होता है तो इससे आर्थिक कल्याण को अधिक हानि होगी। इसके विपरित, यदि धनिकों को प्राप्त होने

वाली आय में उच्चावन अधिक है तो हानि कम होती है। इसका कारण है कि उपयोगिता ह्रास नियम की कार्यशीलता के कारण परिवर्तन का प्रभाव धनिकों पर निर्धनों की तुलना में कम पड़ता है।

अतः स्पष्ट है कि '' कोई भी कारण जो राष्ट्रीय उत्पादन के उस भाग की अस्थिरता को कम करता है जो निर्धन वर्ग को प्राप्त होता है, भले ही वह समान अंश तक उस भाग की परिवर्तनशीलता को बढ़ा दे जो धनिकों को प्राप्त होता है, यदि अन्य बाते समान रहें तो वह आर्थिक कल्याण में वृद्धि कर देता है।''

कीन्स का दृष्टिकोण:- बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लार्ड जे0 एम0 कीन्स ने अपनी पुस्तक में रोजगार के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। लार्ड कीन्स के अनुसार एक पूँजीवादी विकसित अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति सामान्य स्थिति नहीं है। वास्तव में हर अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी पायी जा सकती है। अतः बेरोजगारी को दूर करके पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने के लिए सरकारी हस्ताक्षेप आवश्यक है। कीन्स ने अपने सिद्धान्त को राष्ट्रीय आय की मात्रा पर आधारित किया है। '' राष्ट्रीय आय में वृद्धि रोजगार में वृद्धि कर आर्थिक कल्याण को बढ़ाती है और इसके विपरीत, राष्ट्रीय आय के गिरने पर बाजार एवं उत्पादन में कमी से कल्याण में कमी आती है।''

प्रो0 सैम्युअलसन का दृष्टिकोण:- प्रो0 पाल ए, सैम्युअलसन ने अपनी कृति में शुद्ध आर्थिक कल्याण की नवीन धारणा का प्रतिपादन किया है। उनका विचार है कि राष्ट्रीय आय जैसा कि प्रायः इसकी परिभाषा की जाती है, आर्थिक कल्याण का संतोश जनक मापदण्ड नहीं है। उनका मत है कि आर्थिक कल्याण का सही मापदण्ड मालूम करने के लिए सकल राष्ट्रीय आय के कुछ जोड़ने व घटाने के रूप में निम्न समायोजन करने चाहिए:

सकल राष्ट्रीय आय में जोड़ने वाली मदें-

i. अवकाश के क्षणों में प्राप्त संतुष्टि का मूल्य क्योंकि अवकाश से व्यक्ति को उसी प्रकार संतुष्टि मिलती है: जैसे वस्तुओं के उपभोग से
ii. व्यर्थ और अनुत्पादक व्यय है, जैसे-कानून और व्यवस्था बनाये रखने के लिए पुलिस और न्यायलयों पर व्यय तथा वाह्य आक्रमाणों से देश की रक्षा के लिए प्रतिरक्षा पर व्यय इन व्ययों को शोचनीय लागतों का नाम दिया गया है क्योंकि अर्थशास्त्री इन्हें शोचनीय आवश्यकताएँ समझते हैं जिन पर व्यय से लोगों के कल्याण में वृद्धि नहीं होती।

संक्षेप में कुल राष्ट्रीय आय उत्पाद(**Gross National Product&GNP**)- और निवल आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध म इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है:

वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पादन(**Real GNP**)

-मूल्य ह्रास

+अवकाश का मूल्य

+ क्रय विक्रय न की जा सकने वाली गतिविधियाँ (अर्थात् गृहिणियों की सेवाएँ और वैयक्तिक सेवाएँ)

- पर्यावरण प्रदूषण

- शोचनीय लागतें

= शुद्ध आर्थिक कल्याण

यह धारणा अधिक उपयुक्त मानी जाती है क्योंकि अभी राष्ट्रीय आय उत्पाद में अवकाश प्राप्त सुख को सम्मिलित नहीं किया जाता है और न वायु और जल प्रदूषण, अपराधों, युद्धों और शहरीकरण की असुविधाओं को घटाया जाता है। माप में व्यवहारिक कठिनाई के कारण यह धारणा लोकप्रिय नहीं हो पायी है।

नोढ़ाल एवं टोबिन दृष्टिकोण:- विलियम नोढाल तथा जेम्स टोबिन ने आर्थिक कल्याण मापक का विचार प्रस्तुत किया है। इस विचारधारा के अनुसार आर्थिक कल्याण उत्पादन के स्तर पर नहीं अपितु उपभोग के स्तर पर निर्भर करता है। एक दूश में एक वर्ष में उपभोग का स्तर जितना अधिक होगा, उतना ही आर्थिक कल्याण अधिक होगा।

शुद्ध आर्थिक कल्याण की माप करने के लिए नोढाल तथा टोबिन ने उपभोग में से कुछ मदों को घटाने के लिए उपभोग में से निम्नलिखित मदों को घटाया है:

(अ) उपभोग में से घटायी जाने वाली मदें- नोढाल तथा टोबिन ने शुद्ध आर्थिक कल्याण का माप करने के लिए उपभोग में से निम्नलिखित मदों को घटाया है:

(1) सार्वजनिक क्षेत्र में सेना, सुरक्षा, पुलिस, सड़को तथा पुलों की मरम्मत आदि पर किया गया व्यय।

(2) टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं; जैसे- टेलिविजन, स्कूटर, फर्नीचर आदि पर किया गया व्यय।

(3) दूषित वातावरण व प्रदूश ण आदि की सामाजिक लागतें।

(ब) उपभोग में जोड़ी जाने वाली मदें- नोढाल तथा टोबिन के अनुसार निम्नलिखित व्ययों को आर्थिक कल्याण का माप करने के लिए जोM दिया जाता है:

(1) टिकाऊ वस्तुओं से मिलने वाला वार्षिक संतुष्टि का मौद्रिक मूल्य

(2) स्वयं के उपभोग के लिए जो उत्पादन किया जाता है, उसका अनुमानित मूल्य।

(3) आराम से प्राप्त संतुष्टि का अनुमानित मूल्य।

उपर्युक्त विचारधारा यद्यपि आकर्षक प्रतीत होती है परन्तु एक ओर तो उपभोग सम्बन्धी सूचना एकत्र करना कठिन है तथा वातावरण से प्राप्त लाभ या हानि को मुद्रा के रूप में मापना भी कठिन है। अतः माप में व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण यह धारणा भी लोकप्रिय हो सकती है।

ओवरसीज विकास परिषद् का निर्देशांकः- आर्थिक कल्याण के अन्य नये मापक का विकास अमरीका स्थित एक निजी संस्था ओवरसीज विकास परिश द् ने किया है जिसे जीवन का भौतिक गुण निर्देशांक कहते हैं। इस निर्देशांक की प्रमुख विशेष ताएँ निम्नलिखित हैं

(1) इसके अन्तर्गत विभिन्न देशों के तीन सूचकों अर्थात् जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्युदर तथा साक्षरता के क्षेत्र में उपलब्धियों के आधार पर जीवन के एक संयुक्त भौतिक गुण निर्देशांक का निर्माण किया जाता है।

(2) प्रत्येक सूचक के लिए एक देश की उपलब्धि को 1 से 100 के पैमाने के बीच आंका जाता है।

(3) ऊँचा निर्देशांक अधिक आर्थिक कल्याण और निचला या कम निर्देशांक कम आर्थिक कल्याण का संकेत देता है।

7.15-आर्थिक कल्याण का सर्वश्रेष्ठ मापक क्या है?

अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मत है कि कई सीमायें होने के बावजूद भी आर्थिक कल्याण का अभी तक सबसे संतोश जनक माप वास्तविक राष्ट्रीय आय की धारणा ही है। प्रो0 आर0 जी0 लिप्सी के अनुसार, '' भविष्य में आर्थिक कल्याण के मापकों में कितना ही परिवर्तन क्यो न हो, वे पुरी तरह सकल राष्ट्रीय उत्पादन का स्थान नहीं ले सकेंगे।''

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यदि (1) हमारा उद्देश्य आर्थिक कल्याण का दीर्घकालीन अनुमान लगाना है तो राष्ट्रीय आय मापक अधिक संतोश जनक माप होगा।

(2) हमारा उद्देश्य विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक कल्याण का तुलानात्मक अध्ययन करना है तो जीवन का भौतिक गुण निर्देशांक माप अधिक संतोश जनक माप होगा।

अभ्यास प्रश्न -

लघु उत्तरीय प्रश्न-

(1) राष्ट्रीय आय लेखे को संक्षेप में समझाइये।

(2) राष्ट्रीय आय लेखांकन की प्रमुख विशेष ताएँ लिखिए।

(3) राष्ट्रीय आय लेखांकन की प्रमुख कठिनाइयाँ क्या हैं?

(4) राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय आय लेखा में प्रमुख अंतर बताइये।

बहुविकल्पीय प्रश्न-

(1) प्रत्येक देश अपनी राष्ट्रीय आय से संबंधित जो व्यवस्थित हिसाब किताब रखता है, उसे कहतें हैं-

(अ) दोहरी अंकन प्रणाली (ब) आर्थिक चिट्ठा

(स) राष्ट्रीय आय लेखा (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(2) राष्ट्रीय लेखा की अवधारणा का सर्वप्रथम विकास किया था-

(अ) सर विलियम पेटी (ब) प्रो0 कीन्स

(स) साइमन कुजनेट्स (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(3) राष्ट्रीय आय लेखा को प्रस्तुत किया जाता है-

(अ) सामाजिक लेखांकन सारणी द्वारा (ब) सांख्यिकीय सारणी द्वारा

(स) सरकारी लेखा द्वारा (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(4) विनियोजन लेखा कहा जाता है-

(अ) उपभोग लेखा को (ब) उत्पादन लेखा को

(स) पूँजी लेखा को (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

निम्न कथनों में सत्य/असत्य लिखिए

(1) राष्ट्रीय आय लेखांकन एवं राष्ट्रीय लेखा में कोई भेद नहीं है।

(2) राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।

(3) राष्ट्रीय आय लेखांकन की धारणा को विकसित करने का श्रेय प्रो0 जे0एम0 कीन्स को है।

(4) राष्ट्रीय आय लेखांकन में दोहरी गणना की समस्या उत्पन्न होती है।

7.16-सारांश

किसी देश के आर्थिक विकास का मापन राष्ट्रीय आय के माध्यम से किया जाता है। राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित, व्यवस्थित लेखा-जोखा, राष्ट्रीय आय लेखांकन कहलाता है। इसके अन्तर्गत पाँच प्रकार के लेखे- उत्पादन लेखा, उपभोग लेखा, सरकारी लेखा, पूँजी खाता, विदेशी खात आते हैं। देश के आर्थिक ढाँचे, राष्ट्रीय आय के वितरण, जीवन स्तर आदि जानने में राष्ट्रीय आय लेखा बहुत महत्वपूर्ण है । राष्ट्रीय आय और देश के आर्थिक कल्याण में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अन्य बातें समान रहने पर राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक कल्याण को बढ़ाती है। पीगू, कीन्स, प्रो0 सैम्युअलसन, नोढास व टोबिन आदि अर्थशास्त्रियों ने, राष्ट्रीय आय व कल्याण में सम्बन्ध पर अपने-अपने दृष्टिकोण व्यक्त किए हैं।

7.17-शब्दावली

राष्ट्रीय आय लेखा: राष्ट्रीय आय के उत्पाद, आय तथा व्यय सम्बन्धी सम्बन्ध को प्रकट करने वाला संख्यात्मक विवरण प्रस्तुत करता है।

राष्ट्रीय आय लेखा विधि या सामाजिक लेखांकन:यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो की आर्थिक क्रियाओं का सांख्यिकीय विवरण प्रस्तुत करता है और उनके आर्थिक सम्बन्ध को सूचित करता है तथा विश्लेषण के लिए ढ़ांचा भी प्रदान करता है।

7.18-अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:-

लघु उत्तरीय प्रश्न- (1) उत्तर 7.3 में देखें। ,(2) उत्तर 7.3 में देखें।, (3) उत्तर 7.11 में देखें।

(4) उत्तर 7.4 में देखें।

बहुविकल्पीय प्रश्न-(1)-स, (2)-अ, (3)-अ, (4)-अ

सत्य/असत्य कथन-(1)-असत्य, (2)-सत्य, (3)-सत्य, (4)-सत्य

7.19-उपयोगी पुस्तकें/सहायक ग्रंथः-

- ऐक्ले, जी0: मैक्रोइकोनामिक थीयरी , एन0वाई0, मैकमिलन,1961
- आहूजा, एच0एल0: एडवान्स मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली।
- द्विवेदी, डी0एन0: मैक्रोइकोनामिक्स: थीयरि एण्ड पॉलिसी, टाटा एमसी ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- लाल, एस0एन0: समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण (सिद्धान्त, समस्यायें तथा नीतियाँ) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- शपीरो, एडवर्ड: मैक्रोइकोनामिक एनालिसिस, गलगोटिया पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

7.20-निबन्धात्मक प्रश्नः-

1. आर्थिक कल्याण क्या है? राष्ट्रीय आय से इसका सम्बन्ध बताइए।

2. एक राष्ट्र में राष्ट्रीय आय का आकार तथा वितरण किस प्रकार आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है? पूर्ण रूप से समझाइए।

3. राष्ट्रीय आय का अध्ययन वर्तमान मे इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया है? यह कहना कहाँ तक सही है कि राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि आर्थिक कल्याण में वृद्धि करती है?

इकाई – 8 क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त
8.3.1 वस्तु बाजार की संस्थिति तथा 'से' का बाजार नियम
8.3.2 मुद्रा-परिमाण सिद्धान्त तथा वस्तु बाजार की संस्थिति
8.3.3 श्रम बाजार की संस्थिति तथा मजदूरी दर यन्त्र
8.3.4 पूँजी बाजार की संस्थिति तथा ब्याज दर यन्त्र
8.4 पूर्ण क्लासिकल मॉडल: साराँश
8.4.1 क्लासिकल सिद्धान्त की आलोचना
8.5 शब्दावली
8.6 अभ्यास प्रश्न
8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.8 उपयोगी सहायक ग्रन्थ
8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना:

क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त वास्तव में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों जैसे-एडम स्मिथ, रिकार्डो, मिल व पीगू आदि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा विचारों का सम्मिलित रुप है।

क्लासिकल अर्थशास्त्री पूर्ण रोजगार पर किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता, सवृद्धि की दीर्घकालीन समस्या तथा संसाधनों की एक दी हुई मात्रा के कुशलतम बंटवारे के विषय में चिन्तित थे। अतः क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने अपना पूरा ध्यान पूर्ति पक्ष पर ही केन्द्रित रखा तथा संवृद्धि प्रक्रिया के दौरान मांग पक्ष पर बहुत कम ध्यान दिया। माल्थस के अतिरिक्त, अन्य सभी क्लासिकल अर्थशास्त्रियों जैसे-एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे0बी0 से आदि का पूर्ण विश्वास था कि रोजगार सिद्धान्त में मांग पक्ष की कोई समस्या नहीं है क्योंकि समग्र मांग स्वयं समायोजित होने की प्रवृत्ति रखती है। अतः मुख्य समस्या पूर्ति की ही है न कि मांग की। उनके अनुसार, अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार के स्तर के उत्पादन तथा संस्थिति उत्पादन स्तर में कोई अन्तर नहीं होता है।

रोजगार तथा उत्पादन (आय) के बीच सम्बन्ध:
रोजगार, उत्पादन फलन के माध्यम से उत्पाद के स्तर के साथ सम्बन्धित होता है। किसी भी अर्थव्यवस्था में उत्पाद के स्तर में वृद्धि होने की दो विधियां हो सकती हैं:-
1-उपलब्ध श्रम व पूँजी के कुशलतम प्रयोग द्वारा, उत्पादन की प्रविधि में सुधार करके।
2-उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त विभिन्न आगतों जैसे-श्रम, पूँजी आदि की मात्रा में वृद्धि करके।
उत्पादन प्राविधि में सुधार के द्वारा उत्पादन की मात्रा में वृद्धि लाना एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है। अल्पकाल में यदि पूँजी स्टाक को दिया हुआ मान लिया जाए तो श्रम के रोजगार में वृद्धि के द्वारा, उत्पादन मात्रा में वृद्धि सम्भव होती है। उत्पादन फलन को यदि हम निम्न सूत्र में दिखाएं:-
$Q = f(L, K, T)$ जिसमें Q = उत्पादन मात्रा, L= रोजगार का स्तर, K= पूँजी स्टाक, T = प्रविधि इसमें यदि अल्पकाल में K तथा T स्थिर हो तो उत्पादन फलन का रूप $Q = f(L)$ होगा तथा उत्पादन मात्रा (Q) निश्चित रूप से श्रम की मात्रा (L) पर निर्भर करेगी। इस प्रकार अल्पकाल में उत्पादन तथा रोजगार परस्पर सम्बन्धित होंगे तथा रोजगार में वृद्धि उत्पादन स्तर में वृद्धि लाएगी। अतः स्पष्ट है कि रोजगार तथा उत्पादन निर्धारण की समस्या एक ही है।

रोजगार, अल्परोजगार तथा पूर्ण रोजगार से आशय

कोई भी व्यक्ति रोजगार में तब कहा जाता है जब उसके कार्य से राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती हो। यदि कोई व्यक्ति उत्पादन क्रिया में नहीं लगा है अथवा यदि उसे चालू मजदूरी दर पर रोजगार न मिले तब उसे बेरोजगार कहा जाता है। अर्थव्यवस्था में चालू मजदूरी दर काम करने के इच्छुक सभी व्यक्तियों को यदि रोजगार मिल जाता है तब इस स्थिति को पूर्ण रोजगार की स्थिति कहते हैं। यदि

कोई व्यक्ति किसी उत्पादन क्रिया में लगा हो किन्तु इसके कार्य से उत्पादन स्तर में वृद्धि उसके पूर्ण उत्पादन क्षमता से कम हो रही हो तब ऐसी स्थिति को अल्प रोजगार में कहा जाता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण-रोजगार की संस्थिति की स्थिति के बारे में जान सकेंगे।
- वस्तु बाजार, श्रम बाजार तथा पूँजी-बाजार सन्तुलन में कैसे आता है ,इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।
- 'से' के बाजार नियम को समझ सकेंगे।
- स्वतन्त्र प्रतियोगिता में कार्यशील लोचशील यन्त्र, मजदूरी-दर, वस्तु की कीमत तथा ब्याज-दर के बारे में जान सकेंगे।
- रोजगार के प्रतिष्ठत सिद्धान्त की कमियों को समझेंगे।

8.3 क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त

1776 में एडम स्मिथ की पुस्तक ''वेल्थ आफ नेशन्स'' के प्रकाशित होने के बाद, आर्थिक जगत में जो विचारधारा प्रचलित हुई उसके प्रतिपादकों में मुख्यतः डेविड रिकार्डो, जे0बी0से, जे0एस0मिल, ए0सी0 पीगू, ए0 मार्शल आदि का नाम सम्मिलित है। इस विचारधारा से सम्बन्धित अर्थशास्त्री क्लासिकल अर्थशास्त्री कहलाए। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने रोजगार व उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में कोई अलग से सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया। उनका सिद्धान्त मुख्यतः उनके

- से का बाजार नियम
- श्रम की मांग व पूर्ति दृष्टिकोण
- ब्याज सिद्धान्त, से सम्बन्धित विश्लेश णों का सम्मिलित रूप है।

क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त स्फीतिरहित पूर्ण रोजगार की स्थिति को मानता है। उसके अनुसार मजदूरी मूल्य की लोचशीलता की स्थिति में, आर्थिक प्रणाली में स्वयंचलित शक्तियां पूर्ण रोजगार की स्थिति का बनाए रखती हैं। अतः पूर्व रोजगार की स्थिति को एक सामान्य स्थिति माना जाता है तथा इस स्थिति से कोई भी विचलन एक असामान्य परिस्थिति है जो स्वयंचलित रूप से अर्थव्यवस्था को पुनः पूर्ण रोजगार की स्थिति में ले जाएगी।

क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:-

1-अर्थव्यवस्था बाजार यन्त्र के स्वतन्त्र क्रियाशीलन द्वारा निर्देशित होती है।
2-अर्थव्यवस्था में उत्पादन के सभी साधन पूर्ण रोजगार की स्थिति में है।
3-स्फीतिकारी प्रवृत्तियां नहीं है।
4-अर्थव्यवस्था एक बन्द अर्थव्यवस्था है अर्थात विदेशी व्यापार नहीं है।
5-वस्तु बाजार तथा श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है।
6-वस्तुओं की कीमतें तथा मजदूरी दरें पूर्णतयः लोचशील हैं।
7-ब्याज-दर की लोचशीलता के कारण समग्र विनियोग, समग्र बचत के बराबर है।
8-अर्थव्यवस्था में सरकार का हस्तक्षेप नहीं है।
क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त की व्याख्या मुख्यतः तीन भागों में विभक्त की जा सकती है:
1-वस्तु बाजार सन्तुलन में है अर्थात् सम्पूर्ण उत्पादित वस्तु बिक जाती है। न ही अति उत्पादन और न ही अल्प-उत्पादन की स्थिति है अतः अर्थव्यवस्था में वस्तु की मात्र मांग (D_x) वस्तु की पूर्ति (S_x) के बराबर हैं, अर्थात $D_x = S_x$

2-श्रम बाजार पूर्णरोजगार के स्तर पर, सन्तुलन की स्थिति में है। अर्थात् श्रम की मांग (D_L) श्रम की पूर्ति (S_L) के बराबर है। अर्थात $D_L = S_L$

3-पूँजी बाजार सन्तुलन में है, अर्थात् ब्याज दर की लोचशीलता तथा स्वतः क्रियाशीलन के कारण कुल विनियोग कुल बचत के बराबर है, अर्थात् $I = S$

इस प्रकार क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी अर्थव्यवस्था में तीन प्रकार के बाजार होते हैं:
1. वस्तु बाजार
2. श्रम बाजार
3. पूँजी बाजार
उनके अनुसार मांग व पूर्ति की शक्तियों का स्वतन्त्र क्रियाशीलन इन तीनों बाजारों में पूर्ण रोजगार संस्थिति की स्थिति को बनाए रखता है। इन तीनों बाजारों की संस्थिति की व्याख्या विस्तार से इस प्रकार की जा सकती है।

8.3.1 वस्तु बाजार की संस्थिति तथा 'से' का बाजार नियम:

जे0बी0 से का बाजार नियम क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त का मूलभूत है। उन्नीसवीं शताब्दी के एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री जे0बी0 से ने यह प्रतिपादित किया कि ''पूर्ति अपनी मांग का सृजन स्वयं करती है।'' इसे से के बाजार नियम के नाम से जाना जाता है। उनके अनुसार किसी भी अर्थव्यवस्था में

अति उत्पादन तथा सामान्य बेराजगारी असंम्भव है। से के अनुसार, उत्पादन ही वस्तुओं के लिए बाजार का सृजन करता है।

अपने मूलभूत रूप में से का बाजार नियम वस्तु विनियम प्रणाली पर लागू होता है। उनके अनुसार, कोई भी उत्पादक जो बाजार में वस्तुओं को लाता है वह उन्हें अन्य वस्तुओं से बदलने के लिए ही लाता है। उसके उत्पादन करने के दो उद्देश्य होते हैं:

(क) एक उस वस्तु की उसकी अपनी उपभोग की आवश्यकता की पूर्ति और

(ख) दूसरा अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुओं को इस वस्तु के बदले प्राप्त करना।

यदि उसे किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता न हो तो वह उत्पादन करेगा ही नहीं क्योंकि क्लासिकल अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि उत्पादक वस्तु का संग्रह नहीं करता है। इस प्रकार का व्यवहार सभी उत्पादक करेंगे अतः प्रत्येक के पास अतिरिक्त उत्पादन केवल इसे दूसरे उत्पादकों की वस्तु से बदलने के लिए ही होगा। अतः बाजार में लाई गई प्रत्येक वस्तु किसी अन्य वस्तु के लिए मांग है। उत्पादन केवल मांग के लिए ही होता है। जैसे-जैसे किसी उत्पादक की वस्तु की मांग बढ़ती जाती है वे उसका उत्पादन बढ़ाते जाते हैं। उत्पादन क्रिया में प्रत्येक उत्पादक यह अनुमान लगाने का प्रयास करता है कि उसकी अपनी वस्तु के लिए उसकी अपनी व्यक्तिगत मांग क्या है तथा अन्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए उसे कितनी अतिरिक्त वस्तु की मात्रा चाहिए? इससे अधिक उत्पादन वह दीर्घकाल में नहीं करेगा। अतः अधिउत्पादन अथवा अल्प उत्पादन का भय नहीं हो सकता।

'से' इस बात को मानते हैं कि किसी विशेष उद्योग का उत्पादन अस्थायी रूप से मांग से कम अथवा अधिक हो सकता है। किन्तु यह अवस्था केवल उत्पादन के मांग सम्बन्धी गलत अनुमान लगाने के कारण ही होगी। उत्पादक अपनी गलती तुरन्त सुधार लेगा और अपनी उत्पादन मात्रा को मांग के अनुसार समायोजित कर लेगा। अतः अल्प उत्पादन या अधिउत्पादन की स्थिति एक असामान्य व अल्पकालीन स्थिति है। इस प्रकार पूर्ति अपनी मांग का सृजन स्वयं करती है।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार मौद्रिक अर्थव्यवस्था में भी यह सिद्धान्त उसी प्रकार लागू होगा। अन्तर केवल यह होगा मौद्रिक प्रणाली में अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का विनिमय, वस्तुओं के माध्यम से न होकर, मुद्रा के माध्यम से होगा। अपनी उत्पादित वस्तु की कुल मात्रा में से उत्पादन कुछ मात्रा अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए रख लेगा तथा शेष को बाजार में बेचकर पहले मुद्रा प्राप्त करेगा तथा इस मुद्रा से अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुएं क्रय करेगा। इस प्रकार प्रक्रिया वही होगी। इसके अतिरिक्त जैसे पहले कोई भी उत्पादक वस्तुओं का संचय हीं करता था उसी प्रकार वह मुद्रा का संचय भी नहीं करेगा। क्योंकि इन अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा को पूर्णतः निष्फल (इंततमद) माना है। क्योंकि इसका तो उपभोग भी नहीं किया जा सकता।

साथ ही जब उत्पादन किया जाता है तब उत्पादन के साधनों को रोजगार मिलता है। उत्पादन के विभिन्न साधनों जैसे श्रम, भूमि तथा पूँजी आदि के उत्पादन क्रिया में योगदान के बदले पारिश्रमिक के रूप में आय प्राप्त होती है। इस प्रकार किसी भी उत्पादन क्रिया के दो प्रभाव होते हैं:-

1-उत्पादन क्रिया में साधनों के रोजगार में लगे रहने के कारण उनको पारिश्रमिक मिलता है। जिससे अर्थव्यवस्था में एक ओर आय प्रवाह का सृजन होता है।
2-दूसरी ओर उत्पादन में वृद्धि होती है जो बाजार में बिकने के लिए भेज दिया जाता है।
इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्पादन एक ओर वस्तु की पूर्ति में वृद्धि लाता है तथा दूसरी ओर साधनों को दी जाने वाली आय के रूप में उत्पादित वस्तु की मांग में भी वृद्धि करता है। उत्पादन के साधनों को जो आय पारिश्रमिक के साथ प्राप्त होती है उसे वे बाजार में लाई गई वस्तुओं पर ही व्यय कर देते हैं। कोई भी साधन निष्क्रिय रूप से मुद्रा का संग्रह नहीं करता। परिणामस्वरूप, उत्पादन क्रिया के कारण जितनी पूर्ति में वृद्धि होगी, मांग में साथ-साथ वृद्धि के कारण वह स्वतः बिक जाएगी।

इस प्रकार:- कुल उत्पादन = कुल आय(जो लगान, मजदूरी, ब्याज व लाभ आदि के रूप में साधन प्राप्त करते हैं)

सूत्र में $\sum O = \sum Y$

अतः स्पष्ट है कि कुल उत्पादन कुल उपभोग के बराबर ही होगा अर्थात कुल पूर्ति कुल मांग के बराबर होगी, न अल्प उत्पादन होगा और न ही अधिउत्पादन। अतः से के बाजार नियम के अनुसार अर्थव्यवस्था में जितना उत्पादन किया जाएगा वह सब बिक जायेगा। उत्पादन में वृद्धि से रोजगार में वृद्धि होगी जब तक कि पूर्ण रोजगार की स्थिति न हो जाए। यह स्थिति ही संस्थिति की स्थिति होगी। अतः क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार दीर्घकाल में अर्थव्यवस्था सदैव पूर्ण रोजगार, सन्तुलन की स्थिति में बनी रहेगी।

8.3.2 वस्तु बाजार की संस्थिति तथा मुद्रा परिमाण सिद्धान्त:

क्लासिकल निकाय में मुद्रा का मुख्य कार्य केवल विनिमय के माध्यम के रूप है। मुद्रा सामान्य कीमत स्तर को निर्धारित करती है जिस पर बाजार में वस्तुओं, सेवाओं को विनिमय किया जाता है। मुद्रा तथा कीमत स्तर में इस सम्बन्ध की धारणा के लिए क्लासिकल अर्थशास्त्र फिशर के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का सहारा लेते हैं। फिशर के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के अनुसार, कीमत स्तर मुद्रा की पूर्ति का फलन है।

सूत्र में, $MV = PT$

अर्थात् मुद्रा की पूर्ति = मुद्रा की मांग

अथवा,

$$P = \frac{MV}{T}$$

इसमें, M = मुद्रा की कुल पूर्ति

V = मुद्रा का प्रचलन वेग

T = कुल उत्पादन

P = कीमत स्तर

MV = PT का अर्थ है कि सरकार के द्वारा जितनी मुद्रा की पूर्ति चलन में डाली जाती है वह सभी वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने पर व्यय कर दी जाती है। यदि अल्पकाल में, V तथा T को स्थिर मान लें तो $P = f(M)$ होगा अर्थात मुद्रा की पूर्ति (M) में होने वाला परिवर्तन कीमत स्तर (P) में अनुपातिक परिवर्तन लाएगा। क्लासिकल अर्थशास्त्री बेरोजगारी को दूर करने के लिए मुद्रा की पूर्ति (M) में वृद्धि का सुझाव देते हैं। क्योंकि जैसे ही कीमत स्तर में वृद्धि होगी वास्तविक मजदूरी कम हो जाएगी। इससे मजदूरों की मांग बढ़ेगी और उत्पादन में वृद्धि होगी। जिससे मांग में वृद्धि होगी और बढ़ी हुई पूर्ति मांग के बराबर हो जाएगी।

मुद्रा के परिमाण, कुल उत्पादन तथा कीमत स्तर के बीच सम्बन्ध को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:-

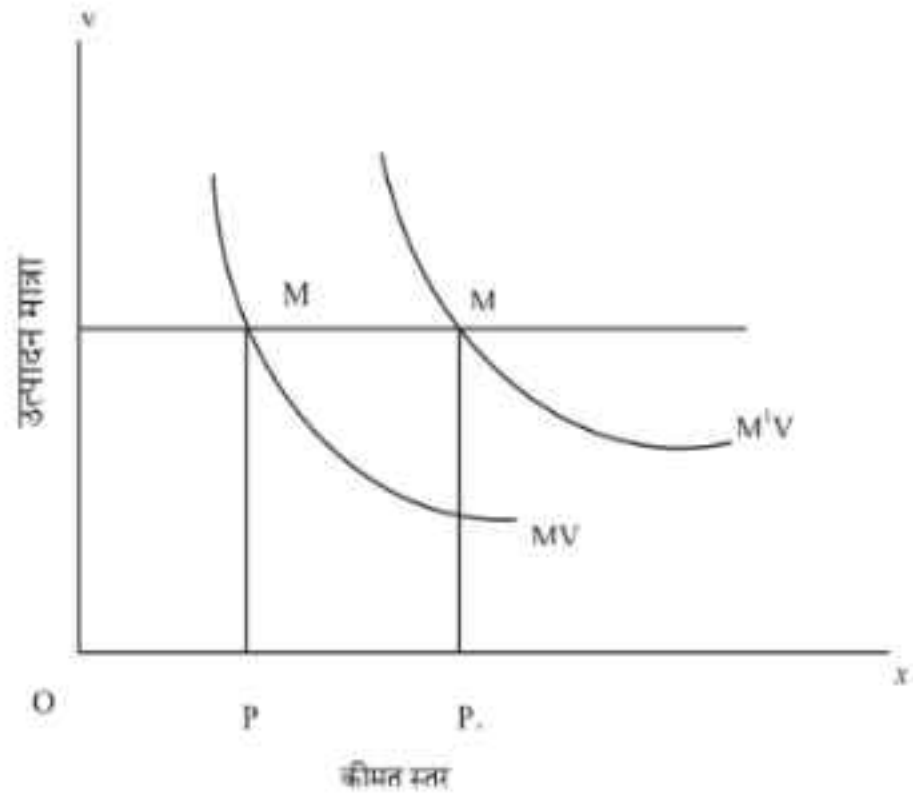

चित्र में, कीमत स्तर को आधार अक्ष तथा उत्पादन मात्रा को लम्ब अक्ष में दिखाया गया है। MV मुद्रा का पूर्ति वक्र है। यदि उत्पादन मात्रा OQ दी हुई हो तो इस से सम्बन्धित कीमत स्तर OP ही होगा। यदि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है तो MV वक्र अपने स्थान से खिसक कर एक नया रूप M'V ले लेगा तथा कीमत स्तर OP से बढ़कर OP_1 हो जाएगा। यदि उत्पादन मात्रा OQ ही रहे। कीमत स्तर में यह वृद्धि, मुद्रा की पूर्ति की वृद्धि के ठीक अनुपातिक है अर्थात $PP_1 = MM_1$ इस प्रकार मुद्रा की पूर्ति की मुख्य कार्य वस्तुओं के सामान्य कीमत स्तर का निर्धारण करना है जिस पर अर्थव्यवस्था में वस्तुओं व सेवाओं का विनिमय होता है। इस प्रकार MV जो मांग प्रदर्शित करता है हमेशा PT अथवा वस्तुओं की कीमतों के बराबर होगा। अतः M की प्रत्येक वृद्धि P में अनुपातिक वृद्धि लाएगी फलस्वरूप मांग तथा पूर्ति सदैव बराबर बने रहेंगे।

8.3.3 श्रम बाजार की संस्थिति तथा मजदूरी दर यन्त्र:

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन एवं रोजगार के संस्थिति स्तर का निर्धारण श्रम की सम्पूर्ण मांग (D_L)तथा श्रम की सम्पूर्ण पूति (S_L)के द्वारा होता है। इसको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:-

1-श्रम की मांग (D_L):श्रम की मांग उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। अतः श्रम की मांग उत्पादन फलन के द्वारा ज्ञात की जा सकती है। क्योंकि उत्पादन फलन द्वारा हमें कुल उत्पादन तथा उसके आधार पर सीमान्त उत्पादन प्राप्त होगा। सीमान्त उत्पादन के आधार पर ही श्रम की मांग को ज्ञात किया जा सकता है। उत्पादन-फलन, उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन की मात्रा के बीच सम्बन्ध प्रकट करता है।

मान ले यदि,

$Q = f(L, K, T)$ एक उत्पादक फलन है जिसमें - Q = कुल उत्पादन-मात्राL= श्रम की इकाईयाँ, K= पूँजी की मात्रा तथा T= दी गई तकनीकी।

अल्पकाल में यदि K तथा T को स्थिर मान लें तो उत्पादन की मात्रा, श्रम के रोजगार स्तर पर निर्भर करेगी। अर्थात् $Q = f(L)$ जैसे-जैसे रोजगार स्तर में वृद्धि होगी उत्पादन स्तर में भी वृद्धि होगी। किन्तु उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशीलन के कारण श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP_L) में कमी आएगी। अतः समग्र उत्पादन फलन को प्रदर्शित करने वाला वक्र नीचे बाएं से ऊपर दाहिनी ओर उठता हुआ होगा किन्तु श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP_L) को प्रदर्शित करने वाला वक्र मांग वक्र की तरह ऋणात्मक ढाल वाला अथवा ऊपर बाई ओर से नीचे दाहिनी ओर गिरता हुआ होगा। यही श्रमिक का मांग वक्र है।

क्लासिकल अर्थशास्त्री श्रम की मांग को वास्तविक मजदूरी दर का फलन मानते हैं अर्थात $D_L = f\left(\frac{W}{P}\right)$ इसमें D_L, श्रम की मांग, W वास्तविक मजदूरी दर तथा P कीमत स्तर है। श्रम की मांग वास्तविक मजदूरी दर तथा घटता हुआ फलन होती है क्योंकि वास्तविक मजदूरी दर में कमी करके ही अधिक मजदूरों को रोजगार दिया जा सकता है।

चित्र में इसे इस प्रकार दिखाया जा सकता है:-

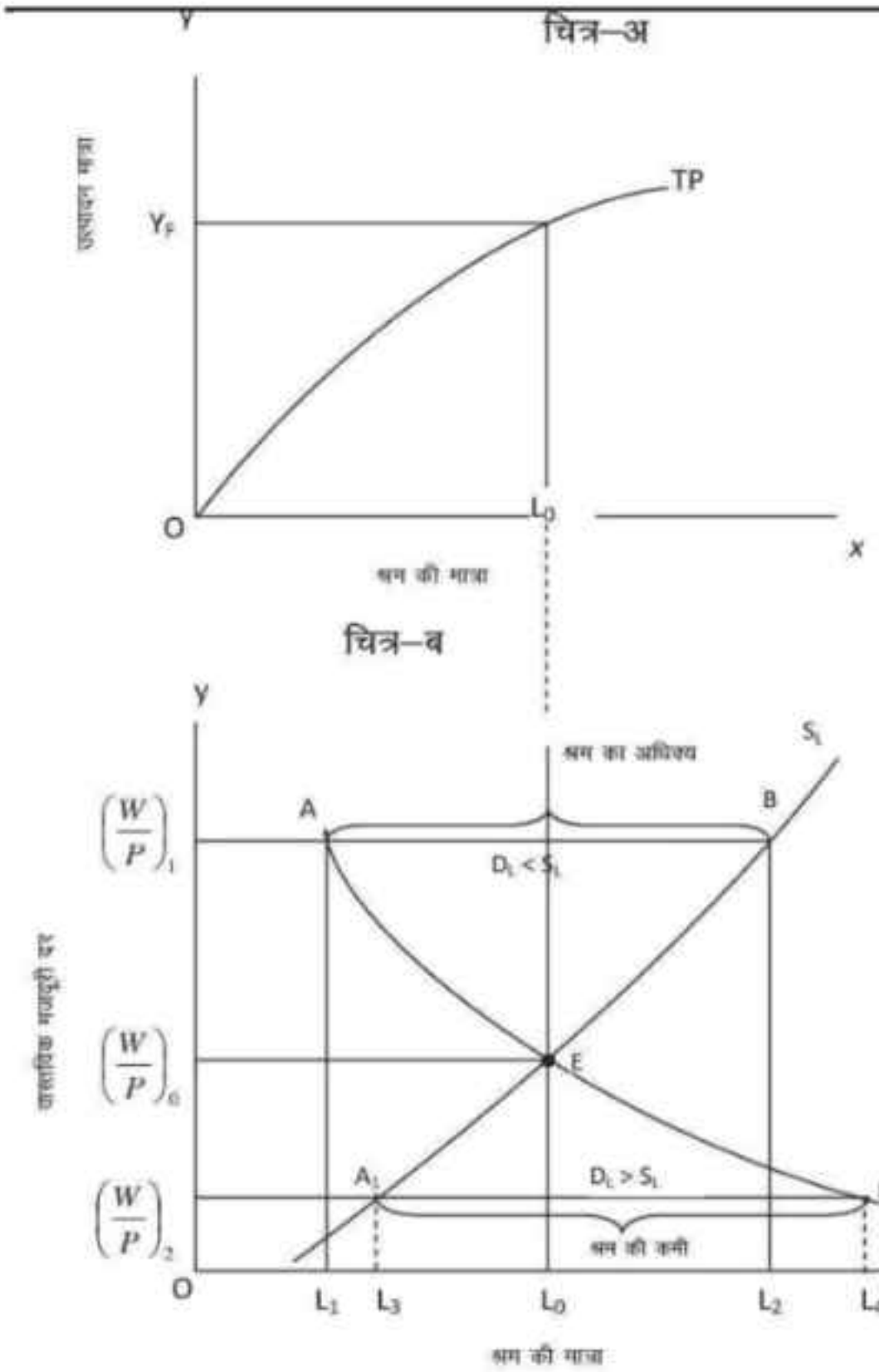

चित्र अ में उत्पादन फलन इस मान्यता पर दिखाया गया है कि पूँजी स्टाक (K) तथा (T) स्थिर रहते हैं। इस आधार पर उत्पादन की पूर्ण रोजगार स्तरीय मात्रा Y_F है। इसके आधार पर चित्र-ब में श्रम की मांग रेखा (D_L)निकाली गई है। श्रम का पूर्ति वक्र S_L वक्र द्वारा प्रदर्शित है। D_L तथा S_L वक्र एक दूसरे की E बिन्दु पर काटते हैं अतः संस्थिति मजदूरी दर $\left(\frac{W}{P}\right)_0$ पर पूर्ण रोजगार स्तर L_0 का निर्धारण होता है।

अब प्रश्न यह है कि अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए कोई उत्पादन कितने श्रमिकों को रोजगार देगा? अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए कोई भी उत्पादक केवल उतने ही श्रमिकों को रोजगार देगा जो वस्तु बाजार तथा साधन बाजार दोनों में उसके लाभ को अधिकतम कर दे। इसके लिए दो शर्तों की पूर्ति अनिवार्य होगी।

1-MR = MC अर्थात किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली सीमान्त आय (MR) उसकी सीमान्त लागत (MC)के बराबर हो।

2- $W = MPP_L \times P$ अर्थात मजदूरी स्तर (W) सामान्य कीमत स्तर (P) तथा श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता (MPP_L)के गुणनफल बराबर हों।

अर्थात् $MPP_L = \frac{W}{P_x} = W$ यहां W = वास्तविक मजदूरी दर या एक अतिरिक्त श्रमिक की लागत तथा $P \times MPP_L$ = एक अतिरिक्त श्रमिक से प्राप्त आय।

जब तक एक अतिरिक्त श्रमिक से प्राप्त होने वाली आय, इस पर लगने वाली लागत या उसकी मजदूरी से अधिक होती है, उत्पादक अधिकाधिक श्रमिकों को रोजगार देता जाता है। जैसे-जैसे अतिरिक्त श्रमिकों को रोजगार मिलता है उनकी सीमान्त उत्पादकता घटती है। कोई भी उत्पादक किसी भी श्रमिक को उसकी सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी नहीं देगा अतः श्रमिकों को तब तक रोजगार दिया जायेगा जब तक कि उपरोक्त शर्त पूरी नहीं हो जाती। अतः श्रम की मांग (D_L) भी वास्तविक मजदूरी का फलन होगी। अर्थात $D_L = f\left(\frac{W}{P}\right)$ श्रम की मांग तथा वास्तविक मजदूरी में विपरीत सम्बन्ध होता है। क्योंकि जैसे-जैसे श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होगी उनकी सीमान्त उत्पादकता में गिरावट आएगी। अतः लाभ को अधिकतम करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी में कमी की जाए। इसलिए श्रम की मांग मजदूरी का घटता हुआ फलन होती है। ऊँची मजदूरी पर श्रम की मांग अधिक होती है तथा मजदूरी कम होने पर श्रम की मांग में वृद्धि होती है। इसलिए श्रम का मांग वक्र ऊपर से नीचे दाहिनी ओर गिरता हुआ होता है। जैसा चित्र-ब में दिखाया गया है।

2-श्रम की पूर्ति (S_L):- श्रम की पूर्ति से आशय श्रमिकों की उस संख्या से है जो वास्तविक मजदूरी की एक निश्चित दर पर काम करने को तैयार हैं। जब कोई श्रमिक कार्य करता है तब वह अपने अवकाश का त्याग करता है और उसे कुछ अनुपयोगिता प्राप्त होती है जिसकी क्षतिपूर्ति वह वास्तविक मजदूरी दर द्वारा करना चाहता है। कोई भी श्रमिक अपने सीमान्त त्याग की मात्रा से कम मजदूरी दर पर कार्य करने को तैयार नहीं होगा। अतः वास्तविक मजदूरी दर $\left(\frac{W}{P}\right)$ ऊँची होने पर ही श्रम की पूर्ति बढ़ती है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार, श्रमिकों की पूर्ति वास्तविक मजदूरी का फलन होती है अर्थात् वास्तविक मजदूरी तथा श्रम की पूर्ति के बीच धनात्मक सम्बन्ध होता है। अर्थात $S_L = f\left(\frac{W}{P}\right)$ किन्तु यह मजदूरी दर का बढ़ता हुआ फलन होती है। अर्थात् मजदूरी दर में वृद्धि करके अधिक श्रमिकों को रोजगार दिया जा सकता है।

श्रम की मांग तथा पूर्ति में समानता तथा पूर्ण रोजगार:

क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त के अनुसार श्रम बाजार में संस्थिति निर्धारण के लिए श्रम की पूर्ति, श्रम की मांग के बराबर होनी चाहिए। चित्र में E बिन्दु पर श्रम का मांग वक्र (D_L), श्रम के पूर्ति वक्र (S_L) को काट रहा है अतः श्रम बाजार संस्थिति में है अर्थात् $D_L = S_L$

संस्थिति की स्थिति में, वास्तविक मजदूरी दर का निर्धारण $\left(\frac{W}{P}\right)_0$ है तथा रोजगार स्तर L_0 है। इस प्रकार L_0 पूर्ण रोजगार स्तर का प्रतीक है। अतः इससे सम्बन्धित उत्पादन स्तर Y_F, पूर्ण रोजगार उत्पादन स्तर है।

अब यदि मान लें कि -

वास्तविक मजदूरी बढ़कर $\left(\frac{W}{P}\right)_1$ हो जाती है तो इस स्तर पर श्रमिकों की मांग केवल OL_1 रह जाती है। जबकि उनकी पूर्ति बढ़कर OL_2हो जाती है। ऐसी स्थिति में श्रम की पूर्ति का अधिक्य होगा तथा अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति होगी तथा L_1 L_2 या AB श्रमिक अनैच्छिक बेरोजगार होंगे। किन्तु बेरोजगार श्रमिकों के बीच, रोजगार पाने के लए निरन्तर प्रतियोगिता होने के कारण, वास्तविक मजदूरी में गिरावट आएगी। श्रमिकों को रोजगार मिलेगा बेरोजगारों की संख्या में धीरे-धीरे कमी होगी और अन्त में पूर्ण रोजगार की संस्थिति पुनः $\left(\frac{W}{P}\right)_0$ मजदूरी दर पर स्थित हो जाएगी।

इसके विपरीत यदि वास्तविक मजदूरी दर घट कर $\left(\frac{W}{P}\right)_2$ हो जाती है तो मजदूरी मांग बढ़ कर OL_4 हो जाएगी किन्तु पूर्ति केवल OL_3 रह जाएगी। अतः A_1,B_1अथवा L_3L_4 श्रमिक ऐच्छिक बेरोजगार होंगे। किन्तु उत्पादक अधिक मात्रा में श्रमिकों को काम पर लगाना चाहेंगे अतः मजदूरी दर में वृद्धि होगी और वह बढ़ते-बढ़ते $\left(\frac{W}{P}\right)_0$ पर पुनः स्थापित हो जाएगी। अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार संस्थिति की स्थिति आ जाएगी।

मजदूरी मूल्य में कटौती तथा बेरोजगारी निवारण:

क्लासिकल अर्थशास्त्री यह मानते थे कि अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार की स्थिति पाई जाती है। यदि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी है तो इसका मुख्य कारण यह है कि या तो श्रमिक अपनी सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी की मांग कर रहे हैं अथवा श्रम संघों या सरकार के हस्तक्षेप के कारण, श्रम बाजार में, श्रम की मांग तथा पूर्ति की शक्तियाँ स्वतन्त्र रूप से क्रियाशील नहीं हो पा रही हैं। पीगू का मत था कि यदि अर्थव्यव्स्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाए। बाजार यन्त्र का स्वतन्त्र क्रियाशीलन हो तो वास्तविक मजदूरी में स्वयं इतनी कटौती हो जाएगी कि चालू मजदूरी दर पर

कार्य करने के इच्छुक सभी बेरोजगार श्रमिकों को काम मिल जाएगा और पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाएगी।

पीगू के अनुसार लोचशील मजदूरी द्वारा रोजगार के स्तर में वृद्धि लाई जा सकती है। सूत्र में $N = \frac{qY}{W}$ इसमें, N = रोजगार में लगे श्रमिकों की संख्या, q = राष्ट्रीय आय का वह भाग जो मजदूरी के रूप में दिया जाता है, Y = राष्ट्रीय आय, W = मौद्रिक मजदूरी दर।

सूत्र के अनुसार, रोजगार की मात्रा (N) तथा मौद्रिक मजदूरी (W) में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। यदि राष्ट्रीय आय में से मजदूरों को दिया जाने वाला भाग (qY) स्थिर रहता है तो मजदूरी की दर (W) में कटौती से रोजगार की मात्रा (N) में वृद्धि होगी और अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार सन्तुलन पर पहुंच जाएगी। इस प्रकार क्लासिकल अर्थशास्त्री यह मानते थे कि अर्थव्यवस्था में अनैच्छिक बेरोजगारी मजदूरी ढांचे में कठोरता के कारण होती है जिसे मजदूरी कटौती द्वारा दूर किया जा सकता है।

8.3.4 पूँजी बाजार की संस्थिति तथा ब्याज दर यन्त्र:

यदि उत्पादन के साधनों को प्राप्त होने वाली समस्त आय उपभोग पर व्यय कर दी जाती है और उसका कुछ भी भाग बचाया नहीं जाता तो कुल आय, कुल उपभोग व्यय के बराबर होगी। किन्तु यदि आय के कुछ भाग को उपभोग पर व्यय नहीं किया जाता तो उसे बचत कहते हैं। यदि अर्थव्यवस्था में बचत की जाती है तो 'से' का बाजार नियम लागू नहीं होगा। 'से' इस बात को मानते हैं कि अर्थव्यवस्था में, आय के चक्रीय प्रवाह में बचत के रूप में रिसाव होता है। किन्तु वे तर्क देते हैं कि बचत वास्तव में रिसाव नहीं है किन्तु एक प्रकार का व्यय ही है। क्योंकि समस्त बचतों को पूँजीगत वस्तुओं अथवा विनियोग पर व्यय कर दिया जाता है। अर्थात् समग्र बचत त्र समग्र विनियोग। यदि बचत का विनियोग नहीं किया गया तो कुल मांग में कमी हो जाएगी तथा बेरोजगारी में वृद्धि होगी। अतः पूर्ण रोजगार को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि बचतों को विनियोग कर दिया जाए।

यदि बचत तथा विनियोग में समानता नहीं है तो इनके बीच समानता स्थापित करने वाला यन्त्र 'ब्याज दर' है, क्योंकि दोनों ही निर्णय ब्याज दर से प्रभावित होते हैं अर्थात्

$S = f(r)$ बचत ब्याज दर का फलन है।

$I = f(r)$ विनियोग ब्याज दर का फलन है।

अतः पूँजी बाजार में सन्तुलन S = I अथवा, बचत = विनियोग। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि ब्याज दर पूर्णतः लचीली हो तो बचत की पूर्ति, विनियोग के लिए बचतों की मांग के बराबर होगी और अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार संस्थिति में बनी रहेगी।

यदि किसी अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी पाई जाती है तो इसका अर्थ यह है कि विनियोग आवश्यकता से कम किया जा रहा है अर्थात् I < S अर्थात् बचत की पूर्ति, विनियोग के लिए बचतों की मांग से अधिक है। अतः ब्याज दर में गिरावट आएगी। जिससे विनियोग के लिए बचतों की मांग में वृद्धि हो जाएगी। ब्याज दर में तब तक कमी होगी जब तक विनियोग बढ़ कर बचतों के बराबर न जा जाए। और अन्त में I = S की स्थिति आ जाएगी। विनियोग में वृद्धि से वस्तुओं का उत्पादन बढ़ेगा तथा रोजगार में वृद्धि होगी।

इसी प्रकार यदि विनियोग के लिए बचतों की मांग, बचत की पूर्ति से अधिक हो अर्थात् I > S तो ब्याज दर में तब तक वृद्धि होगी जब तक कि बचतें बढ़ कर विनियोग मांग के बराबर न हो जाएं। पूँजी बाजार में संस्थिति की स्थिति को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:-

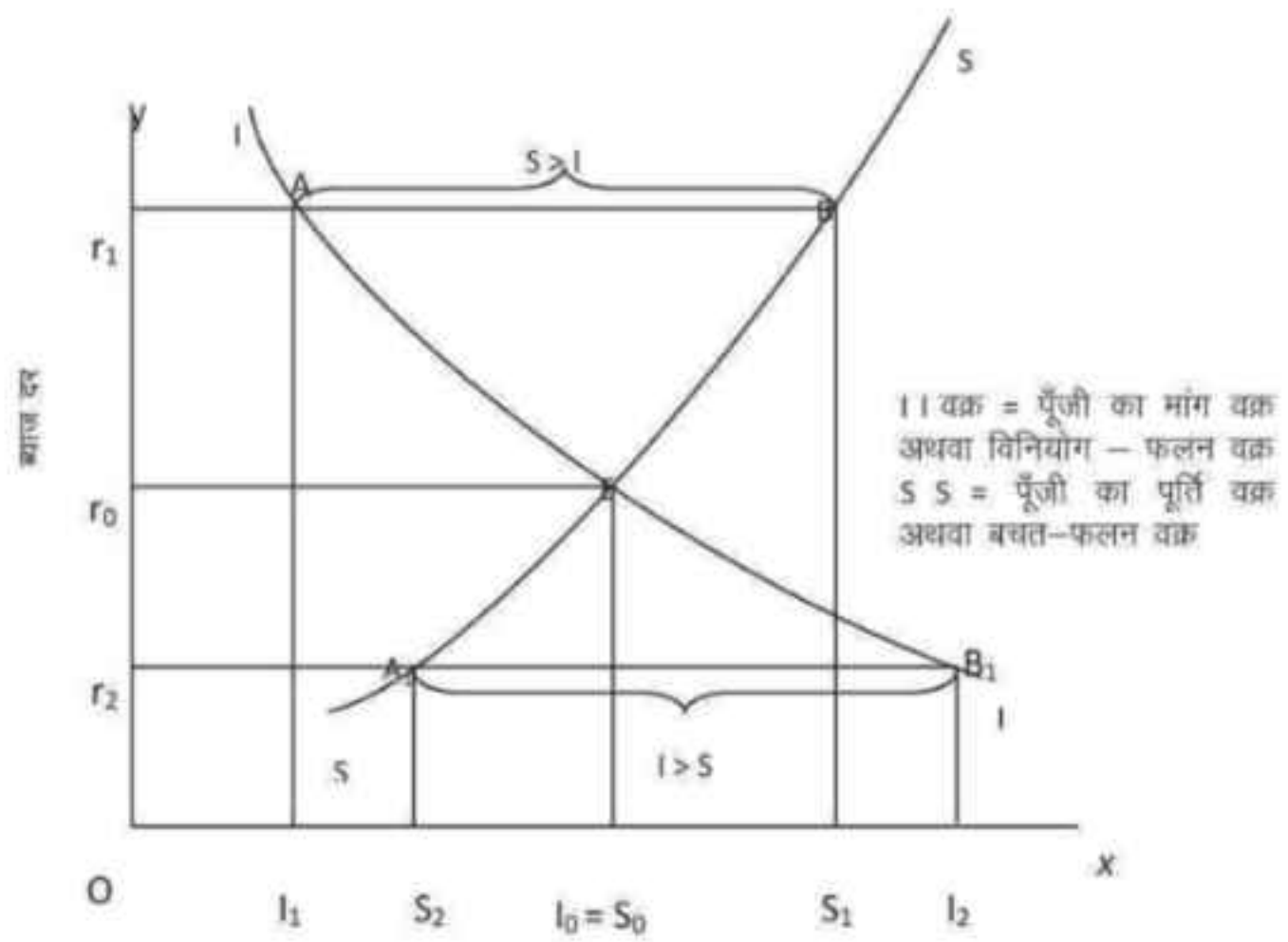

बचत तथा विनियोग

विनियोग फलन वक्र II तथा बचत फलन वक्र SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काट रहे हैं। अतः बचत व विनियोग बराबर हैं अर्थात $I_0 = S_0$ तथा ब्याज की दर Or_0 है।

यदि ब्याज दर बढ़कर Or_1 हो जाती है तो बचत की पूर्ति बढ़ कर OS_1 हो जाएगी जबकि विनियोग के लिए बचतों की मांग केवल OI_1 ही होगी। फलस्वरूप ब्याज दर में गिरावट आएगी। जब तक कि बचत तथा विनियोग के बीच पुनः E बिन्दु पर समानता नहीं हो जाती। इसी प्रकार यदि ब्याज दर व्त2 हो जाए तो अब विनियोग के लिए बचतों की मांग बढ़ जाएगी अर्थात व्प्2 जबकि नीची ब्याज दर पर बचत की पूर्ति केवल Or_2 ही रह जाएगी अतः अब ब्याज दर में वृद्धि होगी। जब तक की पुनः

बचत तथा विनियोग के बीच समानता स्थापित न हो जाए। इस प्रकार ब्याज दर में होने वाले परिवर्तन पूँजी बाजार को सन्तुलन में रखेंगे। और अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार संस्थिति की स्थिति बनी रहेगी।

8.4 पूर्ण क्लासिकल मॉडल: साराँश:

क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार संस्थिति की मान्यता पर आधारित है। इस पूर्ण रोजगार संस्थिति से कोई भी विचलन अस्थायी, अल्पकालीन तथा असामान्य स्थिति है तथा अर्थव्यवस्था में कभी भी अल्पउत्पादन अथवा अधिउत्पादन नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता है तो अर्थव्यवस्था में मांग तथा पूर्ति की शंक्तियां स्वयं चालित रूप से उसे पुनः पूर्ण रोजगार संस्थिति में ले जाएगीं। इस प्रकार क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त में उत्पादन मात्रा तथा रोजगार स्तर का निर्धारण श्रम बाजार, वस्तु बाजार तथा पूँजी बाजार में एक साथ होता है। जिसे निम्न चित्र में दिखाया गया है:-

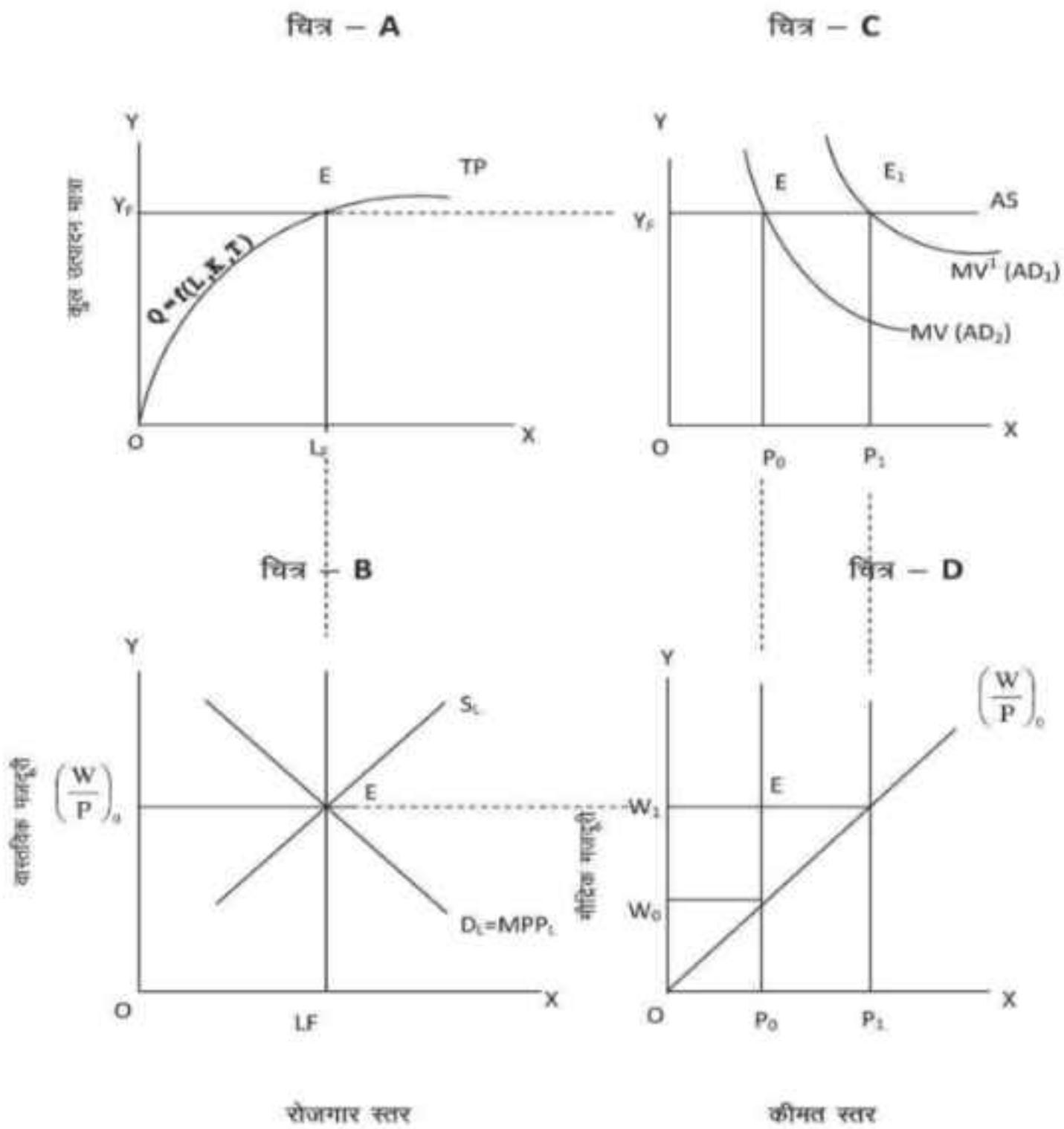

चित्र A में:क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन तथा रोजगार स्तर का निर्धारण समग्र उत्पादन फलन, श्रम की मांग तथा श्रम की पूर्ति के द्वारा होता है। तकनीकी स्तर (T) तथा पूँजी स्टाक (K) की मात्रा दी हुई होने की स्थिति में, कुल उत्पादन स्तर मुख्यतः श्रम की रोजगार में लगी संख्या (L) पर ही निर्भर करेगा। जिसे $Q = f(L,K,T)$ वक्र द्वारा दिखाया गया है। यदि T तथा K की मात्रा दी हुई है तो कुल उत्पादन Q, रोजगार में लगे श्रमिकों की संख्या L का बढ़ता हुआ फलन होगा। चित्र में रोजगार में लगे श्रमिकों की संख्या OL_0 है तथा उनके द्वारा उत्पादित कुल उत्पादन मात्रा Y_F पूर्ण रोजगार उत्पादन मात्रा है।

चित्र B में:श्रम बाजार की संस्थिति को दिखाया गया है। इसमें श्रम की मांग तथा श्रम की पूर्ति के द्वारा अर्थव्यवस्था में उत्पादन मात्रा तथा रोजगार स्तर निर्धारित होते हैं। जैसे-जैसे उत्पादन में वृद्धि होती है श्रमिकों की मांग में भी वृद्धि होती है। किन्तु श्रम की मांग श्रमिक की सीमान्त भौतिक उत्पादकता MPP_L पर निर्भर करती है जो श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होने पर गिरती है। दूसरी ओर श्रम की पूर्ति मजदूरी दर पर निर्भर करती है, जो मजदूरी दर में वृद्धि होने पर बढ़ती है। इस प्रकार श्रम की मांग तथा पूर्ति दोनों वास्तविक मजदूरी दर $\left(\frac{W}{P}\right)$ का फलन है। E बिन्दु पर श्रम का मांग वक्र (D_L)तथा पूर्ति वक्र (S_L) एक दूसरे को काट रहे हैं अतः E बिन्दु पर संस्थिति है जिसके अनुसार वास्तविक मजदूरी दर $\left(\frac{W}{P}\right)_0$ है तथा पूर्ण रोजगार स्तर L_F निर्धारित होता है। इसी आधार पर चित्र A में Y_F पूर्ण रोजगार उत्पादन मात्रा है।

चित्र C में:मुद्रा बाजार सन्तुलन की स्थिति में है। मुद्रा बाजार में सन्तुलन तब होता है जब मुद्रा की मांग तथा मुद्रा की पूर्ति बराबर हो। इसे मुद्रा परिमाण सिद्धान्त की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। MV वक्र मुद्रा पूर्ति फलन को दिखाता है क्योंकि MV वक्र का प्रत्येक बिन्दु $MV = PT$ की स्थिति को दिखाता है।

यदि हम चित्र-I के Y स्तर से एक सीधी रेखा चित्र C में खींचें तो यह AS अथवा समग्र पूर्ति रेखा को प्रदर्शित करेगी। जो यह दिखाती है कि कीमत स्तर चाहे जो भी हो उत्पादन की मात्रा Y_F ही रहेगी। कीमत स्तर में परिवर्तन का कोई भी प्रभाव उत्पादन मात्रा पर नहीं पड़ेगा। MV(AD) मुद्रा का मांग वक्र है।

AS तथा AD वक्रों के आधार पर कीमत स्तर OP_0 निर्धारित होगा। इस चित्र में जो AD या मांग रेखायें MV तथा MV_1 खीची गई हैं जो अलग-अलग मुद्रा के स्तरों से सम्बन्धित है। MV मुद्रा के स्तर या AD_1के साथ कीमत स्तर OP_0 है जो समग्र पूर्ति Y_F पर स्थिर है। चित्र के अनुसार यदि मुद्रा की पूर्ति बढ़कर MV_1 हो जाती है समग्र पूर्ति AS स्थिर ही रहेगी। MV_1 (AD_2) वक्र AS वक्र की नए बिन्दु E_1 पर काटेगा अतः कीमत स्तर बढ़कर OP_1 हो जाएगा। अतः स्पष्ट है कि मुद्रा की पूर्ति में

वृद्धि का कोई प्रभाव वास्तविक चरों जैसे रोजगार, उत्पादन मात्रा तथा वास्तविक मजदूरी के निर्धारण पर नहीं पड़ेगा।

चित्र D में:

कीमत स्तर का प्रभाव वास्तविक मजदूरी पर दिखाया गया है। $\left(\frac{W}{P}\right)_0$ वास्तविक मजदूरी रेखा है। जब कीमत स्तर OP_0 है तब मौद्रिक मजदूरी OW_0 है। किन्तु यदि कीमत स्तर बढ़कर OP_1 हो जाता है तो वास्तविक मजदूरी के उसी स्तर को बनाए रखने के लिए मौद्रिक मजदूरी को OW_1 तक बढ़ाना होगा। इस प्रकार जब मौद्रिक मजदूरी बढ़ती है तो वास्तविक मजदूरी उसी अनुपात में बढ़ जाती है। अतः उत्पादन तथा रोजगार स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस प्रकार क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त पूर्ण रोजगार को बनाए रखने के लिए लोचशील मजदूरी दर की मान्यता को मानता है। सारांश में यह कह सकते हैं कि क्लासिकल अर्थशास्त्री अपने रोजगार सिद्धान्त में तीन प्रकार के बाजारों के सन्तुलनों की बात करते हैं जो मजदूरी दर, कीमत स्तर तथा ब्याज की दरों द्वारा स्थापित होते हैं।

8.4.1 क्लासिकल सिद्धान्त की कीन्स द्वारा आलोचना:

क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि यदि अर्थव्यवस्था में मांग तथा पूर्ति की शक्तियों के स्वतन्त्र क्रियाशीलन पर किसी प्रकार का हस्तक्षेप व प्रतिबंध न हो तो अर्थव्यवस्था सदैव पूर्ण रोजगार सन्तुलन की स्थिति में बनी रहेगी। किन्तु 1930 के दशक की महान मन्दी के समय यह सिद्धान्त सत्य नहीं पाया गया। अतः कीन्स के इस समस्या का अध्ययन किया तथा अपनी पुस्तक 'जनरल थ्योरी आफ इम्पालयमेंट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी' 1936 में प्रकाशित द्वारा क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त की निम्न आधारों पर कटु आलोचना की:-

1. पूर्ण रोजगार की मान्यता अवास्तविक है: कीन्स के अनुसार क्लासिकल सिद्धान्त की अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार संस्थिति में रहने की मान्यता पूर्णतयः अवास्तविक है। उनके अनुसार वास्तव में अल्प रोजगार संस्थिति की स्थिति के पाए जाने की अधिक सम्भावना है।

2. दीर्घकालीन संस्थिति की धारणा अनुपयोगी: कीन्स के अनुसार दीर्घकाल में तो सभी मर जाते हैं अतः उन्होंने अपने सिद्धान्त में अल्पकालीन संस्थिति पर विशेष बल दिया।

3. अधिउत्पादन की स्थिति सम्भव: कीन्स 'से' के बाजार नियम का भी कड़ा विरोध करते है जिसके अनुसार पूर्ति अपनी मांग का सृजन स्वयं करती है। उनके अनुसार यदि उपभोक्ता अपनी कुल आय को उपभोग वस्तुओं पर व्यय न करके बचत करते हैं तो समग्र मांग में कमी आ जाती है। मांग में कमी से वस्तुओं की बिक्री कम हो जाती है अतः अर्थव्यवस्था में अतिउत्पादन की स्थिति दिखाई देती है।

4. स्वयं समायोजन असम्भव: कीन्स इस बात का भी विरोध करते हैं कि सरकार की अहस्तक्षेप नीति के कारण अर्थव्यवस्था स्वयं समायोजित होती रहेगी तथा सदैव पूर्ण रोजगार संस्थिति की स्थिति बनी रहेगी। कीन्स के अनुसार एक पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में दो वर्ग पाए जाते हैं। धनी

तथा निर्धन। धनी वर्ग के पास धन-सम्पत्ति है कि वे उपभोग पर अधिक व्यय नहीं करते जबकि निर्धन के पास आय की कमी है। इस कारण से अर्थव्यवस्था में समग्र मांग की कमी पाई जाती है जो अर्थव्यवस्था को अधिउत्पादन तथा बेरोजगारी की समस्या की ओर अग्रसर कर देती है। जिसे सरकारी व्यय (G) के द्वारा दूर किया जा सकता है।

5. मजदूरी में कटौती तथा पूर्ण रोजगार: कीन्स ने क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त की आलोचना पीगू के इस दृष्टिकोण पर भी की कि लचीली मजदूरी दरों द्वारा बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है। कीन्स ने मन्दी के समय मजदूरी दरों में कटौती को गलत बताया। उनके अनुसार यह सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों दृष्टिकोणों से सही नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से मजदूरी में कटौती प्रभावपूर्ण मांग में कमी लाएगी जो देश में बेरोजगारी में वृद्धि करेगी। व्यवहारिक रूप से, आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में मजदूर संघ आदि उत्पादन प्रणाली के एक अभिन्न अंग हैं। जो मजदूरी-कटौती का विरोध करेंगे तथा इसका परिणाम मजदूरों की हड़ताल तथा तालाबन्दी जैसी समस्याओं को उत्पन्न कर सकता है। साथ ही आजकल अधिकांश सरकारें सामाजिक कल्याण का उद्देश्य लेकर चलती हैं तथा श्रमनियमों के अनुसार मजदूरी दरों को एक न्यूनतम स्तर से नीचे नहीं गिराया जा सकता।

6. लचीली ब्याज दर तथा बचत व विनियोग में समानता: कीन्स ने क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की इस मान्यता पर भी प्रहार किया कि ब्याज दर यन्त्र लचीला होता है जिसके कारण बचत व विनियोग में हमेशा समानता बनी रहती है। उनके अनुसार बचत का स्तर आय के स्तर पर निर्भर करता है न कि ब्याज दर पर। इसी प्रकार विनियोग की मात्रा केवल ब्याज दर से ही प्रभावित नहीं होती बल्कि पूँजी की सीमान्त दक्षता से भी होती है। अतः यदि व्यापार सम्भावनाएं कम हों तो नीची ब्याज दर विनियोग में वृद्धि नहीं ला सकतीं।

7. मुद्रा का कार्य केवल विनिमय का माध्यम नहीं: कीन्स ने क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की इस आधार पर भी आलोचना की कि उन्होंने मुद्रा को पूर्णतयः निष्फल (इंततमद) माना और इसलिए कोई भी व्यक्ति उसे संग्रह नहीं करेगा। अतः आय के प्रवाह में कमी नहीं आएगी और मांग सदैव बनी रहेगी। कीन्स ने इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति मुद्रा को सम्पत्ति के रूप में संग्रह करते हैं। ऐसा होने पर आय के प्रवाह में कमी हो जाएगी और क्लासिकल सिद्धान्त गलत हो जाएगा।

8.5 शब्दावली:

प्रभावपूर्ण मांग:-किसी अर्थव्यवस्था में जिस बिन्दु पर उत्पादित वस्तु की कुल मांग उसकी कुल पूर्ति के बराबर हो इस बिन्दु पर संस्थिति होगी कीन्स ने इस बिन्दु को प्रभावपूर्ण मांग कहा।

मांग न्यूनता:-यदि मांग कुल उत्पादन अथवा कुल पूर्ति के बराबर न हो तो मांग पूर्ति में संस्थिति नहीं होगी और मांग में कमी दिखाई देगी इसे मांग न्यूनता कहते हैं।

उपभोग वस्तुएँ:-वे वस्तुएं जिनका उपभोक्ता प्रत्यक्ष उपभोग करते हैं। यह वस्तुएँ एकल प्रयोग अथवा टिकाऊ अथवा बहुप्रयोग वाली दोनों हो सकती हैं।

पूँजीगत वस्तुएँ:-वे वस्तुएँ जिनका प्रत्यक्ष उपभोग नहीं किया जाता बल्कि वे उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के लिए होती है जैसे मशीनें, यन्त्र, उपकरण आदि।

साधनों का कुशलतम बंटवारा:-किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के विभिन्न साधनों अर्थात भूमि, पूँजी, श्रम, साहस आदि का विभिन्न उद्योगों में इस प्रकार आवंटन हो जिससे एक ओर प्रत्येक उद्योग में उत्पादन अधिकतम हो जाए तथा साधनों की प्रत्येक इकाई की उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार ही कीमत मिले।

उत्पादन प्रविधि - उत्पादन प्रक्रिया को पूरा करने के लिए आगतों जैसे श्रम तथा पूँजी की एक निश्चित मात्रा का प्रयोग उत्पादन प्रविधि कहलाता है। उत्पादन की तकनीक श्रम प्रधान अथवा पूँजी प्रधान होती है।

उत्पादन-फलन:-आगतों तथा निर्गत के बीच के तकनीकी सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते हैं। उत्पादन फलन से हमें ज्ञात होता है कि कुल उत्पादन की मात्रा, आगतों की मात्रा पर निर्भर करती है।

अल्प उत्पादन तथा अधिउत्पादन:-जब किसी अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन की मात्रा (पूर्ति) इसकी कुल मांग से कम हो तो ऐसी स्थिति को अल्प उत्पादन कहते हैं किन्तु यदि उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की मांग, उसकी कुल पूर्ति से कम हो तो अर्थव्यवस्था में अधिउत्पादन होगा और वस्तुएँ, अनबिकी रह जाएगीं।

स्फीतिकारी प्रवृत्तियाँ:- यदि अर्थव्यवस्था में लगातार वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में वृद्धि हो तो ऐसी स्थिति को स्फीति की स्थिति कहते हैं। कीमतों में वृद्धि का कारण पूर्ति की तुलना में मांग का आधिक्य अथवा उत्पादन लागतों में वृद्धि होता है।

बचत:-आय का जो भाग उपभोग पर व्यय नहीं होता उसे बचत कहते हैं।

ऐच्छिक बेरोजगारी:-यदि प्रचलित मजदूरी दर पर कुछ व्यक्ति कार्य करने को इच्छुक न हो तो इसे ऐच्छिक बेरोजगारी कहते हैं।

अनैच्छिक बेरोजगारी:-यदि अर्थव्यवस्था में रोजगार के अनुसार अवसर उपलब्ध न हों अथवा प्रचलित मजदूरी दर पर सभी बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध न हो तब इसे अनैच्छित बेरोजगारी कहते हैं।

8.6 अभ्यास प्रश्न:

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. 'से' का बाजार नियम क्या बताता है?
2. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार लाने के लिए पीगू ने क्या सुझाव दिया?
3. क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त किस प्रकार की अर्थव्यवस्था में लागू होता है?

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय आय तथा रोजगार की मात्रा किस पर निर्भर करती है?
2. उत्पादन फलन $Q = f(L,K,T)$ में प्रदर्शित विभिन्न चरों के नाम लिखिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1-किसने कहा? ''पूर्ति अपनी मांग का सृजन स्वयं करती है।''

(क) एडम स्मिथ

(ख) माल्थस

(ग) जे0बी0 से

(घ) रिकार्डो

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1.क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार, अर्थव्यवस्था में सामान्य .....तथा .....की स्थिति असम्भव है।

(क) अधिउत्पादन, बेरोजगारी

(ख) अधि उपभोग, अल्प उपभोग

(ग) बचत, विनियोग

(घ) संस्थति, बेरोजगारी

3-किसी अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी को दूर करने के लिए पीगू ने क्या सुझाव दिया?

(क) उपभोग में कमी करने का

(ख) मजदूरी में कटौती करने का

(ग) विनियोग में वृद्धि करने का

(घ) बचतों में कमी करने का

4- 'से' का बाजार नियम संस्थिति की स्थिति दिखाता है -

(क) पूँजी बाजार में

(ख) श्रम बाजार में

(ग) वस्तु बाजार में

(घ) उपरोक्त तीनों में।

5-क्लासिकल अर्थशास्त्री मानते हैं कि एक अर्थव्यवस्था सदैव ..... की स्थिति में बनी रहती है।

(क) पूर्ण-रोजगार

(ख) अल्परोजगार

(ग) बेरोजगारी

(घ) अधि-रोजगार

अति लघु उत्तरीय प्रश्न उत्तर:

1. पूर्ति अपनी मांग का सृजन स्वयं करती है।
2. मजदूरी दरों में कटौती का।
3. बन्द अर्थव्यवस्था में।
4. **बहुविकल्पीय प्रश्न:**

1-(ग) 2-(क) 3-(ख) 4-(ग) 5-(क)

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- आहूजा, एच0एल0: एडवान्स मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली।
- द्विवेदी, डी0एन0: मैक्रोइकोनामिक्स: थीयरि एण्ड पॉलिसी, टाटा एमसी ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- लाल, एस0एन0: समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण (सिद्धान्त, समस्यायें तथा नीतियाँ) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- शपीरो, एडवर्ड: मैक्रोइकोनामिक एनालिसिस, गलगोटिया पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

8.8 उपयोगी सहायक ग्रन्थ:

- J.M. Keynes : General Theory of Employment, Interest and Money.
- Stonier and Hague : A text Book of Economic Theory.
- R.G.D. Allen : Macro-Economic Theory, 1970.
- Gardner Achley : Macroeconomic Theory, 1961.
- Edward Shapiro : Macroeconomic Analysis, 1984.
- Barry N. Siegal : Aggregate Economies and Public Policy, 1970.

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न:

1. ''पूर्ति अपनी मांग का सृजन स्वयं करती है।'' इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार एक आर्थिक प्रणाली में सदैव पूर्णरोजगारीय संस्थिति की स्थिति बनी रहती है, यदि मूल्य यन्त्र का स्वतन्त्र क्रियाशीलन हो। विवेचना कीजिए।
3. क्लासिकल अर्थशास्त्री क्यों मानते हैं एक प्रतियोगितात्मक अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति स्वयंचालित होगी? समझाइए।
4. क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी भी अर्थव्यवस्था में सामान्य अति-उत्पादनतथा सामान्य बेरोजगारी असम्भव है। व्याख्या कीजिए।
5. क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त की केन्स ने किन आधारों पर आलोचना की? व्याख्या कीजिए।

इकाई-9 कीन्स का रोजगार व आय का सिद्धान्त

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 कीन्सीय रोजगार सिद्धान्त तथा प्रभावपूर्ण मांग
9.3.1 समग्र पूर्ति फलन
9.3.2 समग्र मांग फलन
9.3.3 रोजगार के सन्तुलन स्तर का निर्धारण
9.4 द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था तथा राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार निर्धारण
9.5 त्रिक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार का निर्धारण
9.6 खुली अर्थव्यवस्था अथवा विदेशी क्षेत्र तथा संस्थिति आय, उत्पादन तथा रोजगार का निर्धारण
9.7 कीन्स के सिद्धान्त की आलोचना
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्न
9.11 संदर्भग्रंथ सूची
9.12 उपयोगी सहायक ग्रन्थ
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना:

क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त की व्याख्या इकाई-8 में की गई। इस इकाई में हम 'कीन्सीय रोजगार सिद्धान्त' की व्याख्या करेंगे। 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक जनरल थ्योरी में कीन्स ने क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त की कटु आलोचना की कीन्स ने क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर की कि क्लासिकल सिद्धान्त अतार्किक मान्यताओं पर आधारित है, उसके निष्कर्ष तथा आर्थिक नीतियाँ वास्तविक जगत में लागू नहीं की जा सकतीं। उनके अनुसार क्लासिकल सिद्धान्त की पूर्ण-रोजगार की मान्यता एक विशेष दशा में ही लागू होती है सामान्य दशा में नहीं।

कीन्स ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक में रोजगार तथा आय निर्धारण के लिए एक क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया तथा उन कारणों पर प्रकाश डाला जो किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा रोजगार के स्तर को अल्पकाल में प्रभावित करते हैं। अपने रोजगार सिद्धान्त को प्रतिपादित करते समय कीन्स ने आर्थिक विश्लेषण के लिए कुछ नए यन्त्रों का प्रयोग किया जैसे उपभोग फलन, उपभोग की प्रवृत्ति, विनियोग फलन, पूँजी की सीमान्त दक्षता, गुणक, प्रभावपूर्ण मांग आदि। इनकी व्याख्या अगली इकाईयों में विस्तार से की गई है। इस इकाई में केवल कीन्स के रोजगार सिद्धान्त की चर्चा विस्तार से करेंगे।

इस बात पर विशेष ध्यान देना अत्यंत ही आवश्यक है कि कीन्स का रोजगार सिद्धान्त अल्पकाल की मान्यता पर आधारित है। अल्पकाल में यह मान लिया जाता है कि पूँजीगत सम्पत्तियाँ, तकनीकी ज्ञान, श्रमिक की उत्पादकता तथा श्रमशक्ति आदि चरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अतः कीन्स के अनुसार रोजगार का स्तर, राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन स्तर पर निर्भर करेगा तथा उत्पादन की मात्रा को रोजगार के स्तर में वृद्धि करके बढ़ाया जा सकता है। कीन्स के अनुसार ''राष्ट्रीय आय अधिक होने का अर्थ है रोजगार का ऊँचा स्तर।'' अतः कीन्स का सिद्धान्त रोजगार निर्धारण सिद्धान्त भी है तथा राष्ट्रीय आय (उत्पादन) के निर्धारण का भी। क्योंकि राष्ट्रीय आय तथा रोजगार दोनों को निर्धारण करने वाले तत्व एक ही हैं।

9.2 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- समझ सकेंगे कि क्लासिकल रोजगार सिद्धान्त में क्या कमियाँ थीं।
- कीन्स ने उन कमियों को दूर कैसे किया तथा सामान्य सिद्धान्त द्वारा अधिक व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

- प्रभावपूर्ण मांग के अर्थ को समझ सकेंगे।
- बन्द तथा खुली अर्थव्यवस्था में रोजगार व आय निर्धारण की प्रक्रिया का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- आर्थिक क्षेत्र में कीन्स के योगदान का महत्व समझेंगे।
- राष्ट्रीय उपभोग, बचत, विनियोग आदि धारणाओं को स्पष्ट रूप से समझेंगे।

9.3 प्रभावपूर्ण मांग तथा कीन्सीय रोजगार सिद्धान्त:

कीन्स के अनुसार ''किसी अर्थव्यस्था में, अल्पकाल में रोजगार का स्तर, उस देश में उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए प्रभावपूर्ण मांग पर निर्भर करता है। कुल उत्पादन कुल मांग का फलन होता है तथा बेरोजगारी का मुख्य कारण इसी मांग में कमी का होना है।''

किसी भी अर्थव्यवस्था में, रोजगार का स्तर उस अर्थव्यवस्था में विद्यमान उत्पादन-क्षमता के प्रयोग के स्तर पर निर्भर करता है। जितना अधिक उत्पादन क्षमता का प्रयोग होगा, रोजगार का स्तर उतना ही अधिक होगा। किन्तु उत्पादन-क्षमता का प्रयोग इस बात पर निर्भर करता है कि बाजार में वस्तुओं की मांग कितनी है क्योंकि जितनी अधिक वस्तुओं की मांग होगी साहसी को उतनी ही अधिक वस्तुएँ बेचने की प्रत्याशा होगी और उसकी बिक्री से प्राप्त आय भी उतनी ही अधिक होगी। दूसरे शब्दों में प्रभावपूर्ण मांग का अर्थ, एक दिए गए रोजगार स्तर पर अर्थव्यवस्था के कुल व्यय से भी है। अतः इस दिए हुए रोजगार स्तर पर अर्थव्यवस्था का कुल व्यय उसके कुल पूर्ति मूल्य के बराबर होता है अर्थात उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की कुल उत्पादन लागत के बराबर होता है। रोजगार के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित समग्र मांग के विभिन्न स्तर होंगे। किन्तु रोजगार का एक स्तर ऐसा होगा जिस पर समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर हो। इस स्तर को कीन्स ने प्रभावपूर्ण मांग कहा। अर्थात् समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति का संस्थिति बिन्दु प्रभावपूर्ण मांग बिन्दु है और किसी भी अर्थव्यवस्था में रोजगार स्तर का निर्धारण इसी प्रभावपूर्ण मांग द्वारा होता है। यही कीन्स के रोजगार सिद्धान्त का मूल बिन्दु है। कीन्स के अनुसार किसी भी अर्थव्यवस्था में अनैच्छिक बेरोजगारी का मुख्य कारण इसी प्रभावपूर्ण मांग में कमी होना है। प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि करके बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है।

प्रभावपूर्ण मांग अर्थव्यवस्था की उपभोग तथा विनियोग के लिए समग्र मांग अथवा कुल मांग है। अर्थात प्रभावपूर्ण मांग के दो मुख्य निर्धारक हैं, उपभोग व्यय तथा विनियोग व्यय। प्रभावपूर्ण मांग का स्तर, रोजगार के स्तर का निर्धारण करता है जो बदले में अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा आय के स्तर का निर्धारण करता है। अतः यह कह सकते हैं कि रोजगार का स्तर मुख्यतः उपभोग तथा विनियोग के स्तर पर निर्भर करता है। अतः रोजगार में वृद्धि करने के लिए प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि

करना आवश्यक है तथा प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि, उपभोग तथा विनियोग में वृद्धि करके की जा सकती है।

9.3.1 समग्र-पूर्ति फलन (ASF):

समग्र पूर्ति मूल्य एक न्यूनतम प्रत्याशित मुद्रा की राशि होती है जिसे कोई भी साहसी श्रमिकों को रोजगार देते समय प्राप्त करना चाहता है। दूसरे शब्दों में समग्र पूर्ति मूल्य, रोजगार के एक दिए हुए स्तर पर कुल उत्पादन लागत होती है। यह वह न्यूनतम प्रत्याशित आय होती है जो एक साहसी रोजगार के विभिन्न स्तरों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कुल मात्रा को बाजार में बेच कर प्राप्त करने की प्रत्याशा करता है। निश्चित रूप से कोई भी साहसी श्रमिकों को तब तक रोजगार नहीं देगा जब तक वह उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को बेच कर, उनकी उत्पादन लागत के बराबर आय न प्राप्त कर ले। रोजगार के विभिन्न स्तरों पर प्राप्त यह न्यूनतम मूल्य प्राप्तियाँ समग्र पूर्ति मूल्य कहलाता है।

कीन्सीय सिद्धान्त के अनुसार यदि वस्तु बाजार तथा श्रम बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो तो वस्तुओं की एक स्थिर कीमत (P) होगी जिस पर कुल उत्पादित वस्तुएँ बिक जाएंगी। इसी प्रकार सभी श्रमिक एक दी हुई मजदूरी दर (W) पर प्राप्त किए जा सकेंगे। अतः अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए कोई भी साहसी श्रमिकों को उस स्तर तक रोजगार देगा जिस पर श्रम की अन्तिम इकाई द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत, उसको दी जाने वाली मजदूरी के बराबर न हो जाए। अर्थात् $P \times MP = W$ यहाँ P = उत्पादित वस्तु की प्रति इकाई प्रत्याशित विक्रय कीमत, MP = श्रमिक का सीमान्त उत्पादन तथा W = श्रमिक की प्रति इकाई मौद्रिक मजदूरी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रोजगार के किसी स्तर के लिए वह कीमत, जिस पर साहसी, अपने उत्पादन को बेचकर आय प्राप्त करने की प्रत्याशा करता है, श्रमिकों की अन्तिम इकाई की लागत अथवा मजदूरी के बराबर होगी। जिसे इस प्रकार दिखा सकते हैं:-

$$P = \frac{W}{MP}$$

कीन्स के अनुसार समग्र पूर्ति फलन रोजगार के स्तर का बढ़ता हुआ फलन होता है अर्थात् $P = f(N)$ जिसमें P समग्र पूर्ति कीमत है तथा N रोजगार में लगे श्रमिकों की संख्या। इस आधार पर समग्र पूति वक्र को चित्र में निम्न प्रकार से दिखा सकते हैं। समग्र पूर्ति वक्र बांयी ओर से दाहिनी ओर ऊपर उठता है क्योंकि जैसे-जैसे प्रत्याशित बिक्री प्राप्तियों में वृद्धि होती है रोजगार के स्तर में भी वृद्धि होती जाती है। किन्तु जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर पर पहुंच जाती है तब समग्र पूर्ति वक्र लम्ब अक्ष (OY) के समानान्तर हो जाता है। ऐसी स्थिति में बिक्री प्राप्तियों में वृद्धि होने के बाद भी रोजगार के स्तर में वृद्धि नहीं हो सकती क्योंकि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर पर पहुंच जाती है।

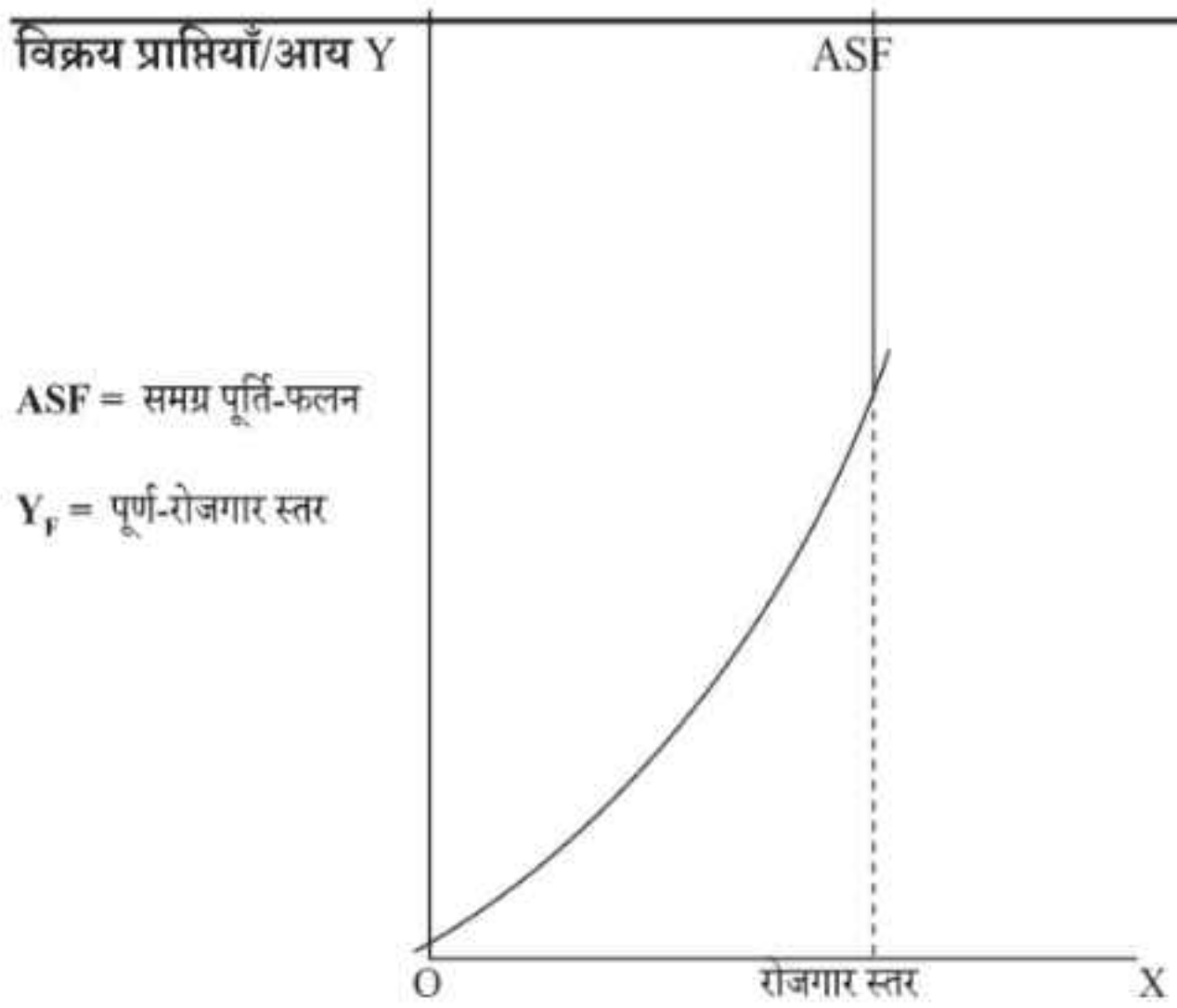

9.3.2 समग्र मांग फलन (ADF):

कीन्सीय रोजगार सिद्धान्त में रोजगार तथा आय का निर्धारण समग्र मांग के द्वारा ही होता है। क्योंकि कीन्स ने मूल्य स्तर तथा समग्र पूर्ति को दिया हुआ माना है। इसलिए कीन्सीय मॉडल को मांग मॉडल भी कहते हैं।

समग्र मांग फलन, आय प्राप्तियों की उन विभिन्न मात्राओं को दिखाता है जो किसी अर्थव्यवस्था में साहसी, रोजगार के विभिन्न स्तरों पर उत्पादित, उत्पादन मात्रा की बिक्री से प्राप्त करने की आशा करते हैं। दूसरे शब्दों में, वह प्रत्याशित आगम है जो रोजगार के एक दिए हुए स्तर पर उत्पादित वस्तुओं की बिक्री से प्राप्त की जाती है।

क्योंकि उत्पादित वस्तुओं की बिक्री से प्राप्त प्रत्याशित आय वास्तव में किसी अर्थव्यवस्था में हुए कुल प्रत्याशित व्यय के बराबर होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी अर्थव्यवस्था में रोजगार के विभिन्न स्तरों द्वारा उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं की कुल मांग वास्तव में समस्त इकाइयों द्वारा व्यय ही है। अतः जैसे-जैसे देश में रोजगार की मात्रा बढ़ेगी, उत्पादन में वृद्धि हेगी तथा व्यक्तियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की मांग भी बढ़ेगी। इस प्रकार समग्र मांग फलन एक अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं पर प्रत्याशित समग्र व्यय तथा कुल रोजगार अथवा उत्पादन (आय) के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। किसी भी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं पर व्यय करने वाली इकाइयों को चार वर्गों में रखा जा सकता है:

1-घरेलू क्षेत्र या उपभोक्ता क्षेत्र: जो उपभोग वस्तुओं पर व्यय करता है अर्थात C

2-व्यक्तिगत व्यापारिक इकाइयाँ या पूँजीगत वस्तुओं पर व्यक्तिगत इकाइयों द्वारा व्यय अथवा विनियोग अर्थात I

3-सरकारी क्षेत्र अथवा सरकार द्वारा व्यय अर्थात Y

4-विदेशी क्षेत्र द्वारा व्यय अथवा निवल निर्यात (X-M) अर्थात निर्यात तथा आयात का अन्तर। निवल निर्यात विदेशी क्षेत्र द्वारा घरेलू वस्तुओं पर व्यय प्रदर्शित करेगा।

समग्र मांग इन सभी क्षेत्रों द्वारा किए गए कुल व्यय का योग होगी। अर्थात समग्र मांग इस बात पर निर्भर करेगी कि रोजगार (आय तथा उत्पादन) निर्धारण विश्लेषण में कितने क्षेत्रों को एक साथ सम्मिलित करते हैं:

1-यदि समग्र मांग में घरेलू क्षेत्र तथा व्यापारिक इकाइयों को ही सम्मिलित करें तो समग्र मांग अर्थात AD = C + I होगी। जिसमें C = घरेलू क्षेत्र द्वारा उपभोग वस्तुओं पर व्यय, तथा I = व्यापारिक इकाइयों द्वारा पूँजीगत वस्तुओं पर व्यय।

2-यदि समग्र मांग में सरकारी क्षेत्र को भी सम्मिलित कर लिया जाए अर्थात त्रिक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में तब समग्र मांग AD = C + I + G होगा जिसमें G = सरकारी व्यय।

3-यदि समग्र मांग में विदेशी क्षेत्र (आयात तथा निर्यात) को भी सम्मिलित कर लें तो समग्र मांग AD = C + I + G + (X-M) हो जाएगी। ऐसी अर्थव्यवस्था खुली अर्थव्यवस्था कहलाती है। इन तीनों स्थितियों में संस्थिति राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार स्तर का निर्धारण अलग-अलग होगा। जिसकी चर्चा बाद में अलग से की गई है।

9.3.3 रोजगार के सन्तुलन स्तर का निर्धारण:

किसी अर्थव्यवस्था में समग्र मांग फलन, साहसियों की प्राप्तियों को तथा समग्र पूर्ति फलन उनकी कुल लागतों को प्रदर्शित करते हैं। यही दोनों फलन अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर का निर्धारण करते हैं। जिस बिन्दु पर समग्र मांग वक्र तथा समग्र पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटते हैं उस बिन्दु को कीन्स ने प्रभावपूर्ण मांग बिन्दु कहा। प्रभावपूर्ण मांग बिन्दु यह दिखाता है कि रोजगार के एक दिए गए स्तर पर समग्र मांग (अर्थात प्राप्तियाँ) समग्र पूर्ति (अर्थात लागतों) के बराबर है। अतः अर्थव्यवस्था संस्थिति में है। यह अल्पकालीन संस्थिति बिन्दु है जो रोजगार तथा आय के स्तर को निर्धारित करता है। इसे निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते है:-

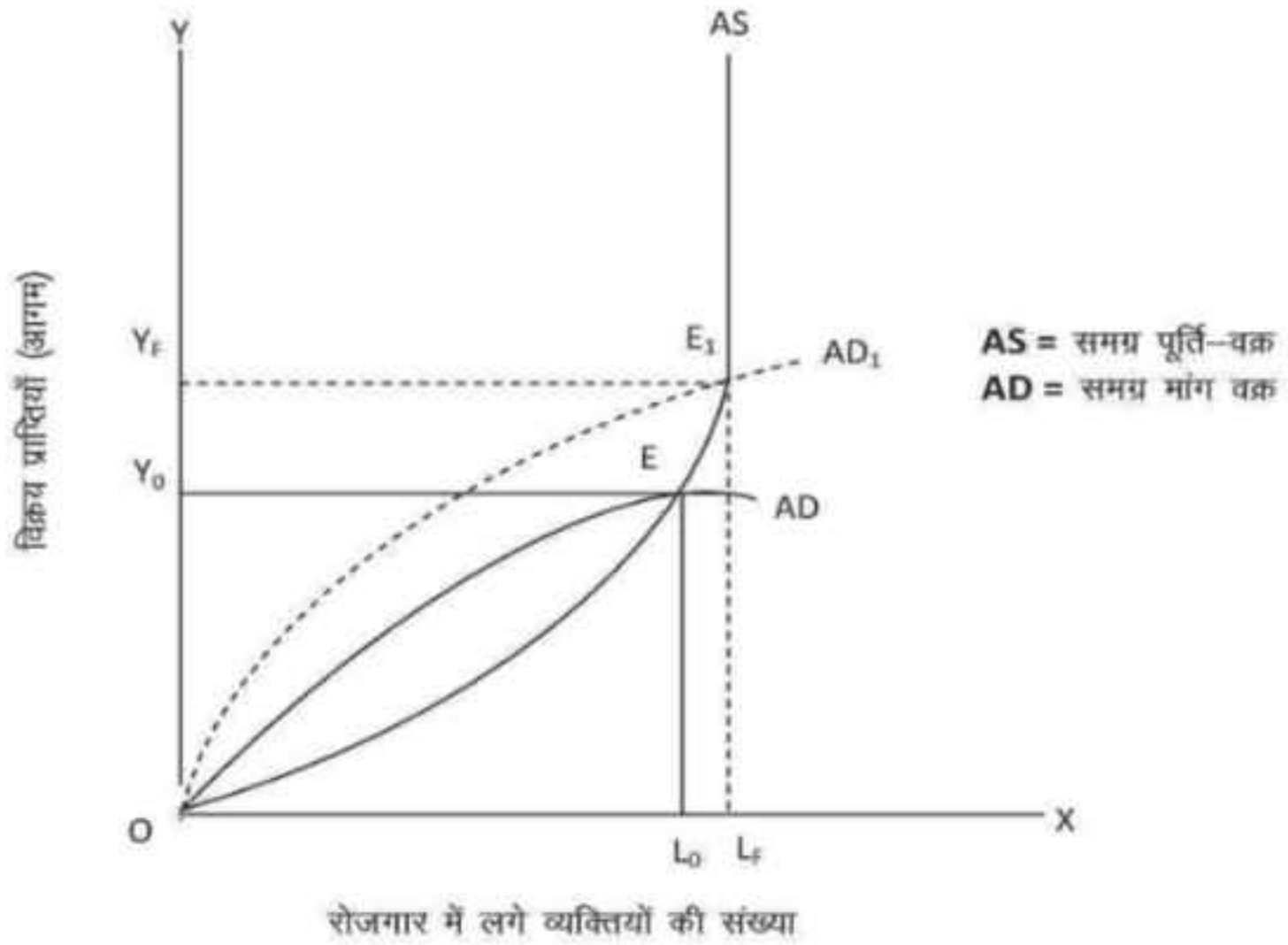

चित्र में, उत्पादित वस्तुओं तथा सेवओं की बिक्री से प्राप्त प्रत्याशित आय को OY अक्ष पर तथा रोजगार स्तर को OX अक्ष पर दिखाया गया है। समग्र मांग वक्र AD तथा समग्र पूर्ति वक्र AS दोनों एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। अतः E बिन्दु प्रभावपूर्ण मांग बिन्दु है। इस बिन्दु के अनुसार अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर OL_0 है तथा इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की विक्रय प्राप्तियाँ OY_0 है। अतः इस बिन्दु पर साहसी को अधिकतम आय प्राप्त होती है और अर्थव्यवस्था संस्थिति में है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह पूर्ण रोजगार संस्थिति ही हो।

कीन्स के अनुसार, E बिन्दु अल्प रोजगार सन्तुलन बिन्दु है क्योंकि चित्र के अनुसार अभी भी L_0L_F व्यक्ति बेरोजगार है। जबकि पूर्ण रोजगार का स्तर L_F है जिसे प्राप्त करने के लिए समग्र मांग को बढ़ाना होगा। यदि समग्र मांग बढ़कर AD_1 हो जाती है तो यह पूर्ति वक्र AS के E_1 बिन्दु पर काटती है और अर्थव्यवस्था एक नए बिन्दु E_1 पर सन्तुन में आ जाती है। परिणामस्वरूप रोजगार का स्तर बढ़कर व्स्थ् हो जाता है तथा विक्रय प्राप्तियाँ (आय) Y_F तक बढ़ जाती हैं। यही पूर्ण रोजगार संस्थिति बिन्दु है। इसके आगे यदि समग्र मांग AD में वृद्धि की जाती है तो रोजगार के स्तर में कोई वृद्धि नहीं होगी और अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी क्योंकि समग्र पूर्ति वक्र AS लम्ब अक्ष OY के समानान्तर हो गया है।

कीन्स का रोजगार सिद्धान्त क्योंकि अल्पकाल तथा अवसाद की स्थिति से सम्बन्धित है अतः कीन्सीय सिद्धान्त में पूर्ति वक्र की आय तथा रोजगार निर्धारण में कोई सक्रिय भूमिका नहीं होती है। इसलिए कीन्स के सिद्धान्त को समग्र मांग का सिद्धान्त भी कहा जाता है। अल्पकाल में पूर्ति मूल्य

अथवा लागत में सामान्यतः परिवर्तन नहीं होते हैं इसलिए समग्र मांग में होने वाले परिवर्तन ही मुख्यतः रोजगार के स्तर का निर्धारण करते हैं।

9.4 द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था तथा राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार निर्धारण:

कीन्स के सिद्धान्त में किसी अर्थव्यवस्था में संस्थिति उत्पादन स्तर वह होगा जिस पर समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर हो। समग्र मांग के दो भाग हैं: एक उपभोग वस्तुओं की मांग तथा दूसरी पूँजीगत वस्तुओं की मांग। अतः संस्थिति उत्पादन स्तर अर्थव्यवस्था में उपभोग (C) तथा विनियोग (I) पर निर्भर करेगा। यहां उपभोग (C) की मात्रा आय पर निर्भर करेगी क्योंकि $C=f(Y)$ अर्थात उपभोग आय का फलन है अर्थात $Y = C + I$ जिसे इस प्रकार भी दिखा सकते हैं- $Y = C_0 + cY + I$ उपभोग के बाद आय का शेष भाग बचत होती है अर्थात $Y = C + S$ अर्थात आय = उपभोग +बचत। बचत का निर्णय घरेलू क्षेत्र द्वारा किया जाता है जबकि विनियोग सम्बन्धी निर्णय व्यापारिक इकाइयों द्वारा किया जाता है। कीन्स मानते हैं कि सभी बचतें विनियोजित हो जाती है, अतः बचत = विनियोग अर्थात $S = I$। अतः समग्र मांग $AD = C + I$ अर्थव्यवस्था में संस्थिति की स्थिति तभी होगी जब सभी आय व्यय कर दी जाए अर्थात $Y = E$ अर्थात समग्र आय = समग्र व्यय। यह स्थिति तभी होगी जब बचत व विनियोग बराबर हो। अर्थात $S = I$ कीन्स के अनुसार, $S = I$ की स्थिति संस्थिति के लिए आवश्यक शर्त है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह संस्थिति पूर्ण रोजगार स्तर पर ही हो। एक द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में संस्थिति आय (उत्पादन) तथा रोजगार के स्तर के निर्धारण को रेखाचित्र में इस प्रकार दिखा सकते हैं:

OZ = समग्र आय-व्यय रेखा अर्थात $Y = C + S$

AI = स्वायत्त-विनियोग रेखा जो आय-स्तर से प्रभावित नहीं होता।

CC रेखा = उपभोग-फलन अर्थात $C=Co + cY$ बल् इस रेखा का ढाल सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को दिखाता है।

OC = आवश्यक न्यूनतम उपभोग सीमा जो आय के स्तर से प्रभावित नहीं होती।

$C + I$ रेखा = उपभोग व विनियोग स्तर दिखाती है।

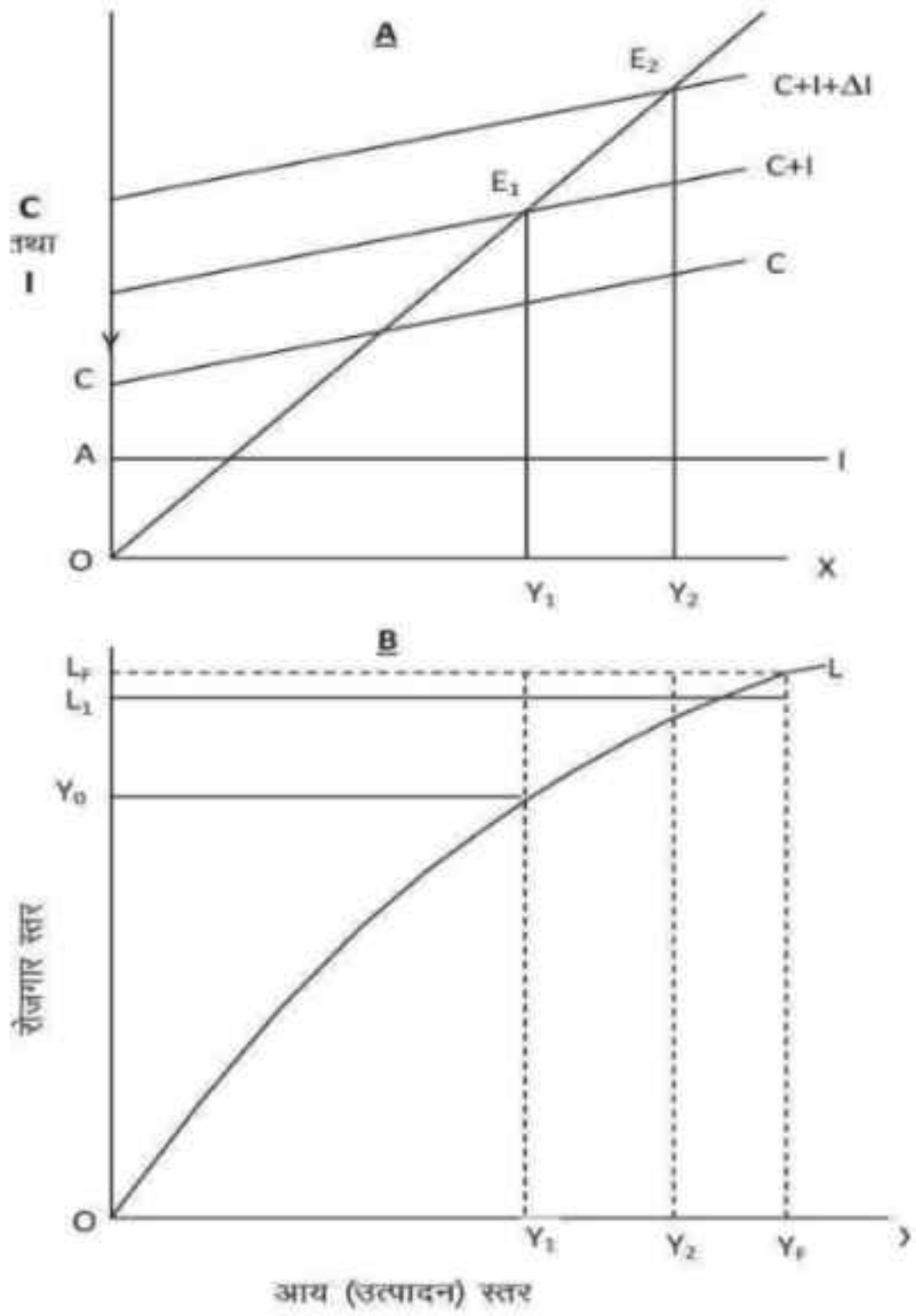

OZ रेखा को C + I रेखा E_1 बिन्दु पर काटती है जिसके अनुसार संस्थिति उत्पादन स्तर OY_1 है। अर्थात् OY_1 = C + I यहां महत्वपूर्ण यह है कि यद्यपि OY_1 संस्थिति उत्पादन स्तर है किन्तु यह आवश्यक रूप से पूर्ण रोजगार उत्पादन स्तर नहीं है। किन्तु यदि यह मान लें कि पूर्ण रोजगार स्तर OL_F हो तो इस स्तर की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि समग्र मांग में वृद्धि लाई जाए। मान लें कि यदि अर्थव्यवस्था में ΔI के बराबर विनियोग में वृद्धि की जाती है तो नई समग्र मांग रेखा C + I + ΔI होगी। इस स्थिति में संस्थिति उत्पादन स्तर OY_2 होगा और रोजगार की मात्रा L_0 से L_1 तक बढ़ जाएगी। किन्तु अभी भी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं है क्योंकि L_1L_F व्यक्ति बेरोजगार है। अतः रोजगार में वृद्धि करने के लिए समग्र मांग में वृद्धि करनी होगी। इसके बाद समग्र मांग में वृद्धि से रोजगार में वृद्धि नहीं होगी क्योंकि रोजगार वक्र OL आधार अक्ष Ox के समानान्तर ही गया है।

9.5 त्रिक्षेत्रीय बन्द अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार का निर्धारण:

कीन्स के सिद्धान्त में सार्वजनिक व्यय या सरकारी क्रय का महत्वपूर्ण स्थान है। कीन्स ने क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की अहस्तक्षेप नीति के विरुद्ध, एक अवसादग्रस्त पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को बेरोजगारी की स्थिति से निकालने के लिए सार्वजनिक व्यय की भूमि पर बहुत अधिक बल दिया। सरकार, करारोपण (T) तथा सरकारी व्यय (Y) के द्वारा उत्पादन को अधिकतम तथा रोजगार के स्तर में वृद्धि करने का प्रयास करती है। सरकारी व्यय (Y) के कारण अर्थव्यवस्था में समग्र-व्यय बढ़ जाता है जिससे राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के स्तर में वृद्धि लाई जा सकती है। क्योंकि अवसाद की स्थिति में, पूँजी की सीमान्त दक्षता कम होती है अतः आय में वृद्धि के साथ व्यक्तिगत व्यय में वृद्धि नहीं होती।

साथ ही कीन्स ने माना कि उपभोग (C) आय का घटता हुआ फलन होता है अतः आय में वृद्धि के साथ-साथ उपभोग में कमी आती है। इन दोनों कारणों से समग्र मांग में गिरावट आएगी। इस कमी को दूर करने के लिए कीन्स ने सरकारी व्यय का सुझाव दिया जिससे समग्र मांग में वृद्धि हो और राष्ट्रीय आय तथा रोजगार स्तर में वृद्धि हो जाए। किन्तु दूसरी ओर सरकार, अपनी आय में वृद्धि करने के लिए कर लगाती है जिसके कारण अर्थव्यवस्था में व्यक्तियों की व्यय योग्य आय (Y_d) में कमी आती है। क्योंकि, $Y_d = Y - T$ (कर)

एक त्रिक्षेत्रीय मॉडल में संस्थिति आय व उत्पादन स्तर निर्धारण की प्रक्रिया को निम्न चित्र में दिखाया गया है:

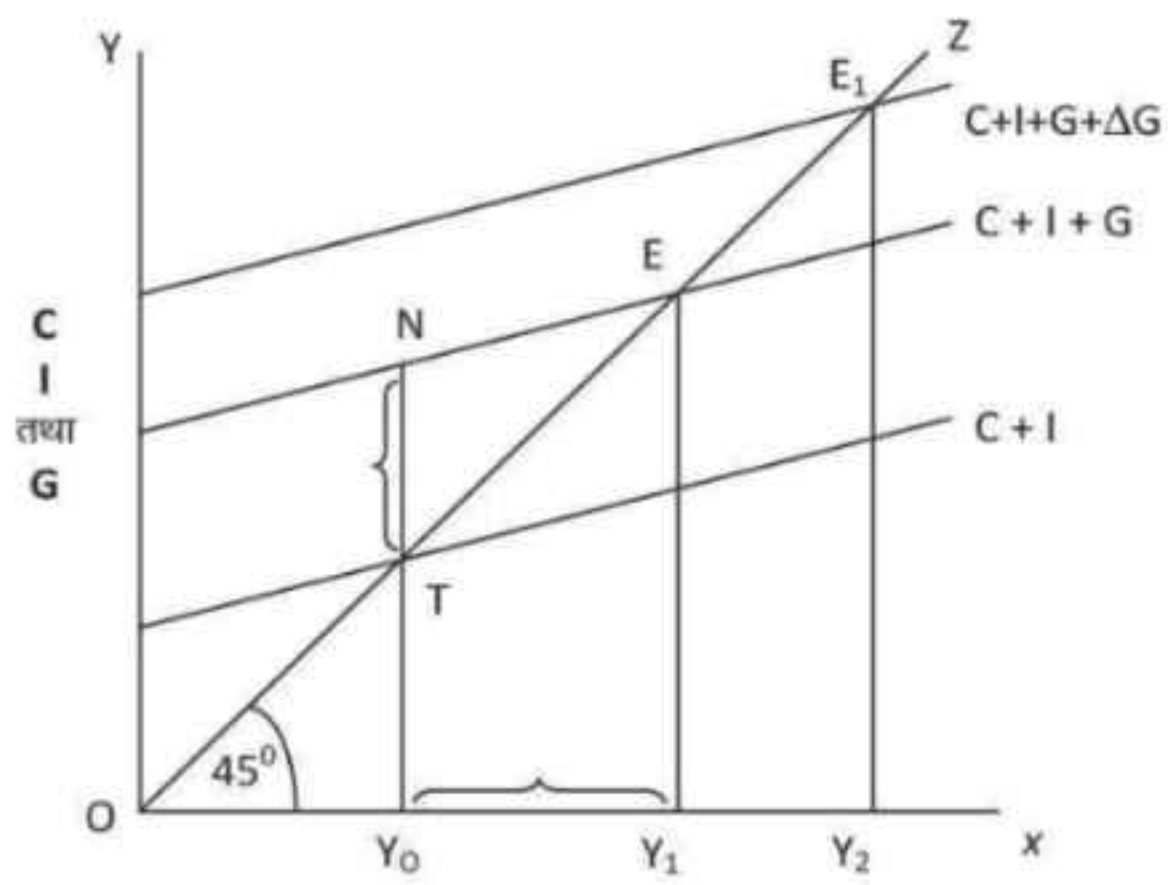

OZ = समग्र आय व्यय रेखा,

C + I रेखा त्र समग्र व्यय रेखा,

C + I + G = समग्र व्यय रेखा में सरकारी व्यय को सम्मिलित करके इसे प्राप्त किया गया है। इसके अनुसार आय-स्तर OY_1 है क्योंकि E बिन्दु पर समग्र आय = समग्र व्यय। सरकारी व्यय में वृद्धि ΔG के कारण समग्र व्यय रेखा C + I + G बढ़कर C + I + G + ΔG हो जाती है तथा संस्थिति बिन्दु E से बढ़कर E_1 हो जाता है और आय स्तर बढ़कर OY_2 हो जाता है। इस प्रकार कीन्स ने यह स्पष्ट किया कि सार्वजनकि व्यय में थोड़ी सी वृद्धि अर्थात NT आय में अधिक वृद्धि लाती है अर्थात $NT < Y_0Y_1$ क्योंकि सरकारी व्यय में होने वाली वृद्धि के परिणामस्वरूप आय में होने वाली वृद्धि विनियोग वृद्धि की गई गुना होगी और इन दोनों के बीच के अनुपात में कीन्स ने गुणक कहा।

9.6 खुली अर्थव्यवस्था अथवा विदेशी क्षेत्र तथा संस्थिति आय, उत्पादन तथा रोजगार का निर्धारण:

खुली अर्थव्यवस्था का आशय ऐसी अर्थव्यवस्था से होता है जिसमें विदेशी व्यापार सम्मिलित होता है तथा व्यक्ति एक दूसरे की वस्तुओं पर आयात-निर्यात के रूप में व्यय करते हैं। कीन्स ने इस तथ्य को माना कि समग्र मांग की गणना करते समय आयात (M) तथा निर्यात (X) को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। यदि अन्य बातें समान रहें तो एक खुली अर्थव्यवस्था में, घरेलू अर्थव्यवस्था की आय, उत्पादन व रोजगार की मात्रा में वृद्धि कुल निर्यातों में वृद्धि तथा कुल आयातों में कमी के साथ होगी।

किसी देश के आयातों का स्तर, घरेलू वस्तुओं की मांग को प्रभावित करने वाले कारकों के द्वारा ही प्रभावित होता है। अतः आयातों की मात्रा का निर्धारण भी आय के स्तर के द्वारा ही होता है अर्थात M = my इसमें M = आयात की मात्रा तथा m = सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा Y = आय का स्तर इसी प्रकार शुद्ध निर्यात (X_n) भी आय का फलन होगा किन्तु कुल निर्यात आय से स्वतन्त्र रूप से निर्धारित होगा। इस प्रकार $X_n = X - my$

एक खुली अर्थव्यवस्था में समग्र आय तथा समग्र व्यय की संस्थति की स्थिति को सूत्र में दिखाने पर $AD = C + I + G + X_n$

कीन्स के अनुसार, विदेशी क्षेत्र को सम्मिलित करने से भी संस्थति आय का निर्धारण वहीं होगा जहां समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर होगी। यदि हम यह मान लें कि सम्पूर्ण सरकारी व्ययों (Y) की पूर्ति करो (T) द्वारा हो जाती है अर्थात G = T तथा निर्यात (X) = आयात (M) अथवा X - my = 0 हो ऐसी स्थिति में इसे ऐसे दिखा सकते हैं:

Y (आय) = C + S + T + M

ल् (उत्पादन) = C + I + G + X गए क्योंकि

आय = उत्पादन, अतः

C + S + T + M = C + I + G + X

क्योंकि G = T तथा X = M अतः संस्थिति की स्थिति में C + S = C + I होगा अर्थात I = S अतः अर्थव्यवस्था में विनियोग तथा बचत बराबर होगी और अर्थव्यवस्था संस्थिति की स्थिति में बनी रहेगी। इसे चित्र में दिखाने पर,

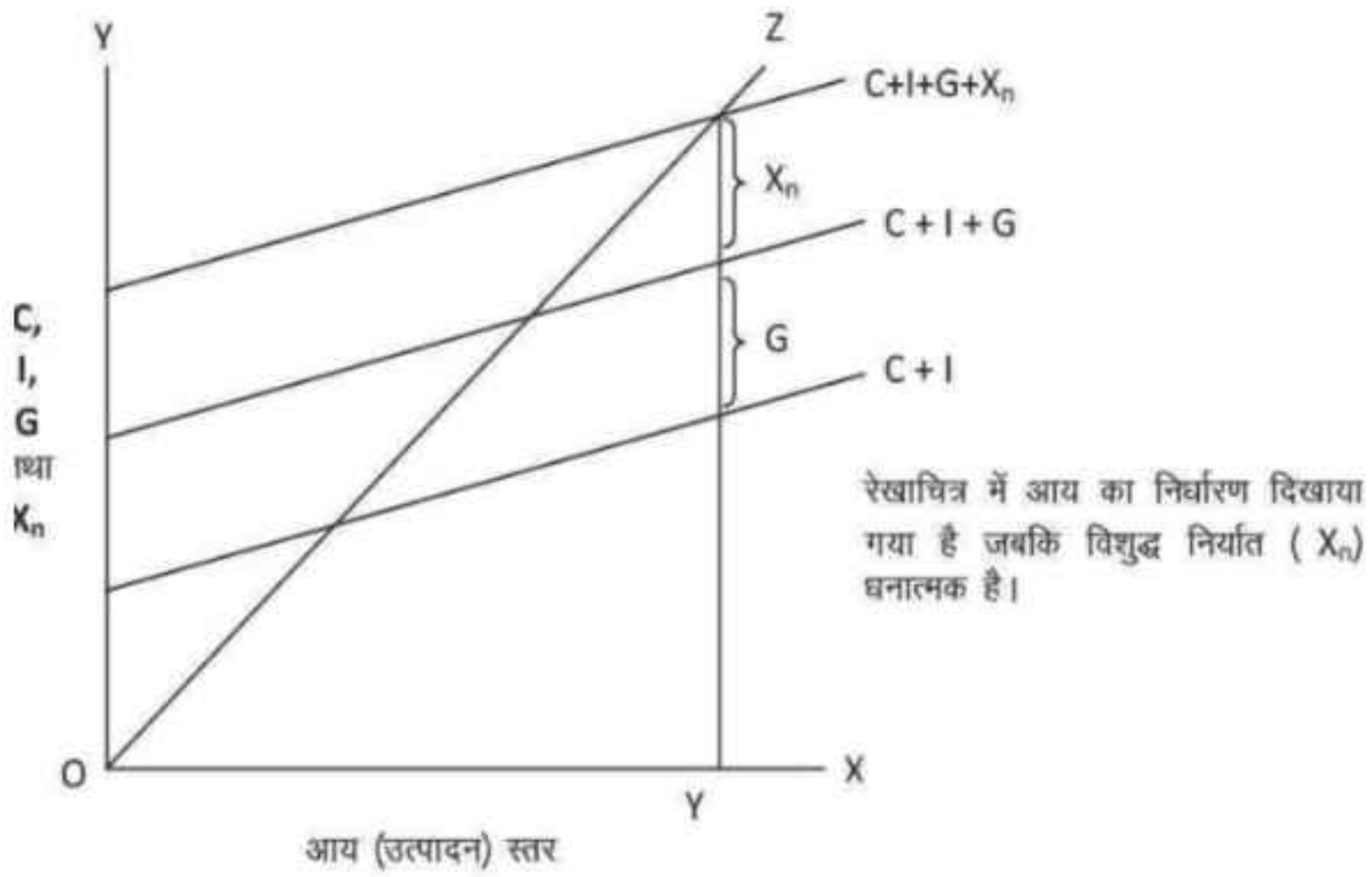

रेखाचित्र में आय का निर्धारण दिखाया गया है जबकि विशुद्ध निर्यात (X_n) धनात्मक है।

9.7 कीन्स के सिद्धान्त की आलोचना:

रोजगार तथा राष्ट्रीय आय निर्धारण की दिशा में कीन्स का सिद्धान्त एक क्रान्तिकारी तथा ठोस कदम है किन्तु इसमें भी कुछ त्रुटियाँ है जिनके कारण इसकी आलोचना की जाती है:-

1. कीन्स का सिद्धान्त सभी प्रकार की बेरोजगारी की दशाओं में लागू नहीं होता। यह केवल मन्दी की स्थिति में बेरोजगारी की चर्चा करता है किन्तु वर्तमान स्थिति में स्फीतिकारी दशाएं है तथा बेरोजगारी भी अधिक है इसके अतिरिक्त प्राविधिक बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी आदि की चर्चा कीन्स ने नहीं की।

2. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

3. कीन्स के रोजगार सिद्धान्त को सामान्य सिद्धान्त कहना गलत है क्योंकि यह केवल पूँजीवादी विकसित देशों की समस्या का विश्लेषण करता है। अपेक्षाकृत कम विकसित तथा विकासशील देशों पर यह लागू नहीं होता क्योंकि उनकी परिस्थितियाँ अलग प्रकार की हैं।

4. कीन्स ने प्रभावपूर्ण मांग तथा रोजगार स्तर के बीच क्रियात्मक सम्बन्ध को माना है किन्तु इसके लिए उन्होंने कोई अनुभवजन्य सांख्यिकीय प्रमाण नहीं दिए।

5. कीन्स का सिद्धान्त एक स्थैतिक सिद्धान्त है क्योंकि उनके रोजगार स्तर निर्धारण के सभी चरों में समय पश्चता का अभाव है।

6. कीन्स ने अपने सिद्धान्त में दीर्घकाल की अवहेलना की है जबकि पूर्ण रोजगार संस्थिति प्राप्त करना किसी भी अर्थव्यवस्था का एक दीर्घकालीन उद्देश्य होता है।

7. एक प्रावैगिक अर्थव्यवस्था में बचत तथा विनियोग में समानता लाना प्रायः कठिन तथा असंभव होता है।

8. यह सिद्धान्त समष्टिवादी दृष्टिकोण पर आधारित है अथवा अत्यधिक समग्रित सिद्धान्त है। उनके सभी निष्कर्ष समग्र मांग, समग्र पूर्ति, कुल आय, कुल उपभोग आदि तत्वों पर आधारित हैं। प्रायः समग्रित अवधारणाएं भ्रामक होती हैं।

9.8 सारांश:

1. किसी अर्थव्यवस्था की कुल आय उसके कुल रोजगार स्तर पर निर्भर करती है।
2. कुल रोजगार स्तर प्रभावपूर्ण मांग द्वारा निर्धारित होता है।
3. समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति के सन्तुलन बिन्दु को कीन्स ने प्रभावपूर्ण मांग बिन्दु कहा।
4. कीन्स ने माना कि अल्पकाल में प्रायः समग्र पूर्ति स्थिर रहती है अतः रोजगार स्तर निर्धारण में केवल समग्र मांग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
5. समग्र मांग व्यय के ऊपर निर्भर करती है। किसी अर्थव्यवस्था में समग्र व्यय चार व्ययों का योग होता है अर्थात (1) उपभोग (C), (2) विनियोग (I), (3) सरकारी व्यय (G) तथा (4) निवल विदेशी व्यापार (X-M) इसलिए समग्र मांग = C + I + G (X - M)
6. उपभोग मांग (C) उपभोग प्रवृत्ति तथा आय पर निर्भर करती है। अल्प काल में प्रायः उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है।
7. विनियोग मांग (I) पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा ब्याज की दर पर निर्भर करती है। ब्याज दर अल्पकाल में अधिक परिवर्तित नहीं होती।

8. अवसाद की स्थिति में पूँजी की सीमान्त दक्षता कम होती है इसलिए व्यक्तिगत विनियोग (I) में वृद्धि नहीं होती। अतः समग्र मांग में वृद्धि लाने के लिए कीन्स ने सरकारी व्यय (G) का सुझाव दिया।
9. पूँजी की सीमान्त दक्षता, पूँजी सम्पत्ति की पूर्ति कीमत तथा सम्पत्ति की भावी आय के द्वारा निर्धारित होती है।
10. ब्याज की दर दो बातों से प्रभावित होती है, (1) मुद्रा की पूर्ति जो अल्पकाल में स्थिर रहती है तथा (2) व्यक्तियों की तरलता पसन्दगी।
11. किसी अर्थव्यवस्था में विनियोग का मुख्य निर्धारक पूँजी की सीमान्त दक्षता ही होती है।

9.9 शब्दावली:

समग्र मांग: किसी अर्थव्यवस्था की कुल मांग अर्थात कुल उत्पादित उपभोग वस्तुओं तथा पूँजीगत वस्तुओं और सेवाओं के लिए मांग।

समग्र पूर्ति: किसी अर्थव्यवस्था में एक निश्चित समयावधि में उत्पादित कुल उपभोग वस्तुओं तथा पूँजी वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति

प्रभावपूर्ण मांग: समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति जिस स्तर पर बराबर हो, ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था संस्थिति की स्थिति में होती है।

मांग की न्यूनता: पूर्ति की तुलना में मांग का कम होना।

अल्प रोजगार सन्तुलन: जब अर्थव्यवस्था में कुल मांग तथा कुल पूर्ति सन्तुलन में हो किन्तु अभी भी कुछ व्यक्ति अनैच्छिक बेरोजगार हों।

बन्द अर्थव्यवस्था: जब अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार न हो तब इसे बन्द अर्थव्यवस्था कहते हैं।

खुली अर्थव्यवस्था: किसी देश का जब अन्य देशों से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है तब इसे खुली अर्थव्यवस्था माना जाता है।

पूँजी सम्पत्ति की पूर्ति कीमत: एक नई मशीन के उत्पादन पर आने वाली कुल उत्पादन लागत।

पूँजी सम्पत्ति की प्रत्याशित आय: कुल उत्पादन का वह योग जिसे एक मशीन उत्पादन द्वारा अपने सम्पूर्ण जीवन काल में देती है। जिसे बेचकर साहसी कुल आय प्राप्त करते हैं।

तरलता पसन्दगी: व्यक्तियों का अपनी मुद्रा को नकद रूप में अपने पास रखने की प्रवृत्ति या अधिमान।

9.10 अभ्यास प्रश्न:

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. कीन्स के अनुसार किसी अर्थव्यवस्था में बेरोजगार का प्रमुख कारण क्या है?
2. कीन्स के सामान्य सिद्धान्त का मुख्य विषय क्या है?
3. 'मन्दी का अर्थशास्त्र' किसे कहते हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न:

प्रभावपूर्ण मांग क्या होती है?

कीन्स के अनुसार, अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार सन्तुलन लाने के लिए क्या उपाय आवश्यक है?

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1.जिस बिन्दु पर समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर होती है उसे कीन्स ने क्या कहा?

a) संस्थिति बिन्दु
b) प्रभावपूर्ण मांग बिन्दु
c) पूर्ण रोजगार स्तर
d) अधिकतम उपभोग बिन्दु

2. प्रभावपूर्ण मांग बिन्दु वह होता है जहां .....तथा .....बराबर होते हैं।

a) समग्र मांग, समग्र पूर्ति
b) उपभोग, विनियोग
c) बचत, विनियोग
d) आय, व्यय

3. निम्नलिखित में से सही कथन छाँटिए:

a. कीन्स का सिद्धान्त दीर्घकाल की व्याख्या करता है।
b. कीन्स का सिद्धान्त समग्र मांग को अल्पकाल में स्थिर मानता है।
c. कीन्स का सिद्धान्त अपूर्ण रोजगार संस्थिति को दिखाता है।
d. कीन्स का सिद्धान्त पूर्तिजन्य सिद्धान्त है।

4. निम्न में से किसका सम्बन्ध कीन्स के रोजगार सिद्धान्त से नहीं है:

a) उपभोग फलन
b) बचत फलन
c) विनियोग फलन
d) कल्याण फलन

4. कीन्स का रोजगार निर्धारण सिद्धान्त कहलाता है:

a) विशेष सिद्धान्त
b) प्रभावपूर्ण मांग सिद्धान्त

c) विनियोग सिद्धान्त

d) सामान्य सिद्धान्त

6. कीन्स के अनुसार किसी अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार का स्तर निर्भर करता है:

a) प्रभावपूर्ण मांग के आकार पर

b) कुल उत्पादन मात्रा पर

c) श्रमिकों की कुल पूर्ति पर

d) कुल विनियोग की मात्रा पर

7. समाज में उपभोग फलन निर्भर करता है आय के आकार तथा .....

a) व्यय की मात्रा पर

b) उत्पादन के स्तर पर

c) उपभोग प्रवृत्ति पर

d) बचत की क्षमता पर

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. प्रभावपूर्ण मांग की कमी।
2. अर्थव्यवस्था में अल्प बेरोजगार संस्थिति।
3. कीन्स के रोजगार के सामान्य सिद्धान्त को।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. (b) 2. (a) 3. (b) 4. (d) 5. (b) 6. (a) 7. (c)

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- आहूजा, एच0एल0: एडवान्स मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली।
- द्विवेदी, डी0एन0: मैक्रोइकोनामिक्स: थीयरि एण्ड पॉलिसी, टाटा एमसी ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- लाल, एस0एन0: समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण (सिद्धान्त, समस्यायें तथा नीतियाँ) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- शपीरो, एडवर्ड: मैक्रोइकोनामिक एनालिसिस, गलगोटिया पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

9.12 उपयोग सहायक ग्रन्थ:

- J.M. Keynes : General Theory of Employment, Interest and Money.

- Stonier and Hague : A text Book of Economic Theory.
- R.G.D. Allen : Macro-Economic Theory, 1970.
- Gardner Achley : Macroeconomic Theory, 1961.
- Edward Shapiro : Macroeconomic Analysis, 1984.
- Barry N. Siegal : Aggregate Economies and Public Policy, 1970.

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न :

1. कीन्स का सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि एक अर्थव्यवस्था में संस्थिति तथा अनैच्छिक बेरोजगारी की स्थिति एक साथ होना सम्भव है। सिद्ध कीजिए।
2. कीन्सीय सिद्धान्त के अनुसार समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति द्वारा निर्धारित संस्थिति स्तर आवश्यक रूप से पूर्ण रोजगारीय स्तर नहीं होता। उचित आरेखों की सहायता से समझाइए।
3. समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति की परिभाषा दीजिए। इनकी सहायता से कीन्स के रोजगार निर्धारण सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
4. कीन्सीय सिद्धान्त द्वारा राष्ट्रीय आय व रोजगार स्तर का निर्धारण कैसे होता है? सरकारी व्यय (G) द्वारा इसमें कैसे वृद्धि लाई जा सकती है, समझाइए।
5. कीन्स के रोजगार निर्धारण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
6. उचित आरेखों का प्रयोग करके स्पष्ट कीजिए कि कीन्स ने यह सिद्ध किया कि एक अर्थव्यवस्था अपूर्ण रोजगार स्तर पर भी संस्थिति की स्थिति में हो सकती है।

इकाई-10 उपभोग फलन

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 उपभोग फलन का अर्थ
10.3.1 उपभोग फलन के रूप
10.3.2 उपभोग प्रवृत्ति की विशेष ताएँ
10.3.3 उपभोग प्रवृत्ति के रूप
10.3.3.1 औसत उपभोग प्रवृत्ति
10.3.3.2 सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति
10.4 बचत फलन तथा बचत की प्रवृत्ति
10.4.1 बचत की औसत प्रवृत्ति
10.4.2 बचत की सीमान्त प्रवृत्ति
10.5 उपभोग प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले तत्व
10.6 उपभोग फलन: सारांश
10.7 कीन्सीय उपभोग फलन की आलोचना
10.8 उपभोग फलन के वैकल्पिक सिद्धान्त
10.8.1 सापेक्षिक आय परिकल्पना
10.8.2 स्थायी आय परिकल्पना
10.8.3 जीवन चक्र परिकल्पना
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्न
10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.13 उपयोगी सहायक ग्रन्थ
10.14 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपने राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार निर्धारण के विषय में पढ़ा। इस अध्याय में उन तत्वों पर विचार करेंगे जो किसी देश की राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के स्तर को निर्धारित करते हैं। सामान्यतः किसी भी देश में राष्ट्रीय आय तथा रोजगार का स्तर दो तत्वों द्वारा निर्धारित होता है- (1) उपभोग मांग अथवा कुल उपभोग व्यय तथा (2) निवेश मांग अथवा कुल निवेश व्यय। सरल शब्दों में आय तथा उपभोग के बीच निकट सम्बन्ध होता है। उपभोग आय सम्बन्ध की व्याख्या उपभोग फलन के द्वारा की जा सकती है। कीन्स के रोजगार सिद्धान्त में उपभोग फलन तथा उपभोग प्रवृत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। इस अध्याय में उपभोग फलन की चर्चा विस्तार से की गई है।

10.2 उद्देश्य:

इस इकाई का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि कीन्स के रोजगार सिद्धान्त में उपभोग फलन एक महत्वपूर्ण धारणा है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप स्पष्ट कर सकेंगे कि -

- उपभोग फलन का अर्थ क्या है?
- समाज का समस्त उपभोग आय पर किस प्रकार निर्भर करता है?
- उपभोग की प्रवृत्तियाँ क्या होती हैं?
- किस प्रकार बचत तथा बचत की प्रवृत्तियाँ अर्थव्यवस्था में उपभोग को प्रभावित करती हैं।
- कीन्स के उपभोग फलन की मुख्य कमी क्या थी?
- अल्पकालीन उपभोग फलन तथा दीर्घकालीन उपभोग फलन में मुख्य अन्तर क्या है?
- कीन्स के बाद के अर्थशास्त्रियों ने क्या वैकल्पिक सिद्धान्त प्रस्तुत किए?

10.3 उपभोग फलन का अर्थ:

किसी भी अर्थव्यवस्था का कुल उपभोग व्यय अथवा उपभोग मांग उसकी राष्ट्रीय आय पर निर्भर करता है। जब आय बढ़ती है तब कुल उपभोग की मात्रा भी बढ़ जाती है और जब आय घटती है तो उपभोग मात्रा भी कम हो जाती है। उपभोग तथा आय के इस सम्बन्ध को उपभोग फलन कहते हैं। सूत्र में इसे $C = f(Y)$ के रूप में दिखा सकते हैं। इसमें $C =$ उपभोग तथा $Y=$ आय है। अर्थात उपभोग (C),, मुख्यतः आय (Y), का फलन है। अतः उपभोग फलन आय तथा उपभोग के बीच फलनीय सम्बन्ध को व्यक्त करता है। आय के विभिन्न स्तरों पर, उपभोग पर किया गया व्यय उपभोग प्रवृत्ति कहलाती है। जिस आय-स्तर पर उपभोग आय के ठीक बराबर होता है उसे अन्तराल

शून्य बिन्दु कहते हैं। अतः कुल आय का जो भाग उपभोग के लिए व्यय किया जाता है उसे कीन्स ने उपभोग प्रवृत्ति कहा।

कीन्स के उपभोग फलन की निम्न विशेष ताएं हैं: -

1. उपभोग व्यय, व्ययोग्य आय का फलन होता है अर्थात जैसे-जैसे आय में वृद्धि होती है उपभोग व्यय भी बढ़ता जाता है।

2. आय में वृद्धि के साथ-साथ उपभोग व्यय तो बढ़ता है किन्तु यह वृद्धि आय में हुई वृद्धि के बराबर नहीं होती अर्थात उपभोग उतना नहीं बढ़ता जितनी आय बढ़ती है। इसका कारण यह है कि आय में वृद्धि का कुछ भाग बचत होती है अर्थात $\Delta Y = \Delta C + \Delta S$ इसमें ΔY = आय में वृद्धि, ΔC = उपभोग में वृद्धि तथा ΔS = बचत में वृद्धि

3. आय में वृद्धि के साथ उपभोग में वृद्धि होगी किन्तु यह घटती हुई दर से होगी अर्थात बढ़ी हुई आय का कम हिस्सा उपभोग पर व्यय होगा तथा बचत में वृद्धि होगी। अर्थात आय में वृद्धि के साथ-साथ ΔS में वृद्धि होगी तथा ΔC में कमी।

कीन्स का यह उपभोग फलन उनके उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम पर आधारित है जो यह मानता है कि उपभोग केवल आय पर ही निर्भर होता है तथा अल्पकाल में आय-वितरण, कीमत स्तर, जनसंख्या वृद्धि की दर, व्यक्तियों की आदतें, मानसिक स्थिति तथा फैशन जैसे संस्थागत तथा मनोवैज्ञानिक तत्व यथास्थिर रहते हैं।

10.3.1 उपभोग फलन के रूप:

उपभोग फलन के दो रूप होते हैं:-

1. समय पश्चता विहीन उपभोग फलन:-इसमें किसी समयावधि में होने वाला उपभोग उसी समयावधि की आय पर निर्भर करता है अर्थात $C_t = f(Y_t)$ इसमें, C_t = t अवधि में उपभोग की मात्रा तथा Y_t = t अवधि में आय की मात्रा।

2.समय पश्चता युक्त उपभोग फलन:-इसमें किसी समयावधि में होने वाला उपभोग उससे पहले की अवधि की आय से सम्बन्धित होता है अर्थात $C_t = f(Y_{t-1})$ इसमें y_{t-1} अवधि से पहले की अवधि की आय है। कीन्स ने समयापश्चता विहीन उपभोग फलन को माना है। इसलिए उनके सिद्धान्त पर स्थैतिक होने का दोश लगाया जाता है।

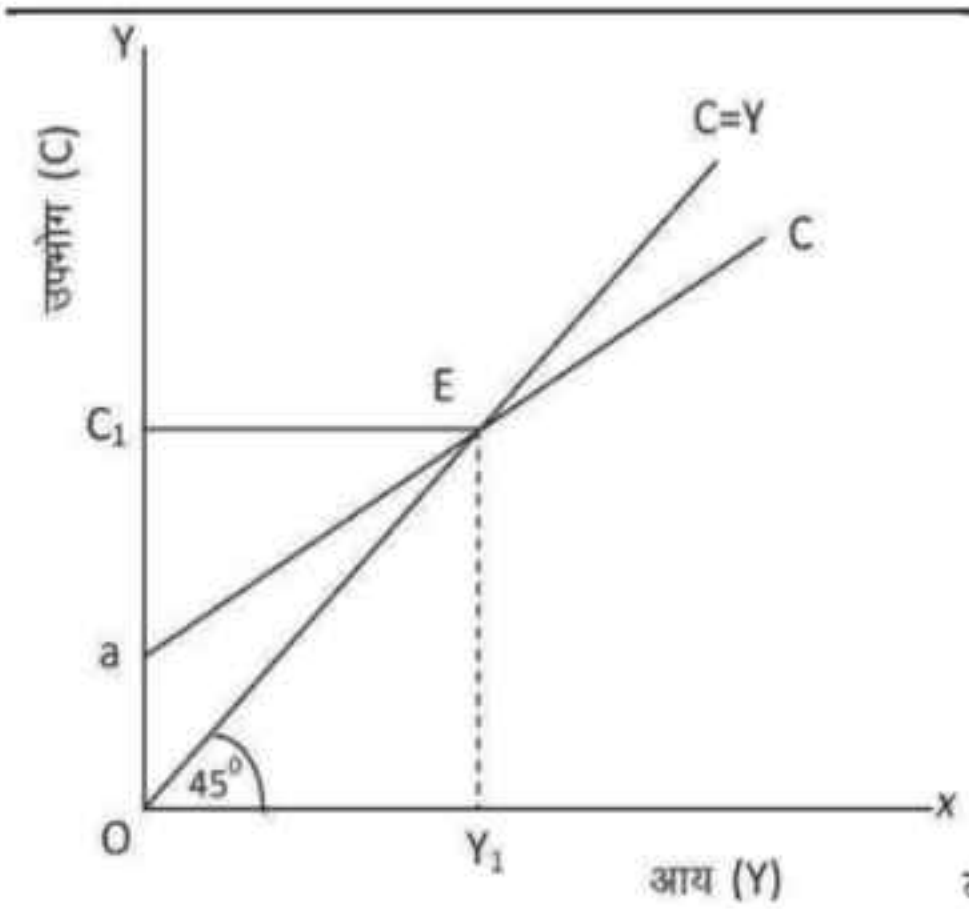

कीन्स के द्वारा उपभोग फलन को सूत्र में दिखाने पर, C = a + by इसमें C = उपभोग, Y = उपभोग आय, b = स्थिर राशि तथा a = यह स्थिरांक है जो स्वायत्त या न्यूनतम उपभोग का सूचक है और आय के स्तर से प्रभावित नहीं होता है। उपभोग फलन को रेखाचित्र में इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं।

OC=Y = आय उपभोग रेखा जो दिखाती है कि यदि आय और उपभोग व्यय बराबर हो तो आय में वृद्धि होने पर उपभोग भी उसी समान अनुपात में बढ़ जाता है।

ac वक्र = उपभोग फलन रेखा इस रेखा के E बिन्दु के बांयी ओर आय उपभोग से कम है जैसे-जैसे आय बढ़ती है यह अन्तर कम होता जाता है। E बिन्दु पर आय = उपभोग व्यय इसे सम-भेदन बिन्दु कहते हैं। इसमें बचत शून्य होती है।

Oa = स्वायत्त अथवा न्यूनतम उपभोग की मात्रा है अर्थात आय शून्य होने की स्थिति में भी व्यक्ति Oa मात्रा के बराबर न्यूनतम उपभोग करते हैं। E बिन्दु के दाहिनी ओर उपभोग वक्र aC आय से कम है। जो दिखाता है कि जब आय में वृद्धि होती है तो उपभोग में भी वृद्धि होती है किन्तु यह वृद्धि आय की तुलना में कम होती है अतः बचतों में वृद्धि होती है।

10.3.2 उपभोग प्रवृत्ति की विशेष ताएँ: -उपभोग प्रवृत्ति की निम्न विशेष ताएँ होती हैं:

1. उपभोग प्रवृत्ति अल्पकाल में सामान्यतः स्थिर रहती है क्योंकि अल्पकाल में व्यक्तियों की उपभोग सम्बन्धी आदतों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता है।

2. निर्धन व्यक्तियों की उपभोग प्रवृत्ति धनी व्यक्तियों की उपभोग प्रवृत्ति से अधिक होती है। क्योंकि निर्धन व्यक्ति अपनी समस्त आय को भी उपभोग पर व्यय कर देते हैं जबकि धनी व्यक्ति अपनी आय का बहुत कम भाग उपभोग पर व्यय करते हैं और बाकी बचत करते हैं।

3. अर्थव्यवस्था में आय तथा रोजगार का स्तर उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। उपभोग प्रवृत्ति बढ़ने पर आय तथा रोजगार स्तर में कमी आती है।

10.3.3 उपभोग प्रवृत्ति के रूप:-उपभोग प्रवृत्ति के दो रूप हो सकते हैं जिनको निम्न प्रकार से समझा सकते हैं:-

10.3.3.1औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC)

औसत उपभोग प्रवृत्ति कुल उपभोग (C) तथा कुल आय (Y) के अनुपात को व्यक्त करती है। सूत्र में, औसत उपभोग प्रवृत्ति $(APC) = \frac{C}{Y}$ आय में वृद्धि के साथ-साथ उपभोग में वृद्धि का अनुपात घटता जाता है अर्थात बचत प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। जैसे यदि किसी व्यक्ति की वार्षिक आय रु0 5000 हो इसमें से यदि वह रु0 4000 उपभोग पर व्यय करता है तो औसत उपभोग प्रवृत्ति $APC = \frac{4000}{5000} = \frac{4}{5}$ अथवा 0.75 होगी। आय में वृद्धि के साथ-साथ औसत उपभोग प्रवृत्ति घटती जाती है। इस प्रकार आय के विभिन्न स्तरों पर, औसत उपभोग प्रवृत्ति अलग-अलग होगी।

10.3.3.2 सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC)

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति, कुल उपभोग स्तर में परिवर्तन का, कुल आय स्तर में होने वाले परिवर्तन से अनुपात व्यक्त करती है। इस प्रकार सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का सम्बन्ध आय तथा उपभोग से होने वाले परिवर्तनों के अनुपात से है। सूत्र में, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति $(MPC) = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$ इसमें ΔC = उपभोग में होने वाला परिवर्तन तथा ΔY= आय में होने वाला परिवर्तन। यदि आय का स्तर रु0 5000 से बढ़कर रु0 6000 हो जाए तथा इसके परिणामस्वरूप उपभोग व्यय रु0 4000 से बढ़कर रु0 4500 हो जाए तो ΔY= रु0 1000 तथा ΔC = रु0 500 अतः सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति $(MPC) = \frac{\Delta C}{\Delta Y} = \frac{500}{1000} = \frac{1}{2}$ या 50 % होगी।

कीन्स के अनुसार आय में वृद्धि होने पर उपभोग में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है इसलिए अर्थव्यवस्था में $\Delta C < \Delta Y$ की स्थिति रहती है। किन्तु सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति हमेशा धनात्मक होती है। अतः यह शून्य से अधिक होती है किन्तु इकाई (1) से कम अर्थात $O < \frac{\Delta C}{\Delta Y} < 1$ जब सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम होती है तब सीमान्त बचत प्रवृत्ति अधिक होती है। कीन्स ने यह भी बताया कि आय में वृद्धि होने पर MPC कम होती है तथा APC की अपेक्षा MPC नीची रहती है अर्थात APC > MPC कीन्स का उपभोग फलन अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में स्थिर रहता है।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा उपभोग फलन:

यदि आय के प्रत्येक स्तर पर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहे तो उपभोग फलन रैखिक होगा और उसे प्रदर्शित करने वाला उपभोग वक्र एक सीधी रेखा के रूप में होगा। रैखिक उपभोग फलन को सूत्र में, $C = Co + cY$ द्वारा दिखा सकते हैं। इसमें $C_o =$ स्वायत्त अथवा न्यूनतम उपभोग मात्रा यह आय के स्तर से प्रभावित नहीं होती है। यदि आय शून्य हो तब भी C_o धनात्मक होता है क्योंकि व्यक्तियों को जीवित रहने के लिए एक न्यूनतम उपभोग स्तर को बनाए रखना होता है। चित्र में दिखाने पर,

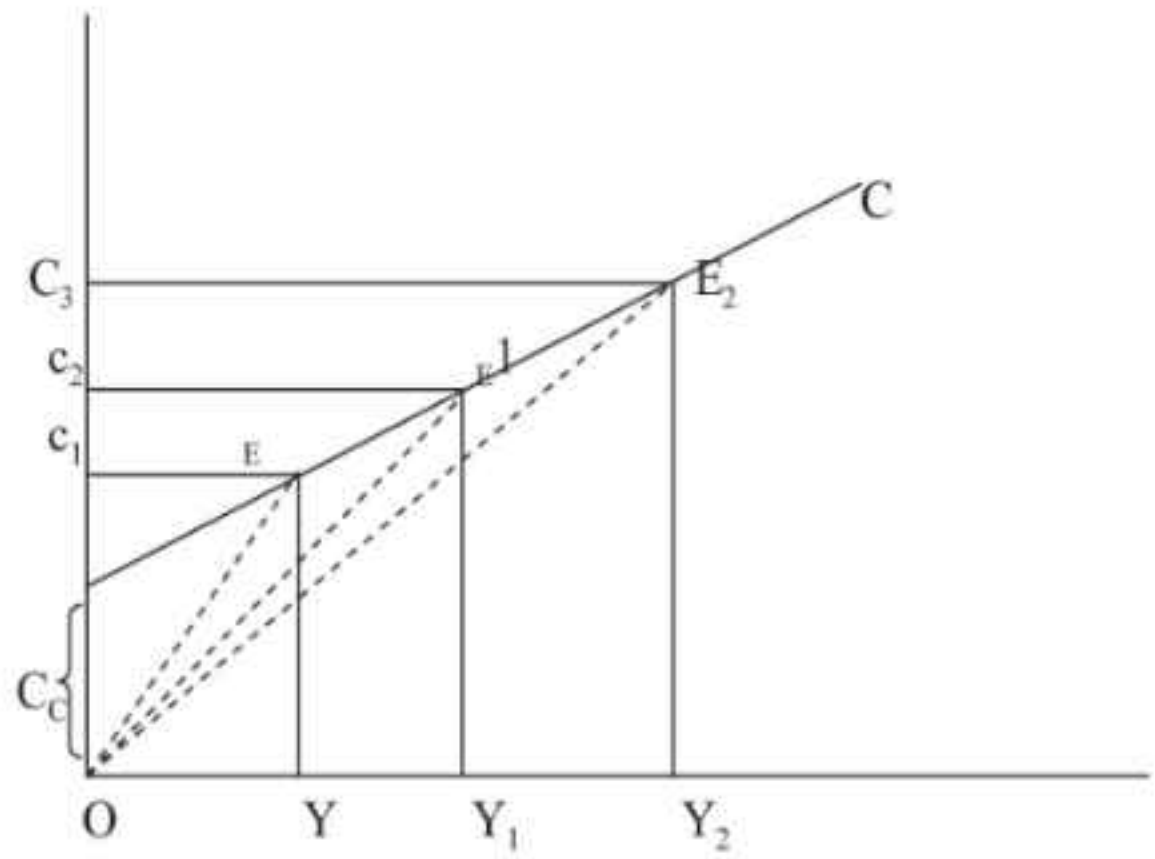

चित्र में CC रैखिक उपभोग फलन है यह मानते हुए कि आय शून्य होने की स्थिति में भी न्यूनतम उपभोग मात्रा OC है। इस उपभोग फलन के आधार पर हम ये कह सकते हैं कि औसत उपभोग प्रवृत्ति $\left(\frac{C}{Y}\right)$ आय स्तर में वृद्धि के साथ-साथ घटती है जबकि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति $\left(\frac{\Delta C}{\Delta Y}\right)$ स्थिर रहती है। CC उपभोग फलन रेखा के E, E_1 तथा E_2 बिन्दुओं के अनुसार जब आय स्तर OY, OY_1 तथा OY_2 है तब इससे सम्बन्धित उपभोग व्यय क्रमशः OC_1, OC_2 तथा OC_3 है। अतः स्पष्ट है कि जैसे-जैसे आय में वृद्धि होगी औसत उपभोग प्रवृत्ति $\left(\frac{C}{Y}\right)$ घटती जाएगी। दूसरी ओर उपभोग फलन का ढाल उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति दिखाता है। इसलिए CC रेखा का ढाल उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति दिखाता है जो इस रेखा के प्रत्येक बिन्दु E, E_1 तथा E_2 पर समान है अतः MPC स्थिर है।

किन्तु कीन्स ने गैर रैखिक उपभोग फलन को माना है उनके अनुसार, आय में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है उपभोग में वृद्धि तो हाती है किन्तु गिरती हुई दर से अर्थात आय में वृद्धि के साथ उपभोग फलन के ढाल में कमी आएगी अतः ऐसा उपभोग फलन गैर रैखिक होगा।

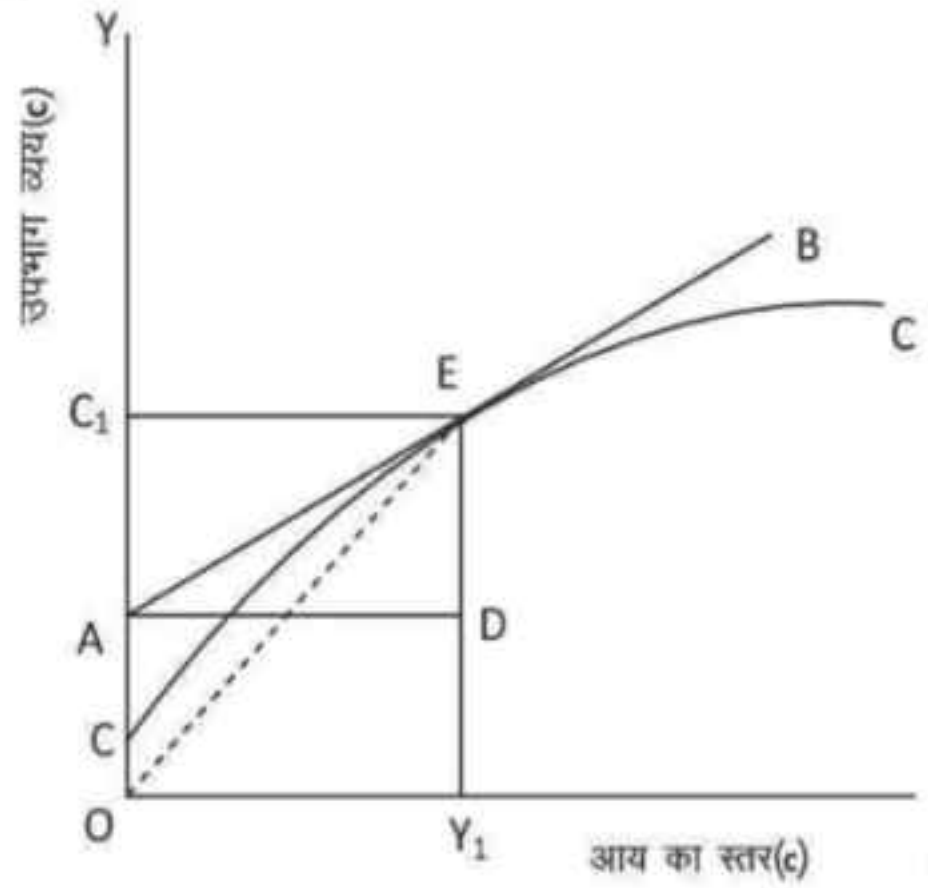

चित्र के अनुसार CC =गैर रैखिक उपभोग फलन। E बिन्दु पर औसत तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को ज्ञात करने के लिए AB एक स्पर्श रेखा खींची गई है।

E बिन्दु पर औसत उपभोग प्रवृत्ति $\left(\frac{C}{Y}\right)=\frac{OC_1}{OY_1}$ होगी। सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को E बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा AB द्वारा ज्ञात कर सकते हैं अर्थात E बिन्दु पर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का निर्धारण स्पर्श रेखा AR द्वारा लम्ब अक्ष पर बनाए गए कोण $\angle EDA$ के द्वारा होगा। आय वृद्धि के साथ-साथ उपभोग फलन CC पर प्रत्येक बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखाओं का ढाल परिवर्तित होगा अतः उन पर बनाए गए कोण क्रमशः घटते जाएंगे अर्थात उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति निरन्तर कम होती जाएगी।

10.4 बचत फलन तथा बचत की प्रवृत्ति:

आय का जो भाग उपभोग पर व्यय नहीं किया जाता उसे बचत कहते हैं, अर्थात बचत (S) = आय (Y) -उपभोग (C)। अतः उपभोग फलन तथा बचत फलन परस्पर सम्बन्धित होते हैं। अर्थात बचत आय का वह भाग है जो उपभोग के बाद बच जाता है। कीन्स के अनुसार बचत आय का फलन है अर्थात

$S = f(Y)$ यदि $S = Y - C$ और C के स्थान पर यदि $C_o + cY$ को रखें तो,

$$S = Y - (C_o + cY)$$

$$= Y - C_o + cY$$

$= -C_0 + Y - cY$ होगा। क्योंकि $1 - C = S$ है तो हम बचत फलन को ऐसे भी दिखा सकते हैं, $S = -C_0 + sY$ । क्योंकि $-C_0$ शून्य आय की स्थिति में भी न्यूनतम व्यय को दिखाता है अतः इसका अर्थ है कि यदि आय शून्य है तब बचत ऋणात्मक होगी। बचत प्रवृत्ति के भी दो रूप हो सकते हैं:

10.4.1 बचत की औसत प्रवृत्ति (APS):- औसत बचत प्रवृत्ति, उपभोगयोग्य आय का वह अनुपात होता है जो बच जाता है अतः

$$\text{औसत बचत प्रवृत्ति (APS)} = \frac{\text{बचत}}{\text{उपभोगयोग्य आय}} = \frac{S}{Y}\text{ ।}$$

औसत उपभोग प्रवृत्ति की तरह औसत बचत प्रवृत्ति भी आय के साथ-साथ परिवर्तित होती है। कीन्स के अनुसार आय में वृद्धि होने पर औसत उपभोग प्रवृत्ति घटती है अतः औसत बचत प्रवृत्ति बढ़ती है। औसत उपभोग प्रवृत्ति तथा औसत बचत प्रवृत्ति के बीच के सम्बन्ध को सूत्र में इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं:-

क्योंकि $Y = C + S$ अतः समीकरण के दोनों पक्षों को Y से भाग देने पर -

$$\frac{Y}{Y} = \frac{C}{Y} + \frac{S}{Y} = 1$$

क्योंकि $\frac{C}{Y}$ = औसत उपभोग प्रवृत्ति तथा $\frac{S}{Y}$ = औसत बचत प्रवृत्ति। अतः APC + APS = 1 अथवा औसत बचत प्रवृत्ति (APS) = 1 - औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC)। उपरोक्त उदाहरण के अनुसार यदि किसी अर्थव्यवस्था की औसत उपभोग प्रवृत्ति 0.75 हो तो औसत बचत प्रवृत्ति = 1-0.75 = 0.25 होगी।

10.4.2 सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPC):- सीमान्त बचत प्रवृत्ति व्ययोग्य आय में वृद्धि तथा बचत में वृद्धि का अनुपात होती है अर्थात, सीमान्त बचत प्रवृत्ति MPS = बचत में वृद्धि / आय में वृद्धि $\frac{\Delta S}{\Delta Y}$ = । इसे इस प्रकार भी ज्ञात किया जा सकता है: सीमान्त बचत प्रवृत्ति $(MPS) = 1 - \frac{\Delta C}{\Delta Y}$ । जिस प्रकार APC + APS = 1 होता है उसी प्रकार MPC + MPS = 1। इसे इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं: $Y = \Delta C + \Delta S$ । इस समीकरण को ΔY से भाग देने पर,

$$\frac{\Delta C}{\Delta Y} + \frac{\Delta S}{\Delta Y} = \frac{\Delta Y}{\Delta Y} = 1$$

10.5 उपभोग फलन को प्रभावित करने वाले तत्व:

किसी अर्थव्यवस्था में उपभोग प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले तत्वों को कीन्स ने दो भागों में बांटा:-

1. व्यक्तिगत अथवा आन्तरिक तत्व:-यह वे मनोवैज्ञानिक तत्व होते हैं जिन से किसी व्यक्ति की उपभोग की इच्छा प्रभावित होती है जैसे सम्पत्ति को एकत्रित करने की इच्छा, भविष्य के लिए बचत की इच्छा, मितव्ययिता के प्रति दृष्टिकोण, अज्ञात संकटों से सुरक्षा, भविष्य में निवेश का दृष्टिकोण, कंजूसी, वृद्धावस्था, बीमारी आदि से सुरक्षित रहने की इच्छा, उत्तराधिकारी के लिए अधिक धन छोड़ने की इच्छा, फैशन तथा दिखावे की इच्छा आदि।

2. वस्तुगत अथवा वाह्य तत्व:-ये वे बाहरी तत्व होते हैं जो व्यक्ति की उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि अथवा कमी कर सकते हैं जैसे आय का आकार, कीमत स्तर में परिवर्तन, राजकोषीय नीति, ब्याज की दर, आय का वितरण, आकस्मिक लाभ अथवा हानियाँ आदि।

कीन्स के अनुसार उपभोग प्रवृत्ति अल्पकाल में सामान्यतः स्थिर रहती है जिसका मुख्य कारण यह है कि उपभोग प्रवृत्ति मुख्यतः व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक व्यवहार तथा वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है यह कारण अल्पकाल में स्थिर तथा सामान्य रहते हैं। इसलिए अल्पकाल में किसी भी अर्थव्यवस्था की उपभोग प्रवृत्ति प्रायः परिवर्तित नहीं होती।

10.6 उपभोग फलन: सारांश:

समष्टि अर्थशास्त्र में कीन्स के उपभोग फलन का एक महत्वपूर्ण स्थान है। कीन्स के अनुसार उपभोग आय का फलन होता है। आय उपभोग व बचत दोनों को निर्धारित करती है क्योंकि अल्पकाल में ब्याज दर प्रायः स्थिर रहती है। उपभोग फलन सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा औसत उपभोग प्रवृत्ति से प्रभावित होता है। कीन्स के उपभोग फलन में औसत उपभोग प्रवृत्ति आय में वृद्धि के साथ घटती है तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति शून्य से अधिक तथा इकाई से कम होती है। सारांश में कीन्स का उपभोग फलन अल्पकाल में स्थिर रहता है क्योंकि कीन्स ने अपने सिद्धान्त में अल्पकाल में ही आय तथा रोजगार निर्धारण की व्याख्या की।

कीन्स के बाद उपभोग फलन के क्षेत्र में साइमन कुजनेट, गोल्डस्मिथ आदि ने अनेकों सर्वेक्षण किए गए तथा यह तथ्य सामने आए कि उपभोग फलन दो प्रकार का होता है एक कीन्सीय अल्पकालीन गैर अनुपातीय तथा दूसरा दीर्घकालीन अनुपातीय उपभोग फलन। इसी के अनुसार व्यक्तियों का उपभोग व्यवहार निर्धारित होता है। अतः ड्यूसेनबैरी, मिल्टन फ्रीडमैंन व एण्डों मोदिग्लियानी आदि अर्थशास्त्रियों ने इसे सिद्ध करने के लिए कई वैकल्पिक सिद्धान्त प्रस्तुत किए।

10.7 कीन्सीय उपभोग फलन की आलोचना:

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार कीन्स के उपभोग फलन में कुछ कमियाँ है जैसे:

1. उपभोग प्रवृत्ति एक भ्रामक धारणा है क्योंकि यह प्रवृत्ति के बजाय एक गणितीय सम्बन्ध की व्याख्या करती है।
2. उपभोग की धारणा केवल परिमाणात्मक दृष्टिकोण से की गई है।
3. कीन्स की उपभोग प्रवृत्ति की व्याख्या को व्यवहारिक रूप में सिद्ध करना सम्भव नहीं है।
4. व्यक्तियों की उपभोग प्रवृत्ति आय के अतिरिक्त अन्य तत्वों से भी प्रभावित होती है।
5. किसी व्यक्ति का उपभोग स्तर केवल उसकी निरपेक्ष आय से ही प्रभावित नहीं होता। इस पर आय प्राप्ति की सम्भावनाओं का असर भी पड़ता है।
6. चक्रीय परिवर्तनों के प्रभाव से उपभोग प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले तत्वों में परिवर्तन होता है अतः कीन्स द्वारा निर्धारित सीमाओं के बीच (O>MPC>1) भी सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर नहीं रह सकती।

10.8 उपभोग फलन के वैकल्पिक सिद्धान्त:

कीन्सीय उपभोग फलन एक अल्पकालीन विश्लेषण है। जिसके अनुसार वास्तविक उपभोग वास्तविक आय का फलन है। कीन्सीय उपभोग फलन प्रतिपादित करता है कि जैसे-जैसे व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है उपभोग व्यय में भी वृद्धि होती है किन्तु आय वृद्धि की तुलना में कम। अतः यह उपभोग फलन आय तथा उपभोग के बीच गैर अनुपातीय सम्बन्ध दिखाता है। अतः सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) 1 से कम होती है (अर्थात 1>MPC>O) कीन्स के उपभोग फलन को निरपेक्ष आय परिकल्पना के नाम से जाना जाता है। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उपभोग फलन की सत्यता के सम्बन्ध में कुछ परीक्षण किए गए। जिसमें अमरीका के अर्थशास्त्री साइमन कुजनेट ने अनुभवजन्य साक्षियों के आधार पर पाया कि अमरीका की अर्थव्यवस्था में आय में महत्वपूर्ण वृद्धि के बावजूद भी औसत उपभोग प्रवृत्ति स्थिर ही बनी रही थी। अतः कीन्स की यह मान्यता कि आय में वृद्धि के साथ-साथ औसत उपभोग प्रवृत्ति में कमी तथा बचत प्रवृत्ति में वृद्धि होती है सत्य सिद्ध नहीं हुई। काल श्रेणी आंकड़ों के माध्यम से अपने अध्ययन में कुजनेट ने पाया कि वर्ष 1869 से 1938 की अवधि के दौरान अमरीका की सकल राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि हुई थी किन्तु औसत उपभोग प्रवृत्ति में गिरावट नहीं आई। इस सम्पूर्ण दीर्घकालीन अवधि में औसत उपभोग प्रवृत्ति लगभग स्थिर रही। जो लगभग 0.9 प्रतिशत थी। अतः कुजनेट इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उपभोग तथा आय के बीच अनुपातिक सम्बन्ध होता है न कि गैर अनुपातिक तथा दीर्घकालीन औसत उपभोग प्रवृत्ति स्थिर होती है। इसलिए दीर्घकालीन उपभोग फलन में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) तथा औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC)समान होती है तथा दोनों स्थिर बनी रहती हैं।

कुजनेट के उपभोग फलन को इस प्रकार दिखा सकते हैं, C = cY अर्थात दीर्घकालीन उपभोग फलन मूल बिन्दु से आरम्भ होने वाली एक सीधी रेखा के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। चित्र में दिखाने पर,

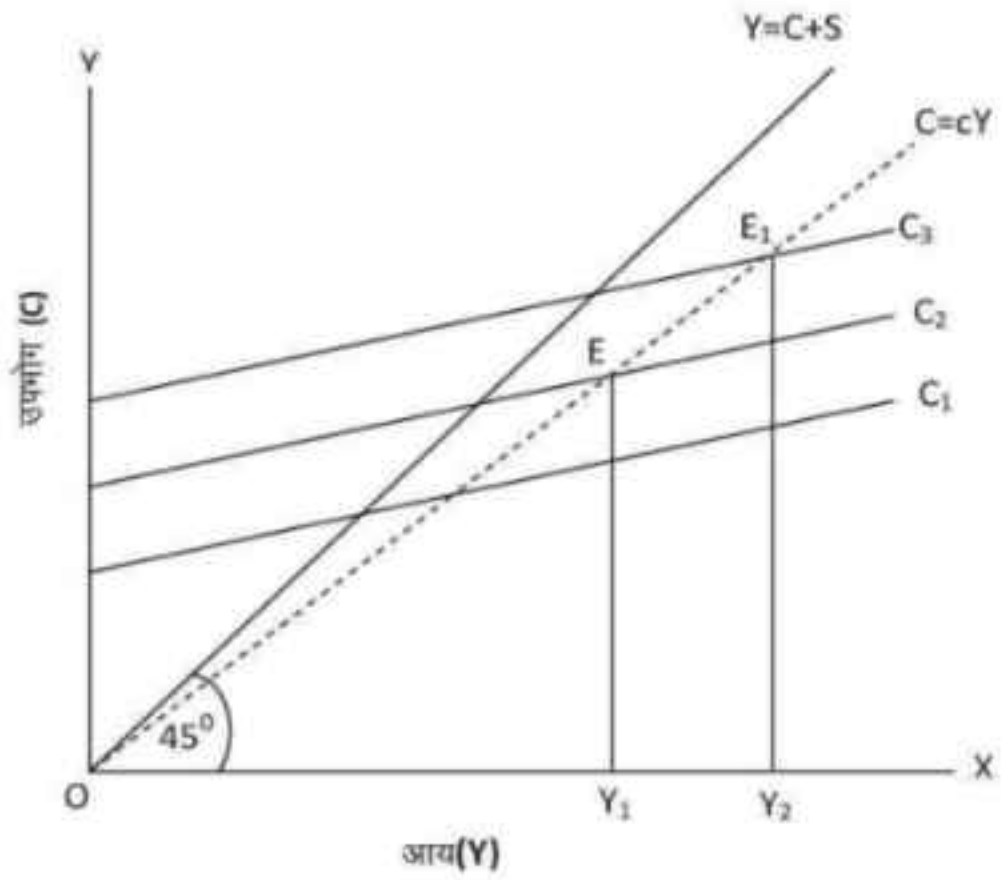

C = CY दीर्घकालीन उपभोग फलन C_1, C_2 तथा C_3 आदि कीन्सीय अल्पकालीन उपभोग फलन है जो आय में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होते हैं।

इस प्रकार इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त हुए कि उपभोग फलन एक नहीं बल्कि दो रूप लेते हैं एक अल्पकालीन गैर अनुपातीय उपभोग फलन जिसकी चर्चा कीन्स ने की अर्थात C = a + by तथा दूसरा दीर्घकालीन अनुपातीय उपभोग फलन अर्थात C = cY जो कुजनेट के अध्ययनों का परिणाम था। इन तथ्यों के परीक्षण के लिए समय-समय विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अनेकों परिकल्पनाओं को विकसित किया ताकि अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उपभोग फलनों के बीच के सम्बन्ध को अधिक स्पष्ट किया जा सके। इनमें से कुछ परिकल्पनाओं की चर्चा नीचे की गई है:

10.8.1 सापेक्षिक आय परिकल्पना अथवा ड्यूसेनबेरी प्रभाव:

अमरीकी अर्थशास्त्री जेम्स ड्यूसेनबेरी ने 1949 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Income, Saving and The Theory of Consumer Behaviour' में सर्वप्रथम अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उपभोग फलन में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। उनका सिद्धान्त सापेक्षिक आय परिकल्पना के नाम से विख्यात है, जो इस मान्यता पर आधारित है कि 1. प्रत्येक व्यक्ति का उपभोग व्यवहार स्वतन्त्र नहीं होता बल्कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार पर निर्भर करता है तथा 2. समय के साथ उपभोग व्यवहार अपरिवर्तनीय होते हैं न कि परिवर्तनीय।

प्रथम मान्यता के आधार पर, ड्यूसेनबेरी यह प्रस्तावित करते हैं कि एक व्यक्ति द्वारा उपभोग किया गया आय का अनुपात केवल उसकी अपनी निरपेक्ष आय पर विकसित न होकर उसकी सापेक्षिक आय पर भी निर्भर करता है अर्थात व्यक्तियों की उपभोग प्रवृत्ति निरन्तर ऊँचे स्तर पर पहुंचने की

होती है। इसलिए वे अपने धनी पड़ोसियों, सहयोगियों, मित्रों आदि के उपभोग ढांचे को अपनाने की कोशिश करते हैं। अतः उपभोग प्राथमिताएं अन्तनिर्भर होती है। ड्यूसेनबेरी इसे प्रदर्शन प्रभाव अथवा उपभोग ढांचे का सामाजिक चरित्र कहते हैं।

वास्तव में सापेक्षिक आयों का अन्तर ही समाज में उपभोग व्यय का निर्धारण करता है। एक धनी व्यक्ति की औसत उपभोग प्रवृत्ति नीची होगी क्योंकि वह अपनी आय के कम अनुपात से अपने उपभोग के स्तर को बनाए रख सकता है जबकि एक सापेक्षिक रूप से निर्धन व्यक्ति की औसत उपभोग प्रवृत्ति ऊँची होगी क्योंकि उसे अपने धनी पड़ोसियों के बराबर उपभोग स्तर बनाने के लिए अधिक व्यय करना पड़ता है। यह तथ्य दीर्घकालीन औसत उपभोग प्रवृत्ति की स्थिर प्रवृत्ति की व्याख्या करने में सहायक होते हैं। क्योंकि ऊँची व नीची औसत उपभोग प्रवृत्ति समग्र रूप में बराबर हो जाती है इसलिए दीर्घकाल में APC स्थिर बनी रहती है।

Mयूसेनबेरी की दूसरी मान्यता 'पिछले अधिकतम आय स्तर' के रूप में है। यह विश्लेषण कीन्स की इस मान्यता का विरोध करता है कि उपभोग सम्बन्ध पूर्णतया परिवर्तनीय होते हैं। यह सिद्धान्त यह बताता है कि आय वृद्धि के साथ, यदि एक बार व्यक्ति अधिकतम आय स्तर पर पहुँच जाते हैं तथा इस ऊँचे जीवन स्तर के अभ्यस्त हो जाते हैं तो मन्दी की स्थिति में जब आय में कमी होती है वे अपने उपभोग स्तर में परिवर्तन नहीं लाना चाहते क्योंकि व्यक्ति अपने वर्तमान उपभोग स्तर को पिछली ऊँची आय स्तर पर आधारित करते हैं तथा ऊँचा उपभोग स्तर बनाए रखने के लिए वे अपनी बचत-आय अनुपात में कमी करते हैं।

ड्यूसेनबेरी ने अपने दोनों सम्बन्धित विश्लेश णों को निम्न सूत्र द्वारा स्पष्ट किया:

$\frac{C_t}{Y_t} = a - b\frac{Y_t}{Y_o}$ इसमें C_t = वर्तमान उपभोग स्तर, Y_t = वर्तमान आय स्तर, Y_o =पिछला अधिकतम आय स्तर, a = स्थिरता जो धनात्मक स्वायत्त उपभोग को दिखाती है तथा b = उपभोग फलन है। यह समीकरण दिखाता है कि $\frac{C_t}{Y_t}$ फलन है $\frac{Y_t}{Y_o}$ का। इस सापेक्षिक सम्बन्ध विश्लेषण को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं:

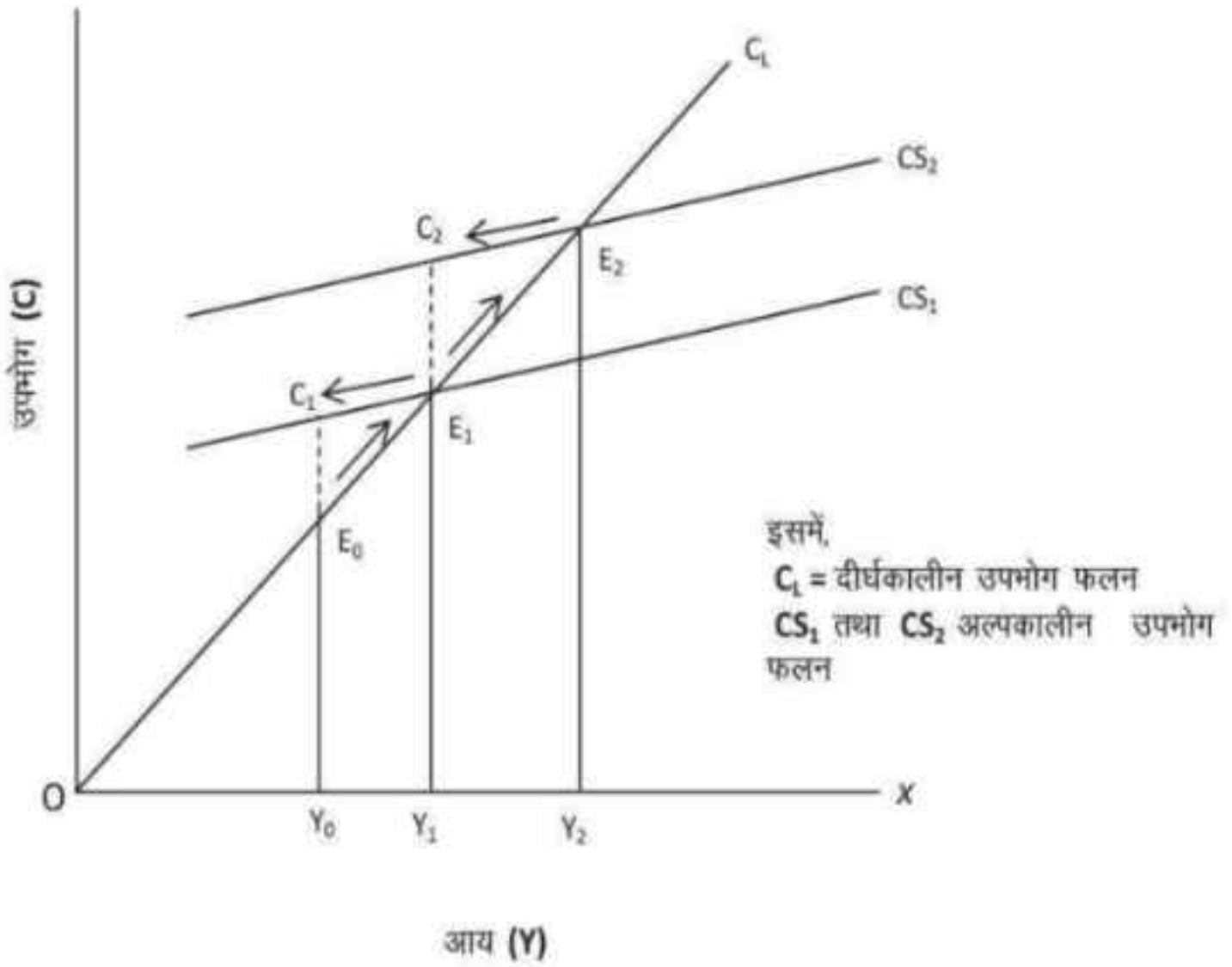

मान लें, आय अपने अधिकतम आय स्तर OY_1 पर है जहां उपभोग स्तर = E_1Y_1 अब यदि आय गिरकर OY_0 हो जाती है तो व्यक्ति अपने उपभोग स्तर को E_0Y_0 तक कम नहीं करेंगे क्योंकि वे E_1Y_1 आय स्तर के जीवन स्तर के अभ्यस्त हो चुके हैं।

अतः वे अपनी बचतों में कमी करके अपने उपभोग स्तर को कम से कम गिराने की चेष्टा करेंगे और CS_1वक्र द्वारा E_1 से C_1 बिन्दु तक वापस आएंगे और उपभोग स्तर C_1Y_0 होगा। आय में पुनः वृद्धि होने पर उपभोग में वृद्धि CS_1 वक्र पर C_1 सेE_1 बिन्दु तक होगी क्योंकि व्यक्ति अपनी बचतों को पुनः प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं।

यदि आय में लगातार वृद्धि होती जाती है तब उपभोग में वृद्धि C_L वक्र द्वारा E_1 से E_2 बिन्दु तक होगी और उपभोक्ता नए अल्पकालीन उपभोग फलन CS_2 पर E_2 बिन्दु पर आ जाएंगे। किन्तु यदि आय पुनः गिरती है तब उपभोक्ता CS_2 वक्र पर E_2 बिन्दु से C_2 बिन्दु पर वापस आते हैं इसे अर्थशास्त्रियों ने रैचेट प्रभाव कहा। अर्थात जब आय में वृद्धि होती है तब उपभोग फलन ऊपर की ओर बढ़ जाता है किन्तु जब कमी होती है तब यह अपने पुराने स्तर पर वापस नहीं आता।

10.8.2 स्थायी आय परिकल्पना:-अल्पकालीन अननुपातीय तथा दीर्घकालीन अनुपातीय उपभोग फलन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का एक और प्रयास मिल्टन फ्रीडमैंन ने अपने पुस्तक 'A Theory of Consumption Function', 1957' में प्रकाशित, में किया जिसे स्थायी आय परिकल्पना के नाम से जाना जाता है। फ्रीडमैंन ने उपभोग व्यय के निर्धारक के रूप में वर्तमान आय

के प्रयोग की कीन्स की मान्यता को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने उपभोग तथा आय को स्थायी तथा अस्थायी, दो भागों में बांटा अर्थात -

$Y = Yp + Y_t$ तथा $C = Cp + C_t$ इसमें P = स्थायीतत्व, t = अस्थायी या चालू तत्व, Y = आय तथा C = उपभोग है। फ्रीडमैंन के अनुसार स्थायी आय वह राशि है जिसे एक उपभोक्ता उपभोग कर सकता है जबकि उसकी परिसम्पत्तियाँ अप्रभावित रहें। यह एक परिवार की मुख्य आय होती है जो उसकी दूरदर्शिता तथा समय क्षितिज पर आधारित होती है अर्थात यह वह औसत आय होती है जिसे परिवार स्थायी समझता है।

स्थायी आय परिकल्पना यह बताती है कि स्थायी उपभोग तथा स्थायी आय का अनुपात स्थिर रहता है। चाहें स्थायी आय का स्तर जो भी हो। उपरोक्त समीकरण में Y- उपभोक्ता की कुल चालू आय है जो किसी समयावधि में स्थायी आय से कम या अधिक हो सकती है। स्थायी तथा चालू आय के बीच यह अन्तर अस्थायी आय की प्रकृति के कारण होता है। अस्थायी अथवा परिवर्तनीय आय में अकस्मात लाभ अथवा हानि होने या चक्रीय परिवर्तनों के कारण वृद्धि अथवा कमी हो सकती है। यदि आकस्मिक लाभ जैसे बोनस आदि के कारण अस्थायी आय धनात्मक है तो चालू आय (Y) स्थायी आय (Yp) से अधिक होगी। इसके विपरीत स्थिति में चालू आय कम होगी। किन्तु यदि अस्थायी आय (Y_t) शून्य है तो स्थायी आय (Yp) तथा चालू आय (Y) बराबर होगी।

उपभोग तथा स्थायी आय के बीच सम्बन्ध:- फ्रीडमैंन यह मानते हैं कि उपभोग, स्थायी आय के अनुपातिक होता है। अर्थात $Cp = K.Yp$ इसमें Yp = स्थायी आय, Cp = स्थायी उपभोग तथा K= स्थायी आय का वह अनुपात जिसका उपभोग किया जाता है। K, ब्याज की दर (*r*), भौतिक परिसम्पत्तियों (अमानवीय धन) से प्राप्त आय (W) तथा उपभोक्ता की उपभोग की प्रवृत्ति (*cc*) पर निर्भर करता है। इसे सूत्र में दिखाने पर $Cp = K(i, w, cc)\ Yp$ अर्थात स्थायी उपभोग, स्थायी आय का फलन होता है। यह समीकरण दिखाता है कि दीर्घकाल में औसत उपभोग प्रवृत्ति जो स्थायी आय व स्थायी उपभोग अनुपात के रूप में दिखाई गई है स्थिर रहती है अर्थात $\frac{Cp}{Yp}$ । अतः K औसत उपभोग प्रवृत्ति है जिसका मूल्य आय के स्तरों से स्वतन्त्र होता है।

मान्यताएँ:

i. अस्थायी तथा स्थायी आयों के बीच कोई सहसम्बन्ध नहीं है।
ii. अस्थायी उपभोग तथा स्थायी उपभोग के बीच कोई सहसम्बन्ध नहीं है।
iii. अस्थायी उपभोग तथा अस्थायी आय में कोई सहसम्बन्ध नहीं है।
iv. केवल स्थायी आय में होने वाले परिवर्तन यथा क्रमबद्ध रूप से उपभोग को प्रभावित करते हैं।

स्थायी आय परिकल्पना को निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

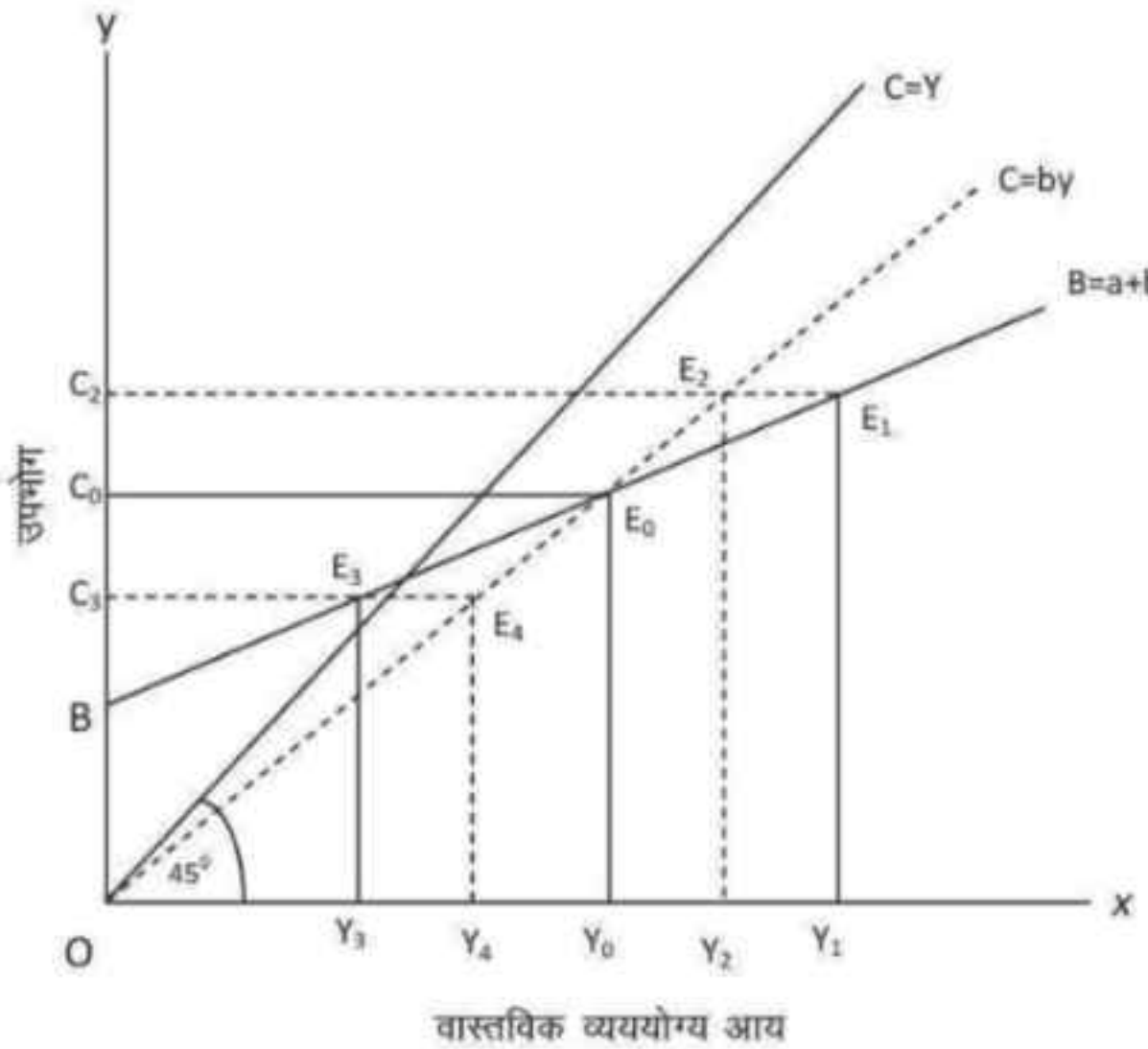

OC = by रेखा = स्थायी उपभोग फलन है जो मूल बिन्दु से आरम्भ होकर यह दिखाता है कि APC = MPC जो स्वयं स्थिर है। अतः स्थायी आय तथा स्थायी उपभोग के बीच एक अनुपातीय सम्बन्ध है।

BB = a + by रेखा = अल्पकालीन उपभोग फलन जो किसी समयावधि में अस्थायी आय तथा अस्थायी उपभोग के बीच अननुपातिकता का सम्बन्ध दिखाती है। अर्थात APC>MPC

OY_0 आय स्तर पर - अल्पकालीन व दीर्घकालीन उपभोग फलन E_0 बिन्दु पर बराबर है। अतः स्थायी व चालू आय बराबर है अर्थात OY_0 तथा इसी प्रकार स्थायी तथा चालू उपभोग भी बराबर है। अर्थात OC_0 अतः यहां परिवर्तनीय तत्व शून्य है तथा PY = 1 यदि हम B = a + by रेखा पर E_0 बिन्दु के बाईं ओर चलें तो E_3 बिन्दु पर चालू आय घटकर OY_3 हो जाती है तथा अस्थायी आय ऋणात्मक हो जाती है किन्तु स्थायी आय OY_4 चालू आय OY_3 की तुलना में अधिक है अतः स्थायी उपभोग स्तर OC_3 होगा यह नियमित उपभोग के बराबर होगा अर्थात $E_3Y_3 = E_4Y_4$ इस प्रकार स्थायी आय तत्व की सापेक्षिक स्थिरता, नियमित उपभोग को उसी अनुपात में गिरने नहीं देती तथा परिवार की धन सम्पत्ति सम्बन्धी स्थिति के कारण इसे सामान्यतः स्थायी बनाए रखती है।

दूसरी ओर यदि हम E_0 बिन्दु के दाहिनी ओर चलें तो E_1 बिन्दु यह दिखाता है कि नियमित आय OY_1 है तथा नियमित उपभोग = $OC_2 = E_1Y_1$ परन्तु OC_2 उपभोग स्तर, स्थायी रूप से OY_2 स्थायी आय स्तर पर भी बनाए रखा जा सकता है। अतः Y_1Y_2 धनात्मक अस्थायी आय तत्व की वह मात्रा है जो OY_1 आय की मात्रा में सम्मिलित है अतः स्थायी आय OY_2 से अधिक है।

10.8.3 जीवन चक्र परिकल्पना:- ए0 एंडो तथा एफ0 मोदिग्लियानी ने एक उपभोग फलन का प्रतिपादन किया जो जीवन चक्र परिकल्पना के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार उपभोग, उपभोक्ता की सम्पूर्ण जीवन अवधि की सम्भावित आय का फलन होता है। किसी व्यक्ति का उपभोग कई तत्वों पर निर्भर करता है जैसे: उसके पास उपलब्ध साधन, पूँजी पर प्रतिफलन की दर, व्यय की योजना तथा उम्र जिस में योजना बनाई गई आदि। उसकी वर्तमान आय में सम्पत्ति तथा परिसम्पत्तियों से प्राप्त आय तथा श्रम के बदले वर्तमान व सम्भावित आय सम्मिलित रहती है।

मान्यताएँ:-

i. उपभोक्ता की जीवन अवधि में कीमत स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता।
ii. ब्याज की दर स्थिर रहती है।
iii. उपभोक्ता को कोई परिसम्पत्ति विरासत में नहीं मिलती है तथा उसकी सम्पत्ति उसकी बचतों का परिणाम है।

उपभोक्ता का मुख्य लक्ष्य अपनी जीवन अवधि में अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना है। यदि उसकी जीवन अवधि दी हुई हो तो उसका उपभोग, उपलब्ध कुल आय के स्रोतों का अनुपातीय होता है। किन्तु उपभोक्ता की व्यय-योजना इस बात से प्रभावित होती है कि योजना जीवन के किन वर्षों में बनाई गई। सैद्धान्तिक रूप से, एक व्यक्ति विशेष की औसत आय सापेक्षित रूप से उसके जीवन के प्रारम्भिक तथा अन्तिम वर्षों की तुलना में मध्यकाल में ऊँची होती है। क्योंकि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में उसके पास कम परिसम्पत्तियाँ होती है तथा अन्तिम काल में उसकी श्रम आय कम होती है। चित्र में इसे निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं:

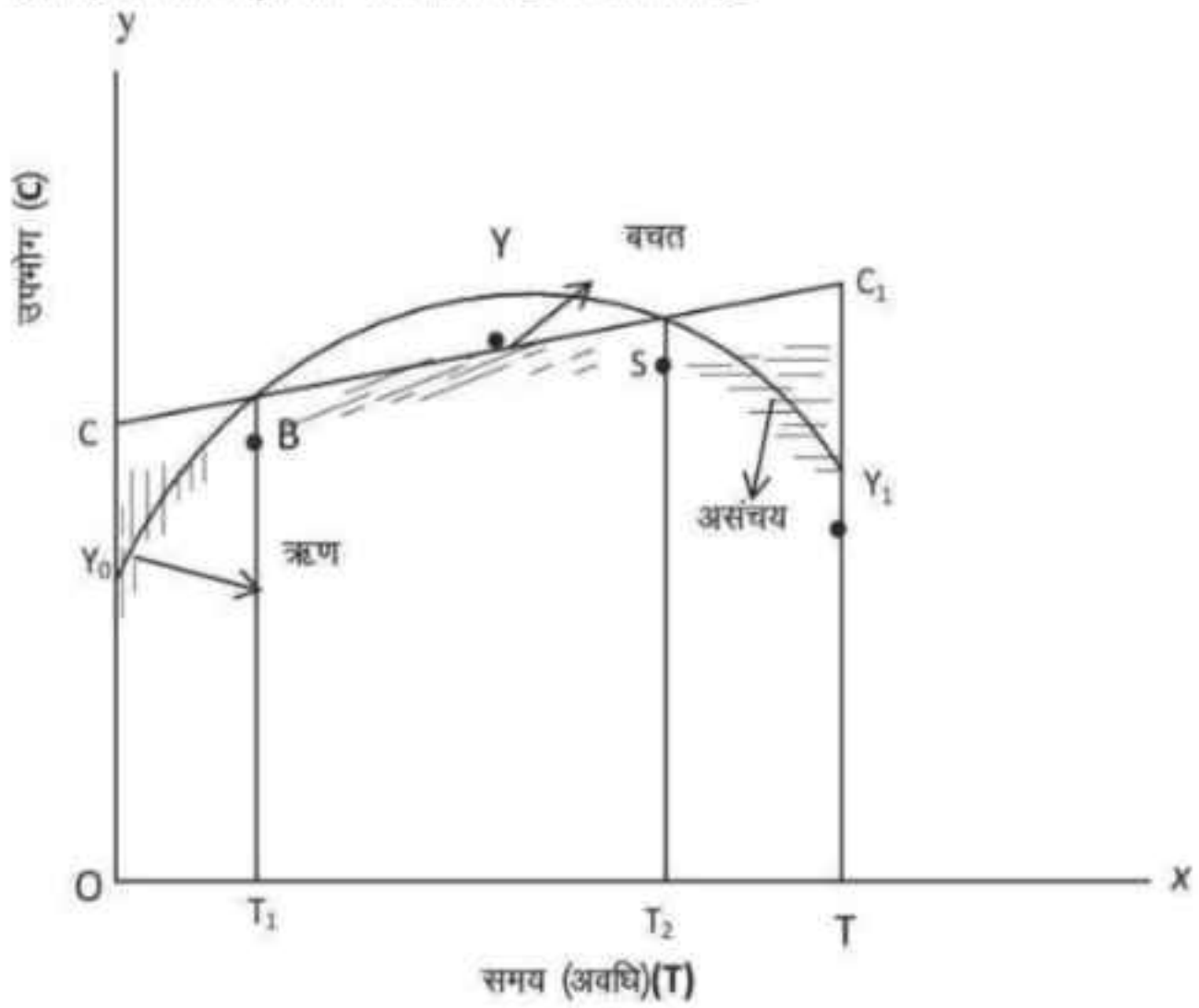

चित्र में, CC_1= उपभोग फलन Y_0YY_1 = व्यक्ति विशेष की OT अवधि में कुल आय, OT_1= जीवन के प्रारम्भिक वर्ष जिसमें उपभोग स्तर OC है किन्तु आय केवल OY_0 है। अतः CY_0 ऋणों की वह मात्रा है जिसे वह OC उपभोग स्तर को बनाए रखने के लिए लेता है।

T_1T_2 = जीवन के मध्यकाल के वर्ष। इसमें व्यक्ति BYS मात्रा बचत करता है ताकि पुराने ऋणों को चुका सके तथा भविष्य के लिए बचत कर सके।

T_2T = जीवन के अन्तिम वर्ष, जिसमें वह C_1T उपभोग स्तर को बनाए रखने के लिए अपनी पुरानी बचतों अर्थात SY_1C_1 मात्रा का प्रयोग करता है।

जीवन चक्र परिकल्पना के आधार पर एण्डों तथा मोदिग्लियानी ने अनेकों अध्ययन किए ताकि अल्पकालीन व दीर्घकालीन उपभोग फलन का निर्माण किया जा सके। एक अन्तवर्गीय अध्ययन से यह तथ्य प्राप्त हुआ कि नीची आय वर्ग के अधिकतर व्यक्ति, अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में थे अतः उनकी औसत उपभोग प्रवृत्ति ऊँची थी। दूसरी ओर औसत से अधिक व्यक्ति जो ऊँचे आय वर्गों के थे ऊँचे आय स्तरों पर थे क्योकि वे अपने जीवन के मध्यम वर्षों में थे अतः उनकी औसत उपभोग प्रवृत्ति अपेक्षाकृत नीची थी। समग्र रूप में जैसे-जैसे आय में वृद्धि हो रही थी औसत उपभोग प्रवृत्ति गिर रही थी। अतः सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति औसत उपभोग प्रवृत्ति से कम थी। अमरीका के लिए अवलोकित व्यवहार पर आधारित आंकड़ों के द्वारा यह पाया गया कि APC दीर्घकाल में 0.7 पर स्थिर रही थी। इस परिकल्पना से यह भी ज्ञात होता है कि समाज के अलग-अलग वर्गों में उपभोग तथा आय के बीच सम्बन्ध अनुपातिक नहीं होते।

10.9 शब्दावली:

1. उपभोग व्यय: आय का वह भाग जो उपभोग वस्तुओं तथा सेवाओं पर खर्च किया जाता है ताकि अधिकतम आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जा सके।
2. औसत उपभोग प्रवृत्ति: कुल आय में से उपभोग पर किया गया कुल व्यय औसत उपभोग प्रवृत्ति कहलाता है।
3. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति: आय में हुई वृद्धि में से उपभोग पर किया गया अतिरिक्त व्यय सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कहलाता है।
4. बचत: आय का जो भाग उपभोग पर व्यय नहीं होता और बचत जाता है उसे बचत कहते हैं।
5. आकस्मिक लाभ या हानि: अचानक बिना आशा के हुई आय में वृद्धि जैसे अतिरिक्त बोनस, वेतनवृद्धि आदि आकस्मिक लाभ होते हैं। इसी प्रकार अचानक बिना आशा की वेतन कटौती, अनिवार्य कर आदि के कारण आय में कमी को आकस्मिक हानि कहते हैं।
6. स्वायत्त उपभोग: वह न्यूनतम उपभोग स्तर जो जीवित रहने के लिए आवश्यक है। आय शून्य होने की स्थिति में भी व्यक्ति इस उपभोग स्तर को बनाए रखता है।

7. प्रदर्शन प्रभाव: दूसरे व्यक्तियों के उपभोग स्तर को देखकर उसकी नकल करना एवं अपनाना प्रदर्शन प्रभाव होता है।

8. रैचेट प्रभाव: इसे अनिवर्ती प्रभाव भी कहते हैं अर्थात आय में वृद्धि होने पर उपभोग में वृद्धि हो किन्तु जब मन्दी में आय में गिरावट आए तो उपभोग अपने पुराने स्तर पर वापस न आए।

10.10 अभ्यास प्रश्न:

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. उपभोग फलन का क्या अर्थ है?
2. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा औसत उपभोग प्रवृत्ति को सूत्र में लिखिए।
3. उपभोग का जीवन चक्र परिकल्पना सिद्धान्त किसने दिया?

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. उपभोग फलन के कोई चार निर्धारक तत्व लिखिए।
2. उपभोग की सापेक्षिक आय परिकल्पना किन दो मुख्य मान्यताओं पर आधारित है?

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1. उपभोग फलन उपभोग तथा ..... के बीच सम्बन्ध दिखाता है।

   a.आय b. विनियोग c.बचत d. व्यय

2. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का सही आकार चुनिए:

   a. >0 b. $>0<1$ c. >1 d. $>1<0$

3. निम्न में से एक उपभोग फलन का निर्धारक तत्व नहीं है:

   a.आय का वितरण b.अप्रत्याशित लाभ एवं हानियाँ
   c.मौद्रिक नीति d.तरल सम्पत्तियों का संग्रह

4. सापेक्षिक आय परिकल्पना को इस नाम से भी जाना जाता है:

   a.प्रदर्शन प्रभाव b.रैचेट प्रभाव
   c.ड्यूसेनबेरी प्रभाव d.पीगू प्रभाव

5. जीवन चक्र परिकल्पना के प्रतिपादक हैं:

   a.जेम्स ड्यूसेनबेरी b.साइमन कुजनेट
   c.मिल्टन फ्रीडमैन d.एण्डों तथा मोदिग्लियानी

6. कीन्स के उपभोग फलन का सूत्र है:

   a. $C = by$ b. $C = a + by$ c. $C = f(Y)$ d. $C = cY$

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. आय तथा उपभोग के बीच फलनीय सम्बन्ध।
2. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा औसत उपभोग प्रवृत्ति
3. एण्डो तथा मोदिग्लियानी ने।

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1.a 2. c 3.c 4-b 5- d 6-c

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- आहूजा, एच0एल0: एडवान्स मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली।
- द्विवेदी, डी0एन0: मैक्रोइकोनामिक्स: थीयरि एण्ड पॉलिसी, टाटा एमसी ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- लाल, एस0एन0: समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण (सिद्धान्त, समस्यायें तथा नीतियाँ) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- शपीरो, एडवर्ड: मैक्रोइकोनामिक एनालिसिस, गलगोटिया पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

10.12 उपयोगी सहायक ग्रन्थ:

- Milton Friediuan, A Theory of consumption Function, 1957
- Gardner Ackley : Macrocceonomic Theory
- H.L. Ahuja : Advance Macro Economic Theory
- J.M. Keynes : General Theory of Employment, Interest and Money, 1936
- Hall, Robert and Jorgenson Dele W : Tax Policy and Investment Behaviour in American Economic Review, June 1967
- Tobin James : A General Equilibrium Approach to Monetary Theory.

10.14 निबन्धात्मक प्रश्न:

1.उपभोग फलन से आप क्या समझते हैं? सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा औसत उपभोग प्रवृत्ति के बीच सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

2. उचित आरेखों का प्रयोग करके औसत उपभोग प्रवृत्ति तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति में भेद कीजिए।

3. उपभोग फलन की सापेक्षिक आय परिकल्पना की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

4. उपभोग की स्थायी आय परिकल्पना की रेखाचित्र सहित विवेचना कीजिए।

5. जीवन चक्र परिकल्पना को समझाइए।

6. अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उपभोग फलन के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 11 विनियोग-फलन

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 विनियोग का अर्थ
11.4 विनियोग के प्रकार
11.5 विनियोग-फलन
11.6 कीन्स का विनियोग सिद्धान्त
11.6.1 पूँजी की सीमान्त दक्षता
11.6.2 विनियोग के अन्य निर्धारक तत्व
11.7 विनियोग के कुछ अन्य प्रमुख सिद्धान्त
11.7.1 विनियोग का लाभ का सिद्धान्त
11.7.2 विनियोग का नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त
11.7.3 टोबिन का विनियोग का सिद्धान्त
11.8 साराँश
11.9 विनियोग-फलन की आलोचना
11.10 शब्दावली
11.11 अभ्यास प्रश्न
11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.13 उपयोगी सहायक ग्रन्थ
11.14 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना:

पिछले अध्यायों में आप पढ़ चुके हैं कि रोजगार तथा राष्ट्रीय आय का स्तर समग्र मांग द्वारा निर्धारित होता है जिसके दो भाग हैं: (1) उपभोग मांग (2) विनियोग मांग। पिछले अध्याय में हमने उपभोग मांग, उपभोग फलन तथा उपभोग प्रवृत्ति आदि का विस्तृत अध्ययन किया। इस अध्याय में हम विनियोग मांग अथवा निवेश प्रेरणा का विश्लेषण करेंगे। उपभोग प्रवृत्ति अल्पकाल में सामान्यतः स्थिर रहती है अतः आय तथा रोजगार स्तर में वृद्धि के लिए विनियोग मांग का महत्वपूर्ण स्थान है। अल्पकाल में किसी देश में विनियोग की मात्रा जितनी अधिक होगी राष्ट्रीय आय तथा रोजगार का स्तर भी उतना ही ऊँचा होगा क्योंकि आय तथा उपभोग व्यय की मात्रा के बीच के अन्तर को कम करने के लिए विनियोग में वृद्धि करना अत्यंत ही आवश्यक है।

11.2 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप,

- यह समझ सकेंगे कि किसी देश की राष्ट्रीय आय तथा रोजगार की मात्रा को निर्धारित करने में विनियोग का महत्वपूर्ण स्थान होता है।
- बचत तथा विनियोग की समानता क्यों आवश्यक है, इसकी विवेचना कर सकेंगे।
- पूँजी की सीमान्त दक्षता की परिभाषा कर सकेंगे।
- पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा ब्याज की दर के बीच सम्बन्धों की भलीभांति व्याख्या कर सकेंगे।

11.3 विनियोग का अर्थ:

कीन्स के अनुसार विनियोग का अर्थ वित्तीय विनियोग अर्थात कम्पनियों के शेयर, ब्राण्ड आदि खरीदना अथवा सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग करने से नहीं है। यहां विनियोग का अर्थ वास्तविक विनियोग से है। वास्तविक विनियोग का अर्थ है पूँजीगत वस्तुओं में विनियोग करना जैसे मशीनें, उपकरण, संयंन्त्र, औजार व निर्माण कार्य आदि जिनसे अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। इस प्रकार वास्तविक विनियोग वह होता है जिससे वास्तविक पूँजी में वृद्धि होती है।

विनियोग एक प्रवाह चर होता है तथा पूँजी इसी प्रवाह चर का प्रतिरूप एक स्टॉक चर होता है। जब विनियोग किया जाता है तब इसी पूँजी स्टॉक में वृद्धि होती है। किसी समयावधि में किया गया कुल विनियोग सकल विनियोग कहलाता है तथा इस सकल विनियोग का कुछ भाग उत्पादन क्रिया के दौरान मशीनों आदि की घिसावट के कारण प्रयुक्त हो जाता है इसे पूँजी ह्रास कहते हैं। सकल विनियोग में से यदि इस पूँजी ह्रास की मात्रा को घटा दिया जाता है तब इसे शुद्ध या निवल विनियोग कहते हैं। यदि किसी विशेष समयावधि में, किसी अर्थव्यवस्था में कुल विनियोग की मात्रा पूँजी

ह्रास की मात्रा से अधिक है तो निवल विनियोग धनात्मक होगा अन्यथा यह ऋणात्मक होगा और अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्षमता में गिरावट आएगी। अतः अर्थव्यवस्था में कुल पूँजी स्टॉक की मात्रा को स्थिर बनाए रखने के लिए जो विनियोग आवश्यक होता है उसे प्रतिस्थापन विनियोग कहा जाता है। इस प्रकार पूँजी स्टॉक में वृद्धि ही निवल विनियोग है। कीन्स के अनुसार व्यक्ति जो बचत करते हैं वह पूँजीगत वस्तुओं पर व्यय होता है। इसलिए वास्तविक बचत हमेशा वास्तविक विनियोग के बराबर होती है। कीन्स का विनियोग से आशय ऐसे विनियोग से है जिससे अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर में वृद्धि होती है तथा अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार सन्तुलन की ओर बढ़ती है।

11.4 विनियोग के प्रकार

विनियोग दो प्रकार के होते हैं: स्वायत्त विनियोग तथा प्रेरित विनियोग। स्वायत्त अथवा स्वतन्त्र विनियोग आय में परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होता है। इसका उद्देश्य लाभ कमाना भी नहीं होता। प्रायः जब किसी देश की सरकार सामाजिक कल्याण अथवा विकास के उद्देश्य से सार्वजनिक पूँजी जैसे सड़कों, नहरों, अस्पतालों, भवनों, पुलों आदि के निर्माण पर व्यय करती है तब इसे स्वायत्त विनियोग माना जाता है। स्वायत्त विनियोग, आय की अपेक्षा जनसंख्या वृद्धि तथा तकनीकी प्रगति आद अन्य कारणों से प्रभावित होता है। इसके विपरीत प्रेरित विनियोग लाभ कमाने के उद्देश्य से किया जाता है। यह आय सापेक्ष होता है। अतः वो विनियोग जो आय में वृद्धि से प्रेरित होता है उसे

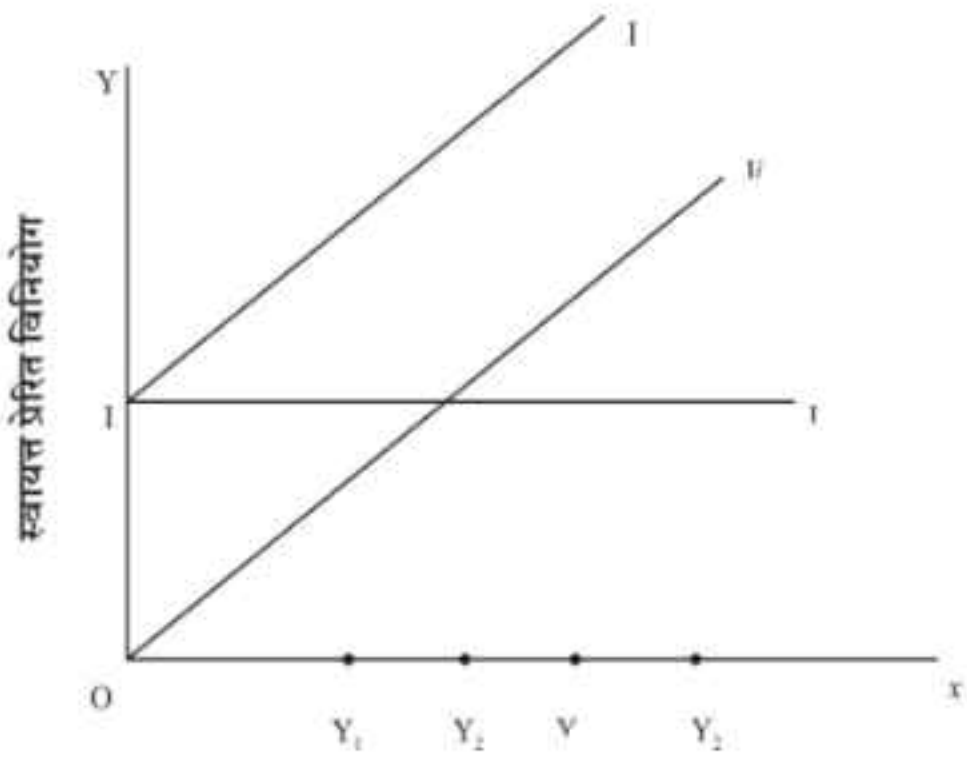

प्रेरित विनियोग कहते हैं। जैसे-जैसे किसी अर्थव्यवस्था में आय के स्तर में वृद्धि होती है वस्तुओं व सेवाओं की मांग में वृद्धि होती है परिणामस्वरूप प्रेरित विनियोग की मात्रा भी बढ़ती जाती है। चित्र में इसे ऐसे दिखा सकते है:-

II_0 = स्वायत्त निवेश रेखा। जो आय के स्तरों से स्वतन्त्र है।

OI = स्वायत्त विनियोग की मात्रा।

OI_i = प्रेरित विनियोग रेखा। जब आय का स्तर शून्य होता है तब प्रेरित विनियोग भी शून्य होता है जबकि स्वायत्त विनियोग की मात्रा OI है। जैसे-जैसे आय बढ़ती है प्रेरित विनियोग की मात्रा बढ़ती जाती है जबकि स्वायत्त विनियोग स्थिर रहता है।

II = कुल विनियोग रेखा अर्थात कुल विनियोग = स्वायत्त विनियोग + प्रेरित विनियोग

11.5 विनियोग फलन:

विनियोग फलन विनियोग को निर्धारित करने वाले तत्वों का फलन है अर्थात विनियोग तथा उसे निर्धारित करने वाले तत्वों के बीच के फलनात्मक सम्बन्ध को विनियोग फलन कहते हैं। विनियोग दो प्रकार का होता है: स्वायत्त तथा प्रेरित विनियोग। इसमें से स्वायत्त विनियोग आय के स्तरों में परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होता बल्कि कुछ अन्य बाहरी कारणों जैसे जनसंख्या में वृद्धि, प्राविधिक प्रगति, नवप्रर्वतन, अविष्कार आदि से प्रभावित होता है इसलिए किसी विशेष समयावधि में स्वायत्त विनियोग को दिया हुआ मान लिया जाता है अतः इसके सम्बन्ध में विनियोग फलन नहीं होता है।

किन्तु प्रेरित विनियोग आय के स्तरों में परिवर्तनों से प्रभावित होता है तथा इसकी मात्रा कुछ चरों पर निर्भर करती है जैसे आय, मांग, लाभ, ब्याज की दर आदि। अतः विनियोग तथा इन चरों के बीच के फलनात्मक सम्बन्ध को प्रेरित विनियोग फलन कहते हैं।

11.6 कीन्स का विनियोग सिद्धान्त:

कीन्स के अनुसार विनियोग प्रेरणा मुख्यतः दो तत्वों पर निर्भर करती है: 1. विनियोग से प्राप्त होने वाले लाभ की प्रत्याशित दर जिसे कीन्स ने पूँजी की सीमान्त दक्षता कहा। 2. ब्याज की दर। कोई भी व्यक्ति जब बचत करता है तो इस बचत की मात्रा का वह दो प्रकार से प्रयोग कर सकता है: पहला उसे उत्पादन के लिए विनियोग कर दे जिससे वह लाभ अर्जित कर सकता है तथा दूसरा वह अपनी बचत को ऋणों के रूप में देकर ब्याज के रूप में कुछ अतिरिक्त आय अर्जित कर ले। इस प्रकार व्यक्ति प्रत्याशित लाभ की मात्रा तथा ब्याज दर में तुलना करता है। यदि लाभ की दर, ब्याज की दर से अधिक है तब तो विनियोग होगा अन्यथा नहीं। कीन्स ने पूँजी की एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली प्रत्याशित लाभ की दर को पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कहा।

कीन्स के अनुसार अल्पकाल में ब्याज दर में अधिक परिवर्तन नहीं होते अथवा ब्याज दर लगभग स्थिर ही रहती है। अतः पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अथवा प्रत्याशित लाभ की दर की विनियोग निर्धारित करने में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जब साहसी वर्ग की लाभ की प्रत्याशाएं अधिक होती हैं तब अर्थव्यवस्था में विनियोग में वृद्धि होती है। अतः राष्ट्रीय आय तथा रोजगार स्तर में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत जब साहसी वर्ग की लाभ अर्जित करने की प्रत्याशाएं घट जाती हैं तब वे विनियोग को कम कर देते हैं जिसके कारण समग्र मांग घट जाती है तथा राष्ट्रीय आय तथा रोजगार स्तर में गिरावट आ जाती है।

11.6.1 पूँजी की सीमान्त दक्षता अथवा प्रत्याशित लाभ दर:- पूँजी की सीमान्त दक्षता का अर्थ पूँजीगत सम्पत्ति में विनियोग करने से प्राप्त होने वाली प्रत्याशित लाभ की दर से होता है। पूँजी की सीमान्त दक्षता दो तत्वों पर निर्भर करती है: ;पद्ध पूँजी सम्पत्ति की भावी आय तथा ;पपद्ध पूँजी सम्पत्ति की पूर्ति कीमत अथवा लागत। पूँजी की सीमान्त दक्षता इन दोनों के बीच का अनुपात होती है।

1. पूँजी सम्पत्ति की आय:- भावी आय का अर्थ किसी पूँजी सम्पत्ति (मशीन) के उस कुल शुद्ध प्रतिफल से होता है जिसे कोई मशीन अपने पूरे जीवनकाल में दे सकती है। शुद्ध प्रतिफल को किसी मशीन द्वारा उत्पादित कुल उत्पादन मात्रा की बिक्री से प्राप्त आय में से उस मशीन की वर्तमान लागतों को घटा कर प्राप्त किया जाता है।

जब कोई साहसी किसी नई पूँजी परिसम्पत्ति को खरीदता है जब वह अनुमान लगाता है कि मशीन अपने जीवनकाल में उसे कुल कितनी सम्भावित भावी आय दे सकती है। उदाहरण के लिए मान ले यदि किसी मशीन का जीवन काल यदि 10 वर्ष हो तो उस मशीन से मिलने वाली भावी आयों को ज्ञात करने के लिए दस वर्षों के शुद्ध प्रतिफलों को जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार भावी आय का अर्थ एक नई पूँजी परिसम्पत्ति (मशीन) से उसके सम्पूर्ण जीवनकाल में प्राप्त होने वाले कुल प्रत्याशित प्रतिफल से होता है। संक्षेप में किसी मशीन की भावी आय वह कुल शुद्ध प्राप्य आय होती है जिसे कोई मशीन अपने जीवन काल में देती है।

2. पूँजी सम्पत्ति की पूर्ति कीमत:- किसी नई पूँजी परिसम्पत्ति को खरीदते समय कोई भी साहसी केवल उससे प्राप्त होने वाली भावी आय का ही अनुमान नहीं लगाता बल्कि वह उस मशीन की पूर्ति कीमत अथवा लागत को भी ध्यान में रखना पड़ता है। पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत से आशय एकदम नई मशीन की लागत से होता है अतः इसे पुनः स्थापना लागत भी कहते हैं।

किसी पूँजी सम्पत्ति की भावी आय तथा पूर्ति कीमत के आधार पर पूँजी सम्पत्ति की सीमान्त दक्षता को ज्ञात किया जा सकता है। पूँजी की सीमान्त दक्षता का अर्थ है कि एक साहसी एक नई पूँजी

सम्पत्ति की अतिरिक्त इकाई से उसकी लागत की तुलना में कितनी आय कमा सकेगा। कीन्स ने पूँजी की सीमान्त दक्षता को परिभाषित करते हुए कहा, ''पूँजी की सीमान्त दक्षता बट्टे की उस दर से बराबर होती है जो किसी मशीन के सम्पूर्ण जीवनकाल में प्राप्त होने वाले कुल वार्षिक प्रतिफलों के वर्तमान मूल्य को उसकी पूर्ति कीमत के बराबर कर दे।'' अन्य शब्दों में किसी मशीन की सीमान्त दक्षता वह दर है जिस पर उस मशीन की सीमान्त इकाई से प्रत्याशित भावी प्राप्ति में बट्टा किया जाए ताकि यह उस मशीन की लागत अथवा पूर्ति कीमत के बराबर हो जाए। इस प्रकार पूँजी सम्पत्ति की प्रत्याशित भावी प्राप्तियाँ = पूर्ति कीमत। सूत्र में,

$$Sp = \frac{Q_1}{(1+r)^1} + \frac{Q_2}{(1+r)^2} + \frac{Q_3}{(1+r)^3} + \ldots\ldots\ldots\ldots + \frac{Q_n}{(1+r)^n}$$

इसमें, Sp =नई पूँजी सम्पत्ति की पूर्ति कीमत, Q_1, Q_2, Q_3 ..... Q_n आदि प्रत्याशित वार्षिक प्राप्तियां, r = वह बट्टा दर जो वार्षिक प्राप्तियों के वर्तमान मूल्य को पूँजी सम्पत्ति की पूर्ति कीमत के बराबर बना देता है। इस प्रकार r ही वास्तव में पूँजी की सीमान्त दक्षता को दिखाता है। क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया के दौरान मशीन की घिसावट होती है अतः उनकी उत्पादकता में कमी आती है अतः Q का मूल्य प्रतिवर्ष समान नहीं रहता। $\frac{Q_1}{(1+r)^1}$ = प्रथम वर्ष के अन्त में प्राप्त की गई वार्षिक आय के वर्तमान मूल्य को दिखाता है।

उदाहरण के लिए यदि वर्तमान ब्याज दर 10% हो तो आज अगले वर्ष प्राप्त होने वाले रु0 100 का मूल्य निश्चित रूप से रु0 100 से कम होगा। इसे आज यदि रु0 100 ब्याज पर उधार दिया जाए तो सूत्र के अनुसार $100\left(1+\frac{10}{100}\right)$ अथवा 100(1+0.1) = रु0 110 हो जाएगा। इस प्रकार एक वर्ष बाद प्राप्त होने वाले रु0 110 का वर्तमान मूल्य $\frac{100}{(1+10)^1}$ = रु0 100 होगा। स्पष्ट है कि पूँजी की सीमान्त दक्षता वह दर होती है जो किसी मशीन की भावी प्राप्तियों में से बट्टा काट कर उसे पूर्ति कीमत के बराबर बना देती है। कोई भी साहसी विनियोग तभी करेगा जब पूँजी सम्पत्ति की भावी आय का वर्तमान मूल्य उसकी पूर्ति कीमत से अधिक हो।

पूँजी की सीमान्त दक्षता वक्र चित्र में दिखाने पर ऋणात्मक ढाल वाला होता है। इस वक्र का प्रत्येक बिन्दु ब्याज दर तथा पूँजी की सीमान्त दक्षता में समानता प्रदर्शित करता है। विनियोग निर्णय उस बिन्दु पर होता जहां दोनों बराबर हों।

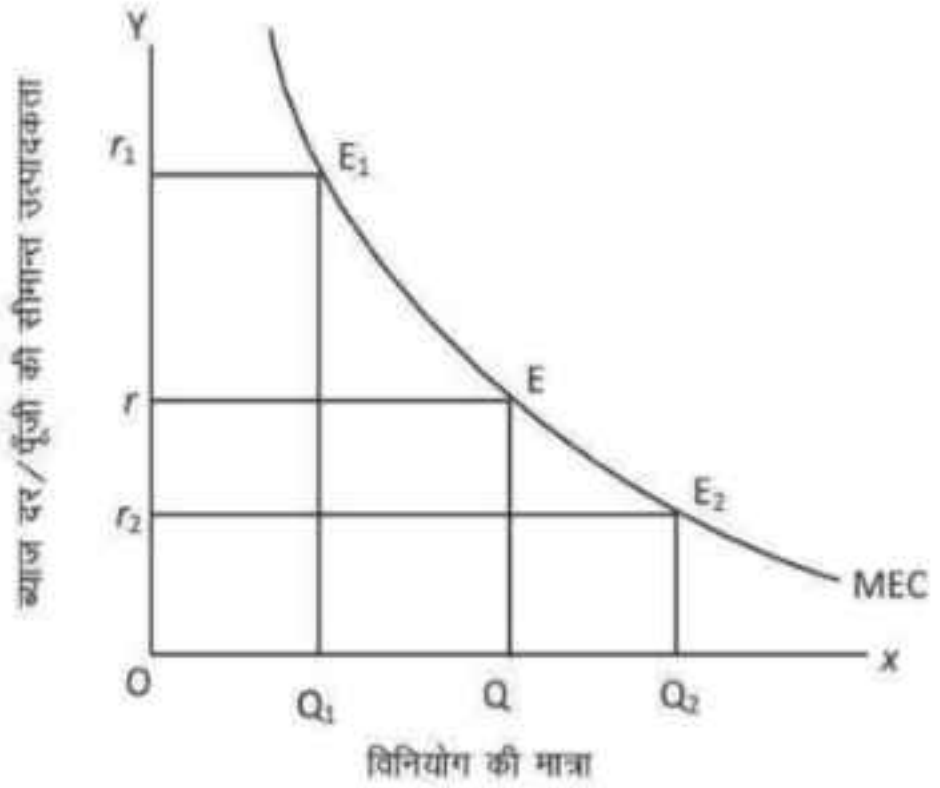

MEC = पूँजी की सीमान्त दक्षता वक्र

किसी विशेष प्रकार की पूँजी सम्पत्ति में विनियोग करने पर उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरती है क्योंकि एक ओर मशीन की मांग बढ़ने से उसकी पूर्ति कीमत में वृद्धि हो जाती है तथा दूसरी ओर अधिक उत्पादन होने के कारण, उत्पादित वस्तु की मांग कम हो जाएगी, अतः मशीन से प्राप्त होने वाली प्रत्याशित भावी आय कम होने लगेगी। अतः निवेश में वृद्धि होने पर पूँजी की सीमान्त दक्षता में कमी होगी। इसलिए इसको दिखाने वाला वक्र भी बांए से दाहिनी ओर नीचे ढाल वाला होता है।

इसके साथ ही विनियोग ब्याज दर पर भी निर्भर करता है। ब्याज दर में कमी होने पर विनियोग बढ़ता है क्योंकि लागत कम हो जाती है। इस प्रकार विनियोग बढ़ने पर ब्याज दर तथा पूँजी की सीमान्त दक्षता दोनों ही कम हो जाते हैं। चित्र में जब ब्याज दर Or है तो पूँजी की सीमान्त दक्षता EQ है अतः $Or = EQ$ अर्थात यदि अर्थव्यवस्था में OQ मात्रा में विनियोग किया जाता है तब पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा ब्याज दर बराबर होंगे। यदि ब्याज दर बढ़कर Or_1 हो जाती है तो विनियोग घटकर OQ_1 हो जाएगा क्योंकि पूँजी की सीमान्त दक्षता बढ़कर $E_1Q_1 = Or_1$ हो जाएगी और साहसी E_1 बिन्दु पर संस्थिति की स्थिति में होगा। इसी प्रकार ब्याज दर के गिरने पर विनियोग में वृद्धि होगी और पूँजी की सीमान्त दक्षता कम हो जाएगी अतः पूँजी का सीमान्त दक्षता वक्र ही विनियोग मांग वक्र होता है जो यह दिखाता है कि विभिन्न ब्याज दरों पर साहसी कितनी मात्रा में विनियोग करने को प्रेरित होंगे।

11.6.2 विनियोग के अन्य निर्धारक तत्व:-ब्याज दर के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी हैं जो किसी अर्थव्यवस्था में विनियोग की मात्रा को प्रभावित करते हैं, इनकी व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है:

(क) आन्तरिक कारक:- इन कारकों में मुख्यतः निम्नलिखित होते हैं:-

1. कीमत स्तर:- अर्थव्यवस्था में बढ़ता हुआ कीमत स्तर विनियोग को प्रोत्साहित करता है क्योंकि जब कीमतों में वृद्धि होती है तब साहसी की लाभ कमाने की प्रत्याशाएं बढ़ जाती हैं। इसके विपरीत मन्दी की स्थिति में कीमतों में गिरावट होती है और अधि-उत्पादन तथा आर्थिक निष्क्रियता का वातावरण विनियोग को हतोत्साहित कर देता है।

2. अनिश्चितता तत्व:-राजनैतिक घटनाओं, युद्ध, आन्दोलन, अफवाहों, तकनीकी विकास सम्बन्धी सूचनाओं आदि के कारण विनियोग कर्ताओं की व्यापार प्रत्याशाएं तेजी से बदलती हैं अतः पूँजी सम्पत्ति की प्रत्याशित आयों का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। इससे विनियोग में अस्थिरता आ जाती है।

3. पूँजीगत वस्तुओं का वर्तमान स्टॉक:-वर्तमान में यदि फर्म के बाद पूँजीगत वस्तुओं के वर्तमान स्टॉक का आधिक्य है तो उत्पादन में निष्क्रिय उत्पादन क्षमता की स्थिति होगी अतः और अधिक विनियोग करने की प्रेरणा कम हो जाएगी।

4. उपभोक्ता की आय तथा मांग:-जब उपभोक्ताओं की मौद्रिक आय में वृद्धि होती है तब उपभोग वस्तुओं की मांग भी बढ़ती है। इससे विनियोग में वृद्धि करने की प्रेरणा मिलती है। इसके विपरीत गिरती हुई आय व मांग विनियोग में कमी कर देती है।

5. फर्मों की तरल परिसम्पत्तियाँ:-यदि फर्मों के पास बड़ी मात्रा में अवितरित लाभ व आरक्षित निधि कोष होते हैं तब उनकी तरल सम्पत्तियाँ बढ़ जाती है तथा विनियोगकर्ता और अधिक विनियोग करने को प्रेरित होते हैं। तरल सम्पत्तियों के अभाव में विनियोग प्रेरणा कम हो जाती है।

6. उत्पादन के साधनों के मूल्यों में परिवर्तन:-यदि उत्पादन के साधनों के मूल्यों जैसे मजदूरी, ब्याज आदि में वृद्धि हो रही हो तो उत्पादन लागतों में वृद्धि होगी अतः साहसी की लाभ की मात्रा कम हो जाएगी और विनियोग हतोत्साहित होगा।

(ख) वाह्य कारण:-कुछ वाह्य कारण भी विनियोग सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करते हैं जैसे:-

1. जनसंख्या की वृद्धि:-जनसंख्या में वृद्धि उपभोग वस्तुओं की मांग में वृद्धि करती है तथा बाजार का विस्तार सम्भव होता है जिससे विनियोग में वृद्धि करने की प्रेरणा मिलती है।

2. आविष्कार तथा नवप्रवर्तन:-यदि किसी अर्थव्यवस्था में नए-नए तकनीकी आविष्कार तथा नवप्रवर्तन होते हैं तो इसके कारण उत्पादन की प्रविधियों में सुधार आता है। जिससे उत्पादन में वृद्धि व लागतों में कमी सम्भव हो जाती है अतः विनियोग में वृद्धि होती है।

3. पिछड़े क्षेत्रों का आर्थिक विकास:-सरकार की क्षेत्रीय सन्तुलित विकास की नीति के परिणामस्वरूप पिछड़े क्षेत्रों का विकास होता है तो इन क्षेत्रों में उद्योग व व्यापार आदि बढ़ते हैं जो विनियोग में वृद्धि को प्रेरित करते हैं।

4. सरकार की मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियाँ:-सरकार की मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियाँ, अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति, करारोपण की मात्रा, सरकारी नियन्त्रण, विनियोग की लागत, पूँजी व साख की उपलब्धता आदि को प्रभावित करती है। जिससे विनियोग की प्रेरणा प्रोत्साहित अथवा हतोत्साहित होती है।

5. राजनैतिक अस्थिरता:-किसी भी देश की राजनैतिक स्थिरता, विनियोग की मात्रा को बहुत हद तक प्रेरित करती है। राजनैतिक अस्थिरता व जल्दी-जल्दी बदलती सरकारें विनियोगकर्ता की विनियोग की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। जबकि राजनैतिक स्थिरता भविष्य में निवेश के लिए विश्वास का वातावरण उत्पन्न करती हैं।

11.7 विनियोग के कुछ अन्य प्रमुख सिद्धान्त:

क्लासिकल अर्थशास्त्री तथा कीन्स दोनों ही यह मानते हैं कि विनियोग ब्याज दर का फलन है। किन्तु बाद में विनियोग के सम्बन्ध में अनेकों सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए जो यह प्रतिपादित करते हैं कि -

i. विनियोग ब्याज दरों से बहुत कम प्रभावित होता है।
ii. विनियोग आय का निर्धारक ही नहीं बल्कि निर्धाय भी है।

इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं: -

11.7.1 विनियोग का लाभ का सिद्धान्त:

इस सिद्धान्त के अनुसार विनियोग की मात्रा साहसियों की लाभ की प्रत्याशा पर निर्भर करती है। प्रो0 शैपीरो के अनुसार विनियोग लाभों विशेष कर आन्तरिक लाभों पर निर्भर करता है। यदि किसी फर्म के लाभ ऊँचे होते हैं तो उसकी आय का स्तर अधिक होता है जिससे पूँजी की लागत कम होती है तथा वांछित पूँजी स्टॉक की मात्रा में वृद्धि होती है।

एक दूसरी व्याख्या के अनुसार कुछ अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि वांछित पूँजी स्टॉक सम्भावित लाभों पर निर्भर करता है अर्थात यदि फर्म के लाभ बढ़ते हुए हों तो उनके भविष्य में भी बढ़ने की सम्भावना होती है। अतः सम्भावित लाभ पिछले वास्तविक लाभों का फलन होते हैं। इसे सूत्र में $K_t = f(\pi_{t-1})$ के रूप में दिखा सकते हैं। इसमें K_t = वर्तमान अवधि के वांछित पूँजी स्टॉक, (π_{t-1}) = पिछली अवधि के वास्तविक लाभ और f = फलन है।

विनियोग का लाभ सिद्धान्त इस बात पर विशेष बल देता है कि फर्म के प्रबन्धक विनियोग की वित्तीय व्यवस्था के लिए आन्तरिक कोषों की मात्रा पर निर्भर करते हैं तथा आन्तरिक कोषों की मात्रा फर्म की अर्जित आय तथा अवितरित लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि विनियोग की मात्रा लाभ के स्तर पर निर्भर करती है।

11.7.2 विनियोग का नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त:- डेल0M0ब्ल्यू0 जोर्गनसन द्वारा प्रतिपादित विनियोग का यह सिद्धान्त नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहलाता है। जो अभीष्ट पूँजी स्टॉक के निर्धारण पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार फर्मों द्वारा अभीष्ट पूँजी स्टॉक, पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा पूँजी की किराया कीमत द्वारा निर्धारित होता है। पूँजी की सीमान्त दक्षता से आशय पूँजी सम्पत्ति की एक इकाई उत्पादन के लिए प्रयोग करने पर वस्तु के उत्पादन में कितनी वृद्धि होती है तथा पूँजी सम्पत्ति की किराया कीमत वास्तव में ब्याज की दर ही होती है। अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए कोई भी फर्म उतनी ही मात्रा में पूँजी स्टॉक की मात्रा रखेगी जिस पर पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा ब्याज दर समान हो जाए। इस प्रकार नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त में वांछित पूँजी स्टॉक अथवा विनियोग का निर्धारण उत्पादन की मात्रा द्वारा होता है। सूत्र में इसे ऐसे दिखा सकते हैं:-

$K^* = f(r, y)$ इसमें K^* = वांछित पूँजी स्टॉक, r = ब्याज की दर अथवा पूँजी की किराया लागत तथा y = उत्पादन मात्रा है। अतः समीकरण के अनुसार पूँजी का वांछित स्टॉक पूँजी की किराया लागत तथा उत्पादन मात्रा दोनों पर निर्भर करता है। यदि ब्याज दर में कमी होती है तो पूँजी की किराया लागत कम हो जाएगी तथा वांछित पूँजी स्टॉक की मात्रा में वृद्धि होगी। जबकि पूँजी की वांछित मात्रा उत्पादन मात्रा में वृद्धि होने से बढ़ेगी तथा उत्पादन कम होने पर घट जाएगी। चित्र में इसे निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं:-

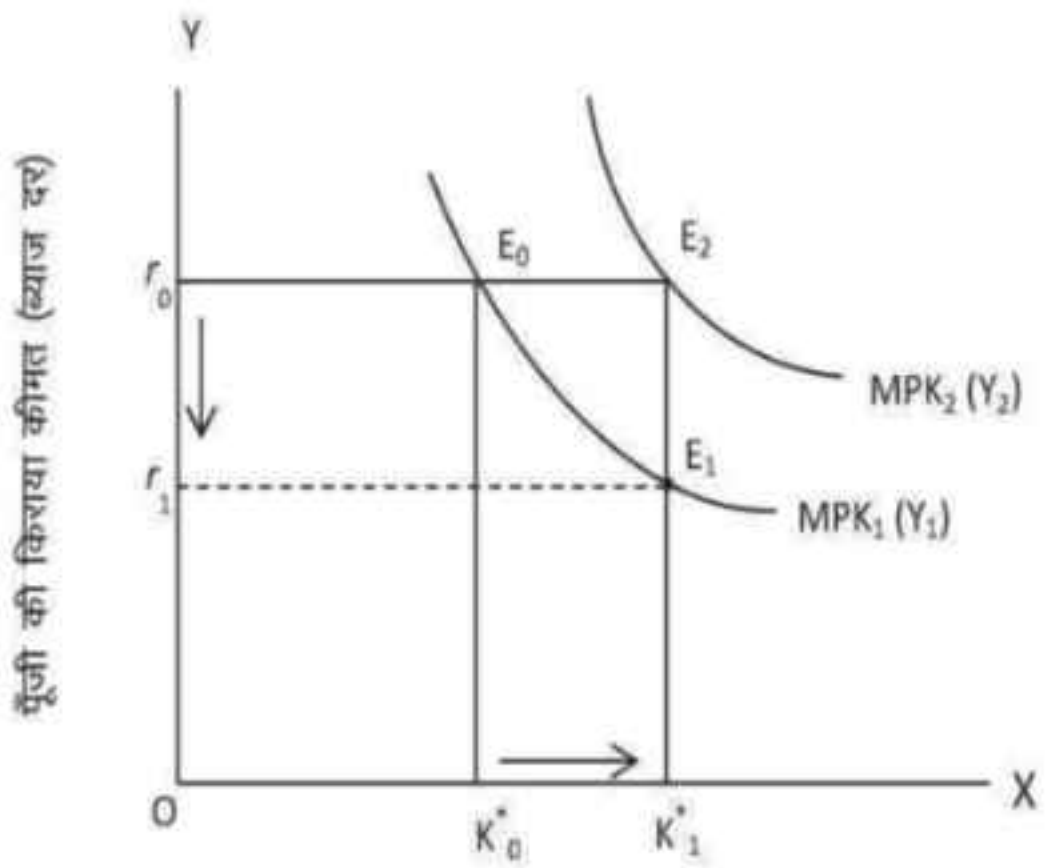

उपरोक्त चित्र में MPK पूँजी का सीमान्त दक्षता वक्र है जो ऋणात्मक ढाल वाला है। जो यह दिखाता है कि यदि एक विशेष उत्पादन मात्रा अर्थात Y_1 के लिए यदि पूँजी की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है तो उसका सीमान्त उत्पादन गिर जाता है। जब पूँजी की किराया लागत Or_0 है तब अधिकतम लाभ कमाने के लिए फर्म की वांछित पूँजी स्टॉक की मात्रा OK^*_0 है। इस पर पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा किराया लागत बराबर है अर्थात $Or_0=E_0K^*_0$ । यदि पूँजी की किराया लागत कम हो जाती है तो वांछित पूँजी स्टॉक की मात्रा बढ़कर OK^*_1 हो जाएगी क्योंकि पूँजी की लागत कम होने पर साहसी पूँजी को श्रम से प्रतिस्थापित करेगा। अतः E_1 बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति में पूँजी की किराया लागत Or_1 = पूँजी की सीमान्त दक्षता $E_1K^*_1$ होगा।

दूसरी ओर, पूँजी की वांछित मात्रा वस्तु की उत्पादन मात्रा द्वारा भी निर्धारित होती है। उपरोक्त रेखा चित्र में जब उत्पादन मात्रा Y_1 है तब पूँजी का वांछित स्टॉक OK^*_0 है। अब यदि उत्पादन मात्रा में वृद्धि की जाती है तो सीमान्त उत्पादन वक्र MPK_2 (Y_2) का रूप ले लेगा। अतः एक दी हुई किराया लागत or_0 पर वांछित पूँजी स्टॉक की मात्रा में OK^*_0 से OK^*_1 तक वृद्धि हो जाएगी। अतः यह स्पष्ट है कि नए सन्तुलन बिन्दु E_2 पर पुनः $Or_0=E_2K^*_1$ होगा।

उपरोक्त समीकरण $K^* = f(r, y)$ वांछित पूँजी स्टॉक की मात्रा को दिखाता है। किन्तु फर्मों का वास्तविक पूँजी स्टॉक सदैव वांछित पूँजी स्टॉक के बराबर नहीं होता। फर्में प्रायः वांछित पूँजी स्टॉक को तुरन्त प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती है। क्योंकि परियोजनाओं की परिपक्व अवधि कभी-कभी वर्षों में होती है। अतः फर्में अपने वांछित पूँजी स्टॉक की मात्रा को समय के साथ धीरे-धीरे बढ़ाती हैं। इसे धीमी गति से समायोजन की पूर्वधारणा कहते हैं। इस विचारधारा का सार यह है कि वर्तमान पूँजी स्टॉक तथा वांछित पूँजी स्टॉक की मात्रा में जितना अन्तर होगा, विनियोग की दर उतनी ही अधिक होगी। इसके अनुसार प्रत्येक अवधि में फर्में वांछित पूँजी स्टॉक तथा वर्तमान पूँजी स्टॉक के अन्तर के एक भाग के बराबर विनियोग अथवा समायोजन करके पूँजी स्टॉक में वृद्धि करती हैं। समीकरण में दिखाने पर,

$$K_t = K_{t-1} + \lambda(K^*-K_{t-1})$$

इसमें K_t = पिछली अवधि का पूँजी स्टॉक, K^* = वांछित पूँजी स्टॉक, K^*-K_{t-1} = दोनों का अन्तर तथा λ = वांछित पूँजी स्टॉक तथा वर्तमान पूँजी स्टॉक के अन्तर का वह भाग जिसके बराबर फर्में विनियोग में वृद्धि करती है। अतः पूँजी स्टॉक में निवल वृद्धि अर्थात $(K_t - K_{t-1})$ विनियोग ही है जिसे निम्न प्रकार से समीकरण में दिखा सकते हैं:

$$I = K_t - K_{t-1} = \lambda(K^*_t - K_{t-1})$$

इस प्रकार फर्म प्रत्येक अगली अवधि में शुद्ध विनियोग में वृद्धि अथवा पूँजी स्टॉक में वृद्धि I द्वारा, वास्तविक पूँजी स्टॉक तथा वांछित पूँजी स्टॉक के अन्तर के λभाग की पूर्ति करेगी। जैसे-जैसे

विभिन्न अवधियों में पूँजी स्टॉक में वृद्धि होती जाएगी प्रत्येक अवधि के आरम्भ में पूँजी स्टॉक की मात्रा तथा वांछित पूँजी स्टॉक में अन्तर धीरे-धीरे कम होता जाएगा। अतः विनियोग की मात्रा में भी क्रमशः कमी होती जाएगी। अन्त में वांछित पूँजी स्टॉक तथा वर्तमान पूँजी स्टॉक के अन्तर शून्य हो जाएगा क्योंकि फर्म अपने पूँजी स्टॉक को पूर्णरूप से समायोजित कर लेगी।

11.7.3 टोबिन का विनियोग का सिद्धान्त:-अमरीका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जेम्स टोबिन ने शेयर बाजार की दशाओं को पूँजी स्टॉक अर्थात विनियोग में वृद्धि को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनके अनुसार शेयर बाजार में होने वाले उतार-चढ़ाव विनियोग की दर को बहुत अधिक सीमा तक प्रभावित करते हैं। स्टॉक बाजार में कम्पनी के शेयरों की बढ़ती हुई कीमतें, फर्मों द्वारा भारी मात्रा में लाभ अर्जित करने की सम्भावनाओं को प्रदर्शित करती हैं। अतः व्यक्ति शेयर में विनियोग करके अधिक आय प्राप्त करने की आशा करते हैं। अतः शेयरों की बढ़ती हुई कीमतें विनियोग को प्रोत्साहित करती हैं। टोबिन के अनुसार फर्में अपने विनियोग सम्बन्धी निर्णय, स्थापित पूँजी का शेयर बाजार की कीमतों द्वारा निर्धारित मूल्य तथा स्थापित पूँजी की प्रतिस्थान लागत के बीच अनुपात के आधार पर करती हैं। टोबिन ने इसे q की संज्ञा दी तथा सूत्र में दिखाने पर,

$$q = \frac{\text{स्थापित पूँजी का शेयर बाजार की कीमतों द्वारा निर्धारित मूल्य}}{\text{स्थापित पूँजी की प्रतिस्थापना लागत}}$$

टोबिन के अनुसार, अर्थव्यवस्था में विनियोग की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि q इकाई से अधिक है अथवा कम। यदि q इकाई से अधिक है तो इसका अर्थ यह है कि वर्तमान पूँजी का शेयर कीमतों द्वारा निर्धारित मूल्य, उसकी वर्तमान प्रतिस्थापन लागत से अधिक है। अतः पूँजी स्टॉक अथवा विनियोग में वृद्धि करना लाभदायक होगा। अतः पूँजी स्टॉक में वृद्धि होगी। इसके विपरीत होने की दशा में, फर्में अपने वर्तमान पूँजी स्टॉक का ह्रास होने देंगी तथा प्रतिस्थापन नहीं करेंगी क्योंकि प्रतिस्थापन लागत अधिक होगी।

अतः टोबिन का विनियोग सिद्धान्त इस बात पर बल देता है विनियोग वर्तमान आर्थिक नीतियों के साथ-साथ भविष्य की प्रत्याशित नीतियों पर भी निर्भर करता है। इस प्रकार टोबिन का विनियोग का q सिद्धान्त अर्थव्यवस्था में शेयर बाजार की भूमिका के महत्व को स्पष्ट करता है।

11.8 विनियोग फलन का सारांश:

कीन्स के रोजगार सिद्धान्त में विनियोग राष्ट्रीय आय का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। विनियोग एक ओर आय सृजन के माध्यम से अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं की मांग सृजित करता है दूसरी ओर इसके कारण पूँजी स्टॉक में वृद्धि होती है। अल्पकाल में राष्ट्रीय आय तथा रोजगार का स्तर निर्धारित करने में विनियोग का अधिक सक्रिय योगदान होता है। किसी अर्थव्यवस्था में किया गया

वास्तविक विनियोग, पूँजीगत वस्तुओं जैसे मशीने, उपकरण संयंत्र, औजार व निर्माण कार्य आदि के रूप में होता है जिससे वास्तविक उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। विनियोग दो प्रकार का होता है, एक स्वायत्त तथा दूसरा प्रेरित। स्वायत्त विनियोग आय के स्तरों से स्वतन्त्र होता है। प्रेरित विनियोग आय में वृद्धि से प्रेरित होता है।

कीन्स के अनुसार विनियोग प्रेरणा मुख्यतः दो तत्वों पर निर्भर करती है: (1) पूँजी की सीमान्त दक्षता अथवा प्रत्याशित लाभ की दर तथा (2) ब्याज की दर। अल्पकाल में ब्याज की दर सामान्यतः स्थिर ही रहती है अतः विनियोग की मात्रा पूँजी की सीमान्त दक्षता से ही निर्धारित होती है। पूँजी की सीमान्त दक्षता स्वयं दो तत्वों पर निर्भर करती है एक पूँजी परिसम्पत्ति की भावी आय तथा दूसरा पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत। कोई भी विनियोगकर्ता इन दोनों की तुलना करता है तथा जब पूँजी सम्पत्ति की भावी आय उसकी लागत की तुलना में अधिक होती है तब विनियोग में वृद्धि होती है। ब्याज दर के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं जो विनियोग की मात्रा को निर्धारित करते हैं।

बाद के वर्षों में विनियोग के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए जो यह दिखाते हैं कि विनियोग पर ब्याज दरों में परिवर्तनों का बहुत कम प्रभाव पड़ता है साथ ही यह सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं कि विनियोग न केवल राष्ट्रीय आय का निर्धारक तत्व है बल्कि स्वयं राष्ट्रीय आय द्वारा निर्धारित भी होता है।

11.9 विनियोग फलन की आलोचना:

कीन्स की पूँजी की सीमान्त दक्षता (MEC) धारणा की निम्न कई आधारों पर आलोचना की गई है:-

1. कीन्स के पूँजी की सीमान्त दक्षता का प्रयोग कई अर्थों में किया है। अतः इसका सही-सही अर्थ समझाना अत्यंत ही कठिन है।

2. कीन्स अपने सिद्धान्त में MEC को प्रावैगिक आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित किया जबकि ब्याज दर को स्थैतिक आर्थिक क्रिया से। अतः कीन्स इस बात को समझने में विफल रहे कि ब्याज की दरें भी लाभ प्रत्याशाओं से उतनी ही प्रभावित होती हैं जितनी कि पूँजी की सीमान्त दक्षता।

3. कीन्स की पूर्ण प्रतियोगिता की धारणा अवास्तविक है।

4. विनियोग सम्बन्धी निर्णय केवल पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर ही निर्भर नहीं करते क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन के अन्य साधनों का भी योगदान होता है।

11.10शब्दावली:

1. वास्तविक पूँजी: मशीनों, संयंत्रों, उपकरणों आदि पर किया गया विनियोग जिससे अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

2. पूँजी सम्पत्ति की सीमान्त उत्पादकता: नई मशीन की प्रत्याशित लाभदायकता जिसे मशीन अपनी सम्पूर्ण जीवन अवधि में देती है।

3. पूर्ति कीमत: एकदम नई मशीनों के निर्माण पर आने वाली उत्पादन लागत।

4. स्वायत्त विनियोग: इसे सार्वजनिक विनियोग भी कहते हैं साधारणतः किसी देश की सरकार समाज कल्याण के उद्देश्य से सड़कों, अस्पतालों, नहरों, पुलों, भवनों, विद्युत परियोजनाओं आदि पर विनियोग करती हैं। यह आय व लाभ के स्तरों से प्रभावित नहीं होता है।

5. प्रेरित विनियोग: निजी पूँजीपतियों द्वारा लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से किया गया विनियोग प्रेरित विनियोग होता है। यह बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय व लाभ की मात्रा से प्रभावित होता है।

6. शेयर बाजार: जिस बाजार में विभिन्न फर्मों, कम्पनियों आदि के अंशों व प्रतिभूतियों आदि का क्रय-विक्रय किया जाता है। उसे शेयर बाजार कहते हैं।

7. वांछित पूँजी स्टॉक: मशीनों, उपकरणों, संयंत्रों व यन्त्रों आदि की मात्रा जिसमें पूँजीपतियों को विनियोग करने की इच्छा होती है।

8. पूँजी की किराया लागत: ब्याज की वह दर होती है जिस पर विनियोगकर्ता पूँजी सम्पत्ति को खरीदने हेतु लिए गए ऋण पर चुकाते हैं।

9. पूँजी की प्रतिस्थापन लागत: पुरानी घिसी मशीन के स्थान पर एक नई मशीन की बाजार कीमत पूँजी की प्रतिस्थापन लागत कहलाती है।

11.11अभ्यास प्रश्न:

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. विनियोग कितने प्रकार का होता है?
2. प्रेरित विनियोग किससे प्रेरित होता है?
3. कीन्स ने पूँजी की एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली प्रत्याशित लाभ दर को क्या कहा?

4. वाक्य पूरा कीजिए-पूँजी की सीमान्त दक्षता बट्टे की वह दर है जो .....।

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1. निम्नलिखित में से कौन सा विनियोग आय में परिवर्तनों से अप्रभावित रहता है?

a. प्रेरित विनियोग b. स्वायत्त विनियोग c. वांछित विनियोग d.नियोजित विनियोग

2. वास्तविक विनियोग का अर्थ है,

a.वित्तीय सम्पत्तियों में विनियोग करना। b.कच्चे माल में विनियोग करना।

c.एकदम नई मशीनों में विनियोग करना। d.स्वर्ण आभूश णों में विनियोग करना।

3. जैसे-जैसे पूँजी सम्पत्ति की इकाईयों में वृद्धि की जाती है, पूँजी की सीमान्त दक्षता (MEC) .....।

a. गिरती जाती है। b.बढ़ती जाती है। c. स्थिर रहती है। d.अनिश्चित हो जाती है।

4. किसी अर्थव्यवस्था में विनियोग की मात्रा निर्भर करती है पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा .....पर।

a.लाभ की प्रत्याशा b.पूँजी सम्पत्ति की लागत c.पूँजी की प्रत्याशित आय d.ब्याज की दर

5. सूत्र $\left(\frac{Q}{1-r}\right)$ में r किसका प्रतीक है?

a.पूँजी सम्पत्ति की लागत b. ब्याज की दर c. पूँजी की सीमान्त दक्षता d.पूँजी सम्पत्ति का ह्रास

6. किसी अर्थव्यवस्था में सड़क निर्माण के लिए किया गया विनियोग क्या कहलाएगा?

a.प्रेरित विनियोग b.स्वायत्त विनियोग c.गैर-वित्तीय विनियोग d.वित्तीय विनियोग

7.किसी पूँजी-सम्पत्ति (मशीन) की पूर्ति कीमत का अर्थ है,

a. मशीन की लागत। b.मशीन का घिसावट व्यय c.मशीन के रख-रखाव पर व्यय

d.मशीन के चलाने पर आने वाला व्यय

अति लघु उत्तरीय प्रश्नउत्तर:

1. दो प्रकार का (1) स्वायत्त तथा (2) विनियोग
2. आय में होने वाले परिवर्तनों से।
3. पूँजी की सीमान्त दक्षता।

बहुविकल्पीय प्रश्न उत्तर:

1-(b) 2-(c) 3-(a) 4-(d) 5-(c) 6-(b) 7-(a)

11.13सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आहूजा, एच0एल0: एडवान्स मैक्रोइकोनामिक थीयरि, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली।

- द्विवेदी, डी0एन0: मैक्रोइकोनामिक्स: थीयरि एण्ड पॉलिसी, टाटा एमसी ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- लाल, एस0एन0: समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण (सिद्धान्त, समस्यायें तथा नीतियाँ) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- शपीरो, एडवर्ड: मैक्रोइकोनामिक एनालिसिस, गलगोटिया पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

11.14उपयोगी सहायक ग्रन्थ

- Eisnor, Robert and R.H. Strolz, Determinant of Business Investment.
- J.M. Keynes : General Theory of Employment Interest and Money.
- Hall, Robert and Jorgenson Dele W : Tax Policy and Investment Behaviour in American Economic Review, June 1967
- Toben James : A General Equilibrium Approach to Monetory Theory.

11.15निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूँजी की सीमान्त दक्षता की परिभाषा दीजिए। किसी अर्थव्यवस्था में विनियोग स्तर निर्धारण करने में इसकी क्या भूमिका होती समझाइए।
2. विनियोग फलन से आप क्या समझते हैं? उपयुक्त आरेखों का प्रयोग करके स्वायत्त तथा प्रेरित विनियाग में भेद स्पष्ट कीजिए।
3. विनियोग के प्रमुख निर्धारक तत्वों की विवेचना कीजिए।
4. जोर्गनसन के विनियोग के नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
5. विनियोग का आकार पूँजी की सीमान्त दक्षता तथा ब्याज की दर पर ही मुख्यतःनिर्भरकरता है। व्याख्या कीजिए।
6. किसी अर्थव्यवस्था में विनियोग के निर्धारण में पूँजी की सीमान्त दक्षता के महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई 12 निवेश फलन

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 निवेश का अर्थ एवं प्रकार
12.3.1 स्वतन्त्र निवेश एवं प्रेरित निवेश
12.3.2 सार्वजनिक निवेश एवं निजी निवेश
12.3.3 देशीय निवेश एवं विदेशी निवेश
12.4 निवेश के निर्धारक
12.4.1 ब्याज दर
12.4.2 पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता
12.4.3 अन्य कारक
12.5 टोबिन का निवेश सिद्धान्त
12.6 निवेश की उपयोगिता
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्न
12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

चतुर्थ खण्ड निवेश, गुणक और त्वरक से सम्बन्धित यह बारहवीं इकाई है। इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन से आप राष्ट्रीय आय तथा उपभोग के बारे में भली-भाँति समझ गये होंगे। राष्ट्रीय आय तथा रोजगार में वृद्धि के लिये निवेश क्रिया में वृद्धि की जाती है जिसका अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर बहुआयामी प्रभाव पड़ता है। उपभोग तथा बचत, आय के अभिन्न अंग हैं। निवेश फलन के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को स्पष्ट किया गया है।

निवेश फलन के अर्थ को स्पष्ट करने के साथ-साथ निर्धारक तत्त्वों को स्पष्ट किया गया है तथा निवेश के प्रकारों के साथ इसके महत्व को भी समझाया गया है।

अर्थव्यवस्था में मांग दो रूपों में की जाती है प्रथम, उपभोग वस्तुओं के लिये मांग तथा द्वितीय पूँजीगत वस्तुओं के लिये माँग। पूँजीगत वस्तुओं के लिये माँग ही निवेश फलन का केन्द्रबिन्दु है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि -

- अर्थव्यवस्था की मुख्य समस्याओं बेरोजगारी, निम्न प्रतिव्यक्तिआय का स्तर, आर्थिक उच्चावचन के निराकरण में निवेश फलन कितना महत्वपूर्ण है।
- विद्यार्थियों के अन्दर निवेश, अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत होने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाओं के बारे में अधिक से अधिक जानने के लिये प्रेरणा पैदा करना।
- निवेश का सरकार तथा आम जनता से क्या सम्बन्ध है।

12.3 निवेश का अर्थ एवं प्रकार

निवेश का शाब्दिक अर्थ नयी पूँजीगत वस्तुओं तथा परिसम्पत्तियों में वृद्धि करने से है। नई पूँजीगत वस्तुओं तथा परिसम्पत्तियों के अन्तर्गत मशीन, यंत्र, उपकरण, मकान तथा कारखाना निर्माण, आदि को शामिल किया गया है। इसके साथ नहरें, बाँध, सिंचाई के नवीन साधनों की स्थापना, सड़क, पुल, आदि में वृद्धि करना भी निवेश के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। इस प्रकार से निवेश एक निश्चित समयावधि में सरकार तथा निजी प्रयासों द्वारा किया गया वह व्यय प्रवाह है जो नवीन पूँजीगत वस्तुओं तथा परिसम्पत्तियों की खरीद के लिये किया जाता है।

नवीन पूँजीगत वस्तुओं तथा परिसम्पत्तियों में वृद्धि से अर्थव्यवस्था में उत्पादन में वृद्धि की जाती है। परिणामस्वरूप देश में उपभोक्ता पदार्थों के भण्डारों में भी वृद्धि होती है। सामान्यतः सरकारी प्रतिभूतियों तथा बॉण्ड-पत्रों की खरीददारी अथवा कम्पनियों के शेयर खरीदने में लगायी गयी पूँजी

को भी निवेश के रूप में मान्यता दी गयी है परन्तु अर्थशास्त्रियों ने इस प्रकार के निवेश को वित्तीय निवेश के रूप में ही माना है क्योंकि इस प्रकार का निवेश अर्थव्यवस्था में पूँजीगत वस्तुओं में वृद्धि नहीं करता है और न ही उत्पादन वृद्धि में सहायक होता है।

किसी देश की अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के स्तर के निर्धारण में निवेश को ही महत्वपूर्ण तत्व माना गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि पूँजीगत वस्तुओं में वृद्धि से केवल भौतिक वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि ही नहीं होती है बल्कि सेवाओं के उत्पादन में भी वृद्धि को शामिल किया जाता है। सरकारी विनियोग द्वारा सेवाओं के उत्पादन को प्रमुखता दी जाती है।

निवेश के प्रकार:- अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत इकाई में निवेश को अलग-अलग प्रकार से वर्गीकृत किया है।

12.3.1 स्वतन्त्र निवेश एवं प्रेरित निवेश :- अर्थशास्त्रियों द्वारा निवेश को अलग-अलग दृष्टिकोणों से वर्गीकृत किया है। यहाँ पर निवेश के दो प्रकारों की विवेचना की जा रही है –

1. स्वतन्त्र निवेश
2. प्रेरित निवेश

आपने अनुभव किया होगा कि अर्थव्यवस्था में ऐसे अनेक परिवर्तन होते रहते हैं जिनका आय से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जनसंख्या में वृद्धि या कमी होने से उपभोक्ता तथा पूँजीगत वस्तुओं की माँग में कमी या वृद्धि होती है। जिससे निवेश का स्तर भी प्रभावित होता है। इस प्रकार गैर-आयगत तत्त्वों द्वारा प्रभावित होने वाला निवेश स्वतन्त्र निवेश कहलाता है। सामान्य रूप से आय में वृद्धि या कमी से प्रभावित न होने वाला निवेश स्वतन्त्र निवेश कहलाता है।

कीन्स ने अपने निवेश सिद्धान्त में इसी स्वतन्त्र निवेश की अवधारणा का प्रयोग किया है। क्योंकि कीन्स के अनुसार अल्पकाल में निवेश का स्तर ब्याज की दर तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) द्वारा ही निर्धारित होता है। अल्पकाल में आय के स्तर का निवेश के निर्धारण पर प्रभाव नहीं पड़ता।

जनसंख्या वृद्धि के कारण निजी उद्यमियों के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा भी निवेश में वृद्धि करनी होती है जैसे परिवहन के साधनों का विस्तार, सुरक्षा सामग्री पर निवेश, अस्पताल तथा विद्यालयों का निर्माण, गरीबों के आवास निर्माण, नहरों एवं तालाबों का निर्माण आदि क्षेत्रों में किया गया सरकारी निवेश, आय-निरपेक्ष होता है। इस प्रकार का निवेश स्वतन्त्र निवेश कहा जाता है।

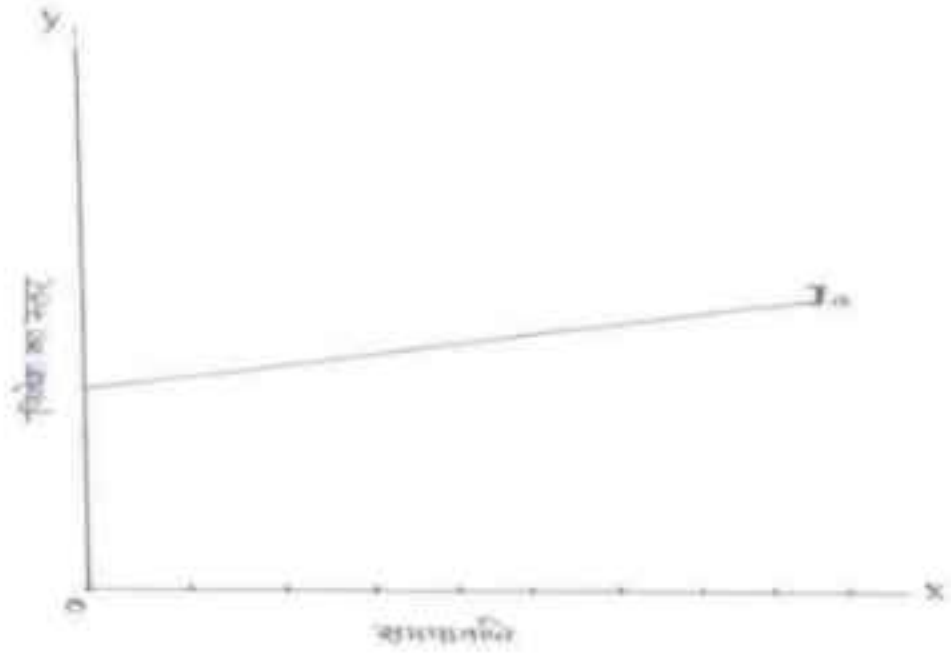

स्वतन्त्र निवेश की अवधारणा को समझने के बाद प्रेरित निवेश को स्पष्ट करेंगे। आय के स्तर के प्रभाव के सम्बन्ध में प्रेरित निवेश ठीक स्वतन्त्र निवेश के विपरीत दिशा में प्रभावित होने वाला निवेश है। प्रेरित निवेश से तात्पर्य उस निवेश से है जिसका निर्धारण आय के स्तर द्वारा निश्चित होता है। आय के बढ़ने पर निवेश अधिक तथा आय के घटने पर निवेश कम होता है। इस प्रकार के आय का प्रेरित निवेश के साथ सीधा तथा धनात्मक सम्बन्ध होता है।

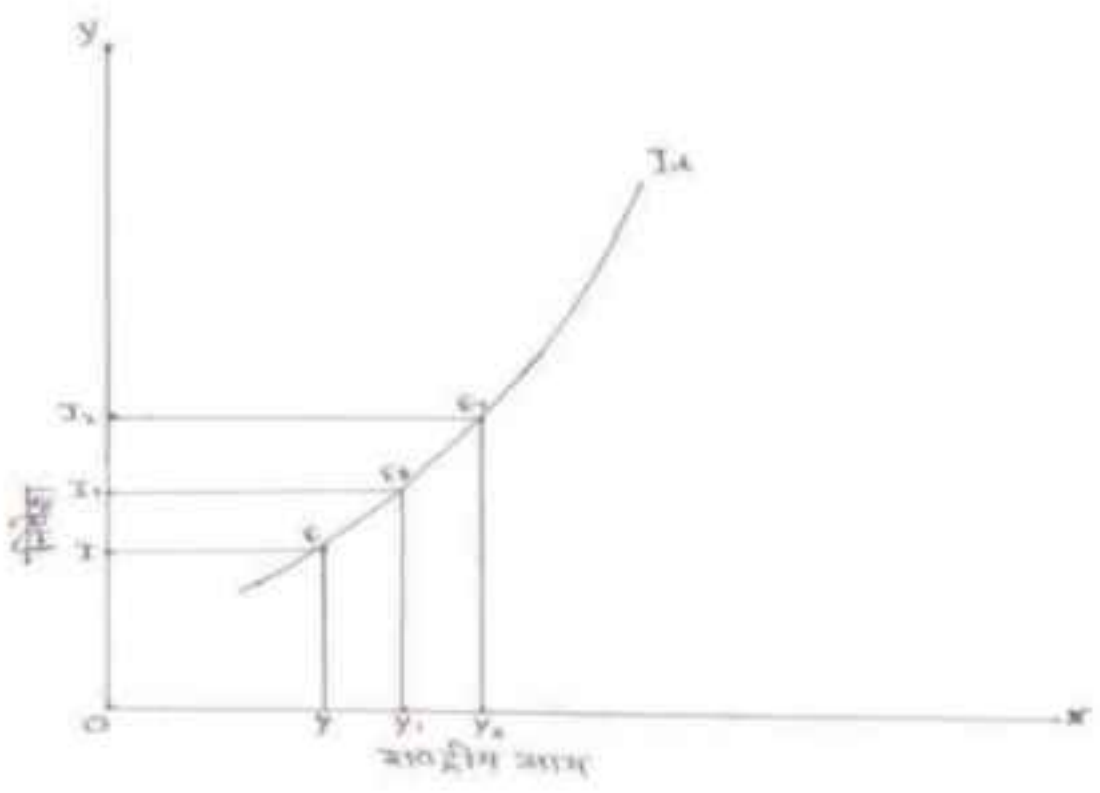

प्रेरित विनियोग की विशेषता -

राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर अर्थव्यवस्था में लोगों की क्रयशक्ति बढ़ती है जिसका एक भाग उपभोग पर व्यय किया जाता है तथा शेष भाग को बचा लिया जाता है। उपभोग वस्तुओं की मांग में वृद्धि की पूर्ति के लिये बचत के भाग का विनियोग किया जाता है। आय के स्तर में वृद्धि होने से सेवाओं की माँग भी बढ़ती है जिसके लिये अधिक विनियोग की आवश्यकता होती है। इस प्रकार

प्रेरित निवेश आय सापेक्ष होता है। सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र में प्रेरित विनियोग की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है।

12.3.2 सार्वजनिक निवेश एवं निजी निवेश:- अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति के अनुसार निवेश को दो अन्य रूपों में भी वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. **सार्वजनिक निवेश**
2. **निजी निवेश**

1. **सार्वजनिक निवेश :-** सार्वजनिक निवेश से हमारा तात्पर्य ऐसे निवेश से है, जो देश की सरकाकर या जनसत्ता द्वारा किया जाता है। देश की सरकाकरों द्वारा विकासात्मक तथा उत्पादकात्मक मदों पर निवेश किया जाता है। सरकार के लिये भी देश की जनसंख्या के हितों को सुरक्षित रखने का दायित्व होता है। उसी के अनुसार विनियोग की दिशा या स्तर निर्धारित होता है। सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, वित्तीय कार्य आदि पर किया गया निवेश को विकासात्मक निवेश कह सकते हैं तथा उर्वरक कारखाना, रेलवे, लौह-इस्पात संयंत्र, विद्युत उपक्रमों में निवेश से उत्पादन होता है तथा सरकार को पर्याप्त आय भी प्राप्त होती है। सरकार द्वारा किया गया सार्वजनिक निवेश स्वतन्त्र तथा प्रेरित निवेश में दोनों ही प्रकार का होता है। सरकाकर के पास वित्तीय तथा गैर-वित्तीय अधिकारों के अधिक होने पर देश में सार्वजनिक विनियोग का आकार अधिक बड़ा होता है। इसके विपरीत पूँजीवादी तथा विकसित देशों में अल्पविकसित देशों की अपेक्षा सार्वजनिक निवेश का स्तर नीचा होता है।
2. **निजी निवेश:-**''निजी निवेश से हमारा तात्पर्य उस निवेश से हे जो निजी क्षेत्र के उद्यमियों एवं निजी संस्थाओं द्वारा किया जाता है।'' कीन्स ने स्वतन्त्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में रोजगार संतुलन के लिये निजी निवेश की ही विवेचना की है।
   निजी निवेश पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण नहीं होता। इसी लिये निजी निवेश पूर्णरूप से लाभ की आशंसाओं के अनुसार ही किया जाता है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि निजी निवेश के द्वारा ही अर्थव्यवस्था में उच्चावन/व्यापार चक्रों की उत्पत्ति होती है।

12.3.3 देशीय निवेश एवं विदेशी निवेश:- विनियोग के इस वर्गीकरण का सम्बन्ध अर्थव्यवस्थाओं के विकास की स्थिति से है। जब अर्थव्यवस्था की स्थिति सुदृढ़ होती है तब देश की सरकार या पूँजीपतियों द्वारा ही देश के अन्दर पर्याप्त मात्रा में निवेश किया जाता है। वित्तीय संस्थाओं, कर्मचारियों एवं अन्य संस्थाओं द्वारा देशीय निवेश किया जाता है। देशी निवेश को बंद अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में भी देख सकते हैं। कीन्स ने अपने आर्थिक विश्लेषण में बंद अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत जिस निवेश की व्याख्या की है वह देशी निवेश ही है।

जब कोई देश अपने संसाधनों से निवेश की मांग की पूर्ति नहीं कर पाता है तब विदेशी सरकार संस्थाओं तथा उद्यमियों द्वारा निवेश किया जाता है। जो उस देश के आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त ही आवश्यक तथा गति देने वाला होता है। विदेशी निवेश को प्रेरित निवेश का ही एक रूप माना जाता है क्योंकि विदेशी निवेश का आकार एवं प्रकृति आय के स्तर पर निर्भर करता है। विकासशील देशों के लिये विदेशी निवेश अत्यन्त उपयोगी तथा आय एवं रोजगारवर्धक सिद्ध हुआ है।

12.4 निवेश के निर्धारक

अर्थव्यवस्था में निवेश को निर्धारित करने वाले तत्त्वों को कीन्स ने अपने निवेश सिद्धान्त में निम्न प्रकार रखा है -

12.4.1 ब्याज दर:- ब्याज दर निवेश को स्तर को निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण साधन माना गया है। उद्यमियों के पास इतनी अधिक मात्रा में स्वयं की बचतें नहीं होती कि उनसे आवश्यकता के अनुसार विनियोग की मांग को पूरा किया जा सके। अतः उद्योगपति/ उद्यमी ब्याज पर पूँजी लेकर विनियोग करते हैं। परिणामस्वरूप ब्याज की दर का निवेश पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ना स्वाभाविक हैं ब्याज की दर द्वारा निवेश को प्रभावित करने को दो रूपों में आसानी से समझाया जा सकता है।

प्रथमतः नवीन निवेश के लिये यह आवश्यक हे कि निवेश प्रतिफल की दर ब्याज की दर से कम नहीं होनी चाहिये। प्रतिफल की दर, ब्याज की दर से अधिक होने पर उद्यमी और अधिक पूँजी ब्याज पर लेकर निवेश करने के लिये प्रेरित होगा। इसके विपरीत लाभ की दर ब्याज की दर से कम होने पर उद्यमी ब्याज पर पूँजी लेकर निवेश नहीं करेगा। द्वितीयतः पूँजीपति ब्याज की दर तथा निवेश जोखिम के मध्य सम्बन्धों को भी ध्यान में रखता है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का स्तर ब्याज की दर से अधिक है तो वह पूँजी का विनियोग करेगा। ब्याज के लिये वित्तीय संस्थाओं में धन जमा नहीं करेगा। यदि ब्याज की दर अधिक रहती है तो बैंक में धन जमा किया जायेगा। निवेश के लिये जोखिम नहीं उठायेगा। ब्याज दर केन्द्रीय बैंक या सरकारी नीति द्वारा निर्धारित है जिसका निर्धारण निवेश प्रेरणा के लिये भी किया जाता है। इस स्थिति में ब्याज की दर अधिक होने पर निवेश कम तथा ब्याज दर कम होने पर निवेश अधिक किया जायेगा। साधारणः अल्पकाल में ब्याज दर अधिक परिवर्तन नहीं होते हैं। इसी लिये कीन्स ने इसे स्थिर ही मान लेना आवश्यक समझा।

12.4.2 पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता (MEC):-निवेश के निर्धारण में ब्याज की दर की भूमिका को समझने के बाद इससे महत्वपूर्ण कारक पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता का निवेश के स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करेंगे। कीन्स से अनुसार ब्याज की दर को स्थिर मान लेने

पर निवेश में होने वाले परिवर्तन मुख्यतः पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता/ उत्पादकता के परिवर्तनों के परिणामस्वरूप ही होते हैं।

''पूँजी की सीमान्त कुशलता से तात्पर्य एक अतिरिक्त पूँजी की इकाई विनियोग करने पर कुल प्रतिफल में होने वाले परिवर्तन से है।''

पूँजी की सीमान्त कुशलता का निवेश के साथ सीधा तथा धनात्मक सम्बन्ध होता है। पूँजी की सीमान्त कुशलता अधिक होने पर निवेश की मात्रा बढ़ती जाती है तथा कम होने पर निवेश का स्तर गिरता जाता है। लेकिन जैसे-जैसे निवेश की मात्रा बढ़ती जाती है। पूँजी की सीमान्त कुशलता घटती जाती है। परिणाम स्वरूप कुल निवेश में होने वाली वृद्धि की दर कम होती जाती है।

पूँजी की सीमान्त कुशलता तथा निवेश के मध्य सम्बन्ध को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका 1निवेश का स्तर तथा पूँजी की सीमान्त कुशलता

निवेश (करोड़ रू0 में)	पूँजी की सीमान्त कुशलता (प्रतिशत में)
100	11
200	9
300	7
400	5
500	3
600	1

उपर्युक्त तालिका के अनुसार 100 करोड़ रूपये का नवीन निवेश करने पर पूँजी की सीमान्त कुशलता (MEC) की दर 11 प्रतिशत है। 100 करोड़ रूपये का अतिरिक्त निवेश करने पर कुल निवेश 200 करोड़ रूपये हो जाता है जिस पर पूँजी की सीमान्त कुशलता घटकर 9 प्रतिशत रह जाती है। इसी पर कुल निवेश 600 करोड़ रूपये होने पर पूँजी की सीमान्त कुशलता घटकर केवल 1 प्रतिशत ही रह जाती है। जैसे जैसे MEC घटती जाती है निवेश हतोत्साहित होता जाता है।

निवेश के स्तर तथा पूँजी की सीमान्त कार्यकुश लता के मध्य सम्बन्ध को समझने के लिये नीचे दिये गये चित्र की सहायता ली जा सकती है।

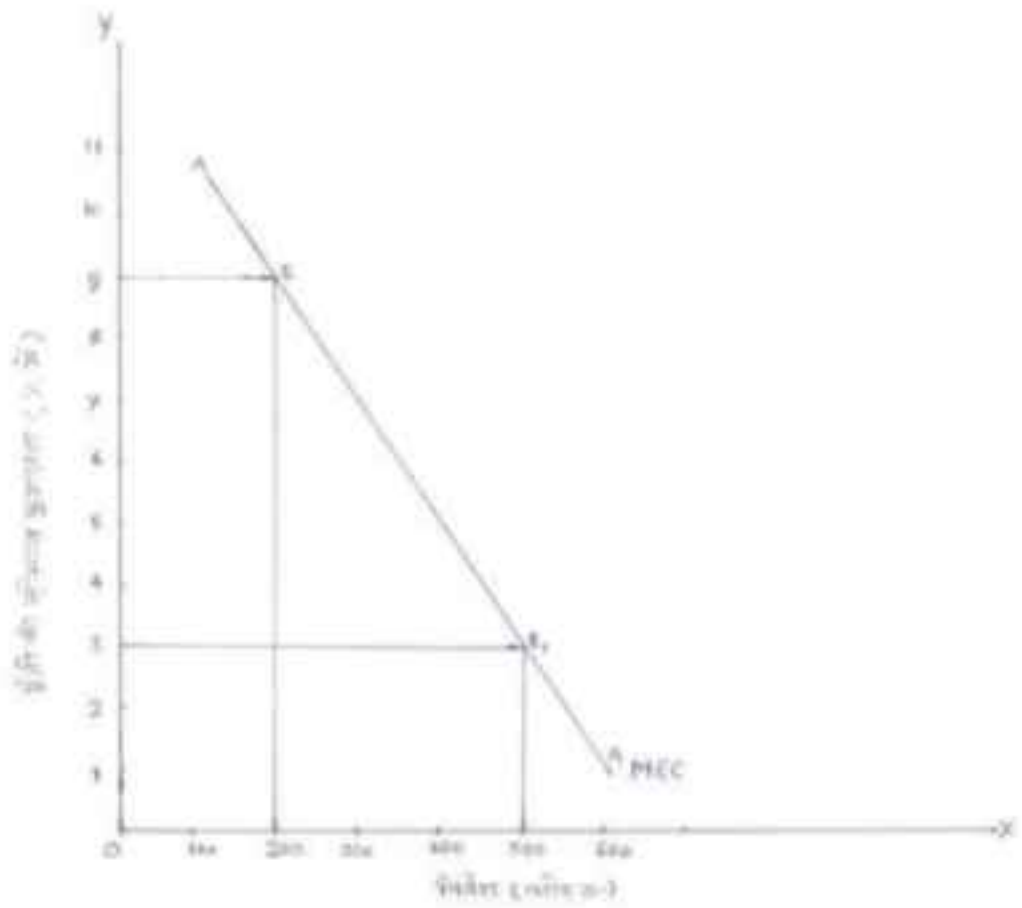

चित्र में x-axis पर निवेश की मात्रा (करोड़ रू0 में) तथा y-axis पर पूँजी की सीमान्त कुश लता को दर्शाया गया है।

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट होता है कि पूँजी की सीमान्त कुशलता वक्र (MEC) का ढ़ाल ऋणात्मक है तथा यह एक सीधी रेखा के रूप में नीचे की ओर गिर रहा है।

पूँजी की सीमान्त कुशलता (MEC) के स्तर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत या प्रतिस्थापन लागत तथा पूँजी की भावी सम्भावित आय एक दूसरे के बराबर होती है।

पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत से तात्पर्य उस कीमत से है जो हमें किसी पूँजीगत वस्तु को खरीदने के लिये देनी पड़ती है। एक पूँजीगत वस्तु कई वर्षों तक कार्य करती है किसी पूँजी परिसम्पत्ति से उसकी समस्त जीवन अवधि में जितनी आय अर्जित करने की आशा की जाती है उसे पूँजी की भावी सम्भावित आय कहते हैं।

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को निम्न गणितीय रूप से ज्ञात कर सकते हैं।

$$C = \frac{R_1}{1+r} + \frac{R_2}{(1+r)^2} + \frac{R_3}{(1+r)^3} + \frac{R_4}{(1+r)^4} \cdots\cdots\cdots \frac{R_N}{(1+r)^N}$$

यहाँ पर C = पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत या पूँजी की प्रतिस्थापन लागत

R_1, R_2 = पूँजी की विभिन्न वर्षों (1,2,7) में सम्भावित आय

r = पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC)

सामान्यतः निवेश के स्तर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (MEC) तथा ब्याज की दर (r) एक दूसरे के बराबर होते हैं। ऐसा न होने पर

अर्थव्यवस्था में असन्तुलन की स्थिति पैदा होगी। एक चित्र द्वारा इसे आसानी से समझाया जा सकता है।

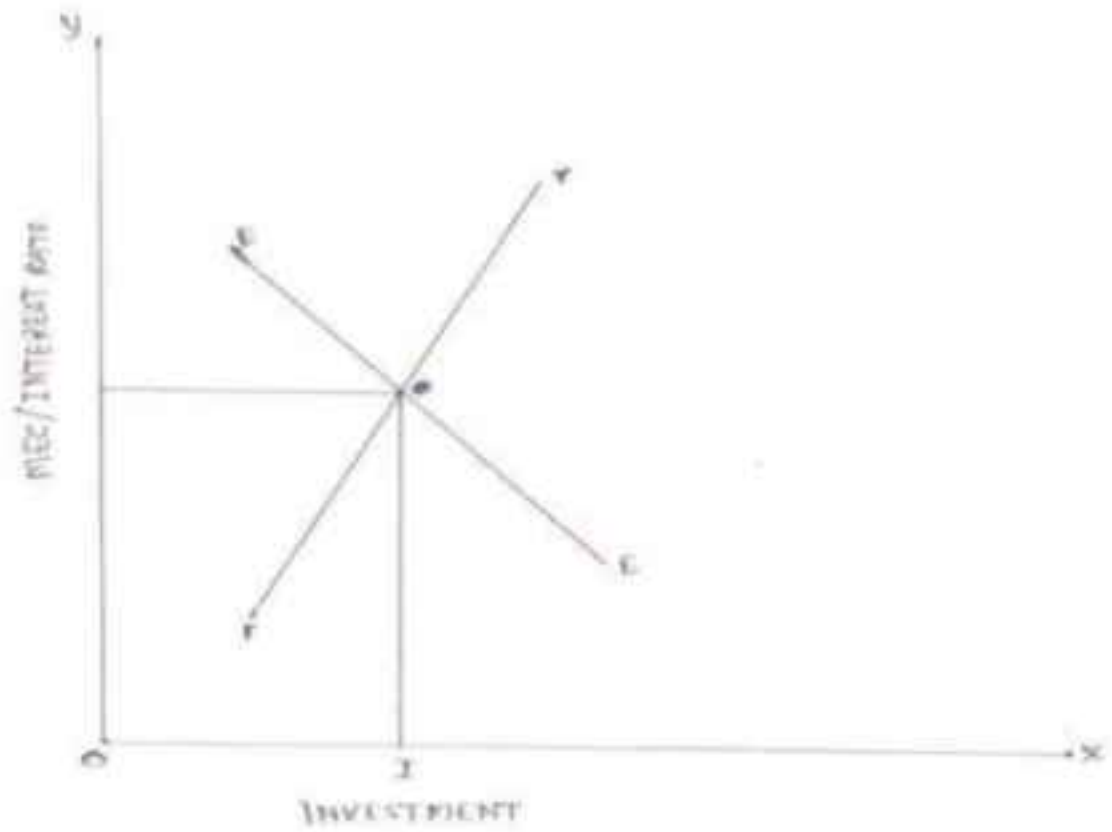

निवेश के स्तर का निर्धारण

चित्र में RR ब्याज वक्र है जिस पर बयाज की दर निवेश की मांग के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। निवेश की माँग अधिक होने पर ब्याज की दर अधिक तथा निवेश की मांग कम होने पर ब्याज की दर नीची होती जाती है। लेकिन अल्पकाल में ब्याज की दर को स्थिर माना गया है। EE पूँजी की सीमान्त कुशलता वक्र में दर्शाया गया है जैसे जैसे निवेश बढ़ता जाता है MEC की मात्रा गिरती जाती है। इस प्रकार ब्याज की दर तथा पूँजी की सीमान्त कुशलता का निवेश के स्तर से विपरीत सम्बन्ध है। निवेश बढ़ने पर ब्याज दर बढ़ती है लेकिन पूँजी की सीमान्त उत्पादकता गिरती है। इसके विपरीत निवेश की मात्रा कम होने पर ब्याज की दर कम होती है तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है। इसी लिये निवेश की मात्रा का निर्धारण चित्र के अनुसार e बिन्दु पर होगा जहाँ r तथा MEC वक्र एक दूसरे को आपस में काटते हैं।

12.4.3 अन्य कारक:-निवेश फलन के निर्धारण में अन्य कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(1) लाभ की आशंकायें:- व्यवसायियों तथा उद्योगपतियों द्वारा भविष्य में लाभ कमाने की जो आशायें की जाती है उससे भी निवेश का आकार एवं दिशा प्रभावित होती हैं। सामाजिक तथा राजनैतिक व अन्य कारणों से लाभ की आशंकायें बढ़ने लगती हैं तो अर्थव्यवस्था में निवेश की मांग बढ़ने लगती है तथा बिल निवेश में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत किन्हीं कारणों से लाभ की आषंसायें कम होने पर निवेश में कमी आती है तथा निबल निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(2) सरकार की निवेश नीति:- निवेश की मात्रा को सरकार की निवेश नीति भी प्रभावित करती हैं यदि सरकाकर की नीति रोजगार तथा उत्पादन को बढ़ावा देने वाली है तो उद्यमी निवेश के लिये प्रोत्साहित होंगे एवं निबल निवेश में वृद्धि होगी। सरकारी नीतियों के अनुसार ही निजी तथा

सार्वजनिक क्षेत्र में नवीन निवेश की मांग में वृद्धि या कमी होती है। निवेश के लिये विकसित तथा विकासशील देशों में अलग-अलग उद्देश्यों के अनुसार निवेश नीतियों तय की जाती हैं जिससे निवेश में कमी या वृद्धि होती है।

अर्थव्यवस्था में आर्थिक उतार चढ़ावों (व्यापार चक्र) की स्थिति में सरकारी हस्तक्षेप अत्यन्त आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में निवेश क्रिया सरकारी उपायों के अनुकूल प्रभावित होती है। इसके साथ संस्थागत वित्त व्यवस्था द्वारा भी निवेश की मात्रा को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया गया। वित्तीय संस्थाओं द्वारा पूँजी की सुगम उपलबधता से निवेश को बढ़ावा मिला हैं निजी क्षेत्र में वित्तीय संस्थाओं द्वारा पूँजी की उपलब्धता के क्षेत्र में उपलब्धियाँ अर्जित की जाती हैं। ये सार्वजनिक क्षेत्र के लिये भी अत्यन्त लाभकारी हैं।
यद्यपि उपभोग में वृद्धि द्वारा निवेश की माँग में वृद्धि होती है लेकिन समग्र माँग/जनसंख्या में वृद्धि भी निवेश को प्रेरित करती है। विकासशील देशों जहाँ जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है वहाँ नवीन निवेश अधिक मात्रा में किया गया। उन देशों में सार्वजनिक निवेश के साथ-साथ विदेशी निवेश को भी बढ़ावा दिया गया है। जनसंख्या बढ़ने से विकासशील तथा पिछड़े देशों में उपभोक्ता तथा पूँजीगत वस्तुओं की मांग में तीव्र वृद्धि हुई है जो निवेश वृद्धि के लिये अत्यन्त उत्तरदायी है।

12.5 टोविन का निवेश सिद्धान्त

टोविन के निवेश सिद्धान्तको निवेश का q सिद्धान्त कहा जाता है जिसके अनुसार शेयर बाजार में उतार चढ़ाव निवेश की दर को बहुत सीमा तक प्रभावित करता है। जब शेयरों की कीमतें बढ़ती हें तो उनसे यह प्रदर्शित होता है कि फर्मों को बड़ी मात्रा में लाभ प्राप्त करने की सम्भावनाएँ हैं तथा ऐसी स्थिति में शेयर धारक अधिक मात्रा में लाभ प्राप्त कर सकेंगे। अतः शेयरों की कीमतों में वृद्धि निवेश में वृद्धि करता है तथा कीमतों में कमी निवेश में कमी होती है।

टोविन का यह सिद्धान्त नव प्रतिष्ठित निवेश सिद्धान्त से मेल खाता है। इस सिद्धान्त में q स्थापित पूँजी का शेयर बाजार की कीमतों द्वारा निर्धारित मूल्य तथा पूँजी की प्रतिस्थापन लागत का अनुपात है।

$$q = \frac{\text{स्थापित पूँजी का शेयर बाजार की कीमतों द्वारा निर्धारित मूल्य}}{\text{स्थापित पूँजी की प्रतिस्थापन लागत}}$$

q का मान इकाई से अधिक होगा तब निवेश में वृद्धि होगी तथा q का मान इकाई से कम होगा तब निवेश प्रोत्साहित नहीं होगा तथा निवेश में कमी होगी जिसका आय तथा रोजगार के स्तर

पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार टोविन के q सिद्धान्त के अनुसार शेयर बाजार में उतार-चढ़ाव का अर्थव्यवस्था के उत्पादन, आय तथा रोजगार परिवर्तन के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध है।

12.6 निवेश की उपयोगिता

निवेश फलन एक ऐसा तत्व है जो राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के स्तर के निर्धारक होने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के लिये अन्य रूपों में अत्यन्त उपयोगी है।

विकसित देशों की मुख्य समस्या राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के स्तर में स्थिरता बनाये रखने की है, तो विकासशील देशों में आय तथा रोजगार के स्तर में निरन्तर वृद्धि आवश्यक है। निवेश फलन दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं की समस्याओं को हल करता है। स्वतन्त्र तथा प्रेरित निवेश दोनों ही प्रकार का निवेश राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के स्तर में वृद्धि करता है। निवेश का आकार जितना अधिक होगा, आय तथा रोजगार के स्तर में उसी दिशा में वृद्धि होगी। निवेश के द्वारा न केवल माँग की पूर्ति की जाती है अपितु निवेश के द्वारा मांग का सृजन भी होता है।

आय तथा रोजगार के बाद अर्थव्यवस्था में कीमत निर्धारित करने में भी निवेश अत्यन्त उपयोगी है। अनेक कारणों से कीमतों में उतार-चढ़ाव का दौर जारी रहता है। निवेश के माध्यम से मांग-पूर्ति के मध्य सन्तुलन स्थापित करके कीमतों के स्तर को निर्धारित किया जाता है। उचित तथा अर्थव्यवस्था के अनुकूल कीमतों का निर्धारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

कीमतों के अत्यधिक ऊँचा होने पर लाभ की दर बढ़ती है जिससे अधिक निवेश किया जाता है और उत्पादन में वृद्धि होती है और कम कीमतों की स्थिति में निवेश का स्तर कम होता है जिसमें पूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार कीमतों का उचित निर्धारण होता है। निवेश के माध्यम से माँग को भी कीमतों के अनुसार कम या अधिक किया जा सकता है।

गुणक तथा त्वरक क्रिया का आधार निवेश फलन ही है। निवेश फलन के द्वारा गुणक तथा त्वरक की अन्तर्क्रिया प्रभावित होती है जिसका अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ते हैं।

आपको यह भी समझना अत्यन्त आवश्यक है कि निवेश सामाजिक कल्याण में वृद्धि के लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। जनसंख्या में वृद्धि, बदलते उपभोग प्रतिरूप, नवीन अभिरूचियों में परिवर्तन के कारण सरकार को अनेक सामाजिक कार्यक्रमों पर भी अत्यधिक निवेश करना होता है जो निजी क्षेत्र द्वारा सम्भव नहीं हैं सामाजिक-कल्याण पर किया गया निवेश स्वतन्त्र निवेश होता है जो सरकार द्वारा ही सम्भव होता है। समाज कल्याण के लिये निवेश न केवल पिछड़े देशों अपितु विकसित देशों की जनता के लिये भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

12.7 सारांश

निवेश फलन का अर्थ सामान्य तौर पर पूँजीगत तत्वों में निबल वृद्धि से लगाया जाता हैं निवेश फलन को अर्थव्यवस्था के अनेक तत्व प्रभावित करते हैं लेकिन ब्याज तथा पूँजी की सीमान्त कुशलता मुख्य निर्धारक हैं। ब्याज अल्पकाल में स्थिर रहती है। इसी कारण अल्पकाल में निवेश की मात्रा पूँजी की सीमान्त कुशलता द्वारा ही निर्धारित होती है।

निवेश को स्वतन्त्र निवेश एवं प्रेरित निवेश, निजी निवेश एवं सार्वजनिक निवेश तथा देशीय एवं विदेशी निवेश के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे-जैसे पूँजी की सीमान्त कुशलता अधिक होने पर निवेश का स्तर ऊँचा होता है जैसे-जैसे निवेश बढ़ता जाता है। पूँजी की सीमान्त कुशलता घटती जाती है और निबल निवेश की दर घटती जाती है। निवेश की मात्रा का निर्धारण ब्याज की दर तथा पूँजी की सीमान्त कुश लता के कथन बिन्दु पर होता है।

निवेश अर्थव्यवस्था के उचित संचालन के लिये अत्यन्त आवश्यक है। निवेश के अभाव या कमी से अर्थव्यवस्था की स्थिरता बनाये रखना भी सम्भव नहीं है।

12.8 शब्दावली

- पूँजी - धन का वह भाग जो किसी उत्पादक कार्य में लगा हो।
- ब्याज दर - बैंकों द्वारा उपभोक्ताओं को दिये गये ऋण की बट्टा दर।
- सीमान्त उत्पादकता - किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में वृद्धि उस साधन की सीमान्त उत्पादकता कहलाती है।
- लाभ आशंसायें - व्यवसायियों द्वारा भविष्य में लाभ कमाने की जो आशायें की जाती हैं।
- तेजी - वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि।
- मंदी - वस्तुओं की कीमतों में कमी।

12.9 अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प का चयन करो -

1. निवेश क्रिया से वृद्धि होती है -

   a.रोजगार स्तर में b.राष्ट्रीय आय में c.पूँजीगत परिसम्पत्तियों में d.उपर्युक्त सभी में

2. निवेश के बचत से अधिक होने पर -

   a.मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा होती है b.बेरोजगारी बढ़ती है c.गरीबी बढ़ती है d.कोई नहीं

3. सड़क निर्माण पर किया गया निवेश है -

a.स्वायत्त विनियोग b.प्रेरित विनियोग c. a तथा b दोनों d.कोई नहीं

4. निवेश में वृद्धि के साथ पूँजी की सीमान्त कार्यकुश लता ------- है।

5. कीन्स का निवेश सिद्धान्त अल्पकालीन है। (सत्य/ असत्य)

6. प्रेरित निवेश ------ के स्तर पर निर्भर है।

7. वित्तीय निवेश क्या है?

8. भावी सम्भावित आय क्या है?

9. निवेश का q सिद्धान्त किसने दिया?

10. निवेश के दो मुख्य निर्धारण बताओ?

उत्तर -

1. (d) उपर्युक्त सभी में
2. (a) मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा होती है
3. (a) स्वायत्त विनियोग
4, घटती
5. सत्य
6. आय
7. उत्तर के लिये बिन्दु 13.3 को देखें
8. उत्तर के लिये बिन्दु 12.4.2 को देखें
9. उत्तर के लिये बिन्दु 12.5 को दखें
10. उत्तर के लिये बिन्दु 12.4 को देखें

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, एच0एल0 (2010), उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, दिल्ली।
2. Shapiro, E. (1996), ***Macroeconomic Analysis***, Galgotin Publications, New Delhi.
3. सेठ, एम0एल0 (2010), अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा।
4. सेठी, टी0टी0 (2009), समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
5. आहूजा, एच0एल0 (2009), उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।
6. सिंह, बी0एन0बी0 (2008), इण्डियन इकोनोमी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिकेश न प्रा0 लि0, नई दिल्ली।

12.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, एस0पी0 (2009), आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।

2. पंत, जे0सी0 एण्ड डॉ0 एल0एल0 सेठी, आर्थिक विचारों का इतिहास, लक्ष्मीनरायन अग्रवाल प्रकाश न, आगरा।
3. पंत, जे0सी0 (2006), तुलनात्मक आर्थिक प्रणालियाँ, लक्ष्मीनरायन अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा।
4. वैश्य, एम0सी0 (2003), मौद्रिक अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निवेश से आप क्या समझते हैं? स्वतन्त्र निवेश तथा प्रेरित निवेश में अन्तर बताओ?
2. निवेश के प्रमुख निर्धारक तत्वों की विवेचना कीजिये?
3. निवेश मांग से क्या तात्पर्य है? निवेश मांग के उत्तरदायी कारक बताओ?
4. निवेश के महत्व को स्पष्ट करो?

इकाई 13 गुणक का सिद्धान्त

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 गुणक का अर्थ एवं स्वरूप
13.4 गुणक एवं उपभोग बचत
13.4.1 सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति एवं गुणक
13.4.2 सीमान्त बचत प्रवृत्ति एवं गुणक
13.4.3 गुणक की ऋणात्मक दिशा
13.5 सुपर गुणक
13.5.1 गुणक एवं अर्थव्यवस्था
13.5.2 गुणक की आवश्यक दशाएँ
13.5.3 गुणक फलन की आलोचना
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्न
13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 उपयोगी/ सहायक ग्रन्थ
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत गुणक से सम्बन्धित यह तेहरवीं इकाई है। पहले की इकाई में निवेश फलन को आप भली भाँति समझने के बाद गुणक को आसानी से समझा जा सकता है।

गुणक क्रिया का मुख्य आधार निवेश ही है जो उपभोग फलन के साथ क्रियाशील होता है। इस इकाई के अन्तर्गत आप समझ सकेंगे कि गुणक क्या होता है तथा यह किस प्रकार कार्य करता है। अर्थशास्त्र में गुणक का प्रादुर्भाव प्रो0 एफ0ए0 काहन के रोजगार गुणक से माना जाता है। प्रो0 कीन्स का गुणक सिद्धान्त निवेश गुणक के रूप में जाना जाता है। जिसे 1929 में विकसित किया था।

इस इकाई के मध्ययन से बाद आप विभिन्न आर्थिक चरों यथा उपभोग, बचत के साथ गुणक के अर्न्तसम्बन्धों को समझ सकेंगे तथा अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का भी मूल्यांकन कर सकेंगे।

गुणक की क्रियाशीलता को समझने के लिये धनात्मक तथा ऋणात्मक रूप में गुणक के मान को भी स्पष्ट किया गया है जिसके द्वारा निवेश तथा आय के मध्य वास्तविक सम्बन्ध को समझा जा सकेगा।

प्रस्तुत इकाई में आप सुपर गुणक की अवधारणा से ही परिचित हो सकेंगे। इसके साथ गुणक के स्वरूप को भी स्पष्ट किया गया है। गुणक की आवश्यक दशाओं की मौजूदगी के साथ-साथ अर्थशास्त्रियों द्वारा गुणक की आलोचनाओं से भी आप परिचित हो सकेंगे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्यों के अन्तर्गत आप -

- समझ सकेंगे कि निवेश में होने वाली प्रत्येक वृद्धि राष्ट्रीय आय में किस प्रकार तथा किस सीमा तक वृद्धि करती है जो किसी अर्थव्यवस्था के लिये अत्यन्त उपयोगी है।
- अर्थव्यवस्था की अनेक समस्याओं के समाधान में गुणक कितना महत्वपूर्ण है।
- इन समस्याओं को हल करने में गुणक किस प्रकार कार्य करता है।

13.3 गुणक का अर्थ एवं स्वरूप

सामान्यतः गुणक से हमारा तात्पर्य निवेश में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय में होने वाले परिवर्तन के अनुपात से है। अर्थव्यवस्था में जब निवेश के स्तर में वृद्धि करनी होती है तो इस वृद्धि का प्रभाव अर्थव्यवस्था में अन्तिम रूप से आय में वृद्धि के रूप में होता है। आय में होने वाली इस वृद्धि को निवेश में परिवर्तन के गुना के रूप में व्यक्त किया जाता है।

यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि निवेश में होने वाला परिवर्तन अर्थव्यवस्था की समस्त क्रियाओं को प्रभावित करता है जिससे उपभोग तथा बचत के स्तर तथा आकार में परिवर्तन होता है। उपभोग विभिन्न उद्योगों को प्रभावित करता है और अन्त में आय में वृद्धि के रूप में परिलक्षित होता है।

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

यहाँ पर K = गुणक

ΔY = आय में परिवर्तन अथवा (निवेश के बाद आय - निवेश से पूर्व आय)

ΔI = निवेश में परिवर्तन अथवा (कुल निवेश - पूर्व निवेश)

यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह आवश्यक नहीं है कि जितनी मात्रा में नवीन निवेश किया जाता है, आय में यह वृद्धि नवीन निवेश (ΔI) के बराबर हो सकती है तथा अधिक या कम भी। गुणक का मान 1 नहीं हो सकता है, यह सदैव 1 से अधिक जैसे 1.3, 1.5, 2, 3.5, 4 आदि के रूप में तथा अनन्त से कम होता है।

गुणक का स्वरूप:-गुणक के अर्थ को स्पष्ट करने के पश्चात गुणक के स्वरूप को भी समझा जायेगा। समयावधि के अनुसार गुणक दो स्वरूपों में क्रियाशील होता है -

(1) स्थैतिक गुणक - इस प्रकार के गुण को आय पर निवेश में परिवर्तन का प्रभाव तत्काल होता है जिससे उपभोगगत वस्तुओं का उत्पादन उसी समय होता है तथा उपभोग वस्तुओं पर व्यय भी उसी समय कर दिया जाता है।

(2) प्रावैगिक गुणक - व्यवहारिक रूप में स्थैतिक गुणक में क्रियाशीलता नहीं पायी जाती है। वस्तुओं के उपभोग पर व्यय तथा उपभोग वस्तुओं के उत्पादन के समय में अन्तर पाया जाता हैं आय तथा उपभोग में समायोजन को श्रृंखला में कई महीने या वर्ष की समयावधि लग जाती है।

13.4 गुणक तथा उपभोग व बचत

गुणक के अर्थ एवं स्वरूप को समझने के बाद गुणक का उपभोग तथा बचत के साथ सम्बन्ध की व्याख्या करेंगे।

13.4.1 सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति एवं गुणक:-निवेश में होने वाले परिवर्तन का आय पर प्रभाव सीधा न होकर विभिन्न आर्थिक क्रियाओं के माध्यम से होता है। सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति गुणक के निर्धारक का सबसे प्रमुख महत्वपूर्ण तत्व है। निवेश में वृद्धि होने पर मांग में वृद्धि होती है। परिणाम स्वरूप पूर्ति की भी व्यवस्था करनी होती है। जिससे उद्योगों की आय में वृद्धि होती है। रोजगार में वृद्धि से लोगों की आय में भी वृद्धि होती है और उनकी क्रयशक्ति बढ़ती है। जिससे उपभोग के स्तर में वृद्धि होती है। उपभोग में यह वृद्धि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के रूप में बढ़ती है। सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बढ़ने से वस्तुओं की मांग पुनः बढ़ती है तथा पूर्ति में वृद्धि हेतु रोजगार के स्तर तथा मजदूरी में

वृद्धि होती है और यह कम चलता रहा है। इस प्रकार सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) जितनी अधिक होती है गुणक का मान भी उतना ही अधिक होता है। सीमान्त प्रवृत्ति जितनी कम होगी गुणक का मान भी उतना ही कम होगा।

संक्षिप्त रूप में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) के सम्बन्ध में गुणक को निम्न रूप में लिख सकते हैं।

$$K = \frac{1}{1-MPC}$$ (यहाँ पर MPC = सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति)

यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति 3/5 है तथा निवेश में परिवर्तन +200 करोड़ रूपये है तो गुणक के मान को निम्न प्रकार निकाल सकते हैं -

$$K = \frac{1}{1-MPC}$$

$$K = \frac{1}{1-3/5}$$

$$K = \frac{1}{2/5}$$

$$K = \frac{1x5}{2} \qquad = \frac{5}{2}$$

$$K = 2.5$$

अब यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बढ़कर 3/4 हो जाती है तब -

$$K = \frac{1}{1-MPC}$$

$$K = \frac{1}{1-3/4}$$

$$K = \frac{1}{1/4}$$

$$K = \frac{1x4}{1}$$

$$K = 4$$

इस प्रकार ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति 3/5 होने पर गुणक का मान 2.5 गुना है। अर्थात् 200 करोड़ रूपये के निवेश पर 500 करोड़ रूपये की आय में वृद्धि होगी। सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बढ़कर 3/4 होने पर गुणक का मान 4 गुना हो जाता है अर्थात् 200 करोड़ रूपये के नवीन निवेश के परिणाम स्वरूप 800 करोड़ रूपये की वृद्धि होगी जो पूर्व की आय परिवर्तन (ΔY) से 300 करोड़ रूपये अधिक है।

13.4.2 सीमान्त बचत प्रवृत्ति एवं गुणक :- सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का गुणक के साथ सम्बन्ध की व्याख्या के बाद सीमान्त बचत प्रवृत्ति की भी व्याख्या करना अत्यन्त आवश्यक है। सीमान्त बचत प्रवृत्ति का गुणक की मात्रा के साथ ऋणात्मक सम्बन्ध होता है। अर्थात् सीमान्त बचत प्रवृत्ति जितनी अधिक होगी गुणक का मान उतना ही कम होगा। इसके विपरीत MPS जितनी कम होगी गुणक का मान उतना ही अधिक होगा। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आपके लिये हितकर होगा कि MPS अधिक होने पर MPC कम होती है तथा MPS कम होने पर MPC अधिक होती है। अर्थात्

MPC + MPS = 1

सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का योग इकाई के बराबर होता है। इसलिये गुणक सीमान्त बचत प्रवृत्ति के व्युतक्रम के बराबर होता है।

$$K = \frac{1}{1-MPC}$$

$$K = \frac{1}{1-(1-MPS)} \qquad \therefore MPC + MPS = 1$$

$$K = \frac{1}{1-1+MPS} \qquad \therefore MPC = 1 - MPS$$

$$K = \frac{1}{MPS}$$

सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा गुणक की मात्रा के मध्य सम्बन्ध को निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यदि MPS का मान 1/4 है

तब

$$K = \frac{1}{MPS}$$

$$K = \frac{1}{1/4}$$

$$K = \frac{4}{1}$$

$$K = 4$$

सीमान्त बचत प्रवृत्ति का मान 1/4 होने पर गुणक का मान MPS का व्युत्क्रम अर्थात 4 गुना होगा। अब यदि MPS का मान बढ़कर 1/3 हो जाता है तब -

$$K = \frac{1}{1/3}$$

$$K = \frac{1x3}{1}$$

$$K = 3$$

MPS का मान 1/3 होने पर MPS का व्युत्क्रम अर्थात् 3 गुना गुणक होगा। इसके विपरीत सीमान्त बचत प्रवृत्ति का मान घटकर 1/5 हो जाता है तब -

$$K = \frac{1}{MPS}$$
$$K = \frac{1}{1/5}$$
$$K = \frac{1x5}{1}$$
$$K = 5 \text{ गुना}$$

अर्थात् MPS घटकर 1/5 होने पर गुणक का मान बढ़कर 5 गुना हो जाता है। एक गणितीय उदाहरण द्वारा सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा गुणक के अर्न्तसम्बन्ध को भली भाँति समझाया जा सकता है।

सीमान्त बचत प्रवृत्ति 1/5 है तब 200 करोड़ रूप्ये की निवेश वृद्धि (ΔI) होने पर आय में वृद्धि पाँच गुना होगी अर्थात् ΔY = 1000 करोड़ रूपये।

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

यहाँ पर ΔI = 200 करोड़ रूपये MPS = 1/5

तब

$$K = \frac{\Delta Y}{200 \text{ Cr.}}$$
$$\frac{1}{MPS} = \frac{\Delta Y}{200 \text{ Cr.}}$$
$$\frac{1}{1/5} = \frac{\Delta Y}{200 \text{ Cr.}}$$
$$\frac{5}{1} = \frac{\Delta Y}{200 \text{ Cr.}}$$
$$\Delta Y = \frac{200x5}{1}$$
$$\Delta Y = 1000 \text{ Cr. Rs.}$$

अर्थात् आय में 100 करोड़ रूपये की वृद्धि होगी।

इसके विपरीत MPS बढ़कर 1/4 होने पर, यदि निवेश में परिवर्तन 200 करोड़ रूपये ही है तब-

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$
$$\frac{1}{MPS} = \frac{\Delta Y}{200 \text{ Cr.}}$$
$$\frac{1}{1/4} = \frac{\Delta Y}{200 \text{ Cr.}}$$

$$\frac{1x4}{1} = \frac{\Delta Y}{200 \text{ Cr.}}$$

$$\frac{4}{1} = \frac{\Delta Y}{200 \text{ Cr.}}$$

$$\Delta Y = 200 \text{ x } 4 \text{ Cr.}$$

$$\Delta Y = 800 \text{ Cr.}$$

अर्थात् आय में वृद्धि 800 करोड़ रूपये होगी। उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि सीमान्त बचत प्रवृत्ति 1/5 होने पर आय में 1000 करोड़ रूपये की वृद्धि होगी तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति बढ़कर 1/4 होने पर आय में वृद्धि केवल 800 करोड़ रूपये ही होगी।

MPC, MPS **तथा** K **के साथ अन्तर्सम्बन्ध**:-**MPC,** MPS तथा K के मध्य अर्न्तसम्बन्धों को निम्न तालिका की सहायता से भलीभांति दर्शाया जा सकता है।

सारिणी 1सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति, सीमान्त बचत प्रवत्ती तथा गुणक का सम्बन्ध

MPC	**MPS**	**K (Multiplier)**
0	**1**	**1**
0.1	0.9	1.1
0.2	0.8	1.25
0.3	0.7	1.42
0.4	0.6	1.66
½ or 0.5	½ or .0.5	2
0.6	0.4	2.5
0.7	0.3	3.33
0.8	0.2	5.00
0.9	0.1	10.0
1.0	0	∝ (अनन्त)

सारिणी 1 से स्पष्ट हे कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति 0 होने पर गुणक का मान 1 के बराबर होगा। जैसे जैसे MPC बढ़ती जाती है MPS घटती जाती है। MPC के बढ़ने तथा MPS के घटने के साथ गुणक का मान बढ़ता चला जाता है। MPC 0 से बढ़कर 0.1 होने पर K का मान 1 से बढ़कर 1.1 हो जाता है। इसी प्रकार MPC बढ़कर 0.5 होने पर K का मान बढ़कर 2 हो जाता है। सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति में निरन्तर वृद्धि होने पर गुणक के मान में भी तेजी से वृद्धि होती है। MPC का मान 1 होने पर K का मान अनन्त हो जाता है लेकिन K का मान 1 या अनन्त होना एक सामान्य बात नहीं है। K का मान 1 तथा के मध्य ही रहता है।

तालिका में यह भी दर्शाया गया है कि जैसे-जैसे MPS घटती जाती है गुणक का मान इसके विपरीत बढ़ता जाता है। इस प्रकार गुणक का मान MPC के अनुकूल तथा MPS के विपरीत दिशा में उत्पन्न होता है।

13.4.3 गुणक की ऋणात्मक दिशा :- अब तक आपने पढ़ा कि अर्थव्यवस्था में निवेश में होने वाला परिवर्तन आय तथा उत्पादन में वृद्धि के रूप में ही प्रकट होता है तथा गुणक क्रिया की प्रवृत्ति घनात्मक होती है। कुछ विपरीत तथा असामान्य स्थितियों में गुणक की क्रियाशीलता ऋणात्मक दिशा में भी पायी जाती है। निवेश में परिवर्तन घनात्मक होने के साथ-साथ ऋणात्मक भी हो सकता है जिसका राष्ट्रीय आय अथवा उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा उत्पादन का स्तर गिरने लगता है। उत्पादन के स्तर में यह गिरावट गुणक की मात्रा के अनुरूप ही पायी जाती है। गुणक की मात्रा जितनी अधिक होगी उत्पादन तथा रोजगार में उतनी ही अधिक गिरावट आयेगी। गुणक का मान जितना कम होगा आय में यह गिरावट उतनी ही कम होगी। यहाँ यह भी ध्यान देना अति आवश्यक है कि निवेश तथा आय में यह कमी निबल रूप में ही होती है।

निवेश में कमी होने पर उद्योगों में रोजगार में लगे व्यक्तियों को रोजगार देने में समर्थ नहीं होते तथा व्यक्तियों की छंटनी आदि प्रारम्भ होती है जिससे बेरोजगारी बढ़ जाती है और अर्थव्यवस्था में कुल माँग में कमी होती है गुणक की ऋणात्मक दिशा में क्रियाशीलता में अधिक समय तक नहीं बनी रहती है क्योंकि ऐसी स्थिति में समस्त आर्थिक क्रियायें पूर्णरूप से अस्तव्यस्त हो जाती हैं।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना होगा कि निवेश में कमी के परिणामस्वरूप आय में कमी होती है, उस अनुपात के अनुसार उपभोग प्रवृत्ति में गिरावट नहीं होती है क्योंकि एक निश्चित स्तर पर उपभोग के आदि हो चुके होते हैं तथा उस स्तर पर उपभोग को बनाये रखते हैं जिससे गुणक के विपरीत दिशा में बहुत थोड़े समय के लिये क्रियाशील होकर उपभोग प्रभाव के कारण घनात्मक दिशा में कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। उपभोग प्रभाव के साथ-साथ सरकारी तथा निजी संस्थाओं द्वारा भी अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिये सार्थक प्रयास किये जाते हैं।

ऋणात्मक दिशा में गुणक की क्रियाशीलता को निम्न रूप में स्पष्ट कर सकते हैं:-

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I} \qquad \text{(घनात्मक रूप)}$$

$$K = \frac{-\Delta Y}{-\Delta I} \qquad \text{(ऋणात्मक रूप)}$$

यदि उपभोग प्रवृत्ति को स्थिर मान लिया जाय तथा गुणक का मान 2 है तथा निवेश में परिवर्तन - ΔI 100 करोड़ रू0 है तब राष्ट्रीय आय में 200 करोड़ रूप्ये की कमी आयेगी जिसे -ΔY के रूप में दर्शाया जायेगा।

यदि गुणक का मान पुनः बढ़कर 2.5 हो जायेगा तब निवेश में अग्रिम 100 करोड़ की कमी होने पर उपभोग में 250 करोM रूपये की कमी होगी जिसे -ΔY के रूप में निम्नवत् दर्शाया जायेगा।

$$K = \frac{-\Delta Y}{-\Delta I}$$
$$2.5 = \frac{-\Delta Y}{-100 \text{ Cr.}}$$
$$-\Delta Y = -100 \times 2.5$$
$$-\Delta Y = -250 \text{ Cr. Rs}$$

राष्ट्रीय आय में निबल कमी 250 करोड़ रूपये होगी।

13.5 सुपर गुणक

गुणक के सामान्य अर्थ एवं मान्य पक्षों से सम्बन्धित तथ्यों को समझने के बाद अब सुपर गुणक को स्पष्ट करेंगे। सुपर गुणक के अन्तर्गत त्वरक एवं गुणक की अन्तक्रिया द्वारा अन्तः आय तथा रोजगार पर कई गुना प्रभाव पड़ता है जिसे सुपर गुणक के रूप में व्यक्त किया जाता है।

प्रारम्भिक निवेश में वृद्धि के परिणाम स्वरूप आय में वृद्धि होती है जिससे उपभोग क्रिया में वृद्धि होती है। उपभोग में वृद्धि से त्वरक क्रिया के कारण निवेश की वृद्धि होती है जिससे पुनः आय तथा रोजगार में वृद्धि हो जाती है।

इसे गणितीय रूप में निम्नप्रकार से समझा जा सकता है -

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$
$$\Delta Y = \Delta C + \Delta S$$
$$a = \frac{\Delta I}{\Delta C}$$

$$\text{Super Multiplier} = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

ΔY तथा ΔI गुणक तथा त्वरक के बाद अन्तिम परिवर्तन हैं।

अति गुणक को प्रेरित उपभोग या सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति ($\Delta C/\Delta Y$) तथा प्रेरित निवेश या सीमान्त निवेश प्रवृत्ति के दोनों को जोड़कर प्राप्त की जाती है।

अन्ततः अतिगुणक बताया है कि यदि स्वायत्त निवेश में कोई प्रारम्भिक वृद्धि होती है तो आय में स्वायत्त निवेश की ज्ञे गुणा वृद्धि हो जायेगा।

आय पर गुणक-त्वरक के संयुक्त प्रभाव को नीचे स्पष्ट किया गया है। मान लें कि प्रेरक-उपभोग तथा प्रेरक-विनियोग का योग प्रेरक व्यय (Marginal Propensity to spend, MPX) है, अर्थात्

$$MPX = MPC + MPI$$

जहाँ MPI = विनियोग की सीमान्त प्रवृत्ति।

ऐसी स्थिति में मिश्रित या सुपर गुणक = $\frac{1}{1-MPX} = \frac{1}{1-(MPC+MPI)}$

13.5.2 गुणक तथा अर्थव्यवस्था:- किसी भी देश की अर्थव्यवस्था गुणक की क्रियाशीलता से एक बड़ी सीमा तक महत्वपूर्ण रूप में प्रभावित होती है। गुणक का प्रभाव बहुआयामी होता है। इस इकाई के पूर्व के खण्ड के अध्ययन से आप सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा गुणक की मात्रा के सम्बन्ध को भली-भाँति समझ गये होंगे। जिस प्रकार से सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का मान 0 तथा 1 के मध्य रहता है। ठीक इसी के अनुसार गुणक का मान भी 1 तथा अनन्त के मध्य ही रहता है।

गुणक का मान सामान्यतः 1 नहीं रहता। फिर भी K = 1 रहने पर आय में निवेश के बराबर ही वृद्धि होगी जिससे रोजगार के स्तर में अधिक वृद्धि होना सम्भव नहीं है तथा निवेशकर्ता नवीन निवेश के लिये प्रोत्साहित नहीं होंगे। परिणामस्वरूप गुणक अर्थव्यवस्था को अधिक गति प्रदान नहीं कर सकेगा। जैसे-जैसे गुणक का मान 1 से अधिक होता जाता है अर्थव्यवस्था में आय रोजगार के स्तर में वृद्धि होती जाती है तथा नवीन निवेश को प्रोत्साहित मिलता है। जब गुणक का मान अनन्त के पास होता है तब अर्थव्यवस्था में आय का स्तर तेजी से बढ़ता है तथा अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति/तेजी की दशायें उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाती है।

13.5.3 गुणक की आवश्यक दशायें :-गुणक का अर्थ एवं क्रियाशीलता को समझने के बाद यह भी समझना आपके लिये अति आवश्यक है कि गुणक की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक दशायें कौन-कौन सी हैं जिसके अन्तर्गत गुणक का आकार निर्धारित होता है। यदि ये आवश्यक दशायें मौजूद न हों तो गुणक के मान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है।

ये आवश्यक दशायें निम्नलिखित हैं।

(1) गुणक की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक है कि निवेश में शुद्ध वृद्धि होनी चाहिये। एक क्षेत्र में निवेश में कमी करके दूसरे क्षेत्र में निवेश नहीं बढ़ाना होगा बल्कि कुल निवेश में वृद्धि-निवल होनी चाहिये।

(2) पूर्ण रोजगार के स्तर पर गुणक का प्रभाव नहीं होगा।

(3) निबल विदेशी प्राप्तियाँ होनी चाहिये। आयातों का मूल्य निर्यात से अधिक न हो।

(4) उपभोग वस्तुओं की उपलब्धता बनी रहनी चाहिये ऐसा न करने पर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति घट जाती है। फलस्वरूप गुणक का मान कम होता जायेगा।

(5) कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि भी गुणक के मात्रा में वृद्धि को रोकता है। बढ़ी हुई आय का अधिक माँग में वृद्धि की अपेक्षा वस्तुओं की ऊँची कीमतों पर ही व्यय हो जाता है।

(6) अर्थव्यवस्था में मुद्रा की क्रियाशीलता बनी रहती है। मुद्रा की क्रियाशीलता कम होने पर गुणक कम क्रियाशील होता है। निष्क्रिय मुद्रा न तो उपभोग के लिये कार्य करती है और न ही बचत के रूप में प्रयोग होती है।

13.5.4 गुणक फलन की आलोचना:-यद्यपि गुणक फलन का अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है लेकिन विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा गुणक फलन की विभिन्न आधारों पर आलोचनायें की गयी हैं।

1. प्रो0 हेनरी हैजलिट ने कहा कि ''निवेश तथा आय में कोई स्पष्ट, पूर्व निश्चित अथवा यांत्रिक सम्बन्ध नहीं होता है।

निवेश में परिवर्तन के परिणामस्वरूप आय के स्तर में होने वाला परिवर्तन अन्य तत्वों का भी परिणाम होता है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती।

2.गुणक की क्रियाशीलता के लिये जो आवश्यक दशायें निर्धारित की गयी हैं वह एक सामान्य अर्थव्यवस्था में निश्चित रूप से नहीं पायी जा सकती है।

3.सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का गुणक के साथ सीधा तथा घनात्मक सम्बन्ध स्थापित किया गया है। आय बढ़ने पर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति घटने की होती है ऐसी स्थिति में गुणक का मान निरन्तर कम होना चाहिये। दूसरी ओर गुणक को बचत प्रवृत्ति का व्युत्क्रम माना गया है। निवेश के लिये भी बचत प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

4.गुणक स्वयं में एक निष्क्रिय तथ्य है। त्वरक की क्रियाशीलता के बिना गुणक की मात्रा की कल्पना करना सार्थक नहीं होती है।

5.मार्शल ने गुणक को मनगढंत बताया तथा स्टिग्लर एवं हाटे ने गुणक की अवधारणा को आवश्यक तथा व्यर्थ बताया।

13.6 सारांश

गुणक का अर्थ निवेश में प्रारम्भिक परिवर्तन के फलस्वरूप आय में अन्तिम रूप से होने वाले आनुपातिक परिवर्तन से लगाया जाता है। इस प्रकार निवेश में होने वाला परिवर्तन आय में धनात्मक या ऋणात्मक परिवर्तन के रूप में भी हो सकता है। निवेश को गुणक का सामान्य रूप से सीमान्त

उपयोग प्रवृत्ति के साथ धनात्मक तथा सीधा सम्बन्ध के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार गुणक सीमान्त बचत प्रवृत्ति का व्युत्क्रम होता है।

जैसे-जैसे सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती जाती है वैसे वैसे गुणक की मात्रा भी बढ़ती जाती है। गुणक का अर्थव्यवस्था में आय पर प्रभाव के साथ-साथ रोजगार की मात्रा पर भी प्रभाव पड़ता है। गुणक की मात्रा अधिक होने पर नवीन निवेश को प्रोत्साहन मिलता है तथा कम होने पर नवीन निवेश के लिये प्रेरणा कम होती जाती है।

अर्थशास्त्रियों ने गुणक तथा त्वरक की अन्तर्क्रिया द्वारा आय तथा रोजगार पर पड़ने वाले प्रभाव के संदर्भ में सुपर गुणक की अवधारणा को भी विकसित किया है। गुणक केवल धनात्मक दिशा में ही नहीं बल्कि ऋणात्मक दिशा में भी कार्य करता है। कुछ विपरीत तथा असमान स्थितियों में गुणक विपरीत दिशा में क्रियाशील होता है। ऋणात्मक दिशा में गुण की क्रियाशीलता ठीक गुणक की धनात्मक दिशा की ओर क्रियाशीलता के समान होती है। निवेश में कमी होने पर आय में जो कमी होती है वह वह गुणक के आकार पर निर्भर करती है।

गुणक की क्रियाशीलता को बनाये रखने के लिये अर्थशास्त्रियों द्वारा अनेक मान्यताओं को भी निर्धारित किया है जिनकी उपस्थिति में ही गुणक कार्यशील होता है।

गुणक के स्वरूप को भी अर्थशास्त्रियों द्वारा दो रूपों में स्पष्ट किया है - स्थैतिक गुणक के अन्तर्गत समय तत्व को अधिक महत्व नहीं दिया गया। निवेश तथा आय में परिवर्तन के मध्य समय को अलग रखा गया। इसी प्रकार प्रावैगिक गुणक के अन्तर्गत समय तत्व को स्थान दिया गया। इसके अन्तर्गत विनियोग तथा आय के मध्य एक निश्चित समयावधि निर्धारित की गयी।

गुणक का मान सदैव 1 तथा अनन्त के बीच पाया जाता है। गुणक का मान 1 अथवा अनन्त भी नहीं पाया जाता है यह केवल काल्पनिक अवस्थायें हैं।

अर्थव्यवस्था में अनेक तत्व गुणक की मात्रा को कम या अधिक करने के लिये भी कार्य करते हैं। इस प्रकार देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिये गुणक महत्वपूर्ण तथ्य है।

13.7 शब्दावली

राष्ट्रीय आय - किसी देश में एक समयावधि में जितनी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किया जाता है उनका मूल्य राष्ट्रीय आय कहलाता है।

उपभोग - वस्तुओं तथा सेवाओं की उपयोगिता का अन्तिम प्रयोग उपभोग कहलाता है।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) - आय में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप उपभोग में परिवर्तन का अनुपात ($\Delta C/\Delta Y$)

सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) - आय में होने वाले परिवर्तन के परिवर्तन बचत में होने वाले परिवर्तन का अनुपात ($\Delta C/\Delta Y$)

क्रय शक्ति - मुद्रा की वह शक्ति जो किसी वस्तु को खरीद सकती है।

व्युत्क्रम - उल्टा या विपरीत सम्बन्ध।

अनन्त - जिसकी कोई ऊपरी सीमा निर्धारित नहीं है।

मुद्रा स्फीति /तेजी - वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि।

13.8 अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प का चयन करो?

1. गुणक है -

   a. □I/□Y b.□Y/□I c. □Y/□C d.कोई नहीं

2. गुणक क्रियाशील रहता है -

   a.केवल धनात्मक रूप में b.धनात्मक तथा ऋणात्मक रूप में c.केवल विपरीत दिशा में d.कोई नहीं

3. रोजगार गुणक का सम्बन्ध है -

   a.कीन्स से b. मार्शल से c.एम0ए0 काहन से d.फ्रीडमैंन से

4. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति ऊँची होने पर गुणक -

   a.अधिक होगा b.स्थिर होगा c.कम होगा d.कोई नहीं

5. किसने गुणक को मनगढ़ंत बताया है -

   a.कीन्स b. हैजलिट c. क्राउथर d.मार्शल

6. किसने गुणक की धारणा को आवश्यक तथा व्यर्थ बताया है -

   a.कीन्स b.स्टिगलर c.हाटे d. स्टिगलर एवं हाटे

7. सुपर गुणक का सूत्र है -

   a. $^1/_{1-MPC}$ b. $^1/_{1-MPX}$ c.1 – MPX d.1 - MPC

8. MPX =

   a. MPC b. MPC - MPI c. MPC + MPI d. MPC / MPI

9. गुणक की मात्रा सीमान्त बचत प्रवृत्ति की (MPS) की व्युत्क्रम होती है। (सत्य/असत्य)

10. गुणक = $\frac{1}{1-MPS}$ (सत्य/असत्य)

11. आय प्रवाह में कमी गुणक का मान कम करता है। (सत्य/असत्य)

12. गुणक क्या है?

उत्तर -(1)b. ΔY/ΔI 2. (b) धनात्मक तथा ऋणात्मक रूप में

3. (c) एम0ए0 काहन से 4. (a) अधिक होगा 5. (d)मार्शल

6. (d) स्टिगलर एवं हाटे 7. (b) $^1/_{1-MPX}$ 8. (c) MPC + MPI

9. सत्य 10 असत्य 11. सत्य 12. उत्तर के लिये बिन्दु 13.3 को देखें

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, एच0एल0 (2010), उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, दिल्ली।
2. Shapiro, E. (1996), ***Macroeconomic Analysis***, Galgotin Publications, New Delhi.
3. सेठ, एम0एल0 (2010), अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा।
4. सेठी, टी0टी0 (2009), समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
5. आहूजा, एच0एल0 (2009), उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।
6. सिंह, बी0एन0बी0 (2008), इण्डियन इकोनोमी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिकेश न प्रा0 लि0, नई दिल्ली।

13.10उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

1. सिंह, एस0पी0 (2009), आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।
2. पंत, जे0सी0 एण्ड डॉ0 एल0एल0 सेठी, आर्थिक विचारों का इतिहास, लक्ष्मीनरायन अग्रवाल प्रकाश न, आगरा।
3. पंत, जे0सी0 (2006), तुलनात्मक आर्थिक प्रणालियाँ, लक्ष्मीनरायन अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा।
4. वैश्य, एम0सी0 (2003), मौद्रिक अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।

13.11निबन्धात्मक प्रश्न

1. गुणक से आप क्या समझते हैं?
2. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा गुणक के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करो?
3. गुणक के मान को कम करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए?
4. गुणक के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट करो?

इकाई 14 त्वरक का सिद्धान्त

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 त्वरक का अर्थ
14.4 त्वरक की आवश्यक दशाऐं
14.5 त्वरक की क्रियाशीलता
14.6 त्वरक गुणक का अन्तर्क्रिया
14.7 त्वरक तथा व्यापार चक्र
14.8 त्वरक सिद्धान्त का महत्व
14.9 त्वरक सिद्धान्त की आलोचना
14.10 सारांश
14.11 श ब्दावली
14.12 अभ्यास प्रश्न
14.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.14 उपयोगी/ सहायक ग्रन्थ
14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

त्वरक सिद्धान्त का प्रतिपादन अपरिष्कृत रूप में फ्राँसीसी अर्थशास्त्री अलबर्ट अफ्तालियन द्वारा 1913 में किया गया। सामान्य रूप से त्वरक सिद्धान्त के साथ प्रथमतः अमरीकी अर्थशास्त्री जे0एम0 क्लार्क का नाम जोड़ा गया है।

प्रो0 कीन्स ने अपनी पुस्तक 'रोजगार, ब्याज तथा मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त' में आय-रोजगार के निर्धारण में गुणक के सिद्धान्त का स्थान दिया तथा गुण की क्रियाशीलता द्वारा अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा रोजगार के स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की। कीन्स के आर्थिक विश्लेषण में त्वरक की अवधारणा को पूर्णतः दूर रखा गया।

आर्थिक विश्लेषण में इस कमी को पूरा करने के लिये सेम्युलसन ने त्वरक की अवधारणा का प्रयोग किया जिसके माध्यम से आय, निवेश तथा उपभोग के आपसी सम्बन्धों की विवेचना की जिसे निवेश का त्वरक सिद्धान्त के रूप में जाना गया।

त्वरक की अवधारणा के प्रयोग से आय-उत्पत्ति प्रक्रिया को अधिक सुस्पष्ट तथा वैज्ञानिक व तकनीकी दृष्टिकोण से समझने में आसानी होती है। वास्तव में अर्थव्यवस्था के संचालन में गुणक तथा त्वरक एक दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों की अन्तक्रिया ही वास्तव में किसी अर्थव्यवस्था को एक नया मोड़ देने में सक्षम होती है। इसीलिये त्वरक सिद्धान्त के अन्तर्गत त्वरक से सम्बन्धित विभिन्न आयामों की व्याख्या आगे के उपखण्डों में करेंगे।

14.2 उद्देश्य

अर्थशास्त्र में त्वरक का सिद्धान्त एक बहुउद्देश्यीय संकल्पना है जिसके माध्यम से आप समझ सकेंगे कि -

- उपभोग में परिवर्तनों के माध्यम से निवेश की मात्रा को किस प्रकार तथा दिशा में परिवर्तित किया जाता है।
- कीन्स के आर्थिक विश्लेषण की कमी को त्वरक के द्वारा पूरा करने में किस प्रकार से सहायता मिली है।
- त्वरक एक स्वतंत्र अवधारणा नहीं है बल्कि आपको भली-भांति समझना होगा कि निवेश , गुणक की क्रियाशीलता किस प्रकार आय, उपभोग, बचत तथा रोजगार से सम्बन्धित है।
- आर्थिक उतार-चढ़ावों की उत्पत्ति तथा अर्थव्यवस्था को सन्तुलन स्थिति में बनाये रखने के लिये त्वरक कितना उपयोगी तथा महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

14.3 त्वरक का अर्थ

त्वरक सिद्धान्त के अनुसार जब अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो इससे उत्पन्न मांग की पूर्ति के लिये निबल निवेश में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय या उत्पादन में वृद्धि होती है तो इसके परिणाम स्वरूप निवेश में निबल वृद्धि होती है जो त्वरक के बराबर होती है। इस आधार पर निबल निवेश को आय या उत्पादन में परिवर्तन का फलन माना जाता है। सामान्यतः

$$\text{त्वरक} = \frac{\text{निवेश की मात्रा में परिवर्तन}}{\text{आय या उत्पादन में परिवर्तन}}$$

$$\text{त्वरक (a)} = \frac{\Delta I}{\Delta Y}$$

यहाँ पर यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक होगा कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि या कमी, व्यक्तियों की मांग को प्रभावित करती है। मांग का सीधा सम्बन्ध उपभोग के स्तर से है इसीलिये त्वरक सिद्धान्त के अन्तर्गत निवेश में परिवर्तन पर उपभोग में परिवर्तन के आनुपातिक प्रभाव के रूप में त्वरक को मापा जाता है।

अतः

$$a = \frac{\text{निवेश में परिवर्तन}}{\text{उपभोग में परिवर्तन}}$$

$$a = \frac{\Delta I}{\Delta C}$$

आय में कमी या वृद्धि से वस्तुओं की मांग में जो परिवर्तन होता है वह उपभोगगत तथा पूँजीगत मांग के रूप में होता है लेकिन दोनों का निवेश की मांग से सीधा ही सम्बन्ध है।

14.4 त्वरक की आवश्यक दशायें

अर्थव्यवस्था में त्वरक सिद्धान्त निम्न दशाओं की उपस्थिति में ही क्रियाशील होता है। जिन्हें त्वरक सिद्धान्त की मान्यताओं के रू। में भी जाना जाता है। ये आवश्यक दशायें निम्नवत् हैं:-

(1) अतिरिक्त क्षमता की स्थिति: त्वरक की मात्रा अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त क्षमता की स्थिति द्वारा पूर्णरूप से प्रभावित होती है। प्रथमतः यदि उपभोग वस्तु उद्योगों में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता नहीं होनी चाहिये। अतिरिक्त उत्पादन क्षमता की स्थिति में मांग बढ़ने पर निवेश में परिवर्तन किये बिना ही उत्पादन में वृद्धि या कमी होगी और त्वरक क्रियाशील नहीं होगा।

द्वितीयतः पूँजीगत उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता मौजूद रहनी चाहिये ताकि निवेश मांग पर मशीन, उपकरण, आदि पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति बढ़ायी जा सके। इसके विपरीत स्थिति में निवेश में वृद्धि समय से सम्भव नहीं होगी।

(2) स्थायी मांग: त्वरक सिद्धान्त लागू होने के लिये यह मान लिया गया कि आय में वृद्धि से जो मांग बढ़ेगी वह स्थायी रूप में हो। अस्थायी मांग की स्थिति में नवीन निवेश को प्रेरणा नहीं मिलेगी बल्कि साधनों का कुशलतम तथा अधिकाधिक प्रयोग करके ही पूर्ति को बढ़ाया जा सकेगा परिणामस्वरूप त्वरक की क्रियाशीलता नहीं बनेगी।

(3) अपूर्ण रोजगार: अर्थव्यवस्था में नवीन रोजगार सृजन की क्षमता विद्यमान होने पर ही त्वरक सिद्धान्त लागू होता है। यदि उत्पत्ति के सभी साधन उत्पादन कार्य में संलग्न हैं तो आय में वृद्धि से निवेश में वृद्धि के लिये पर्याप्त तथा सुलभता से साधनों को जुटा पाना सम्भव नहीं होगा। इसीलिये अल्पविकसित तथा पिछड़े देशों में गुणक तथा त्वरक की क्रियाशीलता के लिऐ आवश्यक दशायें मौजूद पायी जाती हैं।

(4) अर्थव्यवस्था में अन्य अनेक दशायें विद्यमान पायी जाती हैं जिनके अन्तर्गत ही त्वरक का मान सीमित होता है। जैसे सरकारी निवेश नीति, निवेश पर प्रतिफल की दर। सरकारी निवेश नीति तथा निवेश पर प्रतिफल की दर अनुकूल होने पर त्वरक का मान बढ़ जाता है तथा स्थितियाँ प्रतिकूल होने पर यह मात्रा कम हो जाती है।

(5) पूँजी-उत्पादन अनुपात स्थिर पाया जाता है। यहाँ यह भी जानना अत्यन्त आवश्यक है कि उक्त दशायें केवल त्वरक के धनात्मक रूप में होने के लिये ही आवश्यक है। इन दशाओं के न पाये जाने पर भी त्वरक क्रियाशील होगा लेकिन किस रूप में यह इन दशाओं के आकार पर निर्भर करेगा। त्वरक का मान कम हो सकता है तथा ऋणात्मक रूप में भी निर्धारित हो सकता है।

14.5 त्वरक की क्रियाशीलता

त्वरक के अर्थ को समझने के बाद अब आपको त्वरक की क्रियाशीलता को समझने में आसानी होगी। त्वरक का सिद्धान्त त्युत्पन्न मांग पर आधारित है। गुणक की क्रियाशीलता के कारण जब आय तथा रोजगार के स्तर में वृद्धि होती है तो आय तथा रोजगार के इस परिवर्तन का प्रभाव व्यक्तियों के उपभोग में वृद्धि के रूप में होता है। जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग में वृद्धि होती है। मांग में वृद्धि की पूर्ति के लिये उत्पादन में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

मांग में वृद्धि दो रूपों में हाती है। प्रथम उपभोगगत वस्तुओं की मांग, द्वितीय पूँजीगत वस्तुओं की मांग। यहाँ पर यह भी बताना अत्यन्त आवश्यक है कि उपभोग वस्तुओं की पूर्ति करने के लिये पूँजीगत वस्तुओं की मांग में स्वतः वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप निवेश की मांग भी बढ़ जाती है। इस प्रकार उपभोग में परिवर्तन के परिणामस्वरूप निवेश की मात्रा परिवर्तन होता है जो उपभोग के परिवर्तन का कई गुना होता है जिसे त्वरक के रूप में जाना जाता है।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना है कि मांग में वृद्धि को पूरा करने के लिये वर्तमान पूँजी स्टॉक के गहन प्रयोग द्वारा उत्पादन को नहीं बढ़ाया जा सकता क्योंकि वर्तमान पूँजी स्टाक में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता विद्यमान नहीं है तथा इसका पूर्ण कुशलता के साथ प्रयोग किया जा रहा है। अतः बढ़ी हुई मांग की पूर्ति के लिये नवीन निबल निवेश में वृद्धि आवश्यक हो जाती है। जो त्वरक के बराबर होती है। इस प्रकार त्वरक सिद्धान्त के अन्तर्गत निबल निवेश में जो वृद्धि होती है वह प्रेरित निवेश के रूप में होता है।

त्वरक का मान 1 या 1 से कम अधिक भी हो सकता है यदि उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में निवेश वस्तु उद्योगों/पूँजीगत उद्योगों में निबल निवेश नहीं होता है तो त्वरक का मान शून्य हो जाता है।

त्वरक की क्रियाशीलता को भलीभांति सरलता से समझने के लिये इस काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे। 10,000 इकाइयों का उत्पादन करने के लिये 100 मशीनों की आवश्यकता है तथा एक मशीन 05 वर्ष तक काम दे सकती है। 05 वर्ष के बाद मशीनों का पुनः स्थापन करना होगा। अब उपभोग बढ़कर 15,000 इकाई हो जाता है तब बढ़े हुए उपभोग 5000 इकाई के उत्पाद के लिये 50 मशीनों की और आवश्यकता होगी यदि उपभोग मांग स्थिर रहे तो भी पुनःस्थापन के कारण वार्षिक रूप से 200 मशीनों की आवश्यकता होगी। इस प्रकार 5000 इकाई के उपभोग वृद्धि के लिये 50$20 = 70 इकाई मशीनों के लिये निवेश करना होगा।

यहाँ पर उपभोग में केवल 5000 इकाई अर्थात् 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जिसके परिणाम स्वरूप निवेश में 70 इकाई मशीनों अर्थात् 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई है अर्थात् त्वरक की मात्रा 1.4 होगी।

अर्थात्

$$a = \frac{\Delta I}{\Delta C}$$

$$a = \frac{70}{50}$$

(त्वरक) a = 1.4 गुना

इस प्रकार उपभोग में 100 इकाई के बराबर वृद्धि होने पर निवेश में 140 इकाई की वृद्धि होगी। त्वरक की क्रियाशीलता को गणितीय रूप में निम्नवत दर्शाया जा सकता है।

तालिका 14.त्वरक की क्रियाशीलता

अवधि वर्ष	उत्पादन	आवश्यक पूँजी	पूँजी ह्रास	निवल निवेश	कुल निवेश
1	1000	2000	200	0	200
2	1100	2200	200	200	400
3	1500	3000	220	800	1020
4	2000	4000	300	1000	1300

अवधि वर्ष	उत्पादन	आवश्यक पूँजी	पूँजी ह्रास	निवल निवेश	कुल निवेश
5	2600	5200	400	1200	1600
6	3000	6000	520	800	1320
7	3000	6000	600	00	600
8	2500	5000	600	-1000	-400
9	2300	4600	500	-400	-100
10	2000	4000	460	-600	-140
11	1800	3600	400	-400	00
12	1500	3000	360	-600	-240

तालिका 14.1 में त्वरक को पूँजी-उत्पादन अनुपात के बराबर माना गया हैं पूर्व में कार्यशील पूँजी के एक निश्चित अनुपात में ह्रास होता है जिससे पूँजी-मशीनों की जीवन अवधि की गणना की जाती है। इस पूँजी ह्रास के बराबर प्रत्येक वर्ष निवल निवेश तो करना ही होता है इसके साथ आय वृद्धि के लिये आवश्यक नवीन निवेश को भी इसी निवल निवेश में जोड़ दिया जाता है। सारणी के अनुसार त्वरक की क्रियाशीलता को समझने के लिये पूँजी उत्पादन अनुपात को 2 माना गया है तथा पूँजी के मूल्य ह्रास को 1/10 माना गया है। अब माना कि 1000 रू0 के उत्पादन के लिये 2000 रू0 की पूँजी की आवश्यकता होगी जिसमें पूर्व की समयावधि में 200 रू0 का मूल्य ह्रास हुआ। निवल निवेश शून्य होने पर कुल निवेश 200 रू0 ही हुआ। अब माना स्वतंत्र निवेश या अन्य कारकों से आय बढ़कर 1100 रू0 हो जाती है तो इसके लिये 2200 रू0 की पूँजी की आवश्यकता होगी। पूर्व की आवश्यक पूँजी 2000 रूपये, 200 रू0 की पूँजी ह्रास होगा जिसकी पूर्ति के लिये 200 रू0 का निवल निवेश करना होगा। इस प्रकार कुल निवेश 400 रू0 का होगा।

इसी प्रकार अगले वर्ष में आय बढ़कर 1500 रू0 होने पर आवश्यक पूँजी 3000 रू0 होगी। इस वर्ष पूँजी का मूल्य ह्रास 220 रू0 का होगा तथा निवल निवेश में 100 रू0 की वृद्धि होगी। पूँजी के मूल्य ह्रास तथा निवल निवेश के कारण कुल निवेश 1020 रू0 होगा। यही प्रक्रिया आगे की समयावधियों में चलती रहती है।

गुणक की भाँति त्वरक भी विपरीत दिशा में क्रियाशील होता है। आय तथा रोजगार में वृद्धि रूकने पर त्वरक का मान 1 होता है। आय तथा रोजगार में कमी होने पर त्वरक का मान ऋणात्मक हो जाता है तथा इसका निवेश पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है। उद्यमी नवीन निवेश की बजाय उद्यम से पूँजी का पलायन प्रारम्भ हो जाता है।

सारणी में आठवीं अवधि में आय में कमी प्रारम्भ हुई जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक पूँजी में भी पूँजी-उत्पादन अनुपात के अनुसार कमी पायी गयी जिसमें निवल निवेश -1000 रू0 तथा कुल निवेश -400 रू0 का हुआ।

14.6 त्वरक-गुणक की अन्तक्रिया

पूर्व की इकाई में गुणक के विस्तृत अर्थ को समझने तथा इस इकाई में त्वरक को समझने के बाद त्वरक-गुणक की अन्तक्रिया को समझना होगा। गुणक तथा त्वरक एक दूसरे के पूरक हैं। एक दूसरे के सह अस्तित्व के बिना इनकी क्रियाशीलता सम्भव नहीं है। एक ओर गुणक निवेश में परिवर्तन का आय पर प्रभाव को दर्शाता है वहीं त्वरक उपभोग में परिवर्तन का निवेश पर अभाव को दर्शाता है। यहाँ पर आय में परिवर्तन तथा उपभोग में परिवर्तन का सम्बन्ध ही गुणक तथा त्वरक की क्रियाशीलता को आपस में जोड़ता है। अतः गुणक का आकाकर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर करता है जो एक मनोवैज्ञानिक पक्ष से जुड़ा है। वहीं त्वरक की संकल्पना एक तकनीकी पक्ष है जो उपभोग से प्रभावित है।

त्वरक तथा गुणक की क्रियाशीलता अर्थव्यवस्था में स्वतंत्र निवेश से प्रारम्भ होती हें देश में होने वाले गैर आयगत परिवर्तनों के कारण सरकार को भारी मात्रा में स्वतंत्र निवेश करना होता है और यह स्वतंत्र निवेश समयानुसार निरन्तर बढ़ता रहता है। इस स्वतन्त्र निवेश का देश की राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के स्तर पर कई गुना प्रभाव पड़ता है जो गुणक (K) के बराबर होता है। आय तथा रोजगार के बढ़ने पर व्यक्तियों की क्रयशक्ति बढ़ जाती है जो सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर करती है। वस्तुओं की बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिये अधिक उत्पादन की आवश्यकता होती है। चूँकि अर्थव्यवस्था में साधनों का गहन प्रयोग सम्भव नहीं है। इसलिये नये निवेश की मांग भी बढ़ जाती है और निवल निवेश में वृद्धि होती है। निवेश में होने वाली यह वृद्धि भी उपभोग में परिवर्तन की कई गुना होती है। निवेश में वृद्धि के परिणाम स्वरूप उत्पादन के साधनों की मांग बढ़ती है जिससे व्यक्तियों की आय तथा रोजगार में वृद्धि होती है। जिसका प्रभाव अर्थव्यवस्था में क्रयशक्ति में वृद्धि के रूप में होता है। क्रयशक्ति में वृद्धि होने पर उपभोग के स्तर में भी वृद्धि हो जाती है। उपभोग के परिवर्तन का निवेश पर पुनःपरिवर्तन त्वरक के आकार के बराबर होता है और निवेश की मात्रा बढ़कर ऊँचे स्तर पर पहुँच जाती है।

14.7 त्वरक तथा व्यापार चक्र

अर्थशास्त्री कीन्स ने व्यापार चक्रों की उत्पत्तिके लिये पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में परिवर्तन होना बताया। नये निवेश से प्रत्याशित लाभ की दर में बदलाव से ही आर्थिक उतार-चढ़ाव आते हैं। मन्दी की स्थिति के लिये प्रत्याशित लाभ की दर गिरने से निवेश की मात्रा कम हो जाती है। फलस्वरूप गुणक विपरीत दिशा में कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। जिसका आय तथा रोजगार पर ऋणात्मक

रूप में पड़ता है। मंदी की स्थिति में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाती है जिससे गुणक का मान धनात्मक दिशा में कार्य करता है।

कीन्स ने व्यापार चक्रों के विश्लेषण में त्वरक को कोई स्थान नहीं दिया। सेमुयलसन ने व्यापार चक्रों को गुणक तथा त्वरक की अन्तर्क्रिया द्वारा घटित होना बताया। गुणक अकेला अर्थव्यवस्था में आर्थिक उतार-चढ़ाव पैदा नहीं कर सकता। गुणक की क्रियाशीलता के द्वारा आय में वृद्धि होती है जिससे उपभोग बढ़ता है व मांग में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप तेजी की स्थिति पैदा होती है। मांग में वृद्धि के कारण त्वरक की क्रियाशीलता निवेश मांग को बढ़ाती है जिससे मांग में और अधिक वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में कीमतों में तीव्र वृद्धि होती है। स्वतंत्र निवेश की क्रियाशीलता मांग को और अधिक बढ़ा देती है। तेजी में निवेश अतयधिक बढ़ जाता है।

पूर्ति की तुलना में मांग में कमी या ऊँची कीमतों के कारण मांग में कमी के कारण गुणक तथा त्वरक की क्रियाशीलता विपरीत दिशा में क्रियाशील होती है और अर्थव्यवस्था में निवेश की कमी के कारण उत्पादन तथा रोजगार का स्तर गिर जाता है जिसमें उपभोग के स्तर में भी कमी आती है। तब इस उपभोग में कमी का प्रभाव त्वरक के लागू होने के कारण निवेश पर भी प्रतिकूल दिशा में पड़ता है तथा निवेश् की मात्रा घट जाती है और अर्थव्यवस्था में मंदी का दौर शुरू हो जाता है। इस प्रकार गुणक तथा त्वरक की पारस्परिक क्रियाशीलता दिशा तथा प्रतिदिशा में होती रहती है तथा व्यापार चक्रों का दौर चलता रहता है।

सैम्युलसन के साथ-साथ जे0आर0 हिक्स ने भी व्यापार चक्रों की व्याख्या में गुणक तथा त्वरक की अवधारणाओं का प्रयोग किया। व्यापार चक्रों की उत्पत्ति में स्वतंत्र तथा प्रेरित निवेश के प्रभावों को भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। स्वतंत्र निवेश भी गुणक तथा त्वरक की अन्तर्क्रिया को प्रभावित करता है। इस स्थिति में भी गुणक तथा त्वरक तथा स्वतंत्र निवेश के प्रभावों के कारण राष्ट्रीय आय की प्रवृत्ति ऊपर जाने की होती है तथा रोजगार के स्तर में भी वृद्धि होती है।

14.8 त्वरक सिद्धान्त का महत्व

त्वरक सिद्धान्त के महत्व को निम्न तथ्यों के आधार पर समझाया जा सकता है।

(1) त्वरक सिद्धान्त से अर्थशास्त्र में आर्थिक विश्लेषण को एक नई दिशा मिली। कीन्स के आय तथा रोजगार विश्लेषण की अपूर्णता को त्वरक सिद्धान्त द्वारा ही पूरा किया गया।

(2) त्वरक के माध्यम से अर्थव्यवस्था में आवश्यक निवेश की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है जो आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

(3) त्वरक के द्वारा गुणक की मात्रा भी प्रभावित होती है तथा गुणक व त्वरक की अन्तर्क्रिया अर्थव्यवस्था को गतिशीलता प्राप्त करती है।

(4) त्वरक व्यापार चक्रों की व्याख्या करने के लिये एक अत्यन्त आवश्यक उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया। त्वरक सिद्धान्त की सहायता के बिना व्यापार चक्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी अधूरा ही रहता है।

(5) त्वरक की क्रियाशीलता निवेश में वृद्धि करके अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों यथा विनिर्माण सेवा, व्यापार को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है जो एक अर्थव्यवस्था के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

(6) त्वरक फलन के द्वारा हमें आय-उत्पत्ति प्रक्रिया को समझने में वैज्ञानिक एवं तकनीकी रूप से सहायता मिलती है जो वर्तमान में विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

14.9 त्वरक सिद्धान्त की आलोचना

त्वरक सिद्धान्त से सम्बन्धित अनेक विद्वानों ने अलग-अलग मत प्रकट किये हैं। त्वरक सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाओं की विवेचना निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत की गई है -

(1) पूँजी विनियोग - यदि बाजार में माँग की जाने वाली वस्तुओं की प्रकृति में स्थायी रूप से वृद्धि की जाती है तब तो त्वरक सिद्धान्त विकासात्मक प्रेरणादायक है परन्तु इसके विपरीत यदि बाजार में माँग स्थायी रूप में बढ़ती है, तो विनियोक्ता वर्ग नई पूँजी का विनियोजन नहीं करेगा तथा त्वरक क्रिया निष्क्रिय रहेगी।

(2) उत्पादन क्षमता का पहले से ही अतिरिक्त - यदि किसी उद्योग में पहले से ही अप्रयुक्त मशीनें विद्यमान हों तो माँग बढ़ने पर इनका प्रयोग प्रारम्भ हो जायेगा एवं निवेश में वृद्धि नहीं होगी। अतः त्वरक कार्यशील नहीं होगा।

(3) सस्ती साख नीति - वास्तव में विनियोगों की मात्रा उपलब्ध साख की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि साख की मात्रा कम है तो विनियोग कम होंगे तथा त्वरक की कार्यशीलता में बाधा उत्पन्न होगी।

(4) समय-विलम्ब की अवहेलना - नवीन विनियोगों एवं आने वाले उनके परिणामों में कुछ समायवधि लग जाती है। त्वरक-सिद्धान्त विनियोग की मात्रा पर तो बल देता है परन्तु विनियोग की अवधि पर उचित प्रकाश नहीं डालता है। वास्तव में समयावधि एक महत्वपूर्ण तत्व है, अतः त्वरक सिद्धान्त का आधार त्रुटिपूर्ण है। समय विलम्ब की अवहेलना करके वास्तविक स्थिति से भिK नहीं हुआ जा सकता है क्योंकि प्रत्येक कार्य में कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है। इस तथ्य को भली-भाँति स्पष्ट न करने पर सिद्धान्त स्वयं त्रुटिपूर्ण हो जाता है। अतः त्वरक सिद्धान्त की इस आधार पर कड़ी आलोचना प्रस्तुत की गई है।

(5) अन्य तत्त्वों की महत्ता को स्वीकार न करना - आलोचकों का मत है कि केवल त्वरक ही विनियोगों की मात्रा को प्रभावित नहीं करता बल्कि अन्य तत्त्व, जैसे - देश में स्थिरता, युद्धों की स्थिति अथवा भय न होना, शान्तिकाल ऐसे हैं जो स्वयं विनियोग की मात्रा को प्रभवित करते हैं, जिनका त्वरक सिद्धान्त में विशेष ध्यान नहीं रखा गया है।

(6) सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना - यदि सरकार द्वारा दीर्घकाल में फल देने वाले उद्योगों की स्थापना की जाती है, तो उद्योगों में होने वाला भय विनियोग स्तर पर आधारित नहीं होता, अतः त्वरक क्रियाशील नहीं होता।

(7) साधनों का अभाव - यदि उपभोग वस्तुओं की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिये सहयोगी साधन (श्रम, पूँजी आदि) उपलब्ध न हों तो उद्यमियों द्वारा विनियोग नहीं किया जायेगा, ऐसी स्थिति में त्वरक क्रियाशील नहीं हो पाता।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बाद भी त्वरक सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्व कम नहीं आँका जा सकता। त्वरक एक व्यावहारिक एवं प्रभावशाली तत्व होता है जो अर्थव्यवस्था में उपभोग में होने वाली वृद्धि तथा विनियोग में सम्बन्ध स्थापित करता है। त्वरक का सिद्धान्त आय सृजन की व्याख्या अधिक स्पष्ट एवं वास्तविक ढंग से करता है। इस सम्बन्ध में फेड्रिक शापीरो का कथन है कि, ''आलोचनाओं के बावजूद त्वरक सिद्धान्त उन अनेक आधार तत्वों में से एक है जो गुणक सिद्धान्त के साथ मिलकर विनियोग में होने वाले उच्चावचनों की व्याख्या करता है।'' इससे स्पष्ट है कि त्वरक विनियोग की गति बनाये रखने अथवा बढ़ाने में सहायक तत्व के रूप में प्रतिस्थापित है। विनियोगों में होने वाले उच्चावचन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। अतः उनको नकारा नहीं जा सकता। अतः कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि त्वरक सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

14.10 सारांश

त्वरक सिद्धान्त यह बताता हे कि आय के बढ़ने पर निवेश की मात्रा में जितने गुणा वृद्धि होती है वह वृद्धि त्वरक के मान के बराबर होती है। वही आय में वृद्धि तथा स्वतन्त्र निवेश के कारण व्यक्तियों के उपभोग में परिवर्तन होता रहता है। इस उपभोग में परिवर्तन का निवेश में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव त्वरक कहलाता है।

त्वरक की क्रियाशीलता के लिये गुणक की क्रियाशीलता का महत्वपूर्ण योगदान रहता हैं त्वरक का मान 1 से कम या एक से अधिक भी हो सकता है। एक के बराबर त्वरक का मान होने पर निवेश में परिवर्तन उपभोग में परिवर्तन के आनुपातिक ही होता है। त्वरक का सिद्धान्त कुछ मान्यताओं पर आधारित है - स्थायी मांग, अपूर्ण रोजगार, स्थिर पूँजी-उत्पादन अनुपात आदि। त्वरक का मान धनात्मक होने के साथ-साथ ऋणात्मक भी हो सकता हैं त्वरक तथा गुणक की अन्तर्क्रिया के माध्यम से ही अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्रों की उत्पत्ति होती है। त्वरक की मात्रा का राष्ट्रीय आय तथा रोजगार से सीधा सम्बन्ध है। क्योंकि निवेश में वृद्धि के परिणाम स्वरूप उत्पादन तथा रोजगार दोनों में वृद्धि होती है।

त्वरक का विपरीत दिशा में क्रियाशीलता अर्थव्यवस्था को गतिहीनता की ओर ले जाती है। देश में उत्पादन, रोजगार तथा नवीन पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण में कमी प्रारम्भ हो जाती है।

त्वरक का महत्व अर्थव्यवस्था में विकास की प्रक्रिया तथा जनता के जीवन स्तर से जुड़ा होने के कारण अत्यधिक बढ़ जाता है।

14.11 शब्दावली

निवल निवेश - निवेश की मात्रा में शुद्ध वृद्धि।

उपभोगगत मांग - व्यक्तियों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओंं की मांग - जैसे चीनी, दाल, आटा, बिस्कुट, साबुन आदि।

पूँजीगत मांग - उपभोग वस्तुओं के लिये आवश्यक मषीनों, भवनों आदि के लिये मांग।

प्रतिफल की दर - निवेश में फलस्वरूप प्राप्त होने वाली आय की दर।

पूँजी-उत्पादन अनुपात - एक निष्चित मात्रा में उत्पादन के लिये प्रयोग की जाने वाली पूँजी का उत्पादन से अनुपात।

त्युत्पन्न मांग - एक वस्तु की मांग के परिणामस्वरूप इसकी वस्तु की भी मांग होना।

पूँजी ह्रास - उत्पादन कार्य के दौरान कार्यशील पूँजी की टूट-फूट तथा घिसावट का मूल्य।

मनोवैज्ञानिक - उपभोक्ता की मानसिक प्रवृत्ति से सम्बन्धित।

व्यापार चक्र - अर्थव्यवस्था में तेजी-मंदी की क्रमगतः स्थिति अर्थात् वस्तुओं की कीमतों में उतार-चढ़ाव का दौर।

14.12 अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प का चयन करो?

1. त्वरक का मान है -

ं a.$\Delta I/\Delta C$ b. $\Delta Y/\Delta$ c. $\Delta Y/\Delta C$ d.$\Delta C/\Delta S$

2. त्वरक सिद्धान्त से प्रथमतः सम्बन्धित हैं -

a.कीन्स b.जे0एम0 क्लार्क c.हिक्स d.सभी

3. त्वरक सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रतिपादन किया -

a.कीन्स से b.मार्षल से c. अफ्तालियन ने d.कोई नहीं

4. कौन सा तत्व त्वरक पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है -

a.मांग में अस्थायी वृद्धि b.ब्याज की दर c.गुणक की मात्रा में वृद्धि d.उक्त सभी

5. त्वरक सिद्धान्त में स्थिर माना गया है -

a.ब्याज की दर b.पूँजी-उत्पादन अनुपात c.शुद्ध निवेश d. उक्त सभी

6. त्वरक का सम्बन्ध व्यापार चक्रों से भी है। (सत्य/असत्य)

7. व्यापार चक्रों के सिद्धान्त में त्वरक का प्रयोग किया -

a.सैम्युलसन b.कीन्स c.मार्शल d.रोविन्स

8. त्वरक की क्रियाशीलता पायी जाती है -

a.आगे की ओर धनात्मक रूप में b. ऋणात्मक या विपरीत दिशा में c.उक्त दोनों दिशाओं में d. कोई नहीं

9. कीन्स ने अपने आर्थिक विष्लेश ण में गुणक तथा त्वरक का प्रयोग किया था। (सत्य/ असत्य)

10. त्वरक सिद्धान्त की दो आवश्यक दशायें बताओ?

11. त्वरक का सिद्धान्त व्युत्पन्न मांग पर आधारित है। (सत्य/असत्य)

12. त्वरक सिद्धान्त के अनुसार अर्थशास्त्र में उपभोग वस्तुगत उद्योग में ---- क्षमता नहीं होनी चाहिये। (अतिरिक्त/कम)

उत्तर -(a)ΔI/ΔC 2. (b) जे0एम0 क्लार्क 3. (c)अफ्तालियन ने 4. (a)मांग में अस्थायी वृद्धि

5. (b) पूँजी-उत्पादन अनुपात 6. सत्य 7. (a) सैम्युलसन

8. (b) ऋणात्मक या विपरीत दिशा में 9. असत्य

10. उत्तर के लिये बिन्दु 13.3.2 को देखें 11. सत्य 12. अतिरिक्त

14.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, एच0एल0 (2010), उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, दिल्ली।
2. सेठ, एम0एल0 (2010), अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
3. पन्त, जे0सी0 एवं डॉ0 सेठ (2010), आर्थिक विचारों का इतिहास, लक्ष्मीनरायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाश क एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
4. सिंह, एस0पी0 (2009), आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस0 चन्द एण्ड कं0 लि0, दिल्ली।

14.14 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

1. सेठ, टी0टी0 (2009), समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनरायन अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा।
2. वैश्य, एम0सी0 (2003), मौद्रिक अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।

14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. त्वरक सिद्धान्त क्या है? इसके आय प्रभाव की व्याख्या कीजिए?
2. व्यापार चक्रों की उत्पत्ति में त्वरक सिद्धान्त के योगदान को बताओ?
3. त्वरक तथा गुणक की आन्तर्क्रिया को स्पष्ट कीजिए?
4. त्वरक के महत्व को स्पष्ट करो?

इकाई 15 विदेशी व्यापार गुणक

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 विदेशी व्यापार गुणक का अर्थ
15.4 आयात फलन
15.5 विदेशी व्यापार गुणक की कार्यशीलता
15.6 गुणक का विदेशी प्रति प्रभाव
15.7 विदेशी व्यापार गुणक की विपरीत क्रियाशीलता
15.8 विदेशी व्यापार गुणक का महत्व
15.9 विदेशी व्यापार गुणक की मान्यतायें
15.10 विदेशी व्यापार गुणक की आलोचनायें
15.11 सारांश
15.12 श ब्दावली
15.14 अभ्यास प्रश्न
15.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.16 उपयोगी/ सहायक ग्रन्थ
15.17 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पन्द्रहवीं इकाई विदेशी व्यापार गुणक से सम्बन्धित है, जो खुली अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करता है। कीन्स द्वारा प्रतिपादित आय तथा रोजगार का सिद्धान्त गुणक से ही सम्बन्धित है लेकिन कीन्स का यह विनियोग गुणक का सिद्धान्त बन्द अर्थव्यवस्था के संदर्भ में ही क्रियाशील होता है। किसी देश के आयात-निर्यातों में वृद्धि का प्रभाव केवल उसी देश की अर्थव्यवस्था पर नहीं पड़ता बल्कि विदेशी व्यापार से सम्बन्धित सभी देशों की अर्थव्यवस्थायें किसी न किसी रूप में प्रभावित होती हैं।

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे कि किसी देश के निर्यातों के द्वारा उस देश की आय में किस प्रकार तथा किस सीमा तक वृद्धि होती है जिसका रोजगार के स्तर पर भी क्या प्रभाव पड़ता है? विदेशी व्यापार गुणक न केवल विकसित देशों के लिये महत्वपूर्ण है अपितु विकासशील तथा पिछड़े देशों के लिये भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यहाँ पर यह ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि किसी देश की अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत निर्यातों की मात्रा तथा राष्ट्रीय आय के मध्य जो सम्बन्ध है, वह केवल एक ही अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित नहीं है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत विदेशी व्यापार गुणक की क्रियाशीलता के अध्ययन के साथ-साथ गुणक की विपरीत क्रियाशीलता का भी अध्ययन करेंगे तथा गुणक के अन्य प्रभावों को समझ सकेंगे।

15.2 उद्देश्य

विदेशी व्यापार गुणक की इस पन्द्रहवीं इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि:-

- बन्द अर्थव्यवस्था के साथ खुली अर्थव्यवस्था में गुणक की क्रिया किस प्रकार से कार्यशील होती है तथा कीन्स का सामान्य गुणक तथा विदेशी व्यापार गुणक में क्या अन्तर है।
- विदेशी व्यापार के अन्तर्गत होने वाले आयात-निर्यातों का किसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय पर किस सीमा तक परिवर्तन होता है तथा व्यापार का राष्ट्रीय आय पर किस दिशा में प्रभाव पड़ता है।
- विदेशी व्यापार गुणक किस प्रकार सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करता है।

15.3 विदेशी व्यापार गुणक का अर्थ

विदेशी व्यापार गुणक के अन्तर्गत विदेशी व्यापार का देश की राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले परिवर्तनात्मक प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। राष्ट्रीय आय में होने वाले ये परिवर्तन विदेशी व्यापार की दिशा एवं प्रकृति पर निर्भर करता है। इस प्रकार किसी देश के निर्यातों में होने वाले परिवर्तनों का राष्ट्रीय आय में उत्पन्न परिवर्तनों पर प्रभाव का मान विदेशी व्यापार गुणक (K)ि के बराबर होता है।

अर्थात् विदेशी व्यापार गुणक = $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$

यहाँ पर ΔY= राष्ट्रीय आय में परिवर्तन

ΔX = निर्यात में परिवर्तन

किसी देश का विदेशी व्यापार सीमान्त बचत प्रवृत्ति (s) तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति द्वारा पूर्ण रूप से प्रभावित है।

इसीलिए $\Delta S + \Delta M = \Delta I + \Delta X$

$$\Delta S = s\Delta Y$$

$$\Delta M = m\Delta Y$$

$$s\Delta Y + m\Delta Y = \Delta I + \Delta X$$

या $$\Delta Y = \frac{1}{s\Delta Y + m\Delta Y}(\Delta I + \Delta X)$$

यहाँ पर ΔI विदेशी विनियोग में परिवर्तन

विदेशी निवेश या निर्यात में परिवर्तन विदेशी व्यापार गुणक के मान में परिवर्तन करेगा।

$$\Delta X = \Delta X \frac{1}{s+m}$$

$K_f = \frac{1}{s+m}$ होता है।

इस प्रकार विदेशी व्यापार गुणक का मान सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति के योगफल का व्युत्क्रम होता है। आयातों पर किया गया व्यय बचत रिसाव के रूप में रखा जाता है। आयातों के मूल्य निर्यातों के मूल्य के विपरीत दिशा में प्रभाव डालते हैं। अतः अर्थव्यवस्था से जितना कम रिसाव होगा अर्थव्यवस्था पर निर्यातों का प्रभाव अधिक धनात्मक होगा। अर्थात् सीमान्त आयात प्रवृत्ति तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति का योग जितना कम होगा, विदेशी व्यापार गुणक का मान उतना ही अधिक होता है।

एक गणितीय उदाहरण द्वारा विदेशी व्यापार गुणक की मात्रा को निम्न प्रकार निकाल सकते हैं। माना कि सीमान्त बचत प्रवृत्ति का मान 0.3 है तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति 0.2 है तब

$$K_f = \frac{1}{s+m}$$

$$K_f = \frac{1}{0.3+0.2}$$

$$K_f = \frac{1}{0.5}$$

$$K_f = 2$$

अब यदि s का मान घटकर 0.2 तथा m का मान भी घटकर 0.15 रह जाता है तब -

$$K_f = \frac{1}{0.2+0.15}$$

$$K_f = \frac{1}{0.35}$$

$$K_f = 2.86$$

s+m के मान में 0.15 की कमी होने पर गुणक (K_f) की मात्रा में 0.86 गुना की वृद्धि हो जाती है।

15.4 आयात फलन

विदेशी व्यापार गुणक से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य आयात तथा निर्यात फलन है जो एक खुली अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत किये जाने वाले आयात, निर्यातों के मूल्य तथा राष्ट्रीय आय पर आधारित है।

आयात फलन के अन्तर्गत एक देश की राष्ट्रीय आय तथा उस देश के आयातों के मध्य सम्बन्ध को रखा जाता है। विदेशी व्यापार की स्थिति में उपभोक्ता तथा पूँजीगत दोनों प्रकार की वस्तुओं का आयात किया जाता है। यह देश के उपभोक्ताओं तथा तकनीकी दशाओं की स्थिति पर निर्भर करता है। आयातित वस्तुओं की कीमतें तथा उपभोक्ताओं की अभिरुचियों में होने वाले परिवत्रन दीर्घकालीन हैं। यदि इन दोनों तत्त्वों को स्थिर मान लिया जाय तो राष्ट्रीय आय के स्तर तथा आयातों की मात्रा में एक निश्चित सम्बन्ध होता है जिसे आयात फलन के नाम से जाना जाता है। आय का स्तर जितना अधिक होगा आयातों की मात्रा या मूल्य भी उतना ही अधिक होगा। आय में कमी होने पर आयातों के मूल्य में भी गिरावट आती है।

इस प्रकार $(m) = f(y)$

यहाँ पर m = आयात

y = राष्ट्रीय आय का स्तर

f= फलनात्मक सम्बन्ध

आयात फलन पर आधारित एक महत्वपूर्ण धारणा है सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM)। जो राष्ट्रीय आय में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप आयातों में होने वाले परिवर्तनों को मापती है।

$$MPM = \frac{\Delta M}{\Delta Y}$$

यहाँ पर = MPM = सीमान्त आयात प्रवृत्ति

ΔM =आयातों में होने वाले परिवर्तन

ΔY = आय राष्ट्रीय आय में होने वाले परिवर्तन

सीमान्त आयात प्रवृत्ति के माध्यम से किसी देश के आयात फलन को विदेशी व्यापार गुणक के साथ सम्बन्धित किया जाता है। आयात फलन को एक चित्र द्वारा निम्नवत दर्शाया जा सकता है।

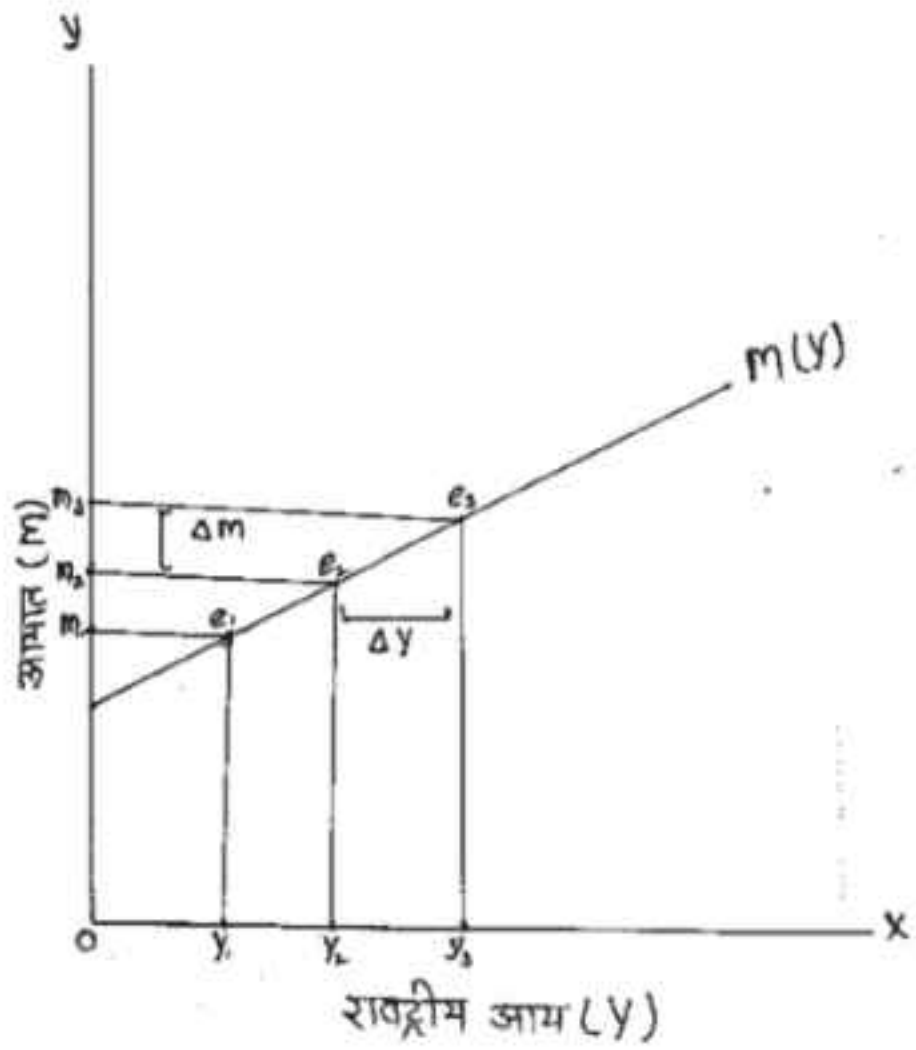

चित्र 15.1: आयात फलन

दिये गये चित्र में Y अक्ष पर देश की राष्ट्रीय आय को तथा Y अक्ष पर आयातों की मात्रा को दर्शाया गया है। M(y) रेखा आयातफलन सम्बन्ध को स्पष्ट करती है। चूँकि आयात, राष्ट्रीय आय का फलन होता है। इसीलिये देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि या कमी होने पर आयातों की मात्रा में भी वृद्धि या कमी होती है, जो फलन के आकार पर निर्भर करती है। राष्ट्रीय आय Y_1 होने पर आयातों की मात्रा M_1 है तथा आय Y_1 से बढ़कर Y_2 होने पर आयातों की मात्रा M_1 से बढ़कर M_2 हो जाती है। इसी प्रकार यदि आय Y_2 से बढ़कर Y_3 हो जाती है तब आयातों की मात्रा और बढ़कर M_3 हो जाती हैं। आयातों में वृद्धि तथा आय में वृद्धि का अनुपात ($\Delta M / \Delta Y$) को सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM) के रूप में जाना जाता है। यहाँ पर भी स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि एक ओर तो आय में

वृद्धि से आयातों में वृद्धि होती है वहीं दूसरी ओर आयातों में वृद्धि से आय में कमी या संकुचन की स्थिति पैदा होती है। यह स्थितियाँ देशों की अर्थव्यवस्था की मांग की प्रकृति एवं स्वरूप पर निर्भर करती है।

15.5 विदेशी व्यापार गुणक की कार्यशीलता

बन्द अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय उपभोग तथा बचत के योग के बराबर होती है लेकिन विदेशी व्यापार गुणक खुली अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करता है। तब -

$$Y = C + S + X - M$$

Y= राष्ट्रीय आय

C= उपभोग

S= बचत

X= निर्यात का मूल्य

M= आयातों का मूल्य

किसी देश के निर्यातों में वृद्धि होती है तो यह स्वाभाविक है कि देश के निर्यातकों की आय में वृद्धि होगी। इस बढ़ी हुई आय का प्रयोग घरेलू तथा अन्य आयतित वस्तुओं पर भी व्यय किया जाता है तथा उपभोग/व्यय से बची आय को बचा लिया जाता है। घरेलू वस्तु उपभोग क्षमता के अधिक होने तथा सीमान्त आयात क्षमता के कम होने पर विदेशी व्यापार गुणक का मान अधिक होगा क्योंकि आयात वस्तुओं पर अधिक व्यय करना आय का रिसाव माना जाता है जो गुणक के मान को कम करता है।

निर्यातों में वृद्धि से बढ़ी आय को देश के अन्दर व्यय किया जाता है तब घरेलू विक्रेताओं की आय में भी वृद्धि होती है तथा माँग में वृद्धि से उत्पादन में भी वृद्धि करना आवश्यक हो जाता हैं परिणामस्वरूप निर्यात में होने वाली वृद्धि का देश की राष्ट्रीय आय पर केवल सीधा प्रभाव ही नहीं पड़ता बल्कि यह प्रभाव बहुस्तरीय होता है और आय में प्रत्येक स्तर पर वृद्धि होती जाती है। आय में यह वृद्धि होने पर आय में और अधिक वृद्धि के लिये आवश्यक पूँजीगत वस्तुओं के आयात पर व्यय की जाती है जिसका आय पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप निर्यात तथा आयात में वृद्धि, घरेलू अर्थव्यवस्था की आय में भी वृद्धि करता है जिससे अर्थव्यवस्था कई गुना बढ़ जाती है जिसका मान विदेशी व्यापार गुणक के बराबर होता है।

इसके साथ निर्यात वृद्धि से निर्यात उद्योगों में रोजगार में वृद्धि होती है तथा रोजगार प्राप्त करने वाले लोगों की आय में भी वृद्धि होती हैं ये लोग भी अपनी आय का घरेलू वस्तुओं पर व्यय करते हैं। निर्यातकों तथा रोजगार में संलग्न व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाला घरेलू वस्तुओं पर व्यय अगली समयावधियों में आय में निरन्तर वृद्धि करता रहेगा। जब तक कि गुणक अपना कार्य पूरा न कर ले।

दूसरी ओर निर्यातकों की आय में वृद्धि निर्यात वस्तुओं के उत्पादन के लिये उद्यमियों के लिये प्रेरित करेगी तथा और अधिक व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा। इस प्रकार आय में और अधिक वृद्धि होगी। इस प्रकार आय में वृद्धि का यह क्रम चलता रहता है तथा आय में वृद्धि का यह प्रभाव सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में फैल जाता है। विदेशी व्यापार गुणक की क्रियाशीलता को निम्न चित्र द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

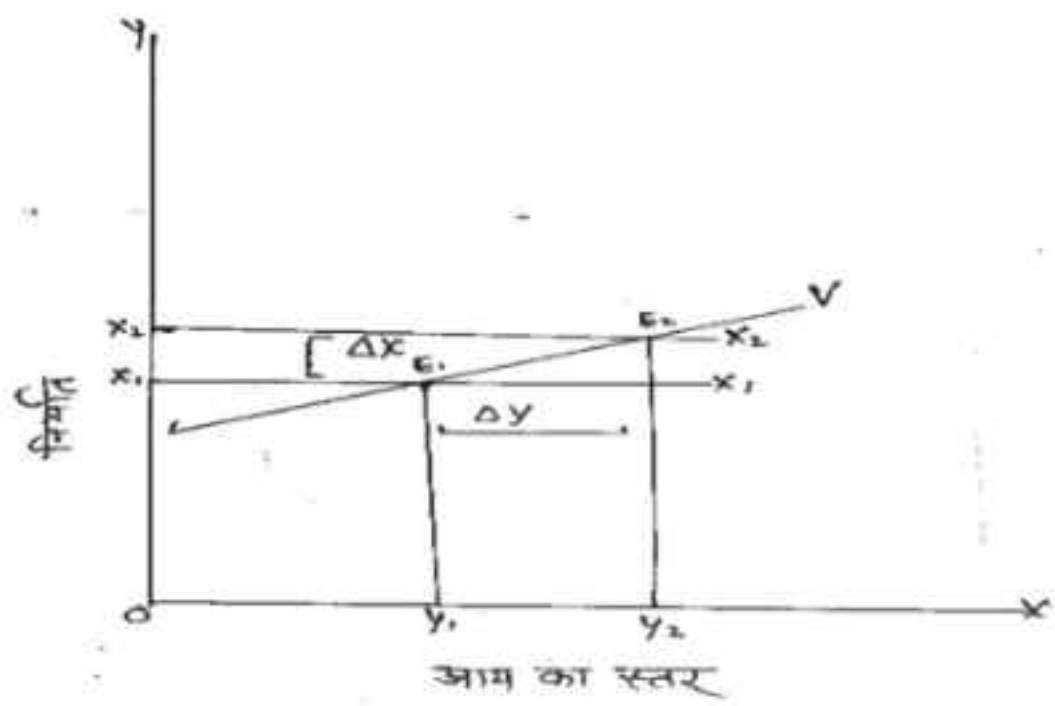

चित्र 15.2: विदेशी व्यापार गुणक

ऊपर दिये गये चित्र में X अक्ष पर किसी अर्थव्यवस्था में आय के स्तर को दर्शाया गया है तथा Y अक्ष पर निर्यात के स्तर को दर्शाया गया है। Y अक्ष पर रेखा V बचत - आयात फलन को दर्शाती है। X_1 तथा X2 रेखायें निर्यात की मात्रा/स्तर को इंगित करती हैं। चूँकि विदेशी व्यापार गुणक का आकार सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति के योगफल के व्युत्क्रम की रेखा के ढ़ाल पर निर्भर करता है। इसीलिये OX_1 निर्यातों की स्थिति में देश की आय का स्तर OY_1 निर्धारित होता है। निर्यातों के स्तर OX_2 होने पर आय का स्तर OY_2 हो जाता है। इस प्रकार निर्यातों में $X_2 - X_1$ के बराबर वृद्धि होने पर आय में $Y_2 - Y_1$ के बराबर वृद्धि हुई है।

गणितीय रूप में निर्यातों में यह वृद्धि ΔX के बराबर तथा आय के स्तर में हुई वृद्धि ΔY के बराबर है।

विदेशी व्यापार गुणक का मान $\Delta Y / \Delta X$ के बराबर होता है इसीलिये चित्र के निर्यातों की वृद्धि ΔX के परिणामस्वरूप आय में वृद्धि ΔY विदेशी व्यापार गुणक के आधार से प्रभावित है तथा गुणक के गुने (K) के बराबर है।

यहाँ पर आपको यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि निर्यातों में वृद्धि के लिये अनेक कारक उत्तरदायी हैं जैसे अन्य देशों के लोगों की रुचियों में परिवर्तन, आय में परिवर्तन, जनसंख्या में वृद्धि, मौसम परिवर्तन, वहाँ उपलब्ध न होने वाली वस्तुओं का निर्यात आदि के कारण किसी देश के निर्यातों में वृद्धि होती है।

15.6 गुणक का विदेशी प्रति प्रभाव

किस देश के आयात और निर्यात के परिवर्तन का प्रभाव केवल उसी देश की राष्ट्रीय आय पर नहीं पड़ता, बल्कि उन देशों की राष्ट्रीय आय पर भी पड़ता है जिनसे इस देश के व्यापारिक सम्बन्ध हैं। इन्हें विदेश प्रति-प्रभाव या अति निर्यात प्रभाव या बैक वाश प्रभाव कहते हैं। इन परिवर्तनों के कारण किसी देश का भुगतान सन्तुलन अपरिवर्तित नहीं रह सकता क्योंकि अन्य देशों में होने वाले आयात-निर्यात के परिवर्तन इस देश के व्यापार को प्रभावित कर उसके भुगतान सन्तुलन में परिवर्तन कर देते हैं। या अन्य शब्दों में, एक देश की राष्ट्रीय आय दूसरे देश की राष्ट्रीय आय का फलन है। जैसे -

$$Y_A = f(Y_B)$$

अर्थात् Aदेश की राष्ट्रीय आय (Y_B) फलन है तथा B देश की राष्ट्रीय आय (Y_A) की।

अथवा $Y_B = f(Y_A)$

अर्थात् B देश की राष्ट्रीय आय (Y_A) फलन है। देश की राष्ट्रीय आय (Y_B) की।

उपरोक्त सूत्रों का आशय यह है कि A और B दोनों की राष्ट्रीय आय एक दूसरे से प्रभावित होती है। एक देश को विदेशी व्यापार की नीति का निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उसका अन्य देशों की राष्ट्रीय आय पर क्या प्रभाव होगा। जैसे यदि विकसित देश, अर्द्धविकसित देशों को अपने निर्यात बढ़ाना चाहें तो उन्हें इन देशों की प्रति व्यक्ति आय पर ध्यान देना होगा अन्यथा अर्द्ध-विकसित देशों को राष्ट्रीय आय के स्तर पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव विकसित देशों की राष्ट्रीय आय को भी प्रभावित करेंगे।

विकसित देशों में बैक वाश प्रभाव भी अधिक होगा। उदाहरणार्थ - अमरीका की राष्ट्रीय आय की वृद्धि देश में आयातों को बढ़ायेगी अर्थात् अन्य देशों के निर्यात बढ़ेंगे और परिणामस्वरूप अन्य देशों की मौद्रिक आय बढ़ेगी। इन देशों की मौद्रिक आय की वृद्धि इन देशों के आयातों को भी बढ़ायेगी। इस बैक वाश प्रभाव का आकार इस बात पर निर्भर करेगा कि अमरीका तथा अन्य देशों में सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM) तथा सीमान्त निर्यात प्रवृत्ति (MPX) का कितना मूल्य है।

15.7 विदेशी व्यापार गुणक की विपरीत क्रियाशीलता

जिस प्रकार से विदेशी व्यापार गुणक सामान्य रूप से आगे की दिशा में कार्यकरता है ठीक उसी प्रकार यह किन्हीं कारणवश विपरीत दिशा में क्रियाशील होकर राष्ट्रीय आय को ऋणात्मक रूप में तेजी से प्रभावित करता हैं आपने आयात फलन के माध्यम से यह समझ लिया होगा कि आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ताओं द्वारा विदेशी वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है। फलस्वरूप आयातों में वृद्धि होना स्वाभाविक हो जाता है। लेकिन अत्यधिक आयात देश की राष्ट्रीय आय के स्तर में कमी पैदा करते हैं, लेकिन आयातों में वृद्धि द्वारा आय में यह कमी आनुपातिक रूप में न होकर गुणक के आकार के आधार पर होती है जो एक अर्थव्यवस्था के संचालन के लिये अत्यधिक हानिकारक होती है। पूर्व में स्पष्ट किया गया कि आयात फलन को स्पष्ट करने के लिये उपभोक्ताओं की रूचियों तथा आयातित वस्तुओं की कीमतों को स्थिर माना गया है। जब इन दोनों स्थितियों में परिवर्तन होता है तब विदेशी व्यापार गुणक की विपरीत दिशा में क्रियाशीलता प्रारम्भ होने की स्थिति पैदा होती है।

विदेशी व्यापार गुणक की विपरीत क्रियाशीलता के कारण आयात में जो वृद्धि होती है उसकी अपेक्षा देश की आय में गुणक (K_f)के आकार के अनुसार कमी होती है। जब उपभोक्ता विदेशी वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिक तथा देश में उत्पादित वस्तुओं को कम खरीदते हैं तो देश में उत्पादित वस्तुओं की मांग में कमी होती है जिसके परिणामस्वरूप अपने ही देश की आय तथा रोजगार में कमी होती है जो स्वदेशी उद्योगों में संलग्न है। यह घटी हुयी आय देश में उत्पादित अन्य वस्तुओं के क्रय पर व्यय में और अधिक कमी कर देती है, परिणामस्वरूप उत्पादन तथा रोजगार के स्तर में गिरावट जारी रहती है। यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक कि विदेशी व्यापार गुणक की विपरीत क्रियाशीलता पूर्ण नहीं हो जाती। यहाँ यह अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है कि गुणक की विपरीत दिशा में क्रियाशीलता के कारण आयातों में प्रारम्भिक वृद्धि के प्रयासों के फलस्वरूप भी अन्तिम रूप से आयातों में कोई वृद्धि नहीं होती है और आयातों का स्तर आय में कमी के होने पर भी स्थिर स्तर पर बना रहता है जिसे आयात विरोधाभास कहा जाता है।

यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि आयातों में वृद्धि से आय रिसाव के कारण राष्ट्रीय आय में कमी तो होती ही है इसके साथ यदि किसी देश के वर्तमान स्तर से निर्यात में कमी होने पर भी

राष्ट्रीय आय में ऋणात्मक परिवर्तन होंगे तो निर्यातों में कमी के आनुपातिक न होकर गुणक के आकार के बराबर ही होंगे।

15.8 विदेशी व्यापार गुणक का महत्व

विदेशी व्यापार गुणक के अर्थव्यवस्थाओं पर जो प्रभाव पड़ते हैं वे देशों की आन्तरिक तथा बाहरी विशेष ताओं से प्रभावित होते हैं। जिन देशों में त्वरक तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) कम होती है उन देशों में राष्ट्रीय आय की सापेक्ष वृद्धि दर कम हो जाती है तथा पूर्ण रोजगार की स्थिति कमजोर पायी जाती है। इसके विपरीत त्वरक का मान तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है तब निवेश गुणक की क्रियाशीलता के कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति की दशाएँ पैदा हो जाती हैं तथा रोजगार के स्तर में भी वृद्धि होती है।

विदेशी व्यापार गुणक के महत्व को निम्न तथ्यों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है:-

(1) विदेशी व्यापार गुणक का प्रभाव आयात की तुलना में निर्यात अधिक होने पर धनात्मक (+ve) आयात तथा निर्यात के बराबर होने पर तटस्थ तथा निर्यात की तुलना में आयात अधिक होने पर ऋणात्मक (-ve) होता है।

(2) इसके कारण एक देश के व्यापार का प्रभाव अन्य देशों की अर्थव्यवस्था पर तथा स्वयं उस देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है।

(3) राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिये इसकी अवधारणा का बहुत महत्व है।

(4) इसका अल्पविकसित देशों के लिये एक विशेष महत्व होता है। यह अल्पविकसित देशों में निर्यात सम्बन्धी नीतियों का समर्थन करता है।

(5) इसकी सहायता से भुगतान शेष में सुधार होता है। जैसे - निर्यात को बढ़ाकर या आयात को सीमित करके भुगतान-शेष के चालू खातों में सुधार किया जा सकता है जो एक अर्थव्यवस्था के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(6) इससे घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि इन देशों की सरकारें आयातों को सीमित करके घरेलू उद्योगों को विकसित करती हैं जिससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

(7) इसकी सहायता से विदेशी निवेश को प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि अल्पविकसित देशों में ज्यादातर वस्तुएँ विदेशों से आयात की जाती हैं। इनको रोकने के लिये विदेशी निवेश को सरकारें प्रोत्साहित करती हैं। जिन वस्तुओं का आयात किया जाता है उनके कारखाने दूसरे देशों की सहायता से अपने ही देश में लगाये जाते हैं जिससे उनका अर्थव्यवस्था में ही उत्पादन शुरू हो जाता है। विदेशी निवेश मुख्य रूप से निर्यात वस्तुओं के व्यापार में वृद्धि करते हैं लेकिन अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। मायर के अनुसार, लाभ का बाह्य प्रवाह, निर्यात के रूप में न होकर, सीधे निकास के रूप में निश्चय ही अर्थव्यवस्था की सम्भाव्य वास्तविक बचतों को भी सीमित कर देता है। अतः यह कहा जा सकता है कि यह अल्पविकसित देशों में निर्यात को बढ़ावा, घरेलू उद्योगों में

विकास, भुगतान-शेष में सुधार, विदेशी निवेश को प्रोत्साहन की नीतियों को लागू करने का समर्थन करता है, वहीं साथ में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के प्रति-प्रभावों की कार्यशीलता की तरफ भी ध्यान जाता है।

15.9 विदेशी व्यापार गुणक की मान्यताएँ

विदेशी व्यापार गुणक किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है फिर भी इसकी क्रियाशीलता के लिये अनेक महत्वपूर्ण पक्षों पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

छोटी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में विदेशी व्यापार गुणक का आकार अत्यन्त छोटा होता है। इसीलिये छोटे देशों को विदेशी व्यापार में अत्यन्त सावधानी बनाये रखना आवश्यक है।

यह मान्यता है कि वर्तमान में आय वृद्धि भविष्य में भुगतान शेष या व्यापार शेष को प्रभावित करेगी तथा गुणक यंत्रवत कार्य करता है जबकि वास्तव में यह प्रभाव पूर्ण रूप से नहीं पड़ता जिस पर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है।

आन्तरिक बचतों के कारण निर्यात वस्तु की लागत घटती है तथा निर्यातों में वृद्धि होती है। आय तथा आयात क्षमताओं में सदैव धनात्मक सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है। आय वृद्धि का भुगतान सन्तुलन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

विदेशी व्यापार गुणक के विश्लेषण में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति, सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति को स्थिर माना गया है जबकि व्यावहारिकता में ये स्थिर नहीं रहते। इनमें परिवर्तन होते रहते हैं।

15.10 विदेशी व्यापार गुणक की आलोचनाएँ

इसकी कुछ मान्यताओं के संदर्भ में आलोचना की गई हैं जो कि निम्न हैं -

1.विदेशी व्यापार गुणक की व्याख्या एक तत्कालिक प्रक्रिया है जिसके कारण यह पश्चतारहित विश्लेषण है जिससे यह पता चलता है कि यह अवास्तविक है।
2.इसकी पूर्ण रोजगार की मान्यता ठीक नहीं है क्योंकि वास्तव में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं पायी जाती है।
3.इसकी व्याख्या केवल दो देशों पर ही लागू होती है। यह दो से अधिक देशों पर लागू नहीं होती। वर्तमान में अधिकांश व्यापार बहु देशीय स्तर पर हो रहा है।

4.इसकी यह मान्यता भी ठीक नहीं हैं कि व्यापार प्रतिबन्ध तथा विनिमय नियन्त्रण अर्थव्यवस्था में नहीं है। बल्कि, वास्तव में इस तरह के प्रतिबन्ध अर्थव्यवस्था में पाये जाते हैं जो इसके कार्यकरण में बाधा डालते हैं।

5.इसकी घरेलू तथा विदेशी निर्यात, निवेश की राष्ट्रीय आय के स्तर में परिवर्तन से स्वतन्त्र रहने की मान्यता भी ठीक नहीं है क्योंकि निर्यात में वृद्धि, राष्ट्रीय आय में हमेशा वृद्धि नहीं लाती। इसके विपरीत कुछ आयात जैसे पूँजीगत पदार्थों का प्रभाव, राष्ट्रीय आय को बढ़ाने पर पड़ता है।

6. इसकी यह मान्यता अवास्तविक है कि सरकारी व्यय स्थिर है परन्तु सरकारें हमेशा मौद्रिक-राजकोषीय नीतियों द्वारा ही हस्तक्षेप करती हैं जो कि आयात-निर्यात, राष्ट्रीय आय को प्रभावित करते हैं।

इन उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद, विदेशी व्यापार गुणक, आर्थिक विश्लेषण करने में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि यह व्यवस्थित नीति उपाय बनाने में बहुत सहायक होता है। अतः अर्थशास्त्र में विदेशी व्यापार गुणक को महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है।

15.11 सारांश

विदेशी व्यापार गुणक एक खुली अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत देश के निर्यातों का राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन है। जब किसी देश के निर्यातों में वृद्धि होने पर उस देश की आय में कई गुना वृद्धि होती है वह गुण के आकार के बराबर होती है। विदेशी व्यापार गुणक देश की सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति के योगफल का व्युत्क्रम होती है। सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति का मान जितना अधिक होता है गुणक का मान उतना ही कम होता है। इसके विपरीत स्थिति में गुणक का मान बढ़ जाता है। गणितीय रूप में विदेशी व्यापार गुणक को $\Delta Y/\Delta X$ अथवा $\frac{1}{s+m}$ के रूप में व्यक्त किया जाता है। विदेशी व्यापार गुणक का सम्बन्ध आयात फल से भी है।

किसी देश के निर्यातों में वृद्धि होने से निर्यातकों की आय में वृद्धि होती है तथा निर्यात उद्योगों में लगे व्यक्तियों के रोजगार के अधिक अवसर सृजित होते हैं तथा उनकी भी आय में वृद्धि होती है। इस बढ़ी हुई आय से देशी तथा विदेशी आयातित वस्तुओं की भी मांग में वृद्धि होती है।

आयातों में वृद्धि होने पर विदेशी व्यापार गुणक विपरीत दिशा में कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। निर्यातों एवं आयातों में वृद्धि का केवल उसी देश की आय तथा रोजगार पर प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि अन्य देशों की आयों तथा रोजगार में वृद्धि होती है जिससे निर्यात की मांग में वृद्धि होती रहती है और यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

गुणक की आलोचनाओं के बावजूद भी वैश्वीकरण की दिशा में विदेशी व्यापार गुणक का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है।

15.12 शब्दावली

बन्द अर्थव्यवस्था - एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसके साथ कोई देश विदेशी व्यापार नहीं करता अर्थात् आयात-निर्यात नहीं किये जाते हैं।

खुली अर्थव्यवस्था - खुली अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत दूसरे देशों के साथ आयात-निर्यात किये जाते हैं।

सीमान्त आयात प्रवृत्ति - राष्ट्रीय आय में परिवर्तन का आयातों में होने वाले परिवर्तनों से अनुपात।

सीमान्त बचत प्रवृत्ति - राष्ट्रीय आय में होने वाले परिवर्तनों का कुल बचत में होने वाले परिवर्तनों से अनुपात।

रिसाव - धीरे-धीरे कमी होना।

व्युत्क्रम - विपरीत या उल्टी दिशा में क्रियाशीलता होना।

व्यापार सन्तुलन - किसी देश की दृश्य वस्तुओं के आयात एवं निर्यात का मूल्य बराबर होता है तब उसे व्यापार सन्तुलन कहा जाता है।

भुगतान सन्तुलन - जब देश की दृश्य तथा अदृश्य मदों के आयात एवं निर्यात का मूल्य बराबर होता है तब भुगतान सन्तुलन की स्थिति पायी जाती है।

15.13 अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प का चयन करो?

1. विदेशी व्यापार गुणक का सम्बन्ध है -
   a. खुली अर्थव्यवस्था से
   b. बन्द अर्थव्यवस्था से
   c. उपर्युक्त दोनों से
   d. कोई नहीं
2. विदेशी व्यापार गुणक है -

   a. $K_f = \square I / \square Y$ **b.** $K_f = 1/s+m$ **c.** $K_f = \square M / \square Y$ **d.** $K_f = \square X / \square Y$

3. विदेशी व्यापार गुणक का मान व्यतुक्रम है -
   a. आयात तथा निर्यात का
   b. निर्यात तथा बचत का
   c. सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति का
   d. सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति का

4. आयात फलन बराबर है -

a. M = f (E) b. M = f (Y) c. M = f (I) d. M = f (X)

5. ΔY /ΔX बराबर है -

a. $^1/_{s+x}$ b. $^1/_{s+m}$ c. $^1/_{m+x}$ d. कोई नहीं

6. आयातों में वृद्धि से विदेशी व्यापार गुणक किस दिशा में कार्य करता है?

7. आयात विरोधाभास क्या है?

8. सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM) क्या है?

उत्तर -

1. (a) खुली अर्थव्यवस्था से 2. (b) $K_f = 1 /s+m$

3. (c)सीमान्त बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति का

4. (b) M = f (Y) 5. (b) $K_f = 1 /s+m$ 6. उत्तर के लिये बिन्दु 15.4.2 देखें

7. उत्तर के लिये बिन्दु 15.4.2. देखें 8. उत्तर के लिये बिन्दु 15.3.2 देखें

15.14संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, एच0एल0 (2010), उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, दिल्ली।
2. वैश्य , एम0सी0 (2008), मौद्रिक अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।
3. सेठ, एम0एल0 (2010), अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
4. सिंघई जी0सी0 (2008), अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन प्रकाश न, आगरा।
5. Arora, Anil (2008), ***International Trade***, Deep and Deep Publications Pvt. Ltd., New Delhi

15.15 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

1. दत्त एण्ड सुन्दरम् (2009), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, दिल्ली।
2. वार्ष्णेय, जे0सी0 (2009), राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेश न, आगरा।
3. सेठ, टी0टी0 (2009), समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनरायन अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा।
4. Singh, B.N.P. (2008), ***Indian Economy Today***, Deep and Deep Publications Pvt. Ltd., New Delhi
5. बरला एण्ड अग्रवाल (2005), अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन प्रकाश न, आगरा।

6. सिंह, एस0पी0 (2009), आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस0 चन्द एण्ड कं0 लि0, दिल्ली।

15.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विदेशी व्यापार गुणक से आप क्या समझते हैं? इसके प्रभावों की व्याख्या कीजिए?
2. विदेशी व्यापार गुणक की क्रियाशीलता एवं विपरीत क्रियाशीलता की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये?
3. आयात फलन की रेखाचित्र सहित व्याख्या कीजिए?
4. विदेशी व्यापार गुणक के महत्व को बतायें।

इकाई 16 मुद्रा की प्रकृति, कार्य एवं पूर्ति

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2. उद्देश्य
16.3 मुद्रा की प्रकृति
16.4 मुद्रा की सैद्धान्तिक और अनुभवसिद्ध परिभाषाएं
16.4.1 परम्परागत परिभाषा
16.4.2 फ्रीडमैंन की परिभाषा
16.4.3रेडक्लिफ की परिभाषा
16.4.4गुर्ले शा की परिभाषा
16.4.5पेसक-सेविंग की परिभाषा
16.5 मुद्रा के कार्य
16.5.1 प्राथमिक कार्य या मुख्य कार्य
16.5.2 सहायक कार्य
16.5.3 आकस्मिक कार्य
16.5.4 अन्य कार्य
16.6 मुद्रा की पूर्ति
16.7 मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्व
16.7.1 न्यूनतम नकद रिजर्व अनुपात
16.7.2 बैंक रिजर्व का स्तर
16.7.3 लोगों की नकद राशि एवं जमा रखने की इच्छा
16.8 भारत में मुद्रा पूर्ति के माप
16.9 सारांश
16.10 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ
16.11 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

इस इकाई में मुद्रा के विभिन्न पहलूओं पर विचार किया गया हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अर्थव्यवस्था में मुद्रा (अर्थात् नोट, करेन्सी, रूपया इत्यादि नाम है) की क्या प्रकृति है को स्पष्ट किया गया है। इसके अन्तर्गत मुद्रा की विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी विचारधाराएं शामिल है। साथ ही साथ मुद्रा के कौन-कौन से कार्य है, मुद्रा आपूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्वों या घटकों की विस्तृत चर्चा की गयी है। तत्पश्चात् भारत में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी की जाने वाली मुद्रा की माप की विस्तृत विवेचना की गयी है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. मुद्रा की प्र्रकृति से अवगत हो सकेगें।

2. मुद्रा की विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषा से अवगत हो सकेगें।

3. अर्थव्यवस्था में मुद्रा के कौन-कौन से कार्य है उनकी जानकारी होगी।

4. भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी किये जा रहें मुद्रा के माप से अवगत हो सकेगें।

5. अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्वों से अवगत होगें।

16.3 मुद्रा की प्रकृति

मुद्रा के अर्थ और प्रकृति के संबंध में बहुत मतभेद और भ्रान्ति चली आ रही है। जैसा कि स्कितोव्स्की ने लक्ष्य किया है, ''मुद्रा की धारणा को परिभाषित करना कठिन है, आंशिक रूप से तो इसलिए कि यह एक नहीं तीन कार्य करती है, जिनमें से प्रत्येक कार्य मुद्रात्व की कसौटी प्रदान करता है। ये कार्य हैः (1) लेखा की इकाई, (2) विनिमय का माध्यम, (3) मूल्य का संचय।'' यद्यपि स्कितोव्स्की ने मुद्रात्व के कारण मुद्रा को परिभाषित करने की कठिनाई की ओर संकेत किया है तथापि उसने मुद्रा की व्यापक परिभाषा दी है। प्रो. कोलबार्न की परिभाषा के अनुसार ''मुद्रा मूल्यांकन तथा भुगतान का माध्यम है; लेखा की इकाई के रूप में भी तथा विनिमय के सामान्यतः स्वीकार्य माध्यम के रूप में भी।'' कोलबार्न की परिभाषा बहुत व्यापक है। उन्होंने इस परिभाषा में 'मूर्त' मुद्रा जैसे-सोना, चेक, सिक्के, केरन्सी, नोट, बैंक ड्राफ्ट आदि को तो शामिल किया ही हैं, साथ ही 'अमूर्त' मुद्रा को भी ले लिया है जो हमारे मूल्य, कीमत तथा योग्यता के विचारों की वाहिका है। इस तरह की व्यापक परिभाषाएं देखकर सर जॉन हिक्स ने कहा था, ''मुद्रा अपने कार्यों से परिभाषित होती है, जिस किसी वस्तु को मुद्रा की भांति प्रयोग किया जाए वही मुद्रा बन जाती है।

मुद्रा वहीं है जो मुद्रा का कार्य करें।'' ये मुद्रा की कार्यात्मक परिभाषाएं हैं क्योंकि ये मुद्रा को उसके कार्यों की दृष्टि से परिभाषित करती है।

कुछ अर्थशास्त्री मुद्रा को कानून की शब्दावली में परिभाषित करते है और कहते है, ''जिस किसी चीज को सरकार मुद्रा घोषित कर दे, वही मुद्रा है।'' इस तरह की मुद्रा को सामान्य रूप से सभी स्वीकार करते है और इसमें ऋण चुकाने की कानूनी शक्ति होती है। परन्तु हो सकता है कि लोग वैध मुद्रा स्वीकार न करें और उसके बदले में वस्तुएं तथा सेवायें बेचने को तैयार न हों। दूसरी ओर सम्भव है कि लोग ऐसी चीजों को मुद्रा के रूप में स्वीकार कर लें जिन्हें ऋण चुकाने के लिए कानूनी तौर पर मुद्रा नहीं कहा गया, परन्तु जो बहुत प्रचलित हों। इस तरह की चीजें, वाणिज्यिक बैंको द्वारा जारी किए गए चेक और नोट है। इस प्रकार, वैधता के अतिरिक्त भी कुछ ऐसी बातें है जो कुछ चीजों को मुद्रा बनाती है।

16.4 मुद्रा की सैद्धान्तिक और अनुभवसिद्ध परिभाषाएं

मुद्रा की परिभाषा के बारे में अर्थशास्त्री एकमत नहीं है, इसलिए प्रो. जॉनसन इस संबंध में चार मुख्य विचारधाराओं का उल्लेख करता है जिनकी पेसक और सेविंग के विचार के साथ नीचे विवेचना की गई है।

16.4.1. परम्परागत परिभाषा- परम्परागत विचारधारा, जिसे करेन्सी संप्रदाय भी कहते है, के अनुसार, मुद्रा को करेन्सी और मांग जमा कहा गया है। इसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य विनिमय का माध्यम के रूप में है। केन्ज ने परम्परागत विचारधारा का पालन करते हुए अपनी पुस्तक General Theory में नकदी और बैंको की मांग जमा को मुद्रा परिभाषित किया। हिक्स ने अपने Critical Essays in Monetary Theory में मुद्रा की प्रकृति के परम्परागत तिहरे वर्गीकरण को बताया है: ''लेखा की इकाई, भुगतान करने का साधन और मूल्य के संचय के रूप में।'' बैंकिग संप्रदाय ने मुद्रा की परम्परागत परिभाषा को मनमानी इसकी आलोचना की। इसमें मुद्रा का अर्थ बहुत संकुचित है क्योंकि अन्य परिसम्पत्तियां भी है जो समानरूप से विनिमय का माध्यम स्वीकार की जाती है। इनमें वाणिज्यिक बैंको के समय जमा-पत्र, विनिमय बिल, आदि शामिल हैं। इन परिसम्पत्तियों की उपेक्षा करके परम्परागत विचारधारा उनके प्रभाव से उनके वेग का विश्लेषण करने में समर्थ नहीं है। फिर, इनको मुद्रा की परिभाषा से निकालकर, केन्जवादी मुद्रा के ब्याज-लोच मांग फलन पर अधिक बल देते है। अनुभवसिद्ध तौर से उन्होने ब्याज दर द्वारा उत्पादन और मुद्रा के स्टॉक के बीच संबंध स्थापित किया।

16.4.2. फ्रीडमैंन की परिभाषा- मुद्रा से फ्रीडमैंन का अभिप्राय है, ''अक्षरशः वे सभी डालर जो लोग अपनी जेबों में लिए घूमते है, और वे सभी डालर जो मांग जमा और वाणिज्यिक बैंक के पास समय जमा के रूप में उनके बैंक खातों में है।'' अतः उसकी परिभाषा के अनुसार, मुद्रा ''करेन्सी

और वाणिज्यिक बैंको की कुल समायोजित जमाओं का जोड़ है।'' यह मुद्रा की व्यावहारिक परिभाषा है, जिसका फ्रीडमैंन और शर्वाटज चुने हुए 1929, 1935, 1950, 1955 और 1960 वर्षों के लिए अमरीका की मौद्रिक प्रवृत्तियों के अनुभवसिद्ध अध्ययन के लिए प्रयोग करते हैं। यह मुद्रा की संकुचित परिभाषा थी और वाणिज्यिक बैंको के दोनों मांग और समय जमाओं में समायोजन तथा समाज और वाणिज्यिक बैंको की बढ़ रही वित्तीय कृत्रिमता को ध्यान में रख कर रची गई थी। परन्तु फ्रीडमैंन इस कृत्रिमता का एक सूचक भी स्थापित नहीं कर सका। इस समायोजन के साथ भी, नकद और जमा मुद्राओं की दीर्घकाल तक पूरी तरह से तुलना नहीं की जा सकी थी। फिर भी, 1950, 1955, और 1960 के सहसंबंध प्रमाण ने मुद्रा को इस विस्तृत परिभाषा का सुझाव दिया: ''कोई परिसम्पत्ति जो क्रय शक्ति के अस्थाई निवास के रूप में क्षमता रखती हो।''

इस प्रकार फ्रीडमैंन मुद्रा की दो प्रकार की परिभाषाएं देता है। एक सैद्धान्तिक आधार पर और दूरी अनुभवसिद्ध आधार पर। फ्रीडमैंन मुद्रा की अपनी परिभाषा में दृढ़ नहीं है और विस्तृत दृष्टिकोण रखता है जिसमें बैंक जमा, गैर बैंक जमा और कई अन्य प्रकार की परिसम्पत्तियां शामिल होती है, जिनके द्वारा मौद्रिक अधिकारी रोजगार, कीमतों और आय के भावी-स्तर या किसी अन्य महत्वपूर्ण समष्टि चर को प्रभावित करता है।

16.4.3. रेडक्लिफ की परिभाषा- रेडक्लिफ समिति ने मुद्रा को ''नोट योग बैंक जमा'' के रूप में परिभाषित किया। इसमें केवल वे परिसम्पत्तियां शामिल हैं, जो सामान्यतौर से विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग की जाती है। परिसम्पत्तियों से अभिप्राय तरल परिसम्पत्तियों से है जिनका अर्थ है वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए कुल प्र्रभावी मांग को प्र्रभावित कर रही मौद्रिक मात्रा। इसमें व्यापक रूप से साख को शामिल समझा जाता है। इस प्रकार, समस्त तरलता स्थिति व्यय करने के निर्णयों से संबद्ध होती है। व्यय करना बैंक में नकदी या मुद्रा तक सीमित नहीं है, बल्कि मुद्रा की वह मात्रा है जिसे लोग एक परिसम्पत्ति बेचकर या उधार लेकर या जैसे बिक्री से प्राप्त आय समझकर धारण कर सकते है। समिति ने मुद्रा के प्रचलन वेग की धारणा का प्रयोग नहीं किया क्योंकि संख्यात्मक स्थिरांक के रूप में इसमें कोई भी व्यावहारिक मात्रा नहीं पाई जाती है।

अशोधित अनुभवसिद्ध प्रयोगों के आधार पर कमेटी ने ब्याज दर द्वारा मुद्रा और आर्थिक क्रिया के बीच प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध नहीं पाया। परन्तु उसने सरलता के आधार पर इनमें नया संक्रमण तंत्र प्रदान किया हैं। उन्होंने व्याख्या की कि ब्याज दरों में गति का अर्थ है वित्तीय संस्थाओं द्वारा धारित बहुत-सी परिसम्पत्तियों के पूंजी मूल्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन हैं। ब्याज दरों में वृद्धि होने से कुछ उधारदाता कम उधार देते है, क्योंकि पूंजी मूल्य गिर जाते है और अन्य इसलिए कि उनका ब्याज-दर ढ़ांचा दृढ़ होता है। दूसरी ओर, ब्याज दर में गिरावट उनके तुलन-पत्रों में वृद्धि करती है और उधारदाताओं को नया व्यवसाय खोजने के लिए प्रोतसाहित करती है।

16.4.4. गुर्ले-शॉ परिभाषा- गुर्ले तथा शॉ वित्तीय मध्यस्थों द्वारा रखी गई काफी मात्रा में तरल परिसम्पत्तियां और गैर-बैंक मध्यस्थों की देयताओं को मुद्रा के निकट स्थानापन्न समझते हैं। मध्यस्थ संचय के रूप में मुद्रा के लिए स्थानापन्न प्रदान करते हैं। यथार्थ मुद्रा जिसे करेन्सी योग जमा परिभाषित किया गया है, केवल एक तरल परिसम्पत्ति है। इस प्रकार, उन्होंने तरलता पर आधारित मुद्रा की एक विस्तृत परिभाषा निर्मित की है जिसमें बांड, इंशयोरेंस रिजर्व, पेंशन फंड, बचत और ऋण शेयर शामिल है। वे मुद्रा स्टॉक के वेग में विश्वास रखते है जो गैर-बैंक मध्यस्थों द्वारा प्रभावित होता है।

16.4.5. पेसक-सेविंग की परिभाषा- पेसक और सेविंग के अनुसार, मुद्रा में बैंको के मांग जमा और सरकार द्वारा जारी मुद्रा शामिल होने चाहिए। वे बैंक मुद्रा में समय और बचत खाते शामिल नहीं करते है। वे कुल मुद्रा को, जिसमें मांग-जमा शामिल है, समाज की शुद्ध सं मानते है। वे मुद्रा की ऋण के साथ तुलना करते है। मुद्रा ब्याज नहीं देती लेकिन ऋण ब्याज देता है। ऋण स्वयं सम्पत्ति नहीं है, क्योंकि जो बैंक मुद्रा को धारण करते है, उसे एक परिसम्पत्ति मानते हैं, जबकि बैंक उसे प्रभावी देयता मानते है।

इस प्रकार, पेसक और सेविंग मुद्रा की एक व्यवहार्य परिभाषा का अनुसरण करते है जिसमें तीन शर्ते शामिल है: प्रथम, वे वस्तु, मुद्रा और आदेश मुद्रा को उनके धारकों की परिसम्पत्ति के रूप में मानते है और किसी की भी देयताएं नहीं मानते। दूसरे, सरकार वाणिज्यिक बैंको को मुद्रा निर्माण के लिए एकाधिकार अधिकार प्रदान करती है, जो आगे व्यक्तियों के निजी ऋणों के लिए बैंक मुद्रा बेचकर इसका प्रयोग करते है। जिन व्यक्तियों के पास बैंक मुद्रा होती है वे इसे पूर्णरूप से एक परिसम्पत्ति मानते है। दूसरी ओर, बैंक इसे एक प्रभावी देयता मानते है। अतः पेसक और सेविंग बैंक मुद्रा घटा रिजर्व (जो बैंक अपने जमाकर्त्ताओं की मांग को पूरा करने के लिए रखते है) को अर्थव्यवस्था की शुद्ध परिसम्पत्ति मानते है। तुलन-पत्र में, बैंक मुद्रा को एक परिसम्पत्ति और निजी ऋणों को एक देयता दिखाया जाता है। तीसरे, यदि बैंक मुद्रा निर्मित करना लागत रहित हो और जमा पर कोई ब्याज भुगतान नहीं दिए जाते, तो बैंक की शुद्ध सम्पत्ति अपरिवर्तित रहती है क्योंकि परिसम्पत्तियां और देयताएं दोनों समान मात्रा में बढ़ते है। यह दर्शाता है कि बैंक की शुद्ध सम्पत्तियां शून्य है।

पेसक और सेविंग बैंक मुद्रा में समय और बचत जमाओं को शामिल नहीं करते हैं। परन्तु जब ब्याज भुगतान हों तो वे बैंक मुद्रा में सम्मिलित होते हैं। उनका तर्क है कि एक बार जब ये जमाएं ब्याज देना प्रारम्भ करती है, तो वे मुद्रा का कार्य करती रहेंगी।

आलोचनाएं- पेसक और सेविंग की परिभाषा की निम्न आलोचनाएं की गई है-

1. फ्रीडमैंन और शर्वाटज के अनुसार, पेसक और सेविंग की स्थिति का तर्क यह है कि मुद्रा शुद्ध-परिसम्पत्ति के रूप में उच्च शक्तियुक्त मुद्रा होनी चाहिए जिसे पेसक एवं सेविंग ने बहुत संकुचित कहकर अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार, उच्च शक्तियुक्त मुद्रा पेसक एवं सेविंग की प्रथम कसौटी को पूरा करती हैं।

2. पेसक और सेविंग विश्लेषण में पेटिनकिन कुछ भ्रांति पाता है, जब वे बैंक मुद्रा में समय और बचत जमा शामिल नहीं करते है। पेसक एवं सेविंग बैंको द्वारा प्रयोग किए गए परम्परागत लेखांकन तरीकों की भी आलोचना करते है। परन्तु पेटिनकिन उनके मुद्रा निर्माण के विश्लेषण की परम्परागत लेखांकन द्वारा व्याख्या करता है और उसे अधिक लाभदायक पाता है।

3. पेसक और सेविंग की आलोचना सामाजिक सम्पत्ति को परिभाषित करने में बैंक-मुद्रा की दोहरी गणना करने के लिए भी की गई है। प्रथम, वे इसमें मुद्रा पूर्ति का भाग शामिल करते हैं, और फिर वे बैंकिग प्रणाली की शुद्ध सम्पत्ति को अन्य तत्व में सम्मिलित करते है। वास्तव में, एक या दूसरे की गणना करनी चाहिए, न कि दोनों की।

इन आलोचनाओं के बावजूद, पेसक और सेविंग का मुद्रा पर विचार महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे शुद्ध सम्पत्ति का अध्ययन करते हैं जो वाणिज्यिक बैंको को प्राप्त होती है।

16.5 मुद्रा के कार्य-

प्रो. चैण्डलर का कथन है कि किसी आर्थिक प्रणाली में मुद्रा का केवल एक मौलिक कार्य है-माल तथा तथा सेवाओं के लेन-देन को सरल बनाना। मुद्रा के इस कार्य से लेन-देन में लगने वाले समय तथा परिश्रम की बचत होती है। मुद्रा के सभी कार्यो का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है-

(1) प्राथमिक या मुख्य कार्य, (2) सहायक कार्य, (3) आकस्मिक कार्य एवं (4) अन्य कार्य।

16.5.1 प्राथमिक या मुख्य कार्य- प्राथमिक मुद्रा के मुख्यतः दो कार्य हैः

(1) विनिमय का माध्यम, (2) मूल्य मापक। जिसका विवेचन निम्नवत् हैः

(1) विनिमय का माध्यम- मुद्रा में सामान्य स्वीकृति का गुण है। प्रत्येक व्यक्ति इसे स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है। वर्तमान समय में जितना लेन-देन होता है उसका भुगतान अधिकतर मुद्रा के द्वारा होता है, एक उत्पादक द्वारा थोक विक्रेता को माल बेचा जाता है, बदले में मुद्रा प्राप्त की जाती है। थोक विक्रेता फुटकर व्यापारी को सामान बेचता है, बदले में मुद्रा प्राप्त करता है तथा फुटकर व्यापारी ग्राहक को मुद्रा के बदले में सामान बेचता है। इस प्रकार समाज के सभी क्रेता-विक्रेता, उपभोक्ता-व्यापारियों अथवा सेवक-मालिकों के बीच मुद्रा एक ऐसी कड़ी है जो प्रत्येक वर्ग को

प्रतिफल दिलाने में सहायक होती है। अतः मुद्रा के बिना वर्तमान विनिमय व्यवस्था की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

(2) मूल्य मापक- मुद्रा का दूसरा कार्य है समाज में उत्पन्न अथवा प्रस्तुत सब सेवाओं का मूल्य-मापन करना हैं। जिस प्रकार भौतिक वस्तुओं के नाप, तौल, अथवा लम्बाई, चौड़ाई, आदि ग्राम, लीटर अथवा मीटर में नापे जाते हैं, उसी प्रकार सब वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य का एकमात्र माप मुद्रा है। वास्तव में मुद्रा के इस कार्य के बिना भी विनिमय सम्भव नहीं क्योंकि कोई भी वस्तु खरीदने से पहले ग्राहक उसका मूल्य जानना चाहता है और प्रत्येक वस्तु का मूल्य मुद्रा में जैसे 2 रू. मीटर, 3 रू. लीटर, 4 रू. किलोग्राम, आदि ही बताया जाता है जिसके आधार पर प्रत्येक व्यक्ति यह निश्चित कर लेता है कि अमुक वस्तु अमुक मात्रा में खरीदनी है। इस प्रकार, मुद्रा 'हिसाबी इकाई' के रूप में कार्य करती है। दूसरे शब्दों में वर्तमान समय में समूची क्रय-विक्रय व्यवस्था का आधार मुद्रा है।

16.5.2 सहायक कार्य- प्राथमिक कार्यो के अलावा मुद्रा के कुछ सहायक कार्य भी है जो निम्नलिखित हैः

(1) भावी भुगतानों का आधार, (2) मूल्य संचय का साधन, (3) मूल्य हस्तान्तरण। जिसका विवेचन निम्नवत् हैः

(1) भावी भुगतानों का आधार- वर्तमान समय का आर्थिक ढांचा साख पर आधारित है और साख अथवा उधार मुद्रा के रूप में ही दी जाती है। उधार देते समय ब्याज की दर तथा भुगतान की किस्तें मुद्रा में ही निश्चित की जाती है जिससे ऋणी को यह निश्चय रहता है कि उसे कब और कितनी राशि चुकानी है। इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि मुद्रा भावी भुगतानों का उचित आधार तभी रह सकती है जबकि उसके मूल्य में सामान्यतः स्थिरता रहें। अन्य वस्तुओं की तुलना में मुद्रा के मूल्य में अधिक स्थिरता रहती है।

(2) मूल्य संचय का साधन- मनुष्य भविष्य की आकस्मिक विपत्तियों अथवा सामाजिक तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए अपनी वर्तमान आय का कुछ भाग बचाकर रखना चाहता है, परन्तु उसे यह निश्चय होना चाहिए कि उसकी बचत सुरक्षित है और उसका प्रयोग किसी भी समय कर सकता है। मुद्रा में बचत करना इस दृष्टि से भी उचित है कि उसे बैंक में जमा करके ब्याज भी कमाया जा सकता है। मुद्रा के रूप में मूल्य संचय को प्रोत्साहित करने के लिए आश्वयक है कि मुद्रा का मूल्य स्थिर रखने का प्रयत्न किया जाए अन्यथा लोग अपनी बचतें सोना, भूमि अथवा अन्य सम्पत्तियों के रूप में रखना पसन्द करेंगे क्योंकि इनके मूल्यों में कमी आने का भय नहीं होता है।

(3) मूल्य हस्तान्तरण- मुद्रा विनिमय माध्यम का कार्य करती है। इस मुख्य कार्य के कारण ही मुद्रा मूल्य हस्तान्तरण की सर्वोत्तम साधन बन गई है। उदाहरणतः, यदि कोई व्यक्ति जयपुर छोड़कर आगरा बसना चाहता है तो वह जयपुर स्थित मकान, जमीन तथा अन्य सारी सम्पत्ति मुद्रा में बेचकर आगरा में नई सम्पत्ति खरीद सकता है।

16.5.3 आकस्मिक कार्य- प्राथमिक एवं सहायक कार्यों के अतिरिक्त प्रो. डेविM किनले ने मुद्रा के चार आकस्मिक कार्यो का उल्लेख किया है:

(1) आय का वितरण, (2) पूंजी की उत्पादकता बढ़ाना, (3) साख का आधार, (4) सम्पत्ति की तरलता। जिसकी व्याख्या नीचे किया गया है:

(1) आय का वितरण- किसी देश में जितना उत्पादन होता है उसमें भूमि, श्रम, पूंजी तथा साहस का सहयोग होता है, अतः प्रत्येक वर्ग को उसके सहयोग का उचित प्रतिफल मिलना चाहिए। मुद्रा में न केवल समस्त राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है बल्कि प्रत्येक वर्ग को उसके योगदान के अनुपात में भुगतान भी मुद्रा में ही दिया जाता है।

(2) पूंजी की उत्पादकता- यद्यपि पूंजी में अन्य कई तत्वों का समावेश होता है फिर भी मुद्रा पूंजी का सबसे बड़ा आधार है। मुद्रा के द्वारा ही पूंजी को ऐसे विनियोग में हस्तान्तरित किया जा सकता है जहां उसकी उत्पादकता तुलनात्मक रूप से अधिक हो। इससे पूंजी की गतिशीलता और उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(3) साख का आधार- बैंको तथा अन्य वित्तीय संस्थानों का व्यवसाय साख के आधार पर ही चलता है तथा साख का सृजन बैंको में जमा राशि के आधार पर किया जाता है जो मुद्रा के रूप में होती है। जमा राशि के कारण ही ग्राहकों का बैंकों में विश्वास बना रहता है।

(4) सम्पत्ति की तरलता- मुद्रा सम्पत्ति को तरल रूप प्रदान करती है। भूमि, मकान, मशीनें, आदि बेचने से इनके बदले में मुद्रा प्राप्त होती है। यह नकद राशि अधिकतम लाभ देने वाले स्थानों, केन्द्रों अथवा व्यवसायों में सरलता से भेजी जा सकती है और इससे अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है। वास्तव में, प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के कुछ भाग को तरल रूप में ही रखना चाहता है।

16.5.4 अन्य कार्य- उपर्युक्त कार्यो के अतिरिक्त मुद्रा के कुछ और भी कार्य है जो निम्नवत् है:

(1) मुद्रा निर्णयों में सहायक- मुद्रा एक संचय का साधन है और उपभोक्ता अपनी दैनिक आवश्यकताओं को मुद्रा के अनुसार पूरा करता है। यदि उपभोक्ता के पास साइकिल है परन्तु निकट

भविष्य में उसे स्कूटर की आवश्यकता है, तो ऐसी स्थिति में उपभोक्ता संचय की गई मुद्रा और साइकिल बेचकर स्कूटर खरीद सकता है। इस प्रकार मुद्रा निर्णय करने में सहायक होती है।

(2) समन्वय का आधार- व्यापार को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार में समन्वय मुद्रा द्वारा ही होता है। विभिन्न प्रकार की विदेशी सहायता का पुनर्भुगतान का मूल्य मुद्रा द्वारा मापा जाता है और विदेशी विनिमय में समन्वय भी मुद्रा द्वारा स्थापित होता है।

16.6 मुद्रा की पूर्ति:- मुद्रा पूर्ति से आशय किसी विशेष समय में अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल मात्रा से है। मुद्रा की पूर्ति के संबंध में तीन प्रकार के विचार या परिभाषाएं उल्लेखनीय है:

प्रथम परिभाषा के अनुसार मुद्रा पूर्ति का तात्पर्य लोगों के पास नकद मुद्रा एवं व्यापारिक बैंको के पास मांग जमा राशि से है। मांग जमा राशि का अर्थ चालू खातों में जमा वह राशि है जिसकी मांग होने पर बैंको को तत्काल भुगतान करना होता है। इसे M_1 द्वारा व्यक्त किया जाता है। यह मुद्रा पूर्ति की संकुचित परिभाषा है।

द्वितीय परिभाषा मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त से संबंधित है। मुद्रा पूर्ति को परिभाषित करते हुए प्रो. फ्रीडमैन कहते है कि ''किसी विशेष समय में मुद्रा की पूर्ति का आशय सही अर्थो में डॉलरों की वह राशि है जो लोगों के पाकिट में होती है, डॉलरों की वह मात्रा होती है जो लोगों के खातों में बैंको में जमा होती है, जो मांग जमा खातों में होती है अथवा व्यापारिक बैंको में समय जमा खातों में होती है।'' डॉलर के स्थान पर किसी भी देश की मुद्रा को लिया जा सकता है। इस परिभाषा में मुद्रा के मूल्य संचय कार्य को महत्व दिया गया है। भारत में इसे M_2 कहा जाता है।

मुद्रा पूर्ति की तीसरी परिभाषा सबसे अधिक विस्तृत है तथा अर्थशास्त्री गुर्ले एवं शॉ से संबंधित है उनके अनुसार मुद्रा की पूर्ति में उपरोक्त M_3 के साथ बचत बैंको की जमा राशि एवं अन्य साख तथा वित्तीय संस्थाओं की जमा राशि भी शामिल होती है।

उपरोक्त परिभाषाओं में किसी विशेष देश या स्थिति में परिभाषा की उपयुक्तता मौद्रिक नीति पर निर्भर रहती है अर्थात् जिसके आधार पर मौद्रिक नीति को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सके। यदि हम मुद्रा के विनिमय माध्यम को महत्व दें तो विश्लेषणात्मक दृष्टि से पहली परिभाषा अच्छी है। दूसरी परिभाषा भले ही विश्लेषश णात्मक दृष्टि से अच्छी न हो किन्तु मौद्रिक नीति की क्रियाशीलता की दृष्टि से यह अधिक अनुकूल है क्योंकि इसमें केन्द्रीय बैंक अधिक विस्तृत मौद्रिक नियन्त्रण अपना सकता हैं जहां तक तीसरी परिभाषा का प्रश्न है, यह बहुत अधिक विस्तृत होने के कारण असन्तोश जनक है।

उपरोक्त परिभाषाओं से एक बात स्पष्ट है कि किसी देश में मुद्रा की कुल पूर्ति चलन मुद्रा और बैंक मुद्रा द्वारा निर्धारित होती है।

16.7 मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्व

अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति किस प्रकार निर्धारित होती है, इसके बारे दो सिद्धान्त है। पहले सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की पूर्ति, केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्धारित होती है। इसे बाह्य कारण कहा जा सकता है। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण आर्थिक क्रियाओं में होने वाले परिर्वतनों द्वारा होता है। इन्हें आन्तरिक कारण कहा जा सकता है।

उपर्युक्त तत्वों को दृष्टि में रखते हुए मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्वों को निम्न तीनों भागों में बांटा जा सकता है:

(1) न्यूनतम नकद रिजर्व अनुपात; (2) बैंक रिजर्व का स्तर; (3) लोगों की नकद राशि एवं जमा रखने की इच्छा। जिसका विवेचन निम्न प्रकार से है:

16.7.1 न्यूनतम नकद रिजर्व अनुपात-केन्द्रीय बैंक अपने सदस्य बैंको को उधार देने तथा उनके बिलो की कटौती की सुविधा देते है। इसके बदले में सदस्य बैंको को चालू तथा स्थायी जमा का कानून द्वारा निर्धारित एक निश्चित प्रतिशत केन्द्रीय बैंक के पास रखना पड़ता है। इसे ही न्यूनतम नकद रिजर्व अनुपात कहते है। अन्य शब्दों में, आवश्यक या न्यूनतम नकद रिजर्व अनुपात व्यापारिक बैंको का चालू एवं समय जमा दायित्वों का नकद अनुपात है। भारत में न्यूनतम नकद रिजर्व अनुपात के अतिरिक्त कानूनी तरल कोषानुपात को मुद्रा पूर्ति नियन्त्रित करने हेतु एक अतिरिक्त उपाय के रूप में अपनाया गया है। इसके अन्तर्गत व्यापारिक बैंको को अपनी कुल सम्पत्ति का एक भाग तरल रूप में रखना आवश्यक होता है।

यदि केन्द्रीय बैंक, न्यूनतम नकद रिजर्व अनुपात में वृद्धि करता है तो व्यापारिक बैंको के पास मुद्रा की पूर्ति कम हो जाती है और जब उक्त अनुपात में कमी की जाती है, तो मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है। इस अनुपात में परिवर्तन करके केन्द्रीय बैंक देश में साख की मात्रा को नियन्त्रित करता है। इस प्रकार मुद्रा की पूर्ति को निर्धारित करने में न्यूनतम नकद रिजर्व अनुपात की महत्वपूर्ण भूमिका है।

16.7.2 बैंक रिजर्व का स्तर- बैंको द्वारा रखे जाने वाले रिजर्व का भी मुद्रा की पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। व्यापारिक बैंको को केन्द्रीय बैंक के पास रिजर्व राशि रखनी पड़ती है तथा अपने पास भी एक निश्चित अनुपात में नकद की मात्रा पड़ती है। देश का केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंको की रिजर्व मात्रा को प्रभावित कर मुद्रा पूर्ति को निर्धारित करता है। केन्द्रीय बैंक के निर्देशानुसार, व्यापारिक बैंक को अपनी सावधि एवं मांग जमा का एक निश्चित अनुपात नकद के रूप में रखना पड़ता है। इसका

निर्धारण न्यूनतम नकद अनुपात एवं जमाओं के स्तर से होता है। उदाहरणार्थ, यदि जमा राशि 1 लाख रूपया है, तथा न्यूनतम नकद अनुपात 20 प्रतिशत है तो आवश्यक रिजर्व 20 हजार रूपए होगा। जहां तक मुद्रा पूर्ति का प्रश्न है, इसका निर्धारण अतिरेक रिजर्व द्वारा होता है। कुल रिजर्व की मात्रा एवं आवश्यक रिजर्व की मात्रा में जो अन्तर होता है, उसे अतिरेक रिजर्व की मात्रा कहते है। उपर्युक्त उदाहरण में कुल रिजर्व 1 लाख रूपया है तथा आवश्यक रिजर्व 20 हजार रूपए है तो अतिरेक रिजर्व की मात्रा 80 हजार रूपए होगी। यदि आवश्यक रिजर्व की मात्रा कम हो जाए तो अतिरेक रिजर्व की मात्रा बढ़ जाती है जिसका मुद्रा पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। अर्थात् ऐसी स्थिति में व्यापारिक बैंक अतिरेक रिजर्व की मात्रा के बराबर ऋण दे सकता है।

16.7.3 लोगों की नकद राशि एवं जमा रखने की इच्छा- मुद्रा की पूर्ति इस बात पर भी निर्भर करती है कि लोग बैंको में अपनी जमा राशि के किस अनुपात में अपने पास नकद राशि रखना चाहते है। यदि लोग अपने पास नकद कम रखते है तथा बैंको में जमा राशि अधिक रखते है तो मुद्रा की पूर्ति अधिक होगी। इसका कारण यह है कि अधिक जमा राशि के आधार पर बैंक अधिक मुद्रा का निर्माण कर सकते हैं।

16.8 भारत में मुद्रा पूर्ति के माप

भारत में मुद्रा पूर्ति के चार माप है जिन्हें M_1, M_2, M_3 व M_4 द्वारा व्यक्त किया जाता है। यह वर्गीकरण भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अप्रैल, 1977 में अपनाया गया था। इससे पूर्व मार्च, 1968 तक रिजर्व बैंक मुद्रा पूर्ति का केवल एक माप M या M_1 प्रकाशित करता था, जिसे जनता के पास करेन्सी और मांग जमा द्वारा परिभाषित किया जाता था। अप्रैल, 1977 से रिजर्व बैंक मुद्रा पूर्ति के चार मापों पर आंकड़े प्रकाशित कर रहा है, जिनकी नीचे विवेचना की गई है।

M_1- मुद्रा पूर्ति के पहले माप M_1 में शामिल है:

1. जनता के करेन्सी जिसमें बैंको के पास नकदी को छोड़कर परिचालन में सभी मूल्य वर्ग के सिक्के और नोट शामिल है;

2. बैंक जमा को छोड़कर वाणिज्यिक बैंक और सहकारी बैंको के मांग जमा;

3. रिजर्व बैंक के पास ''अन्य जमा'' जिनमें विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और बैंको का छोड़कर आई.डी.बी.आई., आई.एफ.सी.आई. आदि अर्द्धवित्तीय संस्थाओं, वित्तीय संस्थाओं और विदेशी केन्द्रीय बैंको के चालू खाते शामिल है।

M_2- मुद्रा पूर्ति का दूसरा माप M_2 है जिसमें M_1 जमा डाकघर बचत जमा बैंक खाते शामिल है। क्योंकि वाणिज्यिक और सहकारी बैंको के बचत बैंक जमा मुद्रा पूर्ति में शामिल है, इसलिए डाकघर

बचत बैंक जमा शामिल करना आवश्यक है। भारत में अधिकतर ग्रामीण और शहरी लोग बैंक जमा की तुलना में सुरक्षा के दृष्टिकोण से डाकघर जमाओं को अधिमान देते है।

M_3 - भारत में मुद्रा पूर्ति का तीसरा माप M_3 है, जिसमें M_1 जमा वाणिज्यिक और सहकारी बैंको के समय जमा शामिल है। रिजर्व बैंक M_3 को विस्तृत मुद्रा कहता है।

M_4 - मुद्रा पूर्ति के चौथे माप में M_3 जमा डाकघर के कुल जमा, जिसमें समय जमा और मांग जमा शामिल है। यह मुद्रा पूर्ति का सबसे विस्तृत माप है।

मुद्रा पूर्ति के इन परस्पर संबंधित चार मापों में से जिनके रिजर्व बैंक आंकड़े प्रकाशित करता है, इनमें से M_3 विशेष महत्व का हैं यह M_3 ही है जिसे प्रत्येक वर्ष अर्थव्यवस्था के समष्टि आर्थिक उद्देश्यों का निर्माण करने के लिए प्रयोग किया जाता हैं चक्रवर्ती कमेटी ने भी मुद्रा लक्ष्यों को निर्धारित करने के लिए बिना कोई कारण बताए M_3 के प्रयोग की सिफारिश की थी।

16.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको यह जानकारी हो गई होगी कि मुद्रा किसे कहते है तथा यह अर्थव्यवस्था में किस प्रकार कार्य करती है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति को नियन्त्रित करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अत्यधिक कठोर कदम उठाए जाते है, जैसे कि आवश्यक रिजर्व अनुपात में कमी या वृद्धि करना, रेपो दर और रिवर्स रेपो दर में परिवर्तन तथा बैंक दर में परिवर्तन इत्यादि कदम उठाए जाते है। अप्रैल, 1977 से रिजर्व बैंक मुद्रा पूर्ति के चार मापों (M_1, M_2, M_3, M_4) पर आंकड़े प्रकाशित कर रहा है।

16.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. सेठी, टी.टी. (2003), मौद्रिक अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. झिंगन, एम.एल. (2004), मौद्रिक अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., दिल्ली।
3. A.W. Stonier and D.C. Hague (1972), A Text-book of Economic Theory, 4th ed.

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 मुद्रा की प्रकृति और कार्यो का विवेचन कीजिए।
प्रश्न 2 मुद्रा की परिभाषा दीजिए और उसके कार्यो की विवेचना कीजिए।
प्रश्न 3 मुद्रा पूर्ति के निर्धारकों का विस्तृत वर्णन करिए।
प्रश्न 4 भारत में मुद्रा पूर्ति के विभिन्न मापों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 17 ब्याज का प्रतिष्ठित तथा ऋण-योग्य कोष सिद्धान्त

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 ब्याज की परिभाषा
17.4 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
17.4.1 ब्याज क्यों उत्पन्न होता है?
17.4.1.1 पूंजी की सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
17.4.1.2 उपभोग स्थगन तथा प्रतीक्षा सिद्धान्त
17.4.1.3 ब्याज का बट्टा सिद्धान्त
17.4.1.4 फिशर का समय अधिमान्यता सिद्धान्त
17.4.2 ब्याज दर का निर्धारण
17.5 ऋण-योग्य कोषों का सिद्धान्त अथवा नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त
17.5.1 ऋण-योग्य कोषों की मांग
17.5.2 ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति
17.5.3 मांग और पूर्ति में संतुलन
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 अभ्यास प्रश्न
17.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
17.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
17.11 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह भली-भॉति परिचित हो सकेगें कि ब्याज किसे कहते है तथा इसका निर्धारण किस प्रकार होता है। ब्याज निर्धारण के संबंध में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न विचार रखें है। परन्तु इस इकाई में प्रतिष्ठित (रिकार्डो, मार्शल, पीगू आदि द्वारा प्रतिपादित) तथा नव-प्रतिष्ठित (प्रो. के. विक्सेल द्वारा प्रतिपादित) अर्थशास्त्रियों ने ब्याज निर्धारण के संबंध में जो विचार दिये है उनका विस्तृत विश्लेषण नीचे दिया जा रहा है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- ब्याज किसे कहते की जानकारी प्राप्त होगी।
- प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री ब्याज को किस प्रकार परिभाषित करते थे कि जानकारी हो सकेंगी।
- नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने ब्याज को किस प्रकार परिभाषित किया है कि जानकारी हो सकेंगी।
- ब्याज का निर्धारण किस प्रकार होता है को जान सकेगें।

17.3 ब्याज की परिभाषा

1. मेयर्स के अनुसार, ''ब्याज उस कीमत को कहते हैं जो उधार देने योग्य कोषों के प्रयोग के बदले दिया जाता है।''

2. प्रो. विक्सेल के अनुसार, ''ब्याज पूंजी के उपयोग के लिए ऋणियों द्वारा पूंजीपतियों को उनके त्याग के बदले में दिया जाने वाला भुगतान है।''

3. कीन्स के अनुसार, ''ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।''

4. सेलिगमैन के अनुसार, ''ब्याज पूंजी कोष के बदले में मिलने वाला पारितोषण है।''

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री ब्याज को पूंजी से आय के रूप में मानते थे अर्थात् उनके विचार में ब्याज पूंजी पर प्रतिफल की दर हैं अन्य शब्दों में, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को ब्याज की दर कहा जाता था। कुछ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की प्राकृतिक दर और ब्याज की बाजार दर में अन्तर किया। ब्याज की बाजार दर वह दर है जिस पर कि बाजार में मुद्रा को ऋण लिया जा सकता है, जबकि ब्याज की प्राकृतिक दर पूंजी-निवेश पर प्रतिफल की दर अथवा पूंजी की सीमान्त उत्पादकता से है। जब ब्याज की प्राकृतिक दर ब्याज की बाजार दर से अधिक होती है तब अधिक मात्रा में निवेश

होगा जिसके परिणामरूवरूप ब्याज की प्राकृतिक दर अर्थात् पूंजी पर प्रतिफल की दर घट जाएगी। संतुलन वहाँ स्थापित होगा जहाँ ब्याज का प्राकृतिक दर ब्याज की बाजार दर के बराबर हो जाएगी।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने ब्याज के निर्धारण में वास्तविक तत्वों जैसे बचत (अर्थात् उपभोग-परित्याग अथवा प्रतीक्षा), समय अधिमान और पूंजी की उत्पादकता के महत्व पर जोर दिया। इसलिए प्रतिष्ठित सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त भी कहा जाता है।

इसके विपरीत नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों जैसे कि विकसेल, ओहलिन, हैबर्लर, राबर्टसन, वाइनर आदि ने ब्याज का एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित और विकसित किया जिसे ब्याज का ऋण-योग्य कोषों का सिद्धान्त अथवा ब्याज का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहते है। इन लेखकों के अनुसार ब्याज दर के निर्धारण में मौद्रिक तथा गैर-मौद्रिक दोनों प्रकार की शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं। इनके मतानुसार वास्तविक तत्वों के साथ मौद्रिक तत्व भी ब्याज की दर निर्धारण में भाग लेते है। वस्तुतः ऋण-योग्य कोषों का ब्याज सिद्धान्त भी एक प्रकार से ब्याज का मौद्रिक सिद्धान्त है।

17.4 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को वास्तविक सिद्धान्त इसलिए कहते है क्योंकि यह वास्तविक कारकों जैसे कि पूंजी की उत्पादकता, बचत की प्रवृत्ति आदि पर आधारित है। हम प्रतिष्ठित सिद्धान्त के दो अंगों की व्याख्या करेंगे, प्रथम, यह कि ब्याज की दर क्यों उत्पन्न होती है। द्वितीय, यह कि ब्याज दर का निर्धारण किस प्रकार होता है।

17.4.1 ब्याज क्यों उत्पन्न होता है?

ब्याज क्यों उत्पन्न होता है के बारे में विभिन्न प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का अपना-अपना मत है, जिसकी विवेचना नीचे की गई है।

17.4.1.1. पूंजी की सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त- इस बारे अर्थशास्त्रियों का विचार था कि पूंजी पर ब्याज इसलिए दिया जाता है क्योंकि पूंजी की अपनी उत्पादन शक्ति होती हैं पूंजी द्वारा उत्पादन अधिक होता है, अतः पूंजी प्राप्त करने वाला पूंजी पर ब्याज देने को तैयार हो जाता है। किन्तु ब्याज क्यों दिया जाता है इसकी पूर्ण व्याख्या यह सिद्धान्त नहीं करता है। इस सिद्धान्त में केवल यह बतलाया गया है कि ऋण लेने वाला ब्याज देने को क्यों प्रेरित होता है। अतएव यह सिद्धान्त ब्याज के केवल मांग पक्ष की ही ओर ध्यान देता है, पूर्ति पक्ष को यह सिद्धान्त विचार में नहीं लाता। इसके अतिरिक्त, यह सिद्धान्त इस बात की भी व्याख्या नहीं करता कि उपभोग के लिए दिए गए ऋण पर ब्याज क्यों दिया जाता है। उपभोग के लिए ऋण तो उत्पादनशील नहीं होता, पर ब्याज उस पर भी दिया जाता है।

17.4.1.2. उपभोग स्थगन तथा प्रतीक्षा सिद्धान्त- उपभोग स्थगन का सिद्धान्त प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सीनियर ने प्रतिपादित किया। उनके विचार में बचत करने में व्यक्ति कुछ त्याग करता है और यह त्याग है उपभोग का स्थगन। उपभोग को स्थगित करना एक दुखःद बात है, इसलिए व्यक्ति को उपभोग का स्थगन करने को प्रेरित करने के लिए कुछ पुरस्कार मिलना चाहिए और यह पुरस्कार ब्याज ही है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज उपभोग स्थगन का ही पुरस्कार है। मार्शल का कहना है कि जब कोई व्यक्ति रूपया बचाकर किसी को ऋण देता है तो वह कुछ समय के लिए उसका उपभोग नहीं कर पाता और प्रतीक्षा में रहता है और इस प्रतीक्षा के त्याग के लिए ही उसे ब्याज मिलता है। अतः मार्शल के अनुसार ब्याज प्रतीक्षा के त्याग का पुरस्कार है। धनी व्यक्ति भी यदि अपना बचा हुआ धन उधार देता है तो उसे भी प्रतीक्षा का त्याग करना ही होता है और इसलिए उसे ब्याज अवश्य मिलना चाहिए। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार लोगों को बचत करने और ऋण देने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए ब्याज दिया जाता है।

17.4.1.3. ब्याज का बट्टा सिद्धान्त- यह सिद्धान्त आस्ट्रियन अर्थशास्त्री बॉम बावर्क ने प्रस्तुत किया। उसके अनुसार ब्याज इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि मनुष्य भावी उपभोग की अपेक्षा वर्तमान उपभोग को अधिक पसन्द करता है अर्थात् मनुष्य समान भावी उपभोग की अपेक्षा वर्तमान उपभोग को अधिमान्यता देते है। मनुष्य अपनी भावी आवश्यकताओं को वर्तमान आवश्यकताओं की तुलना में कम महत्व देते है। ब्याज वह प्रलोभन है जो मनुष्य को अपने उपभोग को किसी भविष्य समय तक स्थगित करने के लिए दिया जाता है। बाम्ॅा बावर्क ने मनुष्य द्वारा भावी आवश्यकताओं को कम महत्व देने और वर्तमान को अधिक अधिमान्यता देने के दो कारण बतलाए है। प्रथम, यह कि मनुष्य अपनी भावी आवश्यकताओं की तीव्रता को नहीं जान सकता और उसकी वर्तमान की आवश्यकताएं अधिक तीव्र और प्रबल होती है। द्वितीय, यह कि भविष्य अनिश्चित है और इसलिए मनुष्य अपनी उपभोग की संतुष्टि को अनिश्चित भविष्य में स्थगित करना नहीं चाहता। इस भविष्य के बट्टे के कारण ही मनुष्य को बचत करने तथा ऋण देने के लिए ब्याज देना पड़ता है।

17.4.1.4. फिशर का समय अधिमान्यता सिद्धान्त- यह सिद्धान्त इरविंग फिशर ने प्रस्तुत किया और उनका सिद्धान्त बॉम बावर्क के बट्टा सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। ब्याज क्यों दिया जाता है कि व्याख्या फिशर समय अधिमान्यता द्वारा करता है। समय अधिमान्यता से तात्पर्य एक समान मूल्य वाली तथा समान निश्चितता की भावी तुष्टि की अपेक्षा मनुष्य वर्तमान तुष्टि को अधिक अधिमान्यता देता है। वर्तमान तुष्टि के लिए अधिमान्यता के कारण ही वह अपनी आय को वर्तमान उपभोग पर व्यय करने के लिए व्यग्र रहता हैं मनुष्य रूपया बचाकर ऋण देने के लिए तभी प्रेरित होगा जब उसे कोई प्रलोभन दिया जाये और यह प्रलोभन है ब्याज। अतएव ब्याज वह कीमत है जो मनुष्य द्वारा अपनी को वर्तमान उपभोग पर व्यय करने की व्यग्रता को दूर करने के लिए दी जाती है

अर्थात् ब्याज इसलिए दिया जाता है कि मनुष्य अपनी वर्तमान तुष्टि के लिए अधिमान्यता को त्यागने के लिए राजी हो जाये।

निष्कर्ष- ऊपर हमने ब्याज क्यों उत्पन्न होता है, के बारे में विभिन्न प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की व्याख्या की है। कोई एक सिद्धान्त ब्याज क्यों उत्पन्न होता है की पूरी व्याख्या नहीं करता, परन्तु प्रत्येक सिद्धान्त में सत्य का अंश विद्यमान है। इसलिए सभी सिद्धान्तों को मिलाकर ही ब्याज की पूर्ण व्याख्या होती है। मांग के पक्ष में तो पूंजी की अधिक उत्पादन शक्ति का तत्व क्रियाशील है, जबकि पूर्ति पक्ष पर उपभोग स्थगन, प्रतीक्षा तथा समय अधिमान्यता सभी प्रभाव डालते है।

17.4.2 ब्याज दर का निर्धारण

प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार, पूंजी की पूर्ति और मांग के द्वारा ब्याज की दर निर्धारित होती है। पूंजी की पूर्ति समय अधिमान के द्वारा और पूंजी की मांग प्रत्याशित उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होती है। समय अधिमान और पूंजी की उत्पादकता दोनों ही प्रतीक्षा या बचत पर निर्भर करते है। इसलिए इस सिद्धान्त को बचत की पूर्ति और मांग सिद्धान्त भी कहते है।

मांग पक्ष- पूंजी की मांग उत्पादन और उपभोग के उद्देश्यों के लिए होती है। उपभोग की मांग को छोड़ दिया जाए, तो निवेशक पूंजी की मांग इसलिए करते है कि पूंजी उत्पादक होती है। परन्तु पूंजी की उत्पादकता परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अधीन होती है। पूंजी की अतिरिक्त इकाईयां उतनी उत्पादक नहीं होती जितनी कि प्रारम्भिक इकाइयां। एक ऐसी अवस्था आती है जब व्यापार में पूंजी की एक अतिरिक्त इकाई लगाना कुछ लाभदायक हो सकता है परन्तु उससे अधिक नहीं। मान लीजिए की एक निवेशक एक फैक्टरी में रू. 1,00,000 लगाता है और 20 प्रतिशत प्राप्ति की आशा करता है। उतनी ही मात्रा की एक और किस्त उतनी उत्पादक नहीं होगी जितनी कि पहली, और हो सकता है कि उससे उसे 15 प्रतिशत की प्राप्ति हो। सम्भव है तीसरी किस्त की प्राप्ति 10 प्रतिशत रह जाए। यदि उसने मुद्रा 10 प्रतिशत पर उधार ली है, तो वह और पूंजी नहीं लगाएगा क्योंकि उसके लिए ब्याज की दर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बिल्कुल बराबर है। इससे प्रकट होता है कि ब्याज की ऊँची दर पर पूंजी की मांग कम और ब्याज की नीची दर पर पूंजी की मांग अधिक होती है। इस प्रकार पूंजी के लिए मांग का ब्याज की दर से विपरीत संबंध होता है। और पूंजी के लिए मांग वक्र का ढलान ऊपर की ओर बायें से दायें को होता है। पर पूंजी के लिए मांग को निर्धारित करने वाले कुछ और भी तत्व होते हैं, जैसे जनसंख्या की वृद्धि, तकनीकी प्रगति, युक्तिकरण की प्रक्रिया, समाज का जीवन-स्तर आदि।

पूर्ति पक्ष- पूंजी की पूर्ति बचत पर निर्भर करती है, ना कि समाज की बचत करने की इच्छा और शक्ति पर। कुछ लोग ब्याज की दर पर ध्यान दिए बिना बचत करते है। यदि ब्याज की दर शून्य हो, तो भी बचत करते रहेंगे। कुछ ऐसे होते है जो इसलिए बचत करते हैं कि ब्याज की वर्तमान दर उन्हें

बचत की प्रेरणा देने के लिए काफी है। यदि ब्याज की दर उस स्तर से गिर जाए, तो वे अपनी बचतों को घटा देंगे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे संभावी बचत करने वाले भी होते है जो ब्याज की दर बढ़ जाने पर बचत करने को प्रेरित होंगे। अन्तिम दो श्रेणियों के बचत करने वालों को कुर्बानी, उपभोग स्थगन, या प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जबकि वे ब्याज प्राप्त करने के लिए वर्तमान उपभोग से वंचित रहते है। ब्याज की दर जितनी अधिक होगी, समाज की बचतें भी उतनी ही अधिक होगी और निधियों की पूर्ति बढ़ जाएगी। इस प्रकार पूंजी का पूर्ति वक्र ऊपर की ओर दाएं को चलता है।

इसका निर्धारण- आय का स्तर दिया हुआ मान लेने पर, पूंजी के मांग और पूर्ति वक्रों के परस्पर काटने से ब्याज की दर निर्धारित होती है। इसे चित्र 1 में दिखाया

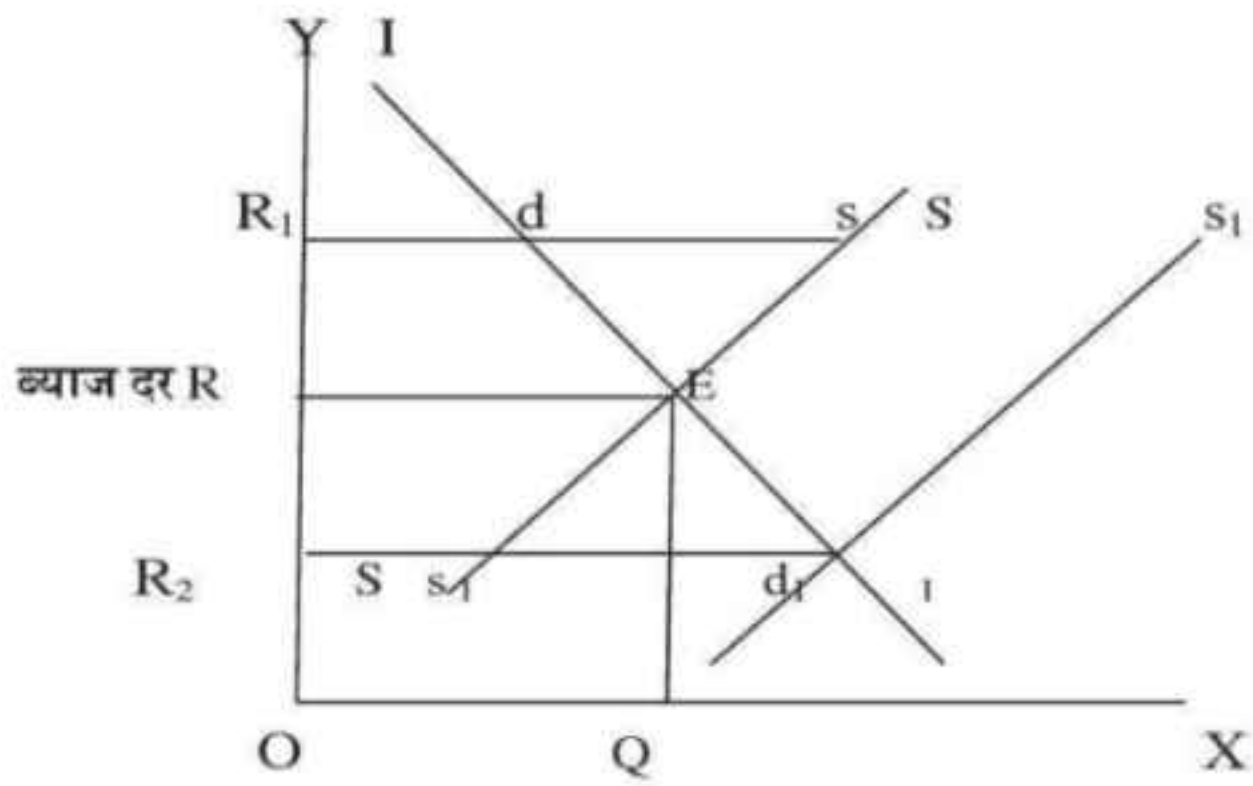

बचत और निवेश

चित्र 1

गया है। I और S वक्र E बिन्दु पर आपस में काटतें है। जो संतुलन बिन्दु है, जबकि ब्याज की OR दर पर पूंजी की OQ मात्रा की मांग और पूर्ति होती है। यदि कभी ब्याज की दर OR से बढ़कर OR_1 हो जाए, तो निवेश निधियों के लिए मांग गिर जाएगी और निधियों की पूर्ति बढ़ जाएगी। क्योंकि मांग की अपेक्षा पूंजी की पूर्ति अधिक है $R_1s>R_1d$ इसलिए ब्याज की दर गिर कर संतुलन स्तर OR पर आ जाएगी। यदि ब्याज की दर गिर कर OR_2 हो जाए तो स्थिति इसके विपरीत होगी। पूर्ति की अपेक्षा पूंजी के लिए मांग अधिक है ($R_2d_1>R_2s_1$) और ब्याज दर बढ़कर OR हो जाएगी। अन्तिम स्थिति वह होगी, जहाँ ब्याज की संतुलित दर के द्वारा बचत और निवेश में समानता लाई जाती हैं यदि किसी समय बचतें OQ से बढ़ जाती है, तो ब्याज की दर OR के नीचे चली जाएगी क्योंकि पूंजी के लिए मांग उतनी ही रहती है। उसे चित्र में S वक्र के नीचे एक पूर्ति वक्र S_1 द्वारा

दिखाया गया है जो I वक्र को d_1 पर काटता है तथा ब्याज दर गिरकर OR_2 हो जाती है। ब्याज की नीची दर पर लोग कम बचत करेंगे, परन्तु नियोज्य निधियों के लिए मांग बढ़ जाएगी जो ब्याज की दर को बढ़ाकर संतुलन स्तर OR पर ले जाएगी।

17.4.3 आलोचना- प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त की केन्ज ने कड़ी आलोचना की है। जिसकी विवेचना नीची की गई है:

(1) आय स्थिर नहीं बल्कि परिवर्तनशील होती है- प्रतिष्ठित सिद्धान्त का एक बड़ा दोश यह है कि यह आय के स्तर को दिया हुआ मान लेता है और यह समझता है कि ब्याज वह यन्त्र है जो नियोज्य निधियों के लिए मांग और बचतों के माध्यम से निधियों की पूर्ति के बीच संतुलन स्थापित करता है। केन्ज के अनुसार आय स्थिर नहीं बल्कि परिवर्तनशील होती है और ब्याज दर में परिवर्तनों के द्वारा नहीं बल्कि आय में परिवर्तनों के द्वारा बचत और निवेश में समानता लाई जाती है।

(2) यह अनिश्चित सिद्धान्त है- क्योंकि बचतें आय के स्तर पर निर्भर करती हैं, इसलिए ब्याज की दर तब तक ज्ञात नहीं हो सकती, जब तक कि आय का स्तर पहले से ज्ञात न हो। और ब्याज की दर को पहले से जाने बिना स्वयं आय स्तर का ज्ञान नहीं हो सकता। ब्याज की अपेक्षाकृत नीची दर से निवेश, उत्पादन, रोजगार, आय और बचतें बढ़ जाएगी। इसलिए प्रत्येक आय-स्तर के लिए एक पृथक बचत वक्र खींचना पड़ेगा। यह समस्त चक्रवादी तर्क है और ब्याज की समस्या का कोई हल नहीं देता। यही कारण है कि केन्ज ने ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को अनिश्चित बताया है।

(3) बचत के अन्य साधनों की उपेक्षा करता है- इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों ने चालू आय की बचतों को भी बचतों की पूर्ति-अनुसूची में शामिल कर लिया है जिससे यह सिद्धान्त अपर्याप्त बनकर रह गया है। पूंजी की पूर्ति को ब्याज-लोचदार समझकर, हो सकता है कि ब्याज की दर में वृद्धि होने पर लोग अपनी पहले की बचतों को ऋण पर दे दें और इस प्रकार पूंजी की पूर्ति को बढ़ा दें। इसी प्रकार, बैंको द्वारा दिया जाने वाला ऋण भी पूंजी की पूर्ति का एक महत्वूपर्ण स्रोत हैं। धीमी व्यापार क्रिया की अवधि में बैंक अधिक ऋण देते है। पूंजी की पूर्ति अनुसूची में इन साधनों की उपेक्षा करने से प्रतिष्ठित सिद्धान्त अधूरा रह जाता है।

(4) पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित- प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। पूर्ण रोजगार अर्थव्यवस्था में, लोगों की बचत की प्रेरणा देने के लिए, बचत, प्रतीक्षा या उपभोग स्थगन के पुरस्कार रूप में ब्याज आवश्यक है। परन्तु केन्ज के अनुसार, नियम यह है कि पूर्ण नहीं बल्कि अल्प-रोजगार होता है और जहां संसाधन बेरोजगार हों, वहां आवश्यक नहीं कि ब्याज बचत को प्रेरणा दे सकें।

(5) मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा करता है- प्रतिष्ठित सिद्धान्त शुद्ध या वास्तविक सिद्धान्त है जो पूंजी की सीमान्त उत्पादकता तथा समय अधिमान जैसे वास्तविक तत्वों पर विचार करता है, और ब्याज दर के निर्धारण में मौद्रिक तत्वों की बिल्कुल उपेक्षा करता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मुद्रा को केवल

वस्तुओं एवं सेवाओं पर विनिमय का माध्यम या आवरण मानते थे तथा मुद्रा को मूल्य का संचय समझने में असमर्थ रहें । दूसरी ओर, केन्ज ने ब्याज के निर्धारण को एक मौद्रिक विषय मानकर उसकी व्याख्या की।

(6) ब्याज की परिभाषा पर मतभेद- ब्याज दर की परिभाषा और निर्धारण के संबंध में भी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से केन्ज का मतभेद है। उसके अनुसार ब्याज संग्रह का पुरस्कार नहीं बल्कि एक निश्चित अवधि के लिए पूंजी की तरलता के परित्याग का पुरस्कार है। यह वह 'कीमत' है, जो मुद्रा की प्राप्त हो सकने वाली मात्रा के साथ मुद्रा के लिए मांग का संतुलन स्थापित करती है। वह इस बात से सहमत नहीं कि पूंजी के लिए मांग और उसकी पूर्ति के द्वारा ब्याज की दर निर्धारित होती है। इस प्रकार केन्ज प्रतिष्ठित सिद्धान्त को एकदम गलत और अपर्याप्त कह कर उसका परित्याग कर देता है।

17.5 ऋण-योग्य कोषों का सिद्धान्त अथवा नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर ऋण-योग्य कोषों की मांग तथा उनकी पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति में आय में से की गई बचतें, असंचित किया गया मुद्रा धन, बैंको द्वारा सृजन की गई मुद्रा तथा व्यवसायियों द्वारा विनिवेश आदि शामिल है। ऋण-योग्य कोषों के लिए मांग में निवेश के लिए मांग, उपभोग के लिए मांग तथा मुद्रा संचय करने के लिए मांग सम्मिलित हैं। इसलिए हम नीचे ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति तथा मांग के विभिन्न स्रोतों की सविस्तार विवेचना करेंगे।

17.5.1 ऋण-योग्य कोषों की मांग

ऋण-योग्य कोषों की मांग तीन प्रकार से होती है।

(1) निवेश के लिए ऋण की मांग, (2) उपभोग के लिए ऋण एवं (3) संचय के लिए मांग।

17.5.1.1. निवेश के लिए ऋण की मांग

इस सिद्धान्त के अनुसार विनियोग अथवा निवेश की मात्रा ब्याज की दर के साथ बदलती है अर्थात् निवेश ब्याज-दर सापेक्ष होता है। निवेश से जिससे प्रतिशत लाभ की आशा होती है उसकी ब्याज की दर से तुलना की जाती है। यदि ब्याज की दर कम हो तो निवेश में अधिक रूपया लगाया जाता है और यदि ब्याज की दर अधिक हो जाए तो निवेश में कम रूपया लगाया जाता है। स्पष्ट है कि ब्याज की दर बढ़ जाए तो निवेश के लिए ऋण-योग्य कोषों की मांग घट जाएगी और ब्याज की दर घट जाए तो निवेश के लिए ऋण-योग्य कोषों की मांग बढ़ जाएगी। अतः निवेश के लिए ऋण-योग्य कोषों के मांग का वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुका हुआ होगा।

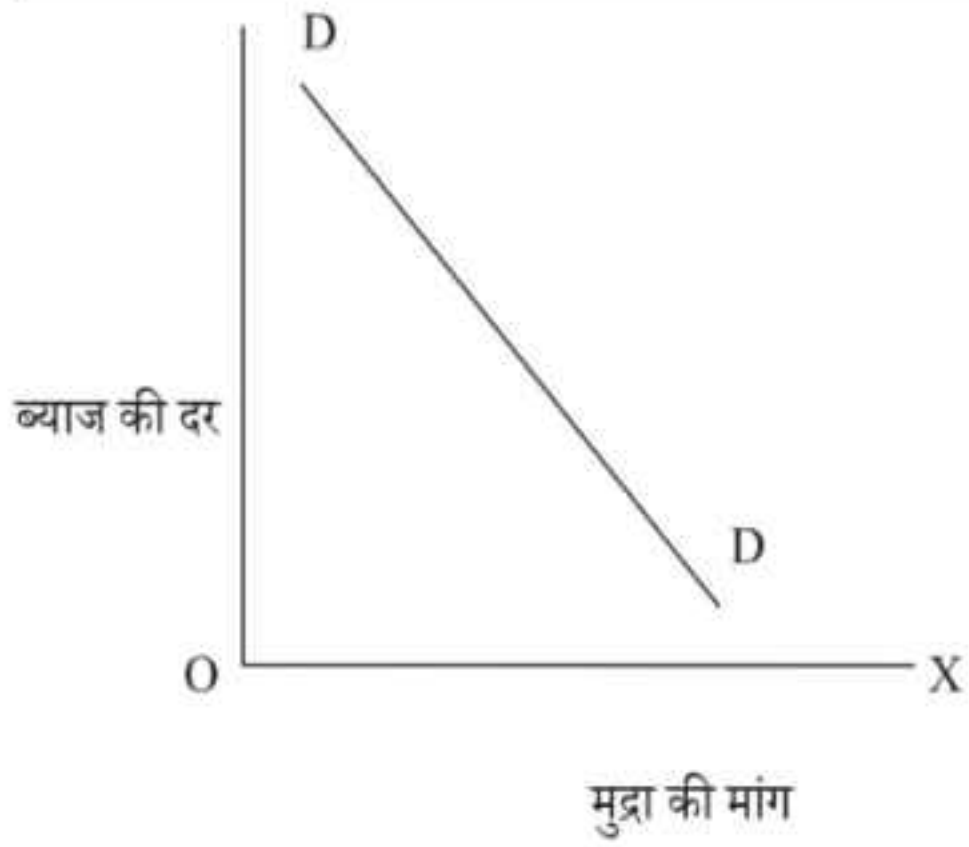

17.5.1.2. उपभोग के लिए ऋण:- ऋण-योग्य कोषों की मांग उपभोग के लिए भी की जाती है। उपभोग के लिए ऋण वे लोग लेते है जो अपनी आय तथा संचित धन से अधिक उपभोग करना चाहते है। उपभोग के लिए ऋण प्रायः टिकाऊ उपभोक्ता पदार्थ जैसे कि गृह निर्माण, मोटरकार, स्कूटर, टेलीविजन, रेफ्रीजरेटर आदि क्रय करने के लिए प्राप्त किये जाते है। उपभोग के लिए ऋण की मांग भी ब्याज-दर सापेक्ष होती हैं। जब ब्याज की दर कम होती है तो लोग टिकाऊ उपभोक्ता पदार्थो के लिए अधिक ऋण लेने के लिए प्रेरित होंगे। अतः उपभोग के लिए ऋण की मांग का वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुका होता है।

17.5.1.3. संचय के लिए मांग:- मुद्रा अथवा धन का संचय भी ऋण-योग्य कोषों की मांग को प्रभावित करता है। संचय के लिए मुद्रा की मांग का अर्थ है लोग अपने पास अधिक नकद रूपया रखना चाहते है। जब लोग अपनी आय से कम उपभोग करते हैं तो वे कुछ रूपया बचा लेते हैं। इस प्रकार अपनी बचतों को या तो वे उधार दे सकतें है या इनसे शेयर, ऋण-पत्र आदि खरीद सकते है अथवा उन्हें अपने व्यापार में लगा सकते है। यदि वे यह सब न करना चाहें तो अपनी बचत का नकदी के रूप में संचय कर सकते है। जब लोग अपने शेयर, ऋण-पत्रों तथा अन्य परिसम्पत्तियों को बेच देते हैं और उनसे प्राप्त समस्त रूपयों को उपभोग के लिए प्रयोग नहीं करते तो वे बाकी रूपयों को संचय कर सकते हैं। यह स्मरण रहें कि संचय के लिए लोग दूसरों से ऋण नहीं लेते पर अपने पास उपलब्ध ऋण-योग्य कोषों को संचय करने के लिए प्रेरित होते है। जब ब्याज की दर अधिक होगी तो लोग अपेक्षाकृत अधिक रूपया ऋण दे देंगे और कम मात्रा में संचय करेगे और जब ब्याज की दर कम होगी तो वे कम रूपया उधार पर देंगे और अधिक मात्रा में रूपयों का संचय करेंगे।

17.5.2 ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति:- ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति के पक्ष के भी कई प्रकार हैः (1) बचत, (2) असंचय, (3) बैंक साख एवं (4) विनिवेश। इनकी व्याख्या नीचे की गई हैं।

17.5.2.1. बचत- ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति का सबसे बड़ा स्रोत बचत हैं बचत आय और उपभोग के अन्तर से उत्पन्न होती हैं। साधारणतः एक अवधि की आय को जब अगली अवधि में पूरा उपभोग न किया जाए तो बचत का सृजन होता है। चूँकि ब्याज दरों पर बचत की मात्रा भी विभिन्न होती है, इसलिए बचत की अनुसूची ब्याज की दरों के अनुसार निर्मित की जा सकती हैं। निजी बचत मनुष्य की आय पर निर्भर करती हैं। परन्तु यह माना जाता है कि यदि निश्चित आय हो तो बचत ब्याज की दर पर निर्भर करती है अर्थात् एक निश्चित आय में से अधिक ब्याज की दर पर अधिक बचत की जाएगी और कम ब्याज की दर पर कम बचत की जाएगी। अतः बचत का वक्र बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ता हैं।

व्यक्तिगत बचतों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की भी बचतें होती है। ये अन्य प्रकार की बचतें व्यवसायों अथवा फर्मों द्वारा की जाती है। फर्म के लाभ का कुछ भाग तो हिस्सेदारों में बाँट दिया जाता है और शेष उन कम्पनियों की बचत होती है। कम्पनियों की बचत भी ब्याज की दर पर निर्भर करती है।

17.5.2.2. असंचय- पूर्ति का दूसरा भाग है, संचित धन से कुछ रूपया निकाल लेना। इस क्रिया से पूर्व संचित धन सक्रिय मुद्रा का रूप धारण कर लेता है और ऋण के लिए उपलब्ध हो जाता हैं। इसलिए असंचय से ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति बढ़ जाती है। यदि ब्याज की दर बढ़ जाए तो कई व्यक्ति जो रूपया संचय करते है वे रूपया निकाल कर ऋण पर देने को तैयार हो जाते है और यदि ब्याज की दर कम हो जाए तो वे अधिक मात्रा में रूपयों को संचय करके रखते है और कम रूपयों को ऋण पर देने के लिए तैयार होते है। इसलिए असंचय का वक्र बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ता हुआ होता हैं।

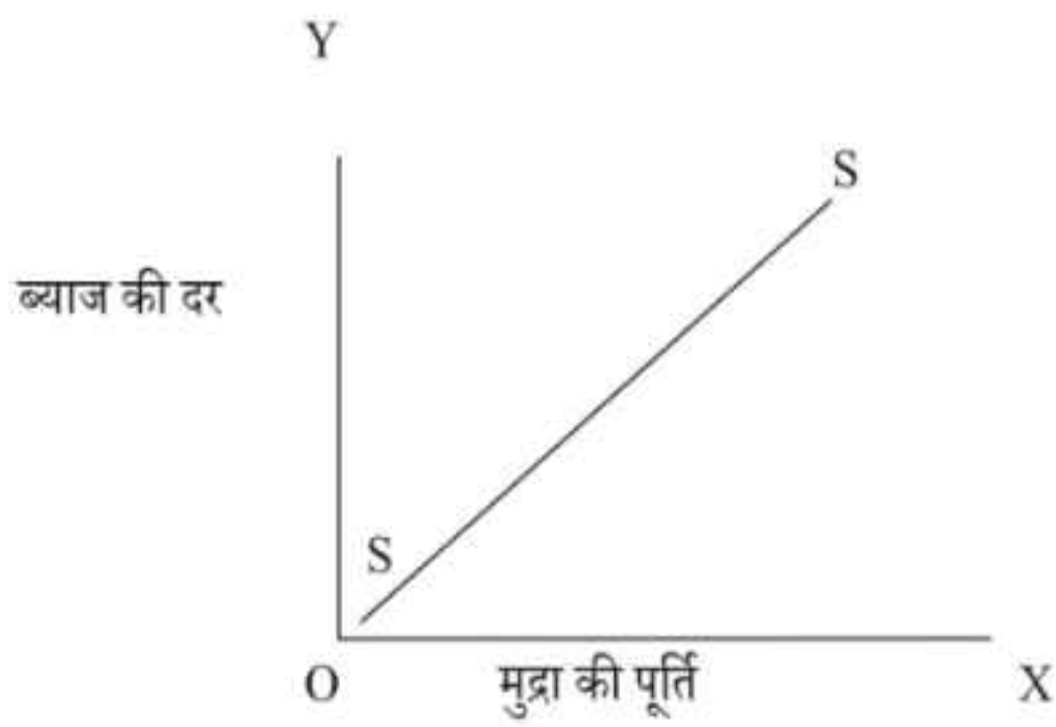

17.5.2.3. बैंक साख- पूर्ति का एक और भाग बैंक साख है। जब बैंक नये ऋण देते है या जब वे बाँM क्रय करते हैं तो इनका भुगतान साख का सृजन करके करते है और यह बैंक साख ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति को बढ़ाती है। आधुनिक युग में तो देश की मुद्रा पूर्ति में बैंक साख एक बहुत

महत्वपूर्ण अंग बन गया है। बैंक साख को बैंक मुद्रा भी कहते हैं क्योंकि बैंक साख उतनी ही अच्छी मुद्रा है जितनी की किसी और प्रकार की मुद्रा। बैंक साख की पूर्ति भी ब्याज की दर पर निर्भर करती हैं। साधारणतया बैंक ऊँची ब्याज की दर पर अधिक मात्रा में ऋण देने को प्रेरित होते है। इसलिए बैंक साख का पूर्ति वक्र भी बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ता हुआ होता है।

17.5.2.4. विनिवेश- ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति का एक और स्रोत विनिवेश हैं। विनिवेश का अर्थ है कि उद्योगपतियों द्वारा व्यवसाय में लगाये हुए रूपये को निकाल लेना और उसे ऋण देने के लिए तैयार हो जाना। ऐसा तब होता है जब उद्योगपतियों को निवेश की गई पूंजी पर लाभ की दर प्रचलित ब्याज की दर से कम प्राप्त हो रही होती है। जब किसी उद्योग में लाभ की दर बहुत घट गई हो तो उसके उत्पादक अपने पास मूल्यह्रास आरक्षण को उस उद्योग में मशीनों आदि के प्रतिस्थापन करने के बजाए इन आरक्षणों को बाजार में ऋण पर देने के लिए तैयार हो जाते है। विनिवेश का वक्र भी ब्याज दर सापेक्ष होता है और ऊपर को चढ़ता है।

17.5.3 मांग और पूर्ति में सन्तुलन:- इन मांग और पूर्ति की शक्तियों के सन्तुलन द्वारा ब्याज की दर निर्धारित होती है। ब्याज की दर उस स्तर पर संतुलन में होगी जहाँ ऋण-योग्य कोषों की मांग की मात्रा व उनकी पूर्ति की मात्रा बराबर होगी। अतः ब्याज दर का संतुलन उस स्तर पर होगा जहाँ:-

निवेश मांग + संचय + उपभोग के लिए ऋण = बचत + बैंक साख + असंचित धन + विनिवेश

इस समीकरण का बायाँ पक्ष ऋण-योग्य कोषों की मांग तथा दायाँ पक्ष पूर्ति के विभिन्न भागों को दर्शाता है।

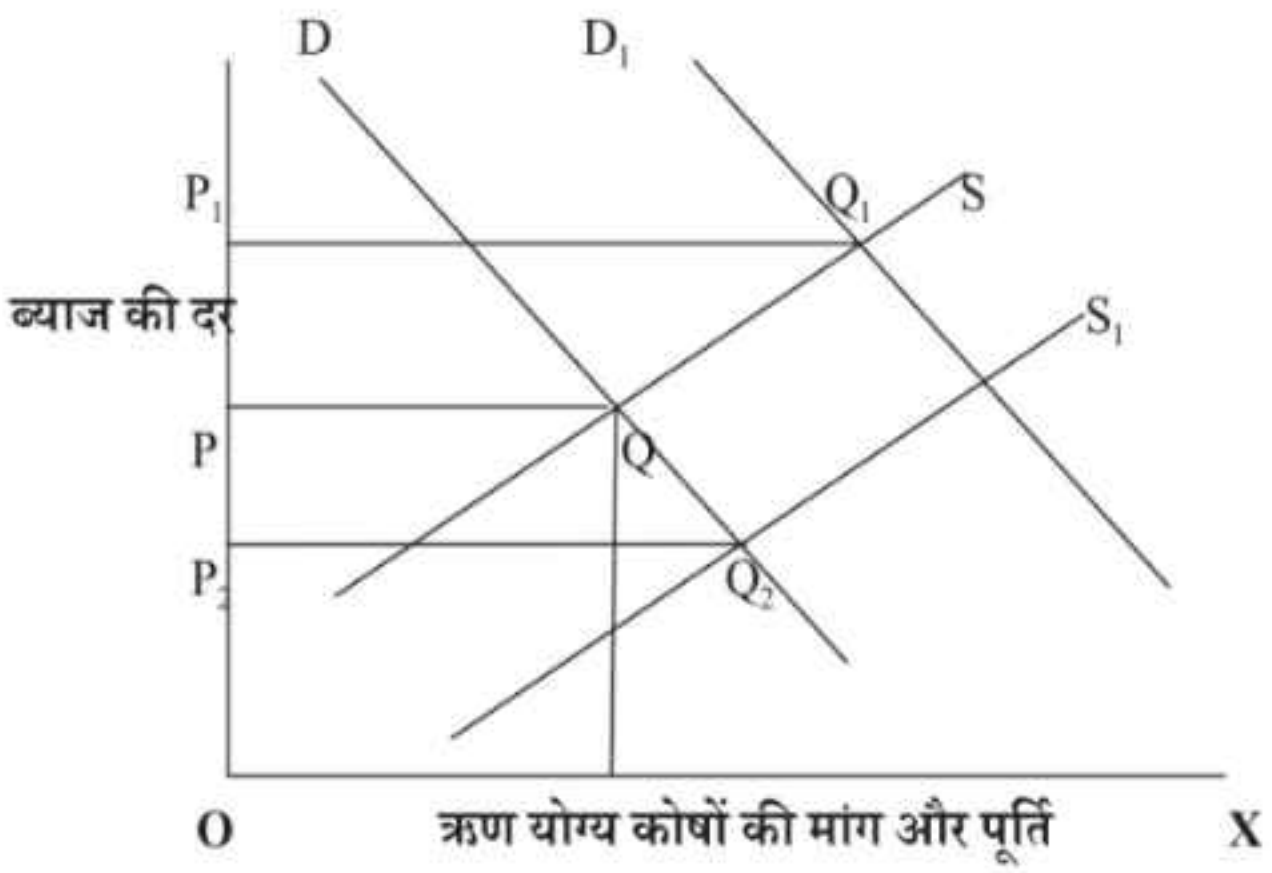

चित्र में X ऋण-योग्य कोषों की मांग रेखा तथा S ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति रेखा हैं। D व S दोनों Q बिन्दु पर एक दूसरे के बराबर है जहाँ मांग व पूर्ति दोनों OM के बराबर है। अतः ब्याज की दर OP

निर्धारित होगी, लेकिन D (मांग) पूर्ववत् रहें परन्तु S (पूर्ति) में वृद्धि हो तो नई पूर्ति S_1 होगी जो D(मांग) रेखा के Q_2 पर संतुलन में होगी। यहां ब्याज की दर घटकर OP_2 तय होती है। यदि D (मांग) में वृद्धि हो जाए तो नई मांग रेखा D_1 होगी जो पहले की S (पूर्ति) रेखा के Q_1 बिन्दु पर काटती है। अतः यहां ब्याज की दर बढ़कर OP_1 होगी। यदि D (मांग) में कमी होती है, तो ठीक इसके विपरीत क्रिया होगी, लेकिन संतुलन की दशा में ब्याज की निर्धारण उसी बिन्दु पर होगा जिस पर ऋण-योग्य कोषों की मांग ऋण-योग्य कोषों की पूर्ति के बराबर होगी।

17.5.4 आलोचना:- सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं निम्नलिखित है-

1. इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए हेन्सन ने लिखा है कि 'ऋण-योग्य कोष ' के सिद्धान्त के अनुसार ब्याज-दर ऋण-योग्य कोष की 'मांग सारिणी' और 'पूर्ति सारिणी' की पारस्परिक प्रतिक्रिया द्वारा निर्धारित होती है। ऋण-योग्य कोष की पूर्ति बचत (जो विपक्षी आय से होती है) नवीन द्रव्य तथा निरूद्योग शेष के असंचन द्वारा होती है। चूंकि पूर्ति सारिणी का बचत वाला भाग पिछली आय के स्तर के अनुसार बदलता है जिसका यह अर्थ हुआ कि 'कुल ऋण-योग्य कोष ' की पूर्ति भी आय के अनुसार बदलती रहती है। अतः सिद्धान्त भी अन्य सिद्धान्तों की तरह से संदिग्ध है।

2. यह सिद्धान्त ब्याज की दर के निर्धारण के लिए प्रतिष्ठित सिद्धान्त द्वारा बतायी गयी बातों को ही दुहराता है। सिद्धान्त के अनुसार, ब्याज की दर ऋण-योग्य कोषों की मांग तथा उनकी पूर्ति के अनुसार निर्धारित होती है। इसके अतिरिक्त, यह कोई नई बात नहीं करता है।

उपरोक्त आलोचनाओं से स्पष्ट है कि ब्याज-दर के निर्धारण का यह सिद्धान्त भी अन्य सिद्धान्तों की ही तरह से अपूर्ण तथा अव्यावहारिक है।

17.6 सारांशः

ब्याज, पूंजी की सेवाओं का पुरस्कार है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं एवं सिद्धान्त दिये है। ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को वास्तविक सिद्धान्त कहा जाता है क्योंकि यह वास्तविक कारकों या घटकों पर निर्भर करता है जैसेकि पूंजी की उत्पादकता, बचत की प्रवृत्ति इत्यादि। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों पीगू, मार्शल, रिकार्डो आदि ने ब्याज के सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न विचार दिये है। इन अर्थशास्त्रियों का कहना है कि ब्याज दर का निर्धारण पूंजी की पूर्ति और मांग के द्वारा निर्धारित होता है। पूंजी की मांग उत्पादन और उपभोग के उद्देश्यों से होती है। उपभोग को छोड़ दिया जाए तो, निवेशक पूंजी की मांग इसलिए करते है के पूंजी उत्पादक होती है। दूसरी तरफ, पूंजी की पूर्ति बचत पर निर्भर करती है। अतः प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण वहॉ होता है जहॉ पूंजी की मांग और पूर्ति बराबर होती है। इसके विपरीत नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का कहना है कि ब्याज दर ऋण-योग्य कोषों की मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। आपका कहना है कि ऋण-योग्य कोषों की मांग तीन प्रकार से होती है-(1) निवेश के लिए ऋण की मांग, (2) उपभोग के लिए ऋण, एवं (3) संचय के लिए ऋण। दूसरी तरफ, ऋण योग्य कोषों की पूर्ति चार प्रकार से होती है-(1) बचत, (2) असंचय, (3) बैंक साख एवं (4) विनिवेश। इन मांग और पूर्ति की

शक्तियों के सन्तुलन द्वारा ब्याज की दर निर्धारित होती है। ब्याज की दर उस स्तर पर संतुलन में होगी जहाँ ऋण-योग्य कोषों की मांग की मात्रा व उनकी पूर्ति की मात्रा बराबर होगी। अतः ब्याज दर का संतुलन उस स्तर पर होगा जहाँ - निवेश मांग + संचय + उपभोग के लिए ऋण ◌ृ= बचत + बैंक साख $ असंचित धन + विनिवेश इस समीकरण का बायाँ पक्ष ऋण-योग्य कोषों की मांग तथा दायाँ पक्ष पूर्ति के विभिन्न भागों को दर्शाता है।

17.7 शब्दावली

तरलता: तरलता से आशय धन को नकद या ऐसे रूप में रखने से है जिसे व्यक्ति तुरन्त नकद के रूप में परिवर्तित करा सके।

बचत: आय का वह भाग जो उपभोग नहीं किया जाता उसे बचत कहा जाता है।

निवेश: विनियोग अथवा निवेश की मात्रा ब्याज की दर के साथ बदलती है अर्थात् निवेश ब्याज-दर सापेक्ष होता है।

17.8 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 01: ब्याज से क्या आशय है ?

उत्तर: ब्याज, राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूंजी की सेवाओं के बदले में पूंजीपति को दिया जाता है।

प्रश्न 02: ब्याज के विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर: ब्याज के विभिन्न सिद्धान्त हैं - प्रतिष्ठित सिद्धान्त, ऋण-देय कोष सिद्धान्त, तरलता-अधिमान सिद्धान्त एवं आधुनिक सिद्धान्त।

प्रश्न 03: बहुविकल्पीय प्रश्न।

1.ऋण योग्य कोष सिद्धान्त को किसने दिया है:

(अ) प्रो. विकसेल (ब) रिकार्डो

(स) फिशर (द) मार्शल।

2. ब्याज तरलता परित्याग का पुरस्कार है किसने कहा है:

(अ) फिशर (ब) कीन्स,

(स) रिकार्डा (द) पीगू।

उत्तर: 1. (अ), 2. (ब)।

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Jhingan, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.

2. Seth, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Laxmi Narain Agarwal, Agra.
3. सेठी, टी.टी. समष्टि (2010): समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

17.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Dillard, Dudley : *The Economics of J.M. Keynes,* 1948.
- Fisher, Irving : *The Theory of Interest,* 1954.
- Hensen, Alvin H. : *A Guide to Keynes,* 1953.
- Keynes, J.M. : *TheGeneral Theory of Employment, Interest amd Money,*.1936.

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 ब्याज किसे कहते है तथा विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाओ का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 2 ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

प्रश्न 3 ब्याज के ऋण-योग्य कोष सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 4 : निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

(1) ब्याज की विभिन्न परिभाषाएं।

(2) पूंजी की सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त।

(3) उपभोग स्थगन तथा प्रतीक्षा सिद्धान्त।

(4) ब्याज का बट्टा सिद्धान्त।

(5) फिशर का समय अधिमान्यता सिद्धान्त।

इकाई 18: कीन्स का मुद्रा मांग तथा ब्याज दर का सिद्धान्त

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 ब्याज की परिभाषा एवं विभिन्न सिद्धान्त
18.4 कीन्स का मुद्रा मांग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त
18.4.1 मुद्रा की मांग (तरलता-अधिमान)
18.4.2 मुद्रा की पूर्ति
18.4.3 ब्याज दर का निर्धारण
18.4.4 कीन्स के ब्याज सिद्धान्त की आलोचना
18.5 सारांश
18.6 शब्दावली
18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह अठारहवीं इकाई है। इससे पूर्व आपने मुद्रा के विभिन्न पक्षों को पढ़ा होगा।

कीन्स का मुद्रा मांग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त एक प्रमुख सिद्धान्त है। प्रस्तुत इकाई में कीन्स के ब्याज दर का सिद्धान्त के अन्तर्गत मुद्रा की मांग एवं पूर्ति, ब्याज दर का निर्धारण, सिद्धान्त की आलोचनाएं आदि बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप कीन्स के मुद्रा मांग एवं ब्याज दर के सिद्धान्त को समझ सकेंगें तथा इसका समग्र विश्लेषण कर सकेंगे।

18.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि ब्याज दर से क्या तात्पर्य है।
- बता सकेंगे कि ब्याज दर के कौन-कौन से सिद्धान्त हैं।
- बता सकेंगे कि कीन्स का मुद्रा मांग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त क्या है।
- समझा सकेंगे कि आर्थिक विश्लेषण में कीन्स के ब्याज सिद्धान्त का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है।

18.3 ब्याज की परिभाषा एवं विभिन्न सिद्धान्त

ब्याज, राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूंजी की सेवाओं के बदले में पूंजीपति को दिया जाता है। उत्पादन के पांच साधनों में पूंजी एक महत्वपूर्ण साधन है। ब्याज, पूंजी की सेवाओं का पुरस्कार है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की अलग-अलग परिभाषा दी है और इसके निर्धारण के लिए अलग- अलग सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। ब्याज की विभिन्न परिभाषाएं एवं सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:

परिभाषाएं:1. मेयर्स के अनुसार, ''ब्याज उस कीमत को कहते हैं जो उधार देने योग्य कोषों के प्रयोग के बदले दिया जाता है।''

2. प्रो. विक्सेल के अनुसार, ''ब्याज पूंजी के उपयोग के लिए ऋणियों द्वारा पूंजीपतियों को उनके त्याग के बदले में दिया जाने वाला भुगतान है।''

3. कीन्स के अनुसार, ''ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।''

4. सेलिगमैन के अनुसार, ''ब्याज पूंजी कोष के बदले में मिलने वाला पारितोषण है।''

सिद्धान्त:1. ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (रिकार्डो, मार्शल, पीगू आदि द्वारा प्रतिपादित)।

2. ऋण-देय कोष सिद्धान्त (प्रो. के. विक्सेल द्वारा प्रतिपादित)।

3. कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त।

4. ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (प्रो. हिक्स एवं प्रो. लर्नर द्वारा प्रतिपादित)।

18.4 कीन्स का मुद्रा मांग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त

प्रो. कीन्स द्वारा प्रतिपादित ब्याज दर का सिद्धान्त 'तरलता-अधिमान' ;स्पुनपकपजल च्तममितमदबमद्ध पर आधारित है। इसीलिए इनके सिद्धान्त को ब्याज का तरलता-अधिमान सिद्धान्त भी कहा जाता है। कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक General Theory of Employment, Interest and Money में ब्याज सम्बन्धी अन्य सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया है कि ब्याज 'नकदी की कीमत' अथवा 'तरलता के परित्याग का पुरस्कार' है। कीन्स के अनुसार, ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की मांग तथा पूर्ति पर निर्भर करता है। मुद्रा की मांग का अर्थ है कि व्यक्ति मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने को मांगते हैं तथा मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है किसी समय प्राप्त मुद्रा की कुल मात्रा। मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण मुद्रा के अधिकारी की नीति तथा निर्णय के अनुसार होता है अर्थात् मुद्रा की पूर्ति को मुद्रा-अधिकारी द्वारा घटाया एवं बढ़ाया जा सकता है, परन्तु मुद्रा की मांग लोगों तथा व्यवसायों के तरलता-अधिमान की व्यवस्था द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रकार, जब देश में किसी समय मुद्रा की एक निश्चित मात्रा चलन में है तो ब्याज दर लागों तथा व्यवसायों के उस समय के तरलता-अधिमान द्वारा निर्धारित होगी। कीन्स के शब्दों में, 'ब्याज वह कीमत है जो धन को नकदी के रूप में रखने की इच्छा तथा उपलब्ध नकदी की मात्रा में बराबरी स्थापित करती है।' इस प्रकार, ब्याज तरलता के परित्याग का पुरस्कार है। तरलता-अधिमान सिद्धान्त कीन्स के रोजगार एवं आय सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण अंग है।

18.4.1 मुद्रा की मांग (तरलता-अधिमान)

प्रो. कीन्स के अनुसार मुद्रा की मांग का अर्थ है मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने की मांग। कीन्स ने मुद्रा की मांग को तरलता-अधिमान कहा है। तरलता से आशय धन को नकद या ऐसे रूप में रखने से है जिसे व्यक्ति तुरन्त नकद के रूप में परिवर्तित करा सके। कीन्स ने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति को आय मिलने के पश्चात् अपनी आय के सम्बन्ध में दो निर्णय लेने पड़ते हैं कि वह आय का कितना भाग व्यय करे तथा कितना भाग भविष्य के लिए बचत करके रखे। इसके साथ ही उसे यह भी निर्णय लेना पड़ता है कि वह भविष्य के लिए रखे जाने वाली बचत को किस रूप में रखे। एक तरीका यह है कि वह अपनी बचत को नकद रूप में रखे या दूसरा तरीका है कि वह इस बचत से अन्य व्यक्ति को उधार दे दे। उधार देने पर उसे तरलता का त्याग करना पड़ेगा। सामान्यतः सभी

व्यक्ति अपने धन को नकद अर्थात् तरल रूप में रखना पसन्द करते हैं। इसलिए वह तब तक तरलता का त्याग नहीं करेंगे जब तक उन्हे ब्याज के रूप में कोई पुरस्कार न दिया जाय। इस प्रकार, ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है।

तरलता-अधिमान के कारण: प्रो. कीन्स के अनुसार लोग मुद्रा को सदैव नकद रूप में रखना चाहते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं:

1. लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य : लोगों को आय एक निश्चित अवधि में मिलती है जबकि उनको भुगतान की आवश्यकता निरन्तर रहती है। अतः अपने प्रतिदिन के लेन-देन सम्बन्धी कार्य करने के लिए लोगों को अपनी आय का कुछ अंश नकद रूप में रखना होता है। लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य के दो पक्ष हैं:

(क) उपभोक्ता की दृष्टि से आय पक्ष: एक उपभोक्ता अपने प्रतिदिन के कार्य सम्पादित करने हेतु कितनी मात्रा में नकद धन रखेगा, यह उसकी आय के आकार और आय प्राप्ति की समयावधि पर निर्भर करेगा। इसे आय पक्ष कहा जाता है।

(ख) व्यवसायियों या साहसियों की दृष्टि से व्यवसायिक पक्ष: एक उत्पादक को कच्चा माल खरीदने, मजदूरी देने आदि कार्यों हेतु कितनी मात्रा में नकद धन रखना होगा, यह उसके टर्नओवर पर निर्भर करेगा। इसे व्यवसाय पक्ष कहा जाता है।

2. दूरदर्शिता उद्देश्य: प्रत्येक व्यक्ति को बीमारी, दुर्घटना आदि आकस्मिकताओं, अप्रत्याशित आवश्यकताओं अथवा संकटों का सामना करने के लिए कुछ मुद्रा नकद या तरल रूप में रखनी पड़ती है। इसे दूरदर्शिता उद्देश्य कहा जाता है। इसमें कितनी मात्रा में मुद्रा नकद रूप में रखी जायेगी, यह व्यक्ति के आय-स्तर पर निर्भर करता है। सामान्यतः यह ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।

3. सट्टा उद्देश्य: अनेक व्यक्ति (विशेष कर सट्टेबाज) भविष्य में बाजार में होने वाले ब्याज की दर में परिवर्तनों से लाभ उठाने के लिए भी धन को नकद रूप में अपने पास रखना चाहते हैं। जो व्यक्ति वर्तमान ब्याज दर को नीचा समझते हैं, वे अधिक मात्रा में धन को नकद रूप में रखना चाहेंगे जिससे भविष्य में ब्याज दर बढ़ने पर वे नकद उधार देकर अधिक लाभ कमा सकें अर्थात् ब्याज की दर ऊँची होने की सम्भावना होगी तो नकदी की मांग बढ़ जायेगी। परन्तु जो व्यक्ति वर्तमान ब्याज दर को ऊँचा समझते हैं, वे कम मात्रा में धन को नकद रूप में रखेंगे, क्योंकि उन्हें भविष्य में ब्याज दर कम हो जाने पर उधार देने से कम लाभ मिलने की आशा होगी अर्थात् भविष्य में ब्याज की दर में कमी की सम्भावना होने पर नकदी की मांग कम हो जायेगी। इस प्रकार, सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत नकदी की मांग और ब्याज दर में विपरीत सम्बन्ध होता है तथा सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की मांग ब्याज की वर्तमान दर की अपेक्षा भविष्य में सम्भावित दर से अधिक प्रभावित होती है।

कीन्स के मत में, उपरोक्त में से लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य एवं दूरदर्शिता उद्देश्य दोनों पर्याप्त रूप से स्थायी रहते हैं और प्रमुखतः आय-स्तर के अनुसार परिवर्तित होते हैं तथा ब्याज दर का इन पर प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु, सट्टा उद्देश्य से हुई नकदी की मांग मुख्यतः ब्याज दर पर ही निर्भर करती है।

लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य एवं दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए मुद्रा की मात्रा (M_1) की मांग (L_1) आय (Y) का फलन है। अर्थात्

$$[\, M_1 = L_1 (Y) \,]$$

इसका अर्थ है कि L_1 आय पर निर्भर करता है। आय में परिवर्तन होने पर L_1 भी परिवर्तित हो जाता है।

दूसरी ओर, सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की मात्रा (M_2) की मांग (L_2) ब्याज दर (r) का फलन है। अर्थात्

$$[\, M_2 = L_2 (r) \,]$$

इसका अर्थ है कि L_2 ब्याज दर पर निर्भर करता है। ब्याज दर में परिवर्तन होने पर L_2 भी परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार, मुद्रा की कुल मात्रा (M) की नकदी के रूप में मांग (L) ब्याज दर तथा आय-स्तर दोनों पर निर्भर करती है अर्थात्

$$[\, M = L (ry)$$

आय और नकदी की मांग में धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है अर्थात् आय बढ़ने पर नकदी की मांग भी बढ़ जाती हैं। ब्याज दर और नकदी की मांग में ऋणात्मक सह-सम्बन्ध होता है अर्थात् ब्याज दर बढ़ने पर नकदी की मांग कम हो जाती है।

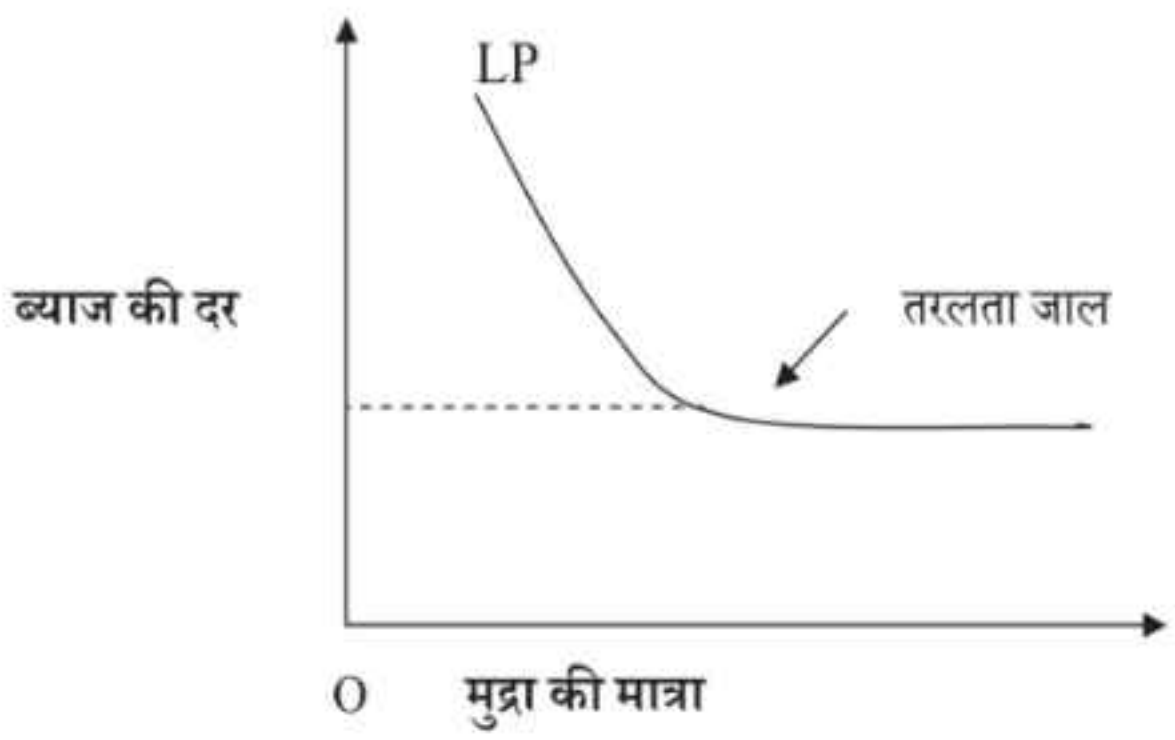

चित्र: 1

चित्र संख्या 1 में मुद्रा की मांग एवं ब्याज की दर में विपरीत सम्बन्ध को दर्शाया गया है। ब्याज की दर कम होने पर नकदी की मांग (तरलता-अधिमान (LP)) रेखा नीचे की ओर गिरती जाती है। इसका अर्थ है कि नकदी की मांग बढ़ रही है। चित्र से एक और विशेष ता का पता चलता है कि LP रेखा का अन्तिम भाग X अक्ष के समानान्तर होने की प्रवृत्ति रखता है, जिससे प्रदर्शित होता है कि

ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार नहीं देंगे। ऐसी स्थिति को कीन्स ने तरलता जाल की संज्ञा दी है। ऐसी स्थिति में ब्याज की दर कम होने पर उधार देने में जोखिम अधिक होता है।

18.4.2 मुद्रा की पूर्ति: मुद्रा की कुल पूर्ति में सिक्के, पत्र-मुद्रा तथा साख-मुद्रा शामिल किये जाते हैं। मुद्रा की पूर्ति पर मुद्रा अधिकारियों अर्थात् सरकार का नियन्त्रण होता है, इसीलिए एक समय विशेष में मुद्रा की कुल पूर्ति लगभग स्थिर रहती है और इसमें कोई परिवर्तन नहीं होते हैं। मुद्रा की पूर्ति रेखा एक खड़ी रेखा होती है। इसे निम्नलिखित चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है:

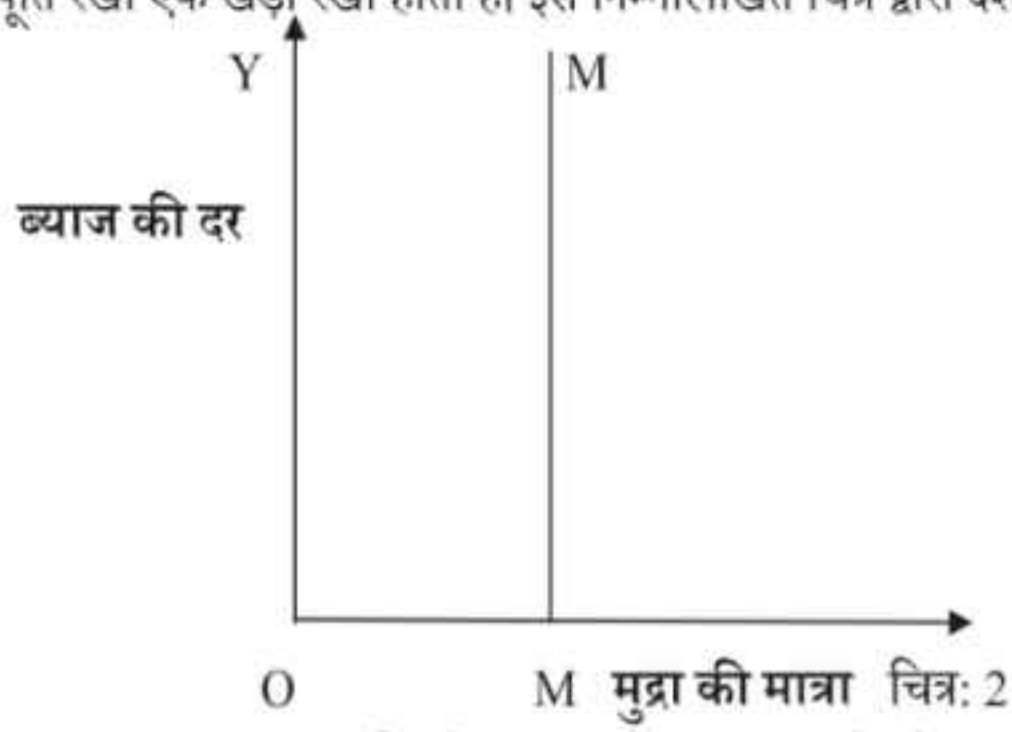

चित्र: 2

18.4.3 ब्याज दर का निर्धारण:- ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां पर नकद-मुद्रा की मांग रेखा अर्थात् तरलता-अधिमान ;स्च्द्ध एवं मुद्रा की पूर्ति रेखा ;MMद्ध एक-दूसरे को काटती है। कीन्स ने मुद्रा की पूर्ति रेखा को स्थिर मान लिया है। मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर नकद-मुद्रा की मांग अर्थात् तरलता-अधिमान बढ़ जाने पर ब्याज दर में वृद्धि हो जाती है और घट जाने पर ब्याज की दर में कमी हो जाती है। इस प्रकार, तरलता-अधिमान ;स्च्द्ध वह परिवर्तनशील तत्व है जिस पर ब्याज की दर निर्भर करती है।

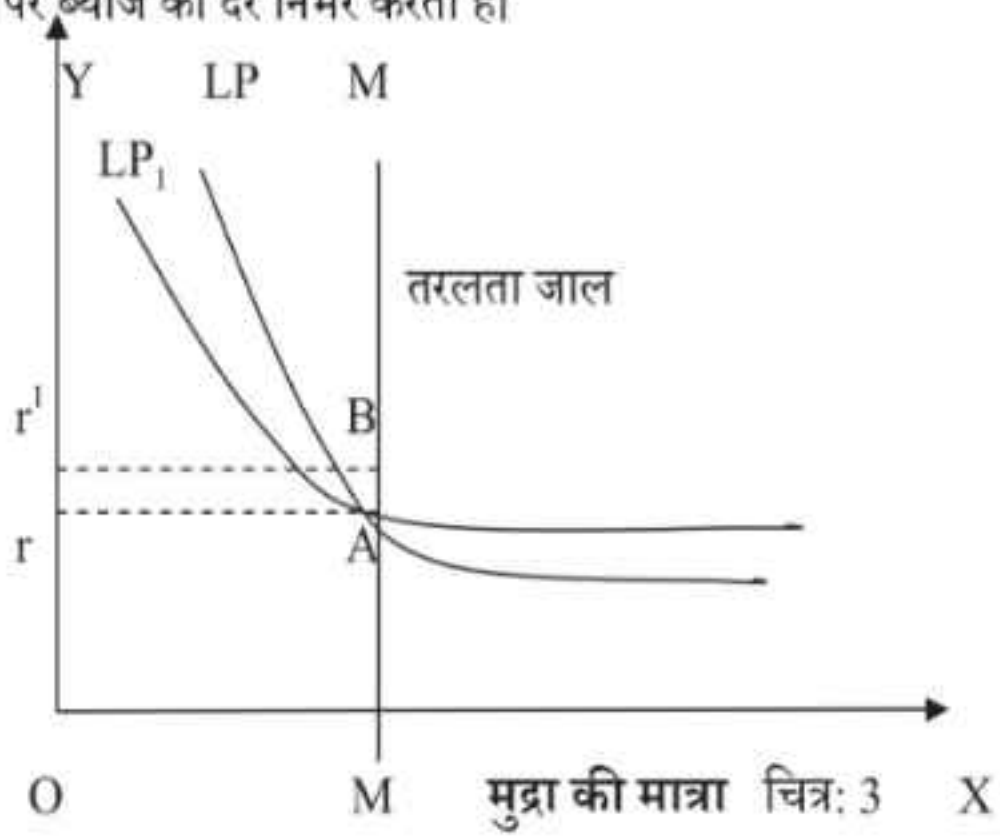

चित्र: 3

चित्र संख्या 3 में OX अक्ष पर मुद्रा की मात्रा तथा OY अक्ष पर ब्याज की दर को दर्शाया गया है। नकद-मुद्रा की मांग अथवा तरलता-अधिमान को LP वक्र से व्यक्त किया गया है जो विभिन्न ब्याज दरों पर नकद-मुद्रा की मांग को बताती है। यह नीचे की ओर गिरती हुई है, क्योंकि ब्याज की दर और सट्टा उद्देश्य के लिए नकदी की मांग (L_2) में विपरीत सम्बन्ध होता है। L_1 इस रेखा के ढ़ाल को प्रभावित नहीं करता है क्योंकि यह आय के स्तर पर निर्भर करता है। मुद्रा की पूर्ति को MM रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है। मुद्रा की पूर्ति स्थिर होने के कारण MM एक खड़ी रेखा के रूप में है।

चित्र में मुद्रा की पूर्ति OM है। बिन्दु A पर नकद-मुद्रा की मांग अथवा तरलता-अधिमान (LP) एवं पूर्ति (MM) एक दूसरे को काटते हैं, अतः ब्याज दर Or के बराबर निर्धारित होती है। अब यदि आय के स्तर में वृद्धि हो जाये तो इससे तरलता-अधिमान में भी वृद्धि हो जायेगी। इस प्रकार, तरलता-अधिमान का नया वक्र दायें ओर खिसककर LP_1 होगा। मुद्रा की मात्रा के OM पर स्थिर रहने पर LP_1 वक्र MM रेखा को बिन्दु B पर काटता है। इसके कारण ब्याज दर बढ़कर Or^1 हो जाती है।

एक ऐसी स्थिति जिसमें ब्याज की दर बहुत नीची हो जाये (उदाहरण के लिए, चित्र 3 के अनुसार यदि ब्याज दर Or पर न्यूनतम हो जाये) तो लोगों को उधार देने में अधिक जोखिम रहता है। अतः वे समस्त मुद्रा को नकद रूप में अपने पास रखना चहेगें। इस कारण से LP रेखा का अन्तिम भाग X अक्ष के समानान्तर रहेगा जिससे प्रदर्शित होता है कि ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार बन्द की नीति अपनायेंगे। इस स्थिति को कीन्स ने तरलता-जाल की संज्ञा दी है। तरलता-अधिमान की इस विशेष ता के कारण ब्याज की दर कभी शून्य नहीं हो सकती है। ब्याज की दर के न्यूनतम बिन्दु पर नकदी की मांग अनन्त हो जाती है जिससे ब्याज की दर और नीचे नहीं जाती है।

18.4.4 कीन्स के ब्याज सिद्धान्त की आलोचना

कीन्स का ब्याज दर का सिद्धान्त एक यथार्थवादी एवं प्रावैगिक सिद्धान्त है। यह ब्याज दर के निर्धारण की व्याख्या उपयुक्त ढंग से करता है। यह प्रतिष्ठित सिद्धान्त पर एक सुधार है। जहां प्रतिष्ठित सिद्धान्त मुद्रा को 'विनिमय का माध्यम' मानता है वहीं कीन्स मुद्रा के 'मूल्य-संचय' के कार्य को भी विशेष महत्व देता है। विभिन्न विशेष ताओं के होते हुए भी इस सिद्धान्त में कुछ कमियां हैं जिसके आधार पर इसकी आलोचनाएं की जाती हैं। यह आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

1. यह सिद्धान्त पूंजी की उत्पादकता पर ध्यान नहीं देता: पूंजी में उत्पादकता का गुण होता है। मुद्रा की मांग मुद्रा को नकद अथवा तरल रूप में रखने के अतिरिक्त पूंजीगत वस्तुओं में निवेश करने के लिए भी की जाती है। ऋणी व्यक्ति पूंजी का उत्पादक कार्यों में उपयोग कर अपने उत्पादन एवं आय को बढ़ाता है परन्तु प्रो. कीन्स द्वारा प्रतिपादित तरलता-अधिमान सिद्धान्त मुद्रा की मांग के अन्तर्गत पूंजी की उत्पादकता पर ध्यान नहीं देता है।

2. कीन्स का सिद्धान्त एकपक्षीय है: कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त एकपक्षीय सिद्धान्त है क्योंकि यह केवल मुद्रा की मांग पर ही विशेष जोर देता है, मुद्रा की पूर्ति पर कोई ध्यान नहीं देता है। यह सिद्धान्त मुद्रा की पूर्ति को स्थिर मानकर उसकी उपेक्षा कर देता है।

3. दीर्घकाल में ब्याज-दर के निर्धारण पर ध्यान नहीं देता है: पूंजी के विनियोग की दृष्टि से अल्पकालीन ब्याज-दर की तुलना में दीर्घकालीन ब्याज-दर अधिक महत्वपूर्ण है, परन्तु यह सिद्धान्त अल्पकाल में ब्याज-दर के निर्धारण की व्याख्या को करता है। दीर्घकाल में ब्याज के निर्धारण पर इसमें कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

4. यह सिद्धान्त संकुचित है: यह सिद्धान्त एक संकुचित सिद्धान्त है। इसमें ब्याज दर के निर्धारण के प्रमुख तत्व 'तरलता' की इच्छा केवल तीन उद्देश्यों- लेन-देन, दूरदर्शिता एवं सट्टा हेतु किया जाना बताया गया है जबकि इसके अन्य भी कई उद्देश्य होते हैं, जिन पर ध्यान नहीं दिया गया है।

5. विकसित देशों हेतु उपयुक्त सिद्धान्त: कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त विकसित देशों हेतु उपयुक्त है जहां पर मुद्रा बाजार विस्तृत एवं संगठित होता है। अविकसित देशों में संगठित मुद्रा बाजार के अभाव में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

6. अनिश्चित सिद्धान्त: यह सिद्धान्त एक अनिश्चित सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की मांग एवं मुद्रा की पूर्ति द्वारा होता है परन्तु मुद्रा की मांग अर्थात् तरलता-अधिमान (विशेषतः सट्टा उद्देश्य हेतु) आय पर निर्भर होती है। आय-स्तर का पता हम तब तक नहीं लगा सकते जब तक कि ब्याज की दर ज्ञात न हो। इस प्रकार, कीन्स का सिद्धान्त एक अनिश्चित सिद्धान्त है।

18.5 सारांश

ब्याज, पूंजी की सेवाओं का पुरस्कार है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं एवं सिद्धान्त दिये हैं। इनमें कीन्स द्वारा प्रतिपादित ब्याज दर का 'तरलता-अधिमान' पर आधारित सिद्धान्त प्रमुख है। कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक General Theory of Employment, Interest and Money में स्पष्ट किया है कि ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है। कीन्स के अनुसार, ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की मांग तथा पूर्ति पर निर्भर करता है। मुद्रा की मांग का अर्थ है कि व्यक्ति मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने को मांगते हैं तथा मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है किसी समय प्राप्त मुद्रा की कुल मात्रा। जब देश में किसी समय मुद्रा की एक निश्चित मात्रा चलन में है तो ब्याज दर लागों तथा व्यवसायों के उस समय के तरलता-अधिमान द्वारा निर्धारित होगी। प्रो. कीन्स ने मुद्रा की मांग को तरलता-अधिमान कहा है। उनके अनुसार लोगों के मुद्रा को नकद रूप में रखने के तीन कारण हैं- 1. लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य, 2. दूरदर्शिता उद्देश्य तथा 3. सट्टा उद्देश्य। मुद्रा की कुल पूर्ति में सिक्के, पत्र-मुद्रा तथा साख-मुद्रा शामिल किये जाते हैं। मुद्रा की पूर्ति पर मुद्रा अधिकारियों अर्थात् सरकार का नियन्त्रण होता है, इसीलिए एक समय विशेष में

मुद्रा की कुल पूर्ति लगभग स्थिर रहती है और इसमें कोई परिवर्तन नहीं होते हैं। ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां पर नकद-मुद्रा की मांग रेखा अर्थात् तरलता-अधिमान एवं मुद्रा की पूर्ति रेखा एक-दूसरे को काटती है। कीन्स ने मुद्रा की पूर्ति रेखा को स्थिर मान लिया है। मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर नकद-मुद्रा की मांग अर्थात् तरलता-अधिमान बढ़ जाने पर ब्याज दर में वृद्धि हो जाती है और घट जाने पर ब्याज की दर में कमी हो जाती है। इस प्रकार, तरलता-अधिमान (LP) वह परिवर्तनशील तत्व है जिस पर ब्याज की दर निर्भर करती है। एक ऐसी स्थिति जिसमें ब्याज की दर बहुत नीची हो जाती है तो लोगों को उधार देने में अधिक जोखिम रहता है। ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार बन्द की नीति अपनायेंगे। इस स्थिति को कीन्स ने तरलता-जाल की संज्ञा दी है।

18.6 शब्दावली

तरलता: तरलता से आशय धन को नकद या ऐसे रूप में रखने से है जिसे व्यक्ति तुरन्त नकद के रूप में परिवर्तित करा सके।

तरलता-अधिमान: मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने की मांग को तरलता-अधिमान कहा जाता है।

उधार बन्द: उधार बन्द एक ऐसी स्थिति है जिसमें ब्याज की दर बहुत कम हो जाने के कारण लोग उधार देना बन्द कर देते हैं।

तरलता-जाल: एक ऐसी स्थिति जिसमें ब्याज की दर बहुत नीची हो जाये तो लोगों को उधार देने में अधिक जोखिम रहता है। ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार बन्द की नीति अपनायेंगे। इस स्थिति को कीन्स ने तरलता-जाल की संज्ञा दी है। इसमें मुद्रा की मांग अथवा तरलता-अधिमान अनन्त होता है।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 01: ब्याज से क्या आशय है ?

उत्तर: ब्याज, राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूंजी की सेवाओं के बदले में पूंजीपति को दिया जाता है।

प्रश्न 02: ब्याज के विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर: ब्याज के विभिन्न सिद्धान्त हैं - प्रतिष्ठित सिद्धान्त, ऋण-देय कोष सिद्धान्त, तरलता-अधिमान सिद्धान्त एवं आधुनिक सिद्धान्त।

प्रश्न 03: रिक्त स्थान भरिए।

(क) ब्याज के तरलता-अधिमान सिद्धान्त का प्रतिपादन ..... ने किया है।

(ख) सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत नकदी की मांग और ब्याज दर में ..... सम्बन्ध होता है।

(ग) ब्याज की दर के न्यूनतम बिन्दु पर नकदी की मांग ..... हो जाती है जिससे ब्याज की दर और नीचे नहीं जाती है।

उत्तर: (क) प्रो. कीन्स, (ख) विपरीत, (ग) अनन्त।

प्रश्न 04: बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. ब्याज के तरलता-अधिमान सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा को तरल रूप में रखने के उद्देश्य हैं:

(अ) लेन-देन, (ब) दूरदर्शिता,

(स) सट्टा, (द) सभी।

2. निम्नलिखित में से किस उद्देश्य से की गयी तरलता की मांग ब्याज सापेक्ष होती है:

(अ) लेन-देन, (ब) दूरदर्शिता,

(स) सट्टा, (द) सभी।

उत्तर: 1. (द), 2. (स)।

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Jhingan, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.
- Seth, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Laxmi Narain Agarwal, Agra.
- सेठी, टी.टी. समष्टि (2010): समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

18.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Dillard, Dudley : *The Economics of J.M. Keynes,* 1948.

- Fisher, Irving : *The Theory of Interest,* 1954.
- Hensen, Alvin H. : *A Guide to Keynes,* 1953.
- Keynes, J.M. : *TheGeneral Theory of Employment, Interest amd Mone,*.1936.

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1: 'ब्याज तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।' इस कथन के आलोक में कीन्स तरलता-अधिमान सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2: ब्याज के तरलता-अधिमान सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 3: निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

(1) ब्याज की विभिन्न परिभाषाएं।

(2) तरलता-अधिमान के कारण।

(3) तरलता-जाल की स्थिति।

(3) तरलता-अधिमान सिद्धान्त में ब्याज-दर निर्धारण का बिन्दु।

इकाई 19: IS-LM प्रारूप वक्र

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 **IS-LM** प्रारूप वक्र
19.4 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
19.5 ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त, (नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त)
19.6 ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त (केन्स का सिद्धान्त)
19.7 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त **IS-LM** प्रारूप वक्र (नव-केन्सियन सिद्धान्त)
19.8 अभ्यास प्रश्न
19.9 सारांश
19.10 शब्दावली
19.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
19.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
19.14 निबंधात्मक प्रश्न

19 .1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह 19वीं इकाई है। इससे पूर्व आपने मुद्रा के विभिन्न पक्षों को पढ़ा होगा।

कीन्स का मुद्रा मांग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त एक प्रमुख सिद्धान्त है। प्रस्तुत इकाई में ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त **IS-LM** प्रारूप वक्र से किस प्रकार निर्धारित होता है कि व्याख्या आलोचनाएं आदि बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त, ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त, **IS-LM** के सिद्धान्त को समझ सकेंगें तथा इसका समग्र विश्लेषण कर सकेंगे।

19 .2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि ब्याज दर के कौन-कौन से सिद्धान्त हैं।
- बता सकेंगे कि ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त क्या है।
- समझा सकेंगे कि आर्थिक विश्लेषण में कीन्स के ब्याज सिद्धान्त का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है।
- बता सकेंगे कि ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त **IS-LM** प्रारूप वक्र से किस प्रकार निर्धारित होता है।

19.3 IS-LM प्रारूप वक्र

IS-LM प्रारूप वक्र ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त है। हिक्स, लर्नर तथा हेन्सन जैसे आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने केन्स के ब्याज सिद्धान्त तथा ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के कुछ महत्वपूर्ण अंशों को मिलाकर एक नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त का अध्ययन करने से पहले हम ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त, (2) ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त, तथा (3) केन्स का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त का अध्ययन कर लें। इन तीनों सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद ही ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त को समझ पायेंगे।

19.4 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो. मार्शल ने किया है। इसलिए इसे 'मार्शल का ब्याज सिद्धान्त' भी कहा जाता है। ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अर्थशास्त्रियों मार्शल पीगू, कैसल्स, वालरस, टॉसिंग तथा नाईट ने ब्याज के निर्धारण में उत्पादकता तथा मितव्ययता जैसे वास्तविक तत्वों को महत्वपूर्ण माना न कि मौद्रिक तत्वों को। इसलिए इस सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त भी कहते हैं। इस सिद्धान्त को समय अधिमान उत्पादकता सिद्धान्त भी कहा जाता है क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज बचत करने, प्रतीक्षा करने अथवा वर्तमान उपभोग को भविष्य के लिए टालने का प्रतिफल है।

ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। इस सिद्धान्त में आय स्तर को स्थिर मान लिया गया है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ब्याज दर का निर्धारण पूँजी की मांग व पूर्ति के द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में ब्याज दर का निर्धारण निवेश मॉग अनुसूची तथा बचत अनुसूची के प्रतिच्छेदन बिन्दु या बचत और निवेश के समानता पर होता है। ब्याज सिद्धान्त के अन्तर्गत बचत एक महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि इस सिद्धान्त में बचत का अर्थ मुद्रा से नहीं है और न ही मुद्रा के संचय से है। इस सिद्धान्त के अनुसार बचत का उपभोग नहीं किया जाता है बल्कि बचत का किसी अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में या संक्षेप में कह सकते हैं बचत का पूंजी में निवेश कर दिया जाता है। इसलिए इस सिद्धान्त को बचत-निवेश सिद्धान्त भी कहा जाता है।

ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहॉ पर पूंजी की मांग (अर्थात निवेश की मांग) उसकी कुल पूर्ति (अर्थात् बचतों की पूर्ति) के बराबर होती है। इस बिन्दु पर मॉग एवं पूर्ति एक दूसरे को काटते हैं। इसलिए इस सिद्धान्त को मांग-पूर्ति का सिद्धान्त भी कहते हैं। रेखाचित्र 19.1 में पूंजी की मांग (II) तथा पूर्ति (SS) वक्र रेखाएँ E बिन्दु पर एक दूसरे को काटती है। बिन्दु E पर मांग और पूर्ति में संतुलन है और ब्याज की दर ORi है जो संतुलित ब्याज दर है। ब्याज के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों इस संतुलित ब्याज दर को ब्याज का प्राकृतिक दर भी कहते हैं। रेखाचित्र 19.1 में OX अक्ष पर पूंजी की मांग व पूर्ति को दिखाया गया है। जबकि OY अक्ष पर ब्याज की दर को दिखाया गया है। बिन्दु म् संतुलित ब्याज दर है जहॉ पूंजी की मांग (I) पूंजी की पूर्ति (S) के बराबर है। रेखाचित्र 19.1 में (I) निवेश तथा (S) बचत को प्रदर्शित करते हैं।

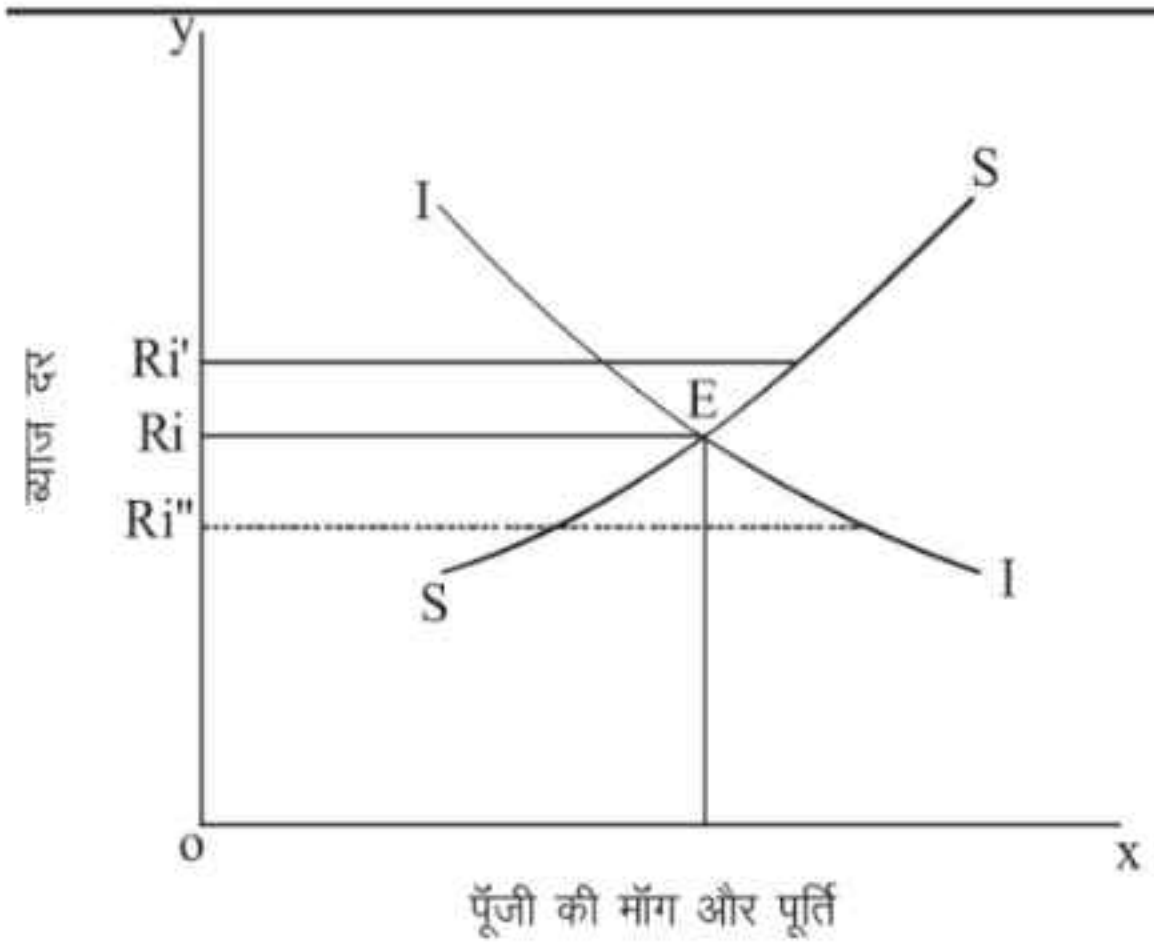

रेखाचित्र 19.1 - ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

ध्यान देने योग्य बातें- ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त में दो तत्व बहुत ही महत्वपूर्ण हैं- (1) पूंजी की मॉग एवं (2) पूंजी की पूर्ति।

सबसे पहला प्रश्न उठता है कि हम पूंजी की मॉग क्यों करते हैं? पूंजी की मांग इसलिए की जाती है क्योंकि पूंजी पदार्थों में उत्पादकता गुण होता है। इस उत्पादकता में निवेश करने हेतु पूंजी की मॉग की जाती है। इसलिए पूंजी अथवा बचतों की मांग को निवेश की मॉग भी कहा जाता है। यही कारण है कि रेखाचित्र में पूंजी की मांग को I (निवेश) से दर्शाया गया है। दूसरा प्रश्न उठता है कि पूंजी की मांग एवं ब्याज दर में क्या संबंध है। ह्रासमान प्रतिफल नियम (Law of Diminishing Return) के अन्तर्गत पूंजी की अधिक इकाईयों के प्रयोग से पूंजी की सीमान्त उत्पादकता गिरती जाती है। इसलिए एक उत्पादक पूंजी का उपयोग उस बिन्दु तक करेगा जहॉ पूंजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर के बराबर होती है। पूंजी की मॉग में कमी तथा वृद्धि के द्वारा उत्पादक पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को ब्याज दर के साथ समायोजित करता है। यदि ब्याज की बाजार दर ऊँची है तो पूंजी की मांग में कमी होती है और ब्याज दर कम होने पर पूंजी की मांग में वृद्धि होती है। पूंजी की मांग (निवेश) तथा ब्याज-दर में विपरीत सम्बन्ध होने के कारण पूंजी का मॉग (II) वक्र बायें से दायीं ओर नीचे गिरता हुआ होता है। रेखाचित्र 19.1 में (II) वक्र इसी प्रकार का है।

पूंजी की पूर्ति से तात्पर्य पूंजी की मॉग को पूरा करने से है। पूंजी की मॉग अर्थात निवेश की मॉग की पूर्ति जो बचत अनुसूची पर निर्भर करती है। ये वही बचत है जो पूंजी की उत्पादकता में निवेश कर दिये जाते हैं। बचतें त्याग या प्रतिक्षा का परिणाम होती है। लोगों के त्याग तथा प्रतिक्षा का पुरस्कार ब्याज के रू। में दिया जाता है। साधारणतया ब्याज दर ऊँची होने पर बचत भी अधिक होती है और ब्याज दर में कमी आने पर बचत में भी कमी आ जाती है। ब्याज दर और बचत (SS) में सीधा

सम्बन्ध होने के कारण पूंजी का पूर्ति (SS) वक्र बायें से दायीं ओर ऊपर उठता हुआ होता है, जिसे रेखाचित्र 19.1 में (SS) के द्वारा दिखाया गया है।

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचना:- इस सिद्धान्त में अनेक त्रुटियॉं है जिसके कारण इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है। मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित है-

(1) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

(2) इस सिद्धान्त में आय-स्तर को स्थिर मान लिया गया है।

(3) यह सिद्धान्त मौद्रिक तत्वों की अवहेलना करता है। इस सिद्धान्त में मुद्रा को केवल 'विनिमय-माध्यम' माना गया है, जबकि यह 'मूल्य संचक' भी है। जो भी आय उपभोग पर व्यय नहीं की जाती है, उसका निवेश करना आवश्यक नहीं है। उसका नकद-मुद्रा के रुप में संचय भी किया जा सकता है।

(4) पूँजी की पूर्ति में मात्र बचत ही नहीं बल्कि बैंक मुद्रा, पिछली बचत आदि भी पूँजी की पूर्ति में शामिल हो सकते हैं।

(5) इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण बचत और निवेश के संतुलन बिन्दु पर होता है। परन्तु बचत और निवेश स्वयं ब्याज दर पर निर्भर होते हैं।

19.5 ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त

ब्याज का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त पर एक सुधार है क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण केवल पूंजी अथवा बचत (निवेश) की मॉंग और पूर्ति पर निर्भर नहीं करता बल्कि समस्त ऋणयोग्य कोष की मॉंग व पूर्ति पर निर्भर करता है। ऋणयोग्य कोष से अभिप्राय उन मुद्रा राशियों से है जिनकी किसी समय में मुद्रा बाजा में पूर्ति तथा मॉंग की जाती है। ब्याज दर का निर्धारण ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के अन्तर्गत समस्त ऋणयोग्य कोष की मॉंग एवं ऋणयोग्य कोष की प्रतिच्छेदन बिन्दु पर होता है। ऋणयोग्य कोष की मॉंग निवेश और संचय के लिए की जाती है। यदि निवेश की राशि में विनिवेश तथा संचय की राशि में से विसंचय को निकाल दिया जाय तो शुद्ध निवेश तथा शुद्ध संचय क्रमशः की राशियॉं ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार ऋणयोग्य कोष की मॉंग में दो तत्व शामिल है- (1) शुद्ध निवेश तथा (2) शुद्ध संचय। ऋणयोग्य कोष की पूर्ति में बचत तथा बैंक साख में विस्तार के कारण मुद्रा-पूर्ति सम्मिलित होती है। इसके अतिरिक्त पिछली बचतों का विसंचय तथा विनिवेश भी ऋणयोग्य कोष की पूर्ति को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार ऋणयोग्य कोष की पूर्ति में दो तत्व सम्मिलित है- बचत (S) तथा बैंक मुद्रा अथवा नई मुद्रा (M)। यह सिद्धान्त समस्या से सम्बन्धित मौद्रिक तथा गैर-मौद्रिक पहलुओं पर ध्यान देता है।

ध्यान दें- ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त में ब्याज दर को केवल बचत और निवेश का फलन माना गया है। यदि ब्याज दर को त के द्वारा, निवेश को I के द्वारा, S को बचत के द्वारा, M को बैंक मुद्रा अथवा नयी मुद्रा तथा H को शुद्ध संचय के द्वारा व्यक्त किया जाय, तो प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार,

$$r = f(I, S)$$

इसके विपरीत ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त ब्याज दर को चार तत्वों को फलन मानता है-

$$r = f(I, S, M, H)$$

ब्याज का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वीडिश अर्थशास्त्रियों नट विकसेल द्वारा किया गया था आगे चलकर अन्य स्वीडिश अर्थशास्त्रियों बर्टिल ओलिन, एरिक लिन्दाल तथा गुन्नार मिर्डल ने इस सिद्धान्त में सुधार लाया। इंग्लैण्ड में इस सिद्धान्त के प्रतिपादक सर डेविस रॉबर्टसन को माना जाता है। इस सिद्धान्त को नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त भी कहते हैं। क्योंकि ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के अन्तर्गत वस्तु एवं सेवाओं के साथ-साथ बैंक मुद्रा, विसंचय एवं विनिवेश भी सम्मिलित होता है। इसलिए इस सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक एवं मौद्रिक सिद्धान्त भी कहते हैं।

ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त प्रतिपादित करते समय विकसेल का मानना था कि बैंक साख की मात्र पर ब्याज दर में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दूसरे शब्दों में विकसेल ने साख-मुद्रा की पूर्ति को ब्याज निरपेक्ष बताया है क्योंकि उनके विचारोनुसार बैंक साख की मात्रा बैंकों के नकद कोषों की स्थिति पर निर्भर करती है। इस प्रकार, ऋणयोग्य कोष की पूर्ति में M को स्थिर मान लिया गया जिसे रेखाचित्र 19.2 में MM से दिखाया गया है। व्ग् अक्ष पर ऋणयोग्य-कोष एवं व्ल् अक्ष पर ब्याज दर को दिखाया गया है। मॉग पक्ष में केवल निवेश के लिए मॉग पर विचार किया गया और संचय के उद्देश्य से की जाने वाली मॉग (H) की ओर ध्यान नहीं दिया गया। बाद में अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा सिद्धान्त में सुधार किये गये जिनके परिणामस्वरूप M को ब्याज सापेक्ष यानि परिवर्तनशील मान लिया गया जिसे M_1 M_1 से दिखाया गया है। SS बैंक मुद्रा है जो ब्याज सापेक्ष है अर्थात् ब्याज दर में होने वाली परिवर्तनों से प्रभावित होती है। SS वक्र ब्याज की विभिन्न दरों पर उपलब्ध होने वाली बचत की राशियों को व्यक्त करता है। SS वक्र बायें से दायीं ओर ऊपर को जा रही है। यह वक्र ब्याज दर और बचत में प्रत्यक्ष सम्बन्ध बताता है अर्थात् ब्याज दर में वृद्धि होने पर बचत में भी वृद्धि होगी तथा ब्याज दर में कमी आने पर बचत में भी कमी आयेगी। M_1 M_1 और SS पूर्ति पक्ष को दर्शा रहे हैं। इसी तरह मॉग पक्ष में भी दो वक्र निवेश (I) और संचय (H) को II और HH से दर्शाया गया है। प्प् वक्र बायें से दायीं ओर नीचे की तरफ गिर रहा है अर्थात निवेश की मात्रा का ब्याज दर से विपरित सम्बन्ध है। ब्याज दर ऊँची होने पर निवेश की मॉग नीची होती है और ब्याज दर में कमी आने पर निवेश की मॉग में वृद्धि होती है। मॉग पक्ष का दूसरा तत्व संचय है जिसे भ्भ् से दिखाया गया है। वक्र HH ब्याज की विभिन्न दरों पर संचय की मॉग को व्यक्त करता है। यह भी नीचे की ओर गिरता हुआ है जिससे पता चलता है कि ब्याज दर ऊँची होने पर नकद कोषों के संचय की मॉग कम होती है। I+H वक्र कुल मॉग को व्यक्त करता है तथा S+M1 वक्र कुल पूर्ति को व्यक्त करता है। I+H वक्र II और HH वक्र को जोड़कर प्राप्त किया गया है तथा S+M1 वक्र SS और M_1 M_1 वक्र को जोड़कर प्राप्त किया गया है। प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण बिन्दु म् पर है जहॉ वक्र प्प् और SS एक दूसरे को काटते हैं। बिन्दु E पर ब्याज दर OR है।

बिन्दु E को ब्याज दर का वास्तविक सिद्धान्त कहते हैं इसे ब्याज का प्राकृतिक दर सिद्धान्त भी कहते हैं। बिन्दु E पर निवेश एवं बचत की मात्रा समान है। ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के अनुसार ऋणयोग्य कोष का मॉग वक्र (I+H) ऋणयोग्य कोष की पूर्ति वक्र (S+M1) को बिन्दु E_1 पर काटता है। इस बिन्दु पर ब्याज की बाजार दर OR_1 के बराबर है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण पर होता है।

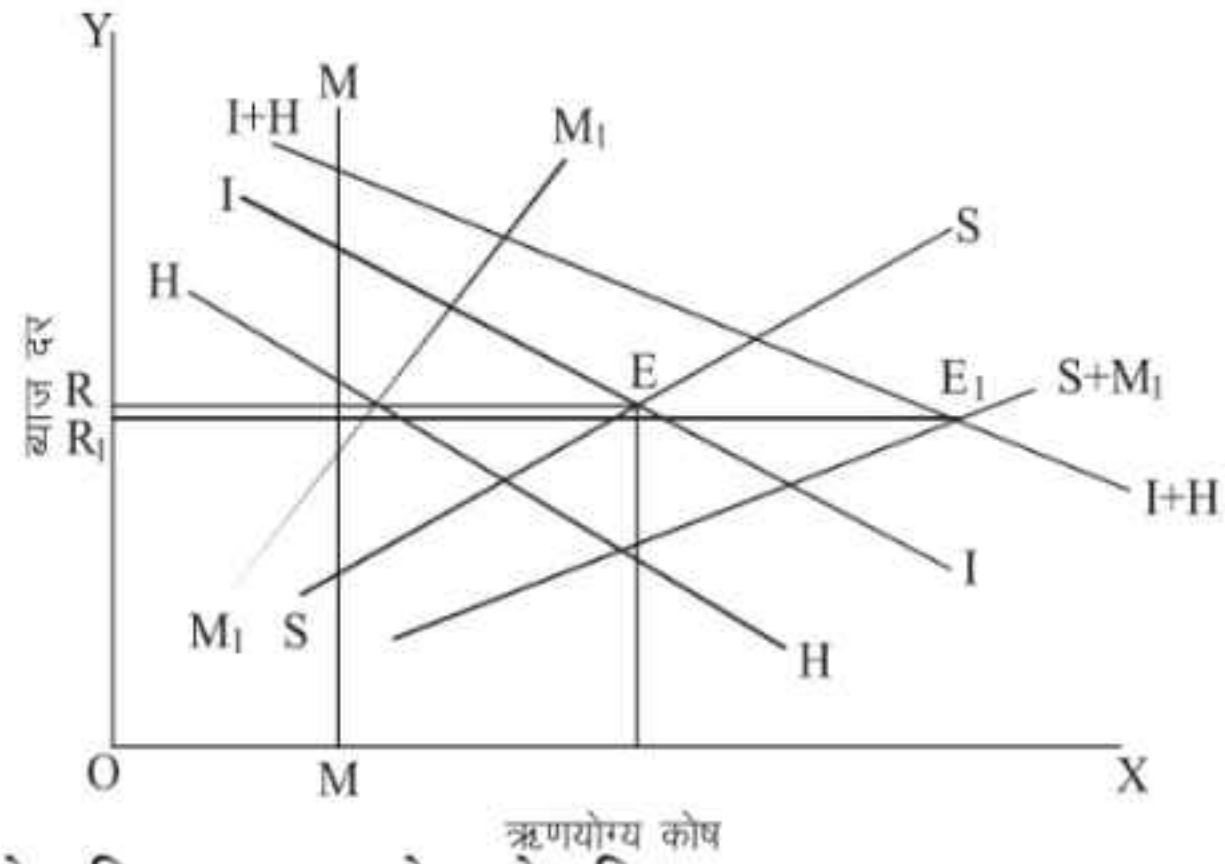

रेखाचित्र 19.2 - ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त

ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त की आलोचना

ब्याज के ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ वही है जो ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की है। ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की तरह यह सिद्धान्त यह नहीं बताता है कि ब्याज दर कैसे निर्धारित होती है। दूसरे शब्दों में यह सिद्धान्त अनिर्धारणीय है। ऋणयोग्य/उधार देय कोषों की पूर्ति बचत, बैंक साख तथा असंचयन पर निर्भर करती है। पर बचत की मात्रा आय पर निर्भर करती है, बचत का ज्ञान बिना ब्याज दर के ज्ञान के नहीं किया जा सकता क्योंकि ब्याज दर विनियोग तथा आय को प्रभावित करता है। इस प्रकार, ब्याज दर की जानकारी के लिए आय-स्तर की जानकारी आवश्यक है और आय स्तर तभी जाना जा सकता है जब ब्याज दर की जानकारी हो। इस प्रकार ऋण योग्य कोष सिद्धान्त हमें वृत्ताकार तर्क में फँसा देता है।

19.6 ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त

कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक जेनरल थियरी आफ इम्पलायमेंट इन्टरेस्ट एण्ड मनी, 1936 (General Theory of Employment Interest and Money, 1936) ब्याज दर के निर्धारण का एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे उन्होंने तरलता अधिमान सिद्धान्त कहा। तरलता

अधिमान सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्याज दर का निर्धारण तरल रुप में मुद्रा अर्थात नकदी की मॉग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। कीन्स के शब्दों में 'ब्याज वह प्रतिफल है जो एक निश्चित समय के तरलता के परित्याग के लिए होता है। यही कारण है कि कीन्स के इस सिद्धान्त को तरलता अधिमान सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण मॉग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा होता है पर उनके अनुसार यह बचत के रूप में पूर्ति तथा विनियोग के रूप में मॉग के द्वारा निर्धारित नहीं होता (जैसा क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने माना) बल्कि यह मुद्रा की मांग एवं मुद्रा की पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। कीन्स का मुद्रा-पूर्ति से अभिप्राय किसी समय विशेष में चलन में विद्यमान मुद्रा की कुल मात्रा से है जो कोई व्यक्ति नकद मुद्रा के रुप में (तरल रुप) में या निष्क्रिय मुद्रा कोष के रुप में (क्योंकि इस पर कोई ब्याज या आय नहीं प्राप्त होती) अपने पास रखने की मॉग करता है। कीन्सियन सिद्धान्त में मुद्रा की पूर्ति बाह्यरुप से निर्धारित होती है। मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण मुद्रा अधिकारी की नीति तथा निर्णय के अनुसार होता है परन्तु मुद्रा की मॉग तरलता पसंदगी अधिमान की मॉग है। तरलता अधिमान का सरल शब्दों में अर्थ है नकदी की मॉग। यह वह नकद राशि है जिसे लोग अपने पास तरल रूप में रखना चाहते हैं। कीन्स ने ऐसे तीन उद्देश्यों की चर्चा की जिनके लिए मुद्रा तरल रुप में रखी जाती है। ये तीन उद्देश्य हैं- (1) लेन-देन या व्यापारिक उद्देश्य, (2) सतर्कता, पूर्वोपाय प्रेरक या दूरदर्शिता उद्देश्य, तथा (3) पूर्वकलल्पी प्रेरक या सट्टा उद्देश्य।

ध्यान देने योग्य बातें- प्रथम दो उद्देश्यों के लिए मुद्रा की मॉग आय सापेक्ष होती है, अर्थात् आय स्तर के परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होती है। परन्तु सट्टा उद्देश्य से की गयी तरलता अथवा नकदी की मॉग ब्याज सापेक्ष होती है।

सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की मॉग मुख्यतया संचय की प्रवृत्ति को व्यक्त करती है। कीन्स ने यह माना है कि आर्थिक इकाइयॉ जैसे व्यक्ति तथा व्यापारिक इकाइयॉ अपनी संपत्ति के कुछ भाग को वित्तीय संपत्तियों में रखती है। उन्होंने यह भी माना है कि 'मुद्रा तथा बॉण्ड' दो ही वित्तीय संपत्तियॉ है जिनमें वह अपनी संपत्ति रखेगा क्योंकि अन्य दो उद्देश्य लेन-देन और सतर्कता उद्देश्य में रखे जाने वाली मुद्रा आय के स्तर पर निर्भर करती है। ब्याज दर में परिवर्तन का कोई प्रभाव इन पर नहीं पड़ता है। सट्टा उद्देश्य के लिए की गयी मुद्रा की मॉग ब्याज दर से प्रभावित होती है। लोग अपने पास नकदी इसलिए रखना चाहते हैं कि भविष्य में बॉण्डों की कीमत में होने वाले परिवर्तनों से लाभ उठा पायें। कीन्स के अनुसार बाण्ड की कीमत और ब्याज दर में विपरीत संबंध होता है। अतः बाण्डों की कीमत गिर जाने पर ब्याज दर ऊँची होती है और बाण्डों की कीमत बढ़ने पर ब्याज दर में गिरावट आती है। यदि ब्याज दर ऊँची होने की संभावना होगी तो सट्टा उद्देश्य से नकदी की मॉग बढ़ जायेगी। इसके विपरीत यदि भविष्य में ब्याज दर में कमी के अनुमान लगाये जाते हैं (अर्थात् बॉण्ड की कीमतों में बढ़ने की संभावना है) तो नकदी की मॉग कम होगी और बॉण्डों में अधिक धन लगाया जायेगा। स्पष्ट है कि सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की मॉग ब्याज की वर्तमान दर की अपेक्षा भविष्य में सम्भावित

दर से अधिक प्रभावित होती है। इसके निर्धारण में मनोवैज्ञानिक तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसलिए कीन्स ने ब्याज दर को एक अत्यधिक मनोवैज्ञानिक विषय बताया है।

ब्याजदर तथा बाण्ड का मूल्य

ब्याज दर तथा बाण्ड के मूल्य में विपरीत सम्बन्ध होता है इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए भारत सरकार ने 2000 में एक बॉण्ड निर्गत किया जिसका निर्गत मूल्य 100 रुपया था तथा जिस पर अंकित ब्याज दर 4 प्रतिशत रहा। इसका अर्थ यह हुआ कि इस बॉण्ड पर धारकों को 4 रुपया प्रतिवर्ष ब्याज दर प्राप्त होता रहेगा। अगर बाजार ब्याज दर गिरकर 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो जाती है तो बाजार ब्याज दर के गिरने से बाण्ड की कीमत में वृद्धि होगी। फलस्वरूप बाण्ड का मूल्य 200 रुपया हो जायेगा क्योंकि 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की बाजार ब्याज दर पर 200 रुपये मूल्य के बाण्ड से 4 रुपये प्राप्त हो जायेंगे। किसी बाण्ड का बाजार मूल्य ज्ञात करने के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग कर सकते हैं-

$$\text{बॉण्ड की ब्याज कीमत} = \frac{\text{बॉण्ड का निर्गत मूल्य} \times \text{मूल ब्याज दर}}{\text{बाजार ब्याज दर}}$$

$$200 = \frac{100 \times 4}{2}$$

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि 4 प्रतिशत ब्याज दर पर बॉण्ड की कीमत 100 रुपया था। जब बाजार ब्याज दर गिरकर 2 प्रतिशत हो गया तो बाण्ड की कीमत में वृद्धि हो गयी जो 200 रुपया है।

ब्याज दर का निर्धारण

कीन्स के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की मॉग तथा पूर्ति के द्वारा होगा अर्थात् मुद्रा बाजार संस्थिति की स्थिति में तब होगा जब मुद्रा की पूर्ति (Ms) मुद्रा की मॉग (Md) के बराबर होगी-

संतुलित ब्याज दर = Md = Ms

मुद्रा की पूर्ति- कीन्स ने यह माना है कि मुद्रा की पूर्ति (Ms) किसी समय पर मौद्रिक अधिकारियों द्वारा बाह्य रूप से निर्धारित होती है।

मुद्रा की मॉग- इसके पूर्व हम लोगों ने यह देखा मुद्रा की मॉग तीन उद्देश्यों से की जाती है- व्यापारिक उद्देश्य (Lt), पूर्वोपाय प्रेरक (Lp) तथा पूर्वकल्पी या सट्टा उद्देश्य (L◌ेs)। इस प्रकार मुद्रा की कुल मॉग (Lt+Lp+Ls) होगी। इसमें से (Lt) तथा (Lp) दोनों ही आय के स्तर (Y) पर निर्भर करेंगे। यदि हम (Lt+Lp) को L_1 से व्यक्त करें तो हम कह सकते हैं कि (L_1=f(y)) कीन्स पूर्वकल्पी (◌ेचमबनसंजपवद) प्रेरक की मॉग को अलग रखा। यदि हम पूर्वकल्पी मांग को L_2 से व्यक्त करें तो हम यह कह सकते हैं कि L_2=f(r)। इस प्रकार तरलता की कुल मॉग Md = L_1+L_2 या

$Md=L_1=f(y)+L_2=f(r)$ रेखाचित्र 19.3 में एक दिये हुए मौद्रिक आय के स्तर पर Md मुद्रा की मॉग रेखा है तथा Ms मुद्रा की पूर्ति रेखा है जो मौद्रिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित की जाती है। OR ब्याज दर पर मुद्रा बाजार का संतुलन बिन्दु E पर है।

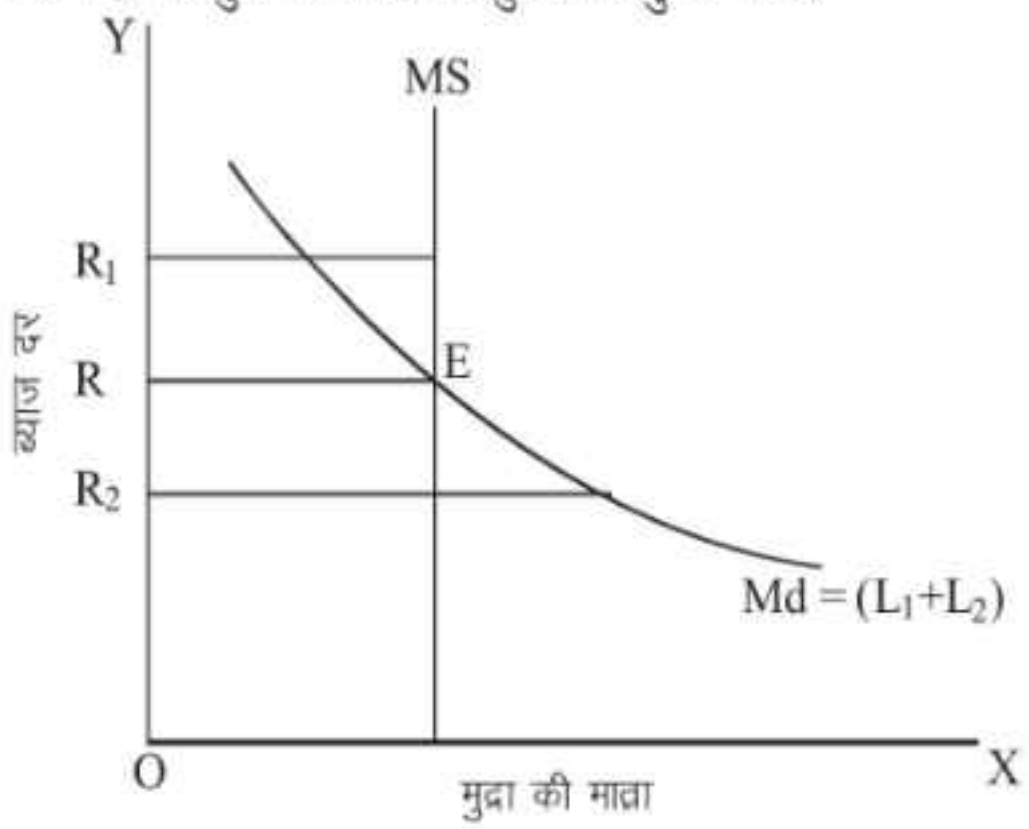

रेखाचित्र 19.3 – ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त

मान लीजिए ब्याज दर बढ़कर OR_1 हो जाती है ऐसी स्थिति में मुद्रा की पूर्ति मॉग से अधिक है। अब यदि दो ही सम्पत्ति मुद्रा तथा बाण्ड हो जैसा कीन्स ने माना, तो मुद्रा की अतिरिक्त पूर्ति का उपयोग लोगों द्वारा बॉण्ड खरीदने के लिए किया जायेगा। बॉण्ड की मॉग बढ़ने से तथा मुद्रा पूर्ति स्थिर रहने पर बॉण्ड की कीमत में वृद्धि होगी। बॉण्ड की कीमत तथा ब्याज दर में विलोम सम्बन्ध के कारण बॉण्ड की कीमत में वृद्धि के फलस्वरूप ब्याज दर में कमी आयेगी। ब्याज दर गिरने के कारण मुद्रा की मॉग और पूर्ति पुनः संतुलन बिन्दु E पर आ जायेगी।

दूसरी ओर यदि ब्याज दर OR से गिरकर OR_2 होने पर मुद्रा की मॉग मुद्रा की पूर्ति से अधिक हो जायेगी। इस आधिक्य मॉग को पूरा करने के लिए लोग बॉण्ड की बिक्री करेंगे। बॉण्ड की बिक्री से उनकी कीमत कम होगी जिसके प्रभाव से ब्याज दर में वृद्धि होगी। इससे ब्याज दर पुनः संतुलन बिन्दु व्त् पर स्थापित हो जायेगा।

निष्कर्ष-ब्याज की तरलता अधिमान सिद्धान्त में मुद्रा बाजार संस्थिति की स्थिति में तब होगा जब -

$Md = Ms$ $(Md = L_1 (y) + L_2 (r)$

$L_1 = Lt + Lp$ =लन देन या व्यापारिक उद्देश्य

P = सतर्कता/पूर्वोपाय उद्देश्य

S = सट्टा उद्देश्य

$L_2 = Ls$

मुद्रा की मॉग अथवा तरलता पसंदगी स्थिर रहने पर मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का प्रभाव- सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन खुले बाजार में प्रतिभूतियों के क्रय-बिक्रय द्वारा किया जाता है। रेखाचित्र 19.4 में OX अक्ष पर मुद्रा की मात्रा तथा OY अक्ष पर ब्याज दर को दिखाया गया है। MM मुद्रा की पूर्ति पर OR ब्याज दर है। यदि मुद्रा की पूर्ति बढ़कर M2M2 हो जाती है तो मुद्रा की पूर्ति वक्र M2M2 मुद्रा की मॉग वक्र स्च् को ब्याज दर OR2 पर काटती है। मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि से ब्याज दर में गिरावट आती है। कीन्स ने यह प्रतिपादित किया कि जैसे-जैसे ब्याज दर गिरती जायेगी लोगों की निष्क्रिय नकद शेष की मॉग बढ़ती जायेगी, मन्दड़िए बॉण्ड से हाटेकर अपनी नकद मुद्रा की धारिता बढ़ायेंगे अर्थात् बॉण्ड बेचकर नकद शेष रखना अधिक चाहेंगे। एक ऐसी स्थिति आयेगी जब न्यूनतम ब्याज दर पर सभी लोग बॉण्ड बेचकर नकद (तरल) को पसंद करेंगे। ऐसी स्थिति में मुद्रा की मॉग या तरलता अधिमान वक्र नीचे की ओर गिरता जायेगा। ब्याज दर गिरकर OR_2 पर आ जायेगा जहॉ पर बिन्दु E_2 के पश्चात् दाहिनी ओर क्षितिज रूप में समतल हो जायेगा। वक्र का यह पूर्णतया लोचदार भाग पूर्ण तरलता अधिमान की स्थिति को व्यक्त करता है। तरलता अधिमान वक्र चपटा तब होता है जब मुद्रा की ब्याज सपेक्षता अनन्त हो जाती है। तरलता अधिमान की इस पूर्ण अवस्था को तरलता जाल कहा जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि तरलता अधिमान की इस विशेष ता के कारण ब्याज दर कभी शून्य नहीं हो सकती है। ब्याज दर के एक निम्न बिन्दु पर नकदी की मॉग असीम हो जाती है जिससे ब्याज दर और नीचे नहीं गिर पाती है। ऐसी स्थिति में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि करने पर भी ब्याज दर में कमी नहीं होगी कीन्स के अनुसार यदि कोई अर्थव्यवस्था इस जाल में फँस जाय तो इससे बाहर लेने के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लेना होगा, मौद्रिक नीति का नहीं।

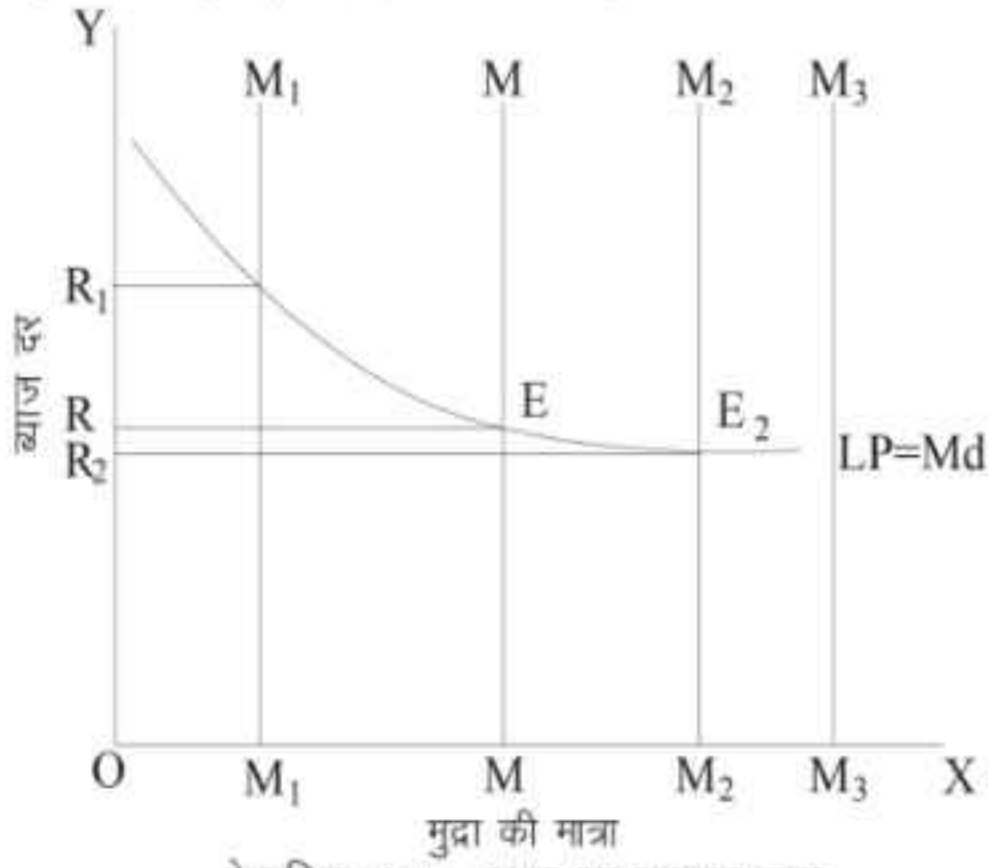

रेखाचित्र 19.4 – ब्याज का तरलता जाल

ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त की आलोचना

(1) क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त की तरह ब्याज के तरलता सिद्धान्त में भी ब्याज अनिर्धारित है। कीन्स के ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त में व्यापारिक लेन-देन एवं पूर्वोपाय उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली मुद्रा स्। आय का फलन होती है। इस प्रकार स्। को तब तक नहीं जाना जा सकता है जब तक कि आय का स्तर नहीं ज्ञात हो और आय का स्तर तब तक नहीं जाना जा सकता है जब तक कि ब्याज दर नहीं ज्ञात हो क्योंकि विनियोग ब्याज दर के ऊपर निर्भर करता है तथा आय विनियोग के ऊपर निर्भर करती है। इस प्रकार बिना ब्याज दर R के ज्ञान के बिना आय Y नहीं जाना जा सकता, बिना Y के ज्ञान के L_1 नहीं जाना जा सकता और बिना L_1 के ज्ञान के पूर्वकल्पी प्रेरक की मॉग L_2 को नहीं जाना जा सकता और बिना L_2 के ज्ञान के ब्याज नहीं जाना जा सकता है।

(2) कीन्स का तरलता अधिमान सिद्धान्त एकपक्षीय सिद्धान्त है क्योंकि इसमें मॉग पर अधिक बल दिया गया है। पूर्ति पक्ष को स्थिर मान लिया गया है।

(3) प्रो. हेजलिट ने आलोचना करते हुए यह कहा है कि कीन्स ब्याज को एक शुद्ध मौद्रिक घटना मानते हैं। उसके ऊपर उत्पादकता तथा समय अधिमान के पड़ने वाले प्रभाव को नहीं स्वीकार किया।

(4) कीन्स ने ब्याज दर निर्धारण को विनियोग कोष की मॉग या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से स्वतंत्र रखा है। परन्तु यह अव्यावहारिक है क्योंकि व्यापारियों द्वारा रखे जाने वाले नकद शेष की मात्रा के ऊपर विनियोग के लिए उनकी पूँजी की मांग का अधिक प्रभाव पड़ता है। पूँजी की मॉग उसकी सीमान्त उत्पादकता के कारण होती है इसलिए ब्याज दर का निर्धारण विनियोग कोष की मांग या पूंजी की सीमान्त उत्पादकता से स्वतंत्र नहीं किया जा सकता।

19.7 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

IS-LM प्रारूप वक्र हिक्स, लर्नर तथा हेन्सन जैसे आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने केन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त तथा नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का ब्याज का ऋणयोग्य-कोष सिद्धान्त के महत्वपूर्ण अंशों को मिलाकर ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त बनाया जिसे IS-LM प्रारूप वक्र का नाम दिया गया। इस आधुनिक सिद्धान्त को नव कीन्सियन सिद्धान्त भी कहा जाता है। कीन्स के ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त से तरलता अधिमान (L) और मुद्रा की मात्रा (M) को लिया गया। नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त से निवेश (I) एवं बचत (S) को लिया गया। ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त में चार तत्वों (निवेश, बचत, तरलता अधिमान तथा मुद्रा की मात्रा) को शामिल किया गया। इस प्रकार आधुनिक सिद्धान्त IS-LM प्रारूप वक्र में मौद्रिक तथा वास्तविक तत्व दोनों को शामिल किया गया।

आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या दो अनुसूचियों पर आधारित है-

(1) IS अनुसूची जो कुल बचत तथा कुल निवेश की समानता को व्यक्त करती है।

(2) LM अनुसूची जो मुद्रा की मॉग तथा पूर्ति में समानता को व्यक्त करती है।

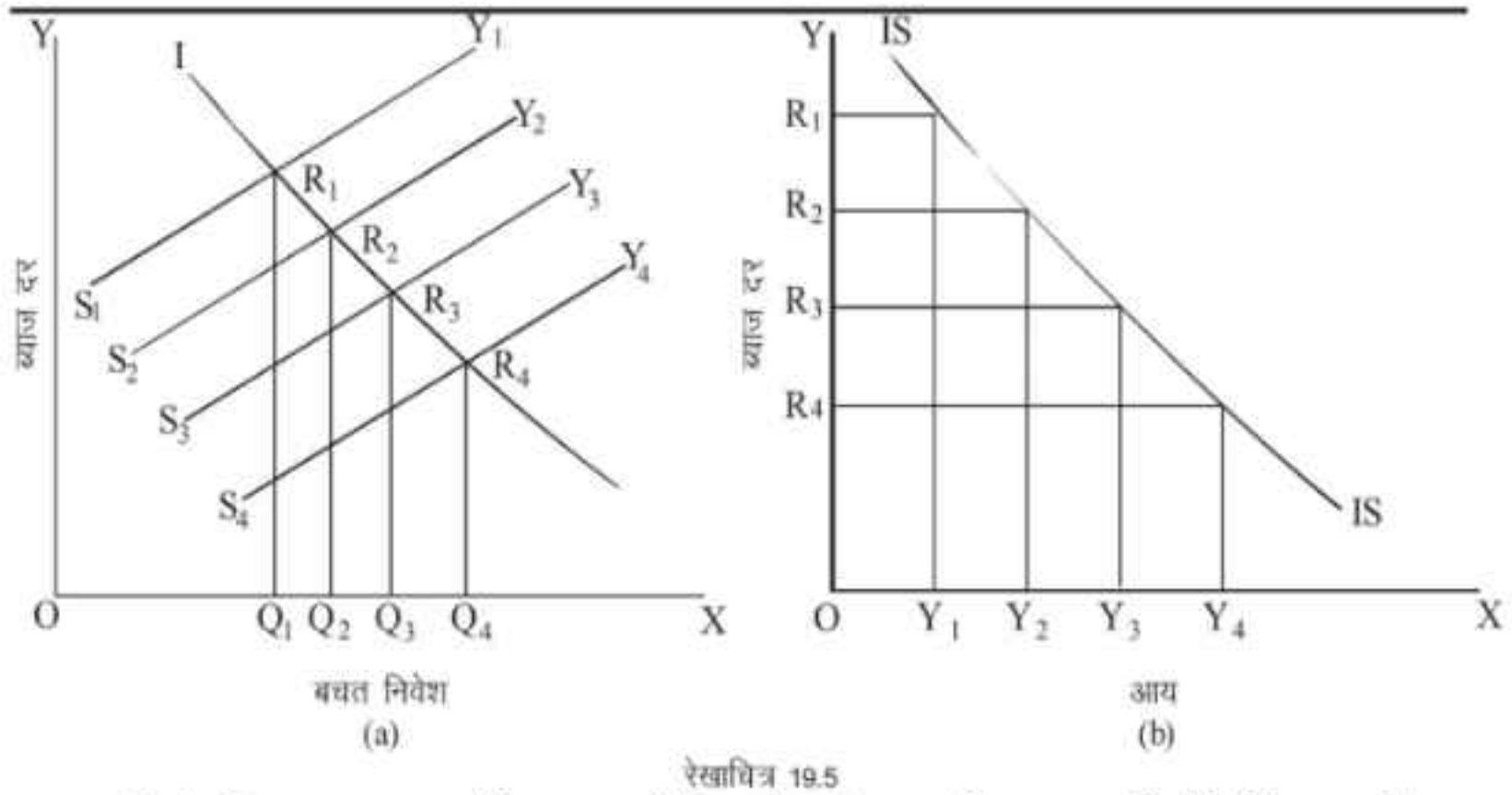

रेखाचित्र 19.5

ब्याज की संतुलित दर पर वास्तविक तथा मौद्रिक क्षेत्र संतुलन की अवस्था में होते हैं। वस्तुओं का बाजार और मुद्रा-बाजार एक दूसरे से अलग होने पर भी इनमें एक साथ संतुलन की अवस्था में राष्ट्रीय आय तथा ब्याज दरें निर्धारित होती हैं।

ध्यान दें- बचत एवं निवेश वास्तविक तत्व है तथा मुद्रा की मॉग और पूर्ति मौद्रिक तत्व है।

IS वक्र- IS वक्र ब्याज का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त से प्राप्त किया गया है। IS अनुसूची से हमें उस ब्याज दर तथा आय स्तर का पता चलता है जिस पर बचत और निवेश एक दूसरे के बराबर होते हैं। IS वक्र को हम रेखाचित्र के द्वारा दिखा सकते हैं। रेखाचित्र 19.5(a) में Y_1, Y_2, Y_3 तथा Y_4 विभिन्न आय स्तरों को व्यक्त करते हैं। इन विभिन्न आय स्तरों पर बचत की मात्रा S_1Y_1, S_2Y_2, S_3Y_3, S_4Y_4 वक्रों के द्वारा व्यक्त की जाती है। II निवेश वक्र है। S_1Y_1 आय स्तर पर R_1Q_1 ब्याज दर, बचत और निवेश के बीच संतुलन स्थापित करती है। जैसे-जैसे आय स्तर में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे बचत व निवेश में भी वृद्धि होती जाती है। $Y_1Y_2Y_3Y_4$आय स्तर की वृद्धि को दर्शाते हैं तथा $R_1R_2R_3R_4$ बचत और निवेश की वृद्धि को दर्शाते हैं। आय और बचत एवं निवेश में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है अर्थात् आय में भी वृद्धि के साथ बचत और निवेश में भी वृद्धि होती है। यदि बचत तथा निवेश में समानता लाने वाली ब्याज की विभिन्न दरों को तत्सम्बन्धी आय स्तरों के साथ जोड़ दिया जाय तो IS वक्र प्राप्त हो जाता है। रेखाचित्र 19.5 (b) में IS वक्र दायीं ओर नीचे गिरता हुआ है क्योंकि आय के ऊँचे स्तर पर बचत अधिक होती है परन्तु बचत अधिक होने पर ब्याज दर नीची होती है। इस प्रकार जब आय बढ़ती है तो बचत की वृद्धि के साथ-साथ ब्याज दर में कमी होती है। ब्याज दर गिरने से निवेश बढ़ता है और बचत के बराबर हो जाता है। Is वक्र बचत एवं निवेश वक्रों की स्थितियों पर निर्भर करता है।

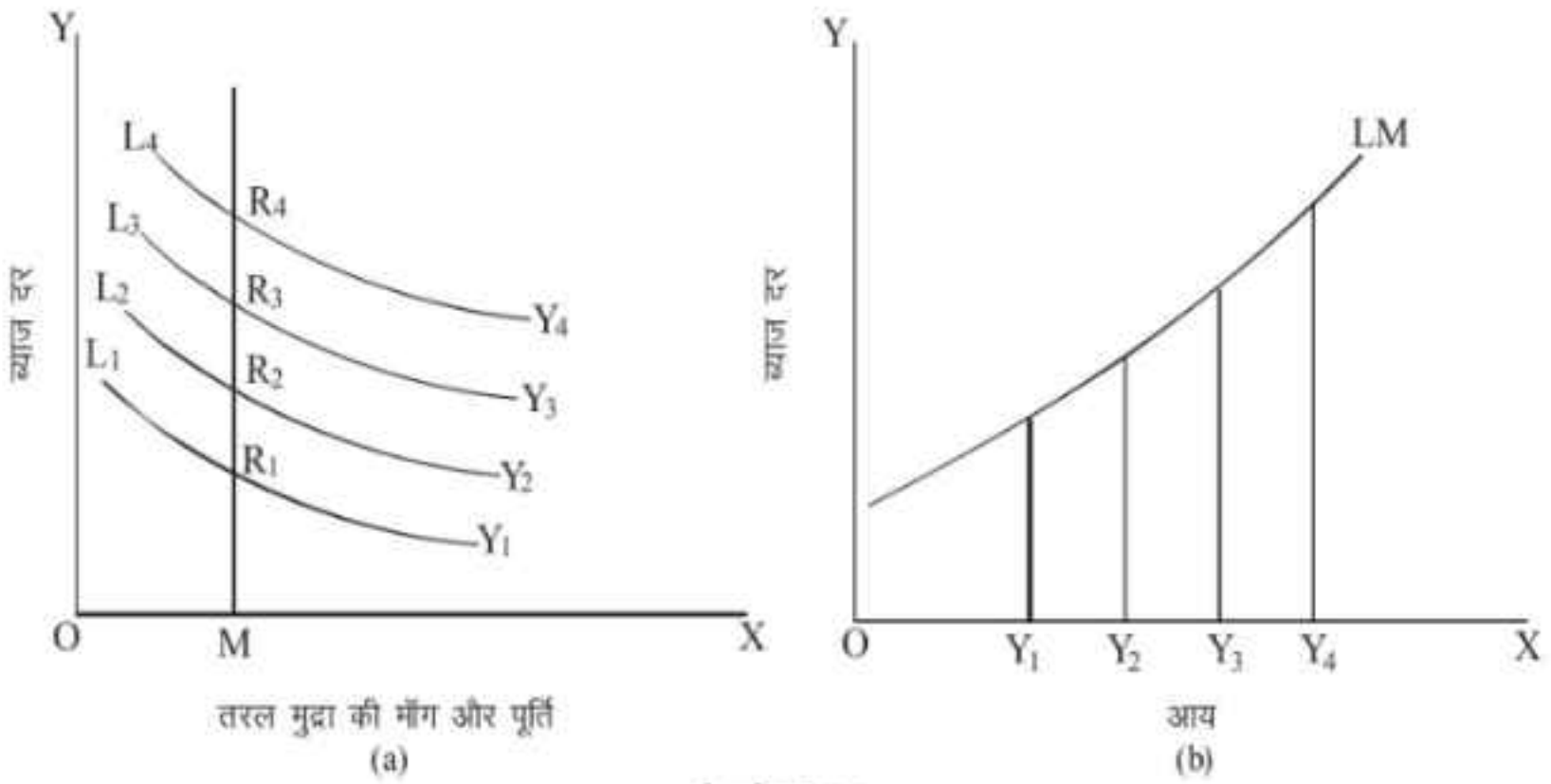

रेखाचित्र 19.6

LM वक्र- LM वक्र कीन्स के तरलता अधिमान सिद्धान्त से प्राप्त किया गया है। आय के विभिन्न स्तरों पर तरलता अधिमान (L) तथा मुद्रा अधिकारियों द्वारा निर्धारित की गयी मुद्रा की मात्रा (M) को साथ मिलाकर (LM) वक्र का निर्माण किया जाता है। LM वक्र को रेखाचित्र 19.6 में दिखाया गया है। रेखाचित्र 19.6(a) में OM मुद्रा की पूर्ति है जिसे स्थिर माना गया है क्योंकि यह मुद्रा अधिकारियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। $Y_1Y_2Y_3Y_4$ विभिन्न बढ़ती हुई आय स्तर को प्रदर्शित कर रहा है। L_1Y_1, L_2Y_2, L_3Y_3, L_4Y_4 विभिन्न आय स्तरों पर तरलता अधिमान वक्र है जो विभिन्न आय-स्तरों पर नकदी की माँग को बता रहा है। मुद्रा की पूर्ति को निश्चित व ब्याज निरपेक्ष मान लिया गया है। यह OM के बराबर संतुलन की स्थापना के लिए मुद्रा को नकदी मांग (L) तथा पूर्ति (M) में समानता होना आवश्यक है। L_1 आय स्तर पर मुद्रा की मांग तथा पूर्ति में संतुलन ब्याज दर R_1M पर स्थापित होता है। ऊँची आय स्तर पर ब्याज दर ऊँची है तथा कम आय स्तर पर ब्याज दर नीची है। रेखाचित्र 19.6(b) में विभिन्न आय स्तर पर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति में संतुलन लाने वाली ब्याज दर को जोड़ने से LM वक्र प्राप्त होता है। यह वक्र मौद्रिक क्षेत्र में संतुलन को व्यक्त करता है। LM वक्र बायीं से दायीं को ओर उठा हुआ है क्योंकि आय बढ़ने पर नकदी की माँग बढ़ती है तथा ब्याज दर भी बढ़ता है। इसके विपरीत आय में कमी होने पर नकदी की माँग व ब्याज दर में भी कमी आती है। आय में कमी होने पर लेनदेन के लिए मुद्रा की मांग में कमी आ जाती है जिससे ब्याज दर गिर जाती है। ब्याज दर कम होने पर सट्टा उद्देश्य में मुद्रा की माँग बढ़ती है इसलिए ब्याज दर न्यूनतर दर से नीचे नहीं जा पाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ IS और LM वक्र एक दूसरे को काटते हैं। रेखाचित्र 19.7 में IS और LM वक्र एक दूसरे को बिन्दु R पर काट रहे हैं। इस बिन्दु R पर ब्याज दर तथा आय स्तर का निर्धारण साथ-साथ होता है। इस बिन्दु R पर बचत और विनियोग मे संतुलन स्थापित होने के साथ-

साथ मुद्रा की मांग एवं पूर्ति में भी संतुलन स्थापित होता है। IS तथा LM वक्र में परिवर्तन होने पर ब्याज दर भी प्रभावित होती है। रेखाचित्र 19.7 से यह पता चलता है कि IS वक्र के दायीं ओर बढ़ने से आय और ब्याज दर में वृद्धि होती है। इसके विपरीत IS वक्र स्थिर रहने पर यदि LM वक्र के दायीं ओर बढ़ने से ब्याज दर में कमी आती है।

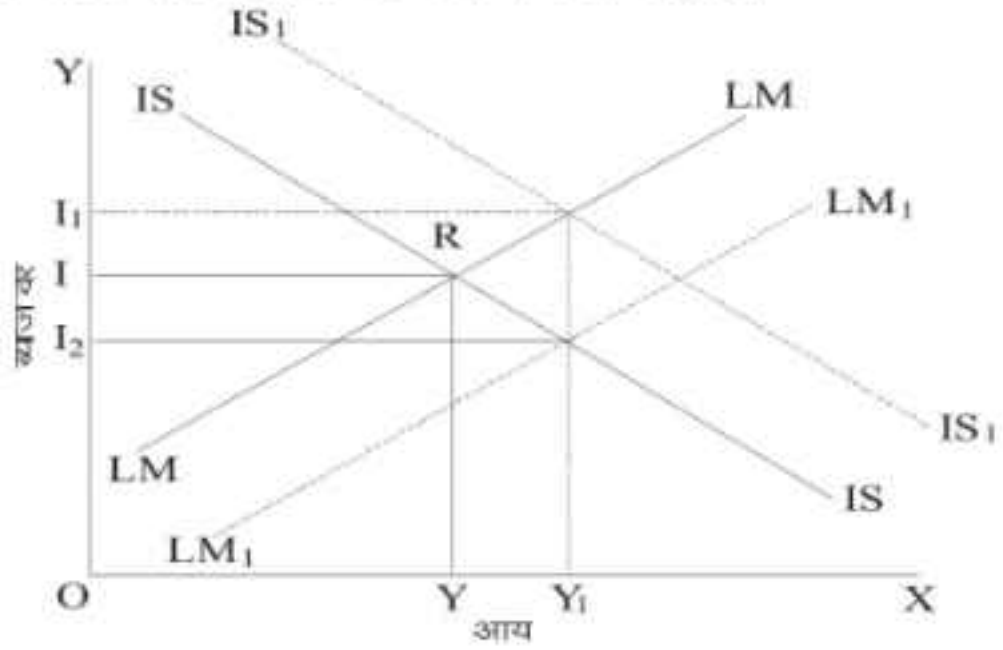

रेखाचित्र 19.7 – ब्याज का आधुनिक सिद्धांत

IS-LM प्रारूप वक्र की आलोचना:- IS-LM वक्र ब्याज दर के निर्धारण से सम्बन्धित एक सामान्य, व्यावहारिक और अधिक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यह सिद्धान्त एक ओर राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों में समन्वय लाता है तो दूसरी ओर आय निर्धारण के सिद्धान्त को मुद्रा सिद्धान्त के साथ जोड़ता है। उपर्युक्त गुणों के बावजूद, IS-LM प्रारुप वक्र में अनेक त्रुटियों के कारण इसकी आलोचना की जाती है जो निम्नवत है-

(1) यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि ब्याज दर पूर्ण रुप से परिवर्तनशील है। यदि केन्द्रीय बैंक द्वारा ब्याज दर को स्थिर रख दिया जाय तो इस सिद्धान्त की समायोजन प्रक्रिया कार्य नहीं कर पायेगी।

(2) इस सिद्धान्त में विनियोग को ब्याज सापेक्ष माना गया है, अर्थात ब्याज दर में परिवर्तन होने पर विनियोग में परिवर्तन होता है। व्यापारिक रुप में ऐसा न होने पर समायोजन प्रक्रिया कार्य नहीं करेगी।

(3) डॉन पेटिन्कन के अनुसार इस सिद्धान्त में कीमत स्तर के परिवर्तन की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। मुद्रा की पूर्ति, उपभोग प्रवृत्ति, बचत, विनियोग तथा मुद्रा की मॉग में परिवर्तन होने पर ब्याज दरों तथा राष्ट्रीय आय में परिवर्तन के साथ-साथ वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतें भी प्रभावित होती हैं। इसलिए कीमतों को सम्मिलित करना आवश्यक है।

(4) डॉन पेटिन्कन तथा मिल्टन फ्रिडमैन के अनुसार अर्थव्यवस्था को मौद्रिक तथा वास्तविक क्षेत्रों में विभोजन करना अव्यावहारिक है। वास्तविकता यह है कि दोनों क्षेत्र एक दूसरे से प्रभावित होते हैं।

19.8 अभ्यास प्रश्न

(1) लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त के प्रमुख अर्थशास्त्रियों के नाम बताइए।
(ख) ब्याज के ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के प्रमुख तत्व बताइये।
(ग) ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक तथा मौद्रिक सिद्धान्त क्यों कहा जाता है?
(घ) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त को मॉग एवं पूर्ति का सिद्धान्त क्यों कहते हैं?
(ङ) कीन्स के ब्याज सिद्धान्त को तरलता अधिमान का सिद्धान्त क्यों कहा जाता है।
(च) कीन्स का ब्याज सिद्धान्त में मुद्रा की मॉग किन उद्देश्यों के लिए की जाती है।

(2) सत्य/असत्य बताइये-

(क) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर केवल बचत और निवेश का फलन है।
(ख) ब्याज का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त को प्रतिष्ठित सिद्धान्त भी कहा जाता है।
(ग) ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त में मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण मुद्रा अधिकारियों की नीति के निर्णय के अनुसार होता है।
(घ) 'तरलता जाल' में फँसी अर्थव्यवस्था को उबारने के लिए मौद्रिक नीति का सहारा ल्ोते हैं।
(ङ) बचत और निवेश वास्तविक तत्व है

(3) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को कहा जाता है-
(अ) बचत-निवेश सिद्धान्त (ब) समय-अधिमान उत्पादकता सिद्धान्त (स) ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त (द) उपर्युक्त सभी
(ख) ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के प्रतिपादन स्वीडिश अर्थशास्त्रियों है-
(अ) गुन्ना मिर्डल (ब) नट विकसेल (स) बटिल ओलिन (द) एरिक लिन्दाल
(ग) ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त में मुद्रा की मॉग -
(अ) बचत की मॉग (ब) निवेश की मॉग (स) तरलता अधिमान की मॉग (द) इनमें से कोई नहीं
(घ) ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया -
(अ) जे.एम.कीन्स (ब) मार्शल (स) नट विकेसल (द) राबर्टसन
(ङ) आई एस तथा एल.एम. अनुसूचियों के आधार पर ब्याज दर का प्रतिपादन किसने किया।
(अ) स्वीडिश अर्थशास्त्रियों (ब) जे.एम.कीन्स (स) नव-कीन्सियन अर्थशास्त्रियों (द) मुद्रावादी अर्थशास्त्रियों

(4) एक शब्द अथवा एक पंक्ति में उत्तर वाले प्रश्न-

(क) इंग्लैण्ड में ब्याज का ऋणयोग्य-कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया था?
(ख) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त का प्रतिपादक कौन है?

(ग) कीन्स के प्रसिद्ध पुस्तक का नाम बताइये।

(घ) कीन्स के ब्याज तरलता अधिमान सिद्धान्त में मॉग की जाने वाली मुद्रा में मुद्रा को निष्क्रिय मुद्रा क्यों कहा गया है।

(ङ) ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त किस-किस सिद्धान्त को मिलाकर बनाया गया है।

(5) रिक्त स्थान भरिए-

(क) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त में ब्याज के निर्धारण में ... तथा ... को महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है।

(ख) ब्याज के ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के पूर्ति पक्ष में ..... तथा मॉग पक्ष में ..... सम्मिलित है।

(ग) सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की मॉग मुख्यतया ..... को व्यक्त करती है।

(घ) सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की मॉग वर्तमान ब्याज दर की अपेक्षा ..... से अधिकतम प्रभावित होती है।

(ङ) कीन्स ने यह प्रतिपादित किया कि ब्याज दर तथा बॉण्ड के मूल्य में .... सम्बन्ध होता है।

19.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि ब्याज का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त जिसे ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त कहते हैं तथा कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त का जोड़ है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज दर का आधुनिक सिद्धान्त यह बताता है कि ब्याज दर तथा आय स्तर दोनों का निर्धारण चार तत्वों पर आधारित होता है- (1) निवेश क्रिया अथवा पूंजी की सीमान्त दक्षता, (2) बचत क्रिया अथवा उपभोग प्रवृत्ति, (3) तरलता अधिमान क्रिया तथा (4) मुद्रा की मात्रा। आधुनिक सिद्धान्त में आई.एस. ऋण योग्य कोष सिद्धान्त से लिया गया है तथा एल.एम. वक्र ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त से लिया गया है। जिस बिन्दु पर आई.एस. और एल.एम. वक्र एक दूसरे को काटते हैं वहीं पर ब्याज दर का निर्धारण होता है।

19.10 शब्दावली

सीमान्त उत्पादकता- उत्पादन में प्रयुक्त अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से है।

ऋणयोग्य कोष - संचय- संचय और ब्याज दर में विपरीत सम्बन्ध होता है। ब्याज दर ऊँची होने पर नकद कोषों के संचय की मॉग कम होती है तथा ब्याज दर में कमी आने पर नकद कोषों के संचय की मॉग में वृद्धि होती है।

बचत- ब्याज दर और बचत में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

तरलता अधिमान की मॉग- तरलता अधिमान की मॉग से अभिप्राय नकदी की मॉग से है।

आय सापेक्ष- आय सापेक्ष से तात्पर्य आय स्तरों में होने वाले परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होने से है।

ब्याज सापेक्ष- ब्याज दर में परिवर्तन से प्रभावित होना।

ब्याज निरपेक्ष- ब्याज दर में परिवर्तन से प्रभावित न होना।

19.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1)(क) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त के प्रमुख अर्थशास्त्रियों के नाम हैं- मार्शल, पीगू, कैसल्स, बालरस, टॉसिंग तथा नाईट।

(ख) ब्याज के ऋणयोग्य कोष सिद्धांत के चार प्रमुख तत्व हैं- शुद्ध निवेश, शुद्ध संचय, बचतों का विसंचय तथा विनिवेश। शुद्ध निवेश तथा शुद्ध संचय ऋणयोग्य कोष की मॉग के तत्व हैं तथा ऋणयोग्य कोष की पूर्ति में बचत तथा बैंक साख में विस्तार के कारण मुद्रा पूर्ति सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त पिछली बचतों का विसंचय तथा विनिवेश को भी शामिल किया जाता है।

(ग) ऋणयोग्य कोष सिद्धांत को ब्याज का वास्तविक सिद्धांत इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस सिद्धांत के अंतर्गत वस्तु एवं सेवाओं को शामिल किया गया है तथा मौद्रिक सिद्धान्त इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें वस्तु एवं सेवाओं के साथ-साथ बैंक मुद्रा, विसंचय एवं विनिवेश भी सम्मिलित होता है। इसलिए इस सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक एवं मौद्रिक सिद्धान्त भी कहते हैं।

(घ) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहॉ पर पूँजी की मॉग (अर्थात् निवेश की मॉग) उसकी कुल पूर्ति (अर्थात बचतों की पूर्ति) के बराबर होती है। इस बिन्दु पर मॉग एवं पूर्ति एक दूसरे को काटते हैं इसलिए इस सिद्धान्त को मॉग एवं पूर्ति का सिद्धान्त कहा जाता है।

(ङ) कीन्स के शब्दों में ब्याज वह प्रतिफल है जो एक निश्चित समय के तरलता के परित्याग के लिए होता है। यही कारण है कि कीन्स के इस सिद्धान्त को तरलता अधिमान सिद्धान्त कहते हैं।

(च) कीन्स का ब्याज सिद्धान्त में मुद्रा की मॉग तीन उद्देश्यों के लिए की जाती है- (1) लेन-देन या व्यापारिक उद्देश्य,(2) सतर्कता, पुर्वोपाय प्रेरक या दूरदर्शिता उद्देश्य तथा (3) पूर्वकल्पीय प्रेरक या सट्टा उद्देश्य

(2) (क) सत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्य, (घ) असत्य, राजकोषीय नीति का सहरा लिया जाता है, (ङ) सत्य

(3) (क) (अ) बचत निवेश सिद्धांत, (ख) (ब) नट विकसेल (ग) (स) तरलता अधिमान की मॉग, (घ) (अ) जे.एम.कीन्स, (ङ) (स) नव-कीन्सियन अर्थशास्त्रियों

(4) (क) सर डेविस रॉबटर्सन (ख) प्रो. मार्शल, (ग) General Theory of Employment Interest and Money,1936 (घ) ब्याज तरलता अधिमान सिद्धांत में मॉग की जाने वाली मुद्रा को निष्क्रिय मुद्रा कहा गया है क्योंकि इसपर कोई ब्याज या आय नहीं प्राप्त होती है, (ङ) ब्याज का आधुनिक सिद्धांत कीन्स के ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धांत तथा नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के ब्याज का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के महत्वपूर्ण अंशों को मिलाकर बनाया गया है।

(5) (क) निवेश, बचत, (ख) मुद्रा और बचत, निवेश और संचय (ग) संचय की प्रवृत्ति (घ) भविष्य में संभावित दर, (ङ) विलोम।

19.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेठी, टी.टी. (2007-08), मौद्रिक अर्थशास्त्र , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
2. लाल, एस.एन. (2003), अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
3. सेठ, एम.एल. (2008), मौद्रिक अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा

19.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Dillard, Dudley : *The Economics of J.M. Keynes,* 1948.
- Fisher, Irving : *The Theory of Interest,* 1954.
- Hensen, Alvin H. : *A Guide to Keynes,* 1953.
- Keynes, J.M. : *TheGeneral Theory of Employment, Interest amd Mone,.*1936.

19.14 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त-आई एस एल एम प्रारूप वक्र की व्याख्या कीजिए। तथा इसकी आलोचना कीजिए।

(ख) कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त चित्र द्वारा समझाइए।

इकाई 20 कीन्सोत्तर मुद्रा का माँग सिद्धान्त

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र
20.4 प्रमुख कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री
20.5 बामोल का भण्डार दृष्टिकोण
20.5.1क्रय-विक्रय के उद्देश्य से माँग का विश्लेषण
20.6 एहतियाती मुद्रा का माँग सिद्धान्त
20.7 टोबिन का तरलता अधिमान फलन
20.8 उपभोक्ता माँग सिद्धान्त दृष्टिकोण
20.9 सारांश
20.10 शब्दावली
20.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
20.12 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाईयों में आपने मुद्रा के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया होगा, जिसमें विभिन्न अर्थशास्त्रियों जिनमें मार्शल, पीगू, फिशर, राबर्टसन आदि के मौद्रिक समग्रों का अध्ययन सम्मिलित रहा है। कीन्स ने इसमें एक नया आयाम जोड़ा और कीन्स के बाद के अर्थशास्त्रियों ने कीन्स के सामान्य सिद्धान्त (1936) में निहित विभिन्न मौद्रिक विचारों की अपूर्णता को पूर्ण करने का प्रयास किया है। जिसे कीन्सोत्तर सिद्धान्त कहा जाता है और इससे संबंधित अर्थशास्त्री कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री कहे जाते है।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र के बारे में जान सकेंगे।

2. कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों के बारे में जान सकेंगे।

3. कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र के उद्देश्य एवं प्रतिनिधि के बारे में जान सकेंगे।

4. कीन्सोत्तर मुद्रा माँग के विभिन्न प्रत्यागमों की एक संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

20.3 कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य वास्तविक आर्थिक समस्याओं को आर्थिक विश्लेषण से सम्बद्ध करते हुए कैसे अर्थव्यवस्था कार्य करती है, की स्पष्ट समझ उपलब्ध कराना है। इसका प्रमुख उद्देश्य 'सामान्य सिद्धान्त' को सामान्यीकृत (Eichner and Kregel, 1975, Robinson, 1956) करने हेतु अपूर्ण कीन्सीयन क्रांति को पूर्ण करना है। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त कीन्स के 'सामान्य सिद्धान्त' का आधार है उसी तरह कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का आधार भी प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र में प्रभावपूर्ण माँग से आशय संसाधनों की दुर्लभता के बजाय माँग की दुर्लभता से है जिसका सामना आधुनिक अर्थशास्त्र को करना पड़ता है, जिसमें उत्पादन सामान्तया प्रभावपूर्ण माँग द्वारा सीमित होता है यद्यपि यह स्वीकार किया जाता है कि वर्तमान पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आपूर्ति में विभिन्न प्रकार के अवरोध मौजूद है। नव-प्रतिष्ठित मुख्यधारा के अर्थशास्त्र की स्पष्ट एवं अस्पष्ट आलोचना इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है। वे आर्थिक विचार जो कीन्सोत्तर के रूप में वर्गीकृत किये जाते है उनका एक लम्बा इतिहास रहा है और यह जितना कीन्स तथा केलेकी की विचारधाराओं को प्रदर्शित करता है उतना ही प्रतिष्ठित

अर्थशास्त्री मार्क्स की विचारधारा को भी। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र की तीन अलग परम्पराओं को देखा जा सकता है।

प्रथम परम्परा मार्शल से आरम्भ होती है और इसकी जड़े कीन्स के Treatise on Money तथा The General Theory में सन्निहित है। यह अनिश्चितता पर जोर देती है। डेविसन (1978), मिन्सकी (1975), कान्ह (1978), डेविसन (1992), विनट्राब (1958), टार्सिस (1939, 1947), कीन्स (1936) से सम्बद्ध है। इस परम्परा में समग्र माँग को नियन्त्रित करने की आर्थिक नीतियों में साथ ही साथ, आय नीतियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि मुद्रा मजदूरी का कीमतों के निर्धारण में महत्व है।

दूसरी परम्परा जॉन राबिन्सन एवं उनके अनुयायियों विशेष रूप से केलेकियन के योगदान को स्वीकार करती है। यह निवेश माँग को प्रभावपूर्ण होने के साथ ही प्रभावपूर्ण माँग की असफलता पर जोर देती है। समग्र माँग का नियन्त्रण तथा संगठन जिसमें निवेश पर जोर दिया जाता है इस प्रत्यागम का महत्वपूर्ण नीति निदान है।

तीसरी वेबलेन की संस्थागत परम्परा है। यह प्रक्रिया एवं उद्भव आधारित है और यह आर्थिक व्यवस्था में प्रावैगिक एवं शक्ति/वर्गीय ढ़ाँचे पर जोर देती है। ये संस्थागत तथा संगठनात्मक ढ़ाँचे मूलभूत कार्यविधि को बताते है जहाँ संसाधनों का आंवटन होता है। आर्थिक व्यवहार के निर्धारण में संस्थाओं और सभ्यताओं की महत्वपूर्ण भूमिका कीन्सोत्तर विशेष ता है।

यद्यपि इन तीनों परम्पराओं में विभिन्नताएं हैं, साथ ही साथ कुछ निश्चित विशेषताएं है जो इन सबमें है और आर्थिक विश्लेषण की वास्तविक आर्थिक समस्याओं से संगतता एवं संसार को सामान्य पुरूषों एवं महिलाओं के रहने के लिए एक अच्छा स्थान बनाने एवं अधिक न्याययुक्त एंव समतामूलक समाज को बनाने पर जोर देती है। (To make the world a better place for ordinary men and women to produce a more just and equitable society, Harcourt-1992) वर्ग, शक्ति तथा आय एवं सम्पत्ति के वितरण के मुद्दे इसके विश्लेषण के केन्द्र में हैं।

वास्तव में कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र वास्तविक आर्थिक समस्याओं द्वारा समयोपरि में सृजन करके, उत्पादन करके, वितरण करके एवं अवशेष सामाजिक अतिरेक का उपयोग करके उत्पादन के विस्तार के अध्ययन से सम्बद्ध है। विस्तार पथ असमान होते हैं और आर्थिक व्यवस्थाओं की प्रकृति के अनुसार अप्रत्याशित तरीके से परिवर्तित हो जाते हैं। जिससे आर्थिक प्रक्रियायें अस्थिर हो जाती है और चक्रीय एंव संचयी कारणों के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र विश्लेषण 'साम्यहीन अर्थशास्त्र' से जुड़ा हुआ है। कीन्सोत्तर विश्लेषण प्रविधि 'विवेचन वास्तविकता' है। इसकी तर्क या निर्णय प्रविधि न तो आगमन है और न ही निगमन है। वरन् Retroduction या abduction है।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र एक आर्थिक सम्प्रदाय है जिसकी जड़े जॉन मेनार्ड कीन्स के जनरल थियरी में हैं। यद्यपि इसमें उत्तरवर्ती एवं महत्वपूर्ण विकास बहुत सीमा तक माइकेल केलेकी, जॉन राबिन्सन,

निकोलस काल्डर तथा पाल डेविडसन द्वारा प्रभवित हुआ। कीन्स के जीवनी पर लार्ड स्कीडेल्सकी ने लिखा है कि कीन्सोत्तर सम्प्रदाय कीन्स के कार्यो में सन्निहित उद्देश्य भाव से निकट रूप से, विशेष रूप से प्रचलित मौद्रिक सिद्धान्त और मुद्रा की तटस्थता को अस्वीकार करने से जुड़ा हुआ है।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों का मानना है कि दो अन्य प्रमुख कीन्सियन सम्प्रदायों - नव-कीन्सवादी जो 1950 तथा 1960 के दशकों में प्रचलित, प्रभावपूर्ण तथा स्वीकार्य था, जो नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के वैचारिक धागों से बंधकर 1980 के दशक से मुख्यधारा के समष्टि अर्थशास्त्र के रूप में प्रभावी बना हुआ है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र को कीन्स के विचारों एवं अर्न्तदृष्टि के प्रकाश में आर्थिक सिद्धान्तों के पुननिर्माण के रूप में देखा जा सकता है। ऐसा होते हुए भी शुरूआती दिनों में, 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध में नव-कीन्सवादियों जैसे जॉन राबिन्सन ने स्वयं को कीन्स से दूर करने का प्रयास किया। कुछ कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों ने कीन्स से भी ज्यादा मजदूर स्नेही नीतियों एवं पुनर्वितरण पर प्रगतिगामी विचार व्यक्त किये।

प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र की एक विशेष ता है और माँग दीर्घकाल एवं अल्पकाल दोनों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिससे एक प्रतियोगी बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की प्राकृतिक या स्वचालित प्रवृत्ति नहीं पायी जाती है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का सकारात्मक योगदान यह है कि यह केवल समग्र रोजगार के सिद्धान्त तक ही सीमित नहीं रहता है वरन् उससे आगे बढ़कर आय वितरण, वृद्धि, व्यापार, और विकास जिसमें माँग महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, को भी समाहित करता है जबकि नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र में ये सब केवल आपूर्ति पक्ष द्वारा ही निर्धारित होते है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री प्रथम है जिन्होंने इस मुद्दे को जोरदार तरीके से उठाया कि मुद्रा की आपूर्ति, बैंक साख की माँग का प्रत्युत्तर है। जिससे केन्द्रीय बैंक एक समय में या तो मुद्रा की मात्रा को या ब्याज दर को, लेकिन दोनों का एक साथ चुनाव नहीं कर सकती है। इस विचार को मौद्रिक नीतियों में तेजी से सम्मिलित किया गया, जिसमें मुद्रा की मात्रा के बजाय ब्याज दर को लक्षित किया गया। वित्त के क्षेत्र में हिम्न मिन्सकी ने वित्तीय अस्थिरता/भंगुरता के आधार पर वित्तीय संकट का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। जिसनें वर्तमान समय में लोगों का ध्यान आकर्षित किया है।

20.4 प्रमुख कीन्सोत्तर अर्थषास्त्री

कीन्स के बाद के प्रथम एवं द्वितीय पीढ़ी के प्रमुख अर्थशास्त्री निम्न है-

1. विक्टोरिया चिक 2. पाल डेविडसन 3. एल्फ्रड एचनर 4. ज्याफ हरकोर्ट

5. निकोलस केल्डार 6. माइकेल केलेकी 7. हिम्न मिंसकी 8. बेसिल मूर

9. लुइगी पेसिन्टी 10. जॉन राबिन्सन 11. जी.एल.एस. शैक्ल 12. एन्थोनी थिरवाल

13. सिडनी विन्ट्राब 14. जान क्रेगल 15. एल रेण्डल रे 16. फ्रेडरिक एस.ली

17. फर्नान्डो कार्डिम डि कार्वाल्हो

प्रमुख कीन्सोत्तर सिद्धान्त

- रोजगार गारन्टी, कन्सास सिटी स्कूल
- मौद्रिक परिभ्रमण सिद्धान्त
- नव-चार्टलिज्म;

20.5 बामोल का भण्डार दृष्टिकोण

कीन्स के सट्टे के उद्देश्य से मुद्रा की माँग के स्थान पर विलियम बामोल ने 1952 में क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग से संबंधित एक नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत किया। बामोल व्यावसायिक फर्मो द्वारा वस्तुओं के भण्डार प्रबन्ध के दृष्टिकोण से क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग की व्याख्या की। बामोल का मत है कि जिस प्रकार व्यावसायिक फर्मे वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग में परिवर्तन होने की दशा में क्रय-विक्रय की सुविधा के लिए भण्डार रखते है उसी प्रकार व्यक्ति भी मुद्रा का भण्डार रखते है, क्योंकि इससे वस्तुओं तथा सेवाओं के क्रय-विक्रय में सुवधिा होती है।

भण्डार संचय पर लागत आने के कारण उसे कम करने के लिए वस्तुओं के अनुकूलतम भण्डार की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार व्यक्तियों को भी क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा का अनुकूलतम भण्डार रखना होता है। उसी प्रकार जब व्यक्ति भी क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा रखते है तो उनको भी लागत उठानी पड़ती है क्योंकि वे उस ब्याज का परित्याग करते है जो उन्हें तब प्राप्त होती है जब वे अपनी सम्पत्ति बचत जमा के रूप में रखते है। परित्याग की गयी यह ब्याज आय ही क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा संचय की लागत होती है।

केन्ज से भिन्न बामोल यह तर्क प्रस्तुत करता है कि क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग ब्याज दर पर निर्भर करती है। ब्याज दर में वृद्धि के साथ लोग मुद्रा संचय के एक भाग को ब्याज अर्जित करने वाली बचत जमाओं में लगाने के लिए प्रेरित होंगे।

20.5.1 क्रय-विक्रय के उद्देश्य से माँग का विष्लेषण

बामोल एक ऐसे व्यक्ति के क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा को माँग का विश्लेषण करते है जिसे प्रत्येक माह (निश्चित अन्तराल पर) आय प्राप्त होती है तथा उसे वह एक स्थिर दर से खर्च करता है। रेखाचित्र 1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

रेखाचित्र 1

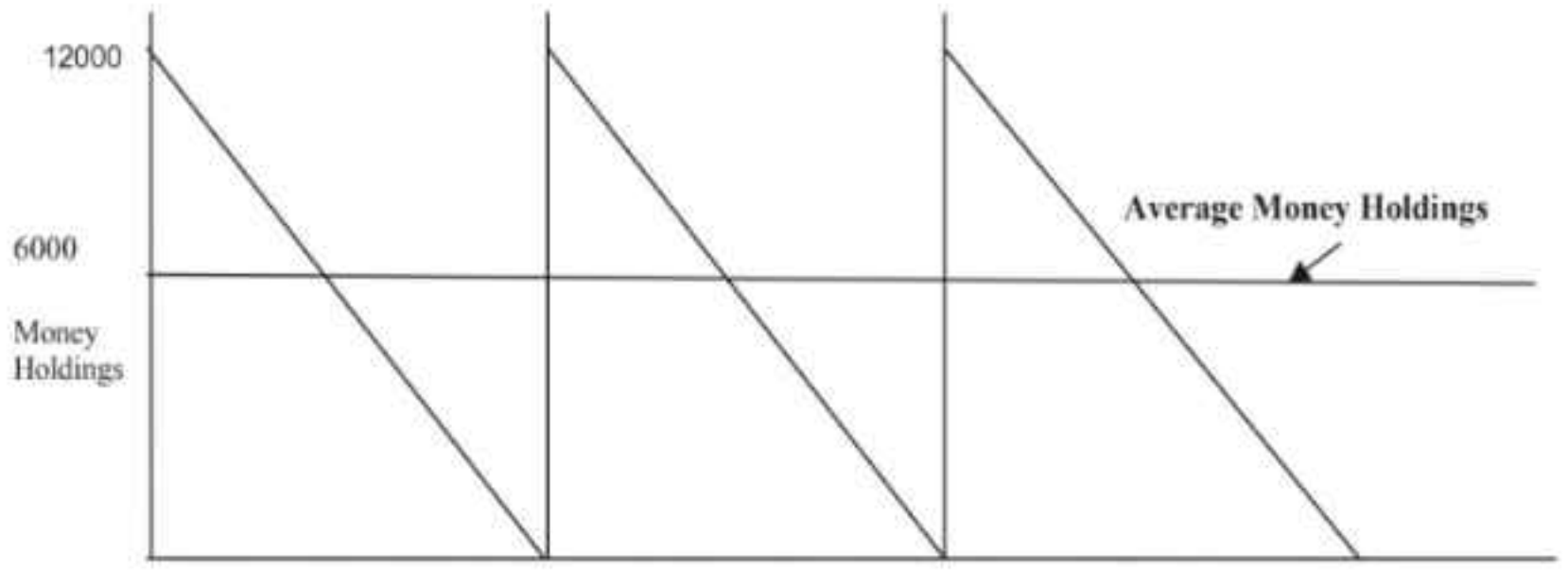

नकद भुगतान के प्रवाह तथा क्रय-विक्रय उद्देश्य से मुद्रा की माँग

माना व्यक्ति को प्रत्येक माह के प्रथम दिन 12000 रू. वेतन चेक प्राप्त होता है तथा प्रथम दिन ही नकद करा लेता है तथा उसे धीरे-धीरे सम्पूर्ण माह 400 रू. प्रतिदिन व्यय करता है। यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि माह में उसका औसत मुद्रा संचय 12000/2 ¢= 6000 रू. होगा। (एक माह की 15 वीं तिथि के पूर्व उसके पास 6000 रू. से अधिक तथा 15 वीं तिथि के बाद 6000 रू. से) जो 6000 रू. के समान औसत मुद्रा संचय बिन्दु-रेखा द्वारा प्रदर्शित है। अतः प्रश्न यह उठता है कि क्या यह मुद्रा के प्रबंध करने की अनुकूलम रणनीति है। सरल रूप में उत्त्र नकारात्मक है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति को उस ब्याज की हानि हो रही है जो वह अर्जित करने वाली बचत-जमाओं में जमा किये होता है। वह अपने मौद्रिक शेषों का इस प्रकार प्रबन्ध कर सकता है जिससे कि कुछ ब्याज आय भी प्राप्त हो सकें। माना कि माह के प्रथम दिन अपना सम्पूर्ण वेतन निकालने के स्थान पर वह केवल आधा वेतन निकालता है (अर्थात् 6000 रू. नकद निकाल लेता है तथा शेष 6000 रू. उस बचत खाते में जमा कर देता है जिससे उसे 5 प्रतिशत ब्याज प्राप्त होता है तथा उसका व्यय प्रतिदिन 400 रू. स्थिर बना रहता है इसे रेखाचित्र 2 द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

रेखाचित्र 2

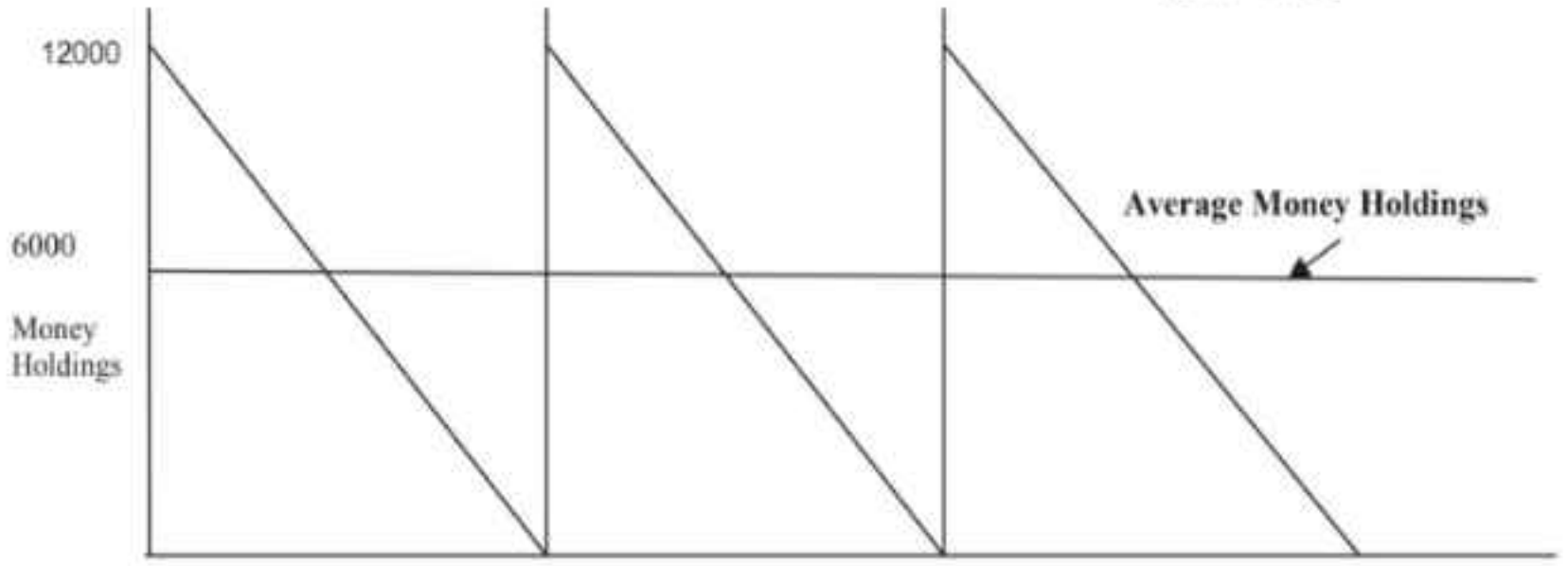

नकद भुगतान के प्रवाह तथा क्रय-विक्रय उद्देश्य से मुद्रा की माँग

यह देखा जा सकता है कि प्रत्येक माह के 15 वें दिन के अन्त में उसका 6000 रू. का मुद्रा संचय कम होते-होते शून्य हो जायेगा। अब वह प्रत्येक माह की 16 वीं तिथि की सुबह 6000 रू. निकाल सकता है और उसके बाद उसे 400 रू. प्रतिदिन के हिसाब से 15 दिनों तक खर्च करता है। यह कोषों को प्रबंध करने की श्रेष्ठ विधि है क्योंकि वह प्रत्येक माह 15 दिन 6000 रू. पर ब्याज अर्जित करेगा। इस मौद्रिक प्रबंध योजना में औसत मुद्रा संचय 6000/2 = 3000 रू. होता है।

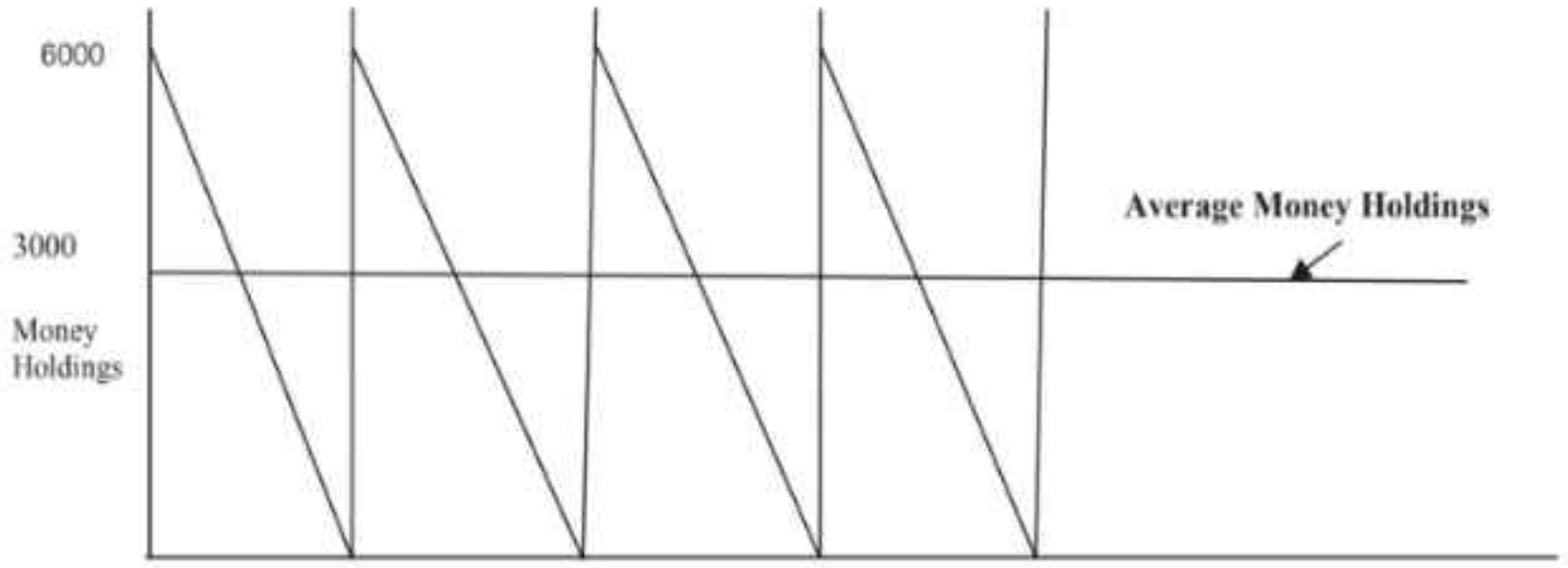

बामोल ने यह तर्क दिया है कि मुद्रा संचय की अनुकूलतम धनराशि परित्यान की गयी ब्याज-आय तथा दलाली शुल्क की लागत को न्यूनतम करके निर्धारित की जाती है। बामोल ने इस बात की स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार की है-माना कि वेतन चेक की राशि को Y व्यक्ति के बैंक जाने पर प्रत्येक बार उसके द्वारा निकाली गयी औसत धनराशि को C नकद निकालने के लिए बैंक तक जाने की बारमबारता को T बैंक तक प्रत्येक बार उसके आवागमन में उसके द्वारा सहन की जाने वाली शुल्क को b से प्रदर्शित किया जाता है। जिसे $C = \sqrt{2} / r$

इसका अभिप्राय यह है कि लागत को न्यूनतम करने वाली नकद निकालने की औसत धनराशि दलाली शुल्क के दुगुने तथा व्यक्ति की आय के गुणनफल को ब्याज दर से विभाजित करने से प्राप्त मूल्य का वर्गमूल होता है। इन माMलों के विस्तार का सारांश पाया जा सकता है Barro और Fischer 1976 और Cuthbertson और Barlow 1991, Roley 1985।

20.6 एहतियाती मुद्रा का माँग सिद्धान्त

मुद्रा की एहतियाती माँग उत्पन्न होती है क्योंकि व्यक्ति आय के बारे में अनिश्चित होता है जो उसे प्राप्त होनी चाहिए अथवा जो मुद्रा उसके पास है ''बामोल''। इस तरह अधिक मुद्रा जो एक व्यक्ति रखता है तो उसे मुद्रा पर लागत भी उठानी पड़ती है लेकिन कोई व्यक्ति अधिकतम मुद्रा अपने पास रखता है तो उसे अधिकतम ब्याज की हानि सहन करनी पड़ती है। इसलिए व्यक्ति एहतियाती मुद्रा अपने पास इस तरह रखना चाहता है कि उसे ब्याज की हानि भी न हो और नकद मुद्रा भी पर्याप्त मात्रा में रख सकें। ''Dornbusch and fischer''।

एहतियाती मुद्रा का सिद्धान्त का विक्रय भण्डार सिद्धान्त के सुधार के रूप में हुआ है जो यह कहता है कि आय एवं व्यय में एक निश्चितता होती है। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि आय एवं व्यय का वितरण की जो संभावना है वह ज्ञात होती है। उदाहरण के लिए ''Miller nad Orr'' ने ''आय एवं वितरण के प्रवाह को अनियमित मानते हुए भण्डार सिद्धान्त का एक ढ़ाँचा तैयार किया।'' चूंजपदापद के अनुसार नियमित अन्तराल पर एक आर्थिक इकाई दी गयी राशि के कुल व्यय का सामना करती है लेकिन इस समयावधि में नकद के आवागमन का समय अनिश्चित होता है।

Barro and Fischer, 1976 and Cuthdertron and Barlow 1991 इन लोगों ने विभिन्न सिद्धान्तों के अध्ययन से एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त का सार प्रस्तुत किया। Akerlof and Milbourne 1980, Milbrurne 1983 and Buckholtz and wason 1953इन लोगों ने एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त का एक नवीन माडल प्रस्तुत किया। मुद्रा के भण्डार के महत्व की वजह से मुद्रा को परिसम्पत्ति मानते हुए कई सारे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। परिसम्पत्ति या पोर्टफोलियो मॉडल वाले स्कूल से संबंधित है जो मुद्रा की माँग को पोर्टफोलियों के चुनाव की समस्या के संदर्भ में देखता है। परिसम्पत्तियों को पोर्टफोलियों को धन के वितरण के समस्या के रूप में मुद्रा की माँग का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया गया है परिसम्पत्ति के जोखिम और अनुमानित प्रतिफल पर। आर्थिक उपज, प्रतिपादन तरलता और सुरक्षा के अलावा लेन-देन को आसान बनाने के रूप में ऐसी सेवाओं में शामिल है। ये मॉडल ब्याज दरों और वास्तविक मुद्रा के माँग के बीच के संबंध को प्रदर्शित करने के लिए विकसित किया गया है। वे मुद्रा और मुद्रा की माँग की निर्धारण करने में महत्वपूर्ण कारक के रूप में तरलता के महत्व को दर्शाते है।

केन्ज के मूल तरलता वरीयता अनुसूची के वैकल्पिक व्याख्या के रूप में भविष्य में ब्याज दरों में अन्तर को प्रदर्शित करता है, टोबिन ने बताया कि व्यक्तियों के जोखिम से बचने के व्यवहार का सिद्धान्त तरलता वरीयता और मुद्रा के माँग तथा ब्याज के बीच एक ऋणात्मक संबंध को प्रदर्शित करता है। दरअसल यह सिद्धान्त जोखिम से बचने के पोर्टफोलियों प्रबंध के सरल सिद्धान्त पर

आधारित है। इस ढाँचे में विभिन्न परिसम्पत्तियों का जोखिम/लाभ व्यक्ति के स्वभाव द्वारा निर्धारित इष्टतम पोर्टफोलियों संरचना है जो उपयोगिता के अनुरूप उपलब्ध अवसरों को स्वीकार करने से प्राप्त भी है।

टोबिन (1958) का मानना है कि एक निवेशकर्त्ता के समक्ष यह समस्या होती है कि वह अपने वित्तीय परिसम्पत्तियों के पोर्टफोलियों में कितना अनुपात मुद्रा के रूप में तथा कितना ब्याज वाले ऋणपत्रों के रूप में रखें। व्यक्तियों के पोर्टफोलियों में शेयर जैसे अधिक जोखिमपूर्ण परिसम्पत्ति याँ भी हो सकती है। इस संबंध में टोबिन ने तर्क दिया कि एक व्यक्ति का विवेकपूर्ण व्यवहार यह होता है कि वे अपनी परिसम्पत्तियों का वह पोर्टफोलियों रखें जिसमें ऋणपत्र तथा मुद्रा दोनों का ही एक संतुलित संयोग हो। यदि परिसम्पत्ति धारक अपनी पोर्टफोलियों में ऋणपत्रों जैसी जोखिमपूर्ण परिसम्पत्तियों को अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में रखता है तो उसे अधिक औसत प्रतिफल भी प्राप्त होगा किन्तु वह अपेक्षाकृत अधिक जोखिम भी सहन करेगा। टोबिन का विचार है कि एक जोखिम से दूर रहने वाला व्यक्ति उस पोर्टफोलियों का चुनाव नहीं करेगा जिसमें सभी जोखिमपूर्ण ऋणपत्र हो या उसका अधिक अनुपात हो।

20.7 टोबिन का तरलता अधिमान फलन

टोबिन ने ब्याज दर तथा मुद्रा के माँग के बीच संबंध को प्रदर्शित करने वाला अपना तरलता अधिमान फलन व्युत्पन्न किया। उनका तर्क है कि ब्याज दर (ऋणपत्रों पर प्रतिफल की दर) में वृद्धि होने पर सामान्यता सम्पत्ति धारक अपनी सम्पत्ति को अपेक्षाकृत अधिक अंश ऋणपत्रों के रूप में रखने के लिए आकर्षित होंगे तथा अपने सम्पत्ति को मुद्रा के रूप में संचय में कमी करेंगे। इसके विपरीत अपेक्षाकृत कम ब्याज दर पर वे अपने पोर्टफोलियों में अधिक मुद्रा तथा कम ऋणपत्र रखेंगे। इसका अभिप्राय यह कि केन्ज के सट्टे के उद्देश्य से मुद्रा की माँग के समान टोबिन पोर्टफोलियों दृष्टिकोण के अन्तर्गत परिसम्पत्ति के रूप में मुद्रा का माँग फलन (अर्थात् तरलता अधिमान फलन) नीचे की ओर गिरता हुआ होता है जैसाकि रेखाचित्र 3 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

फिशर (1975) ने यह तर्क दिया कि आर्थिक व्यक्ति का जोखिम से बचने के व्यवहार का अकेले मुद्रा का संचय कोई आधार प्रदान नहीं करती क्योंकि टोबिन के अनुसार मुद्रा पूरी तरह से जोखिम मुक्त नहीं होती। एक अन्य मॉडल अर्न्तव्यापी पीढ़ी मॉडल भी मुद्रा के भण्डार मूल्य फलन के महत्व को दर्शाता है। थामस साजेन्ट एवं नील वालेरस के द्वारा 1980 में इस मॉडल को ख्याति मिली जिसको सेम्युलसन के द्वारा आरम्भ किया गया था। अतिव्यापी पीढ़ी मॉडल एक संतुलित गतिशील मॉडल है जो भिन्न-भिन्न पीढ़ियों के बचत के महत्व को बताती है।

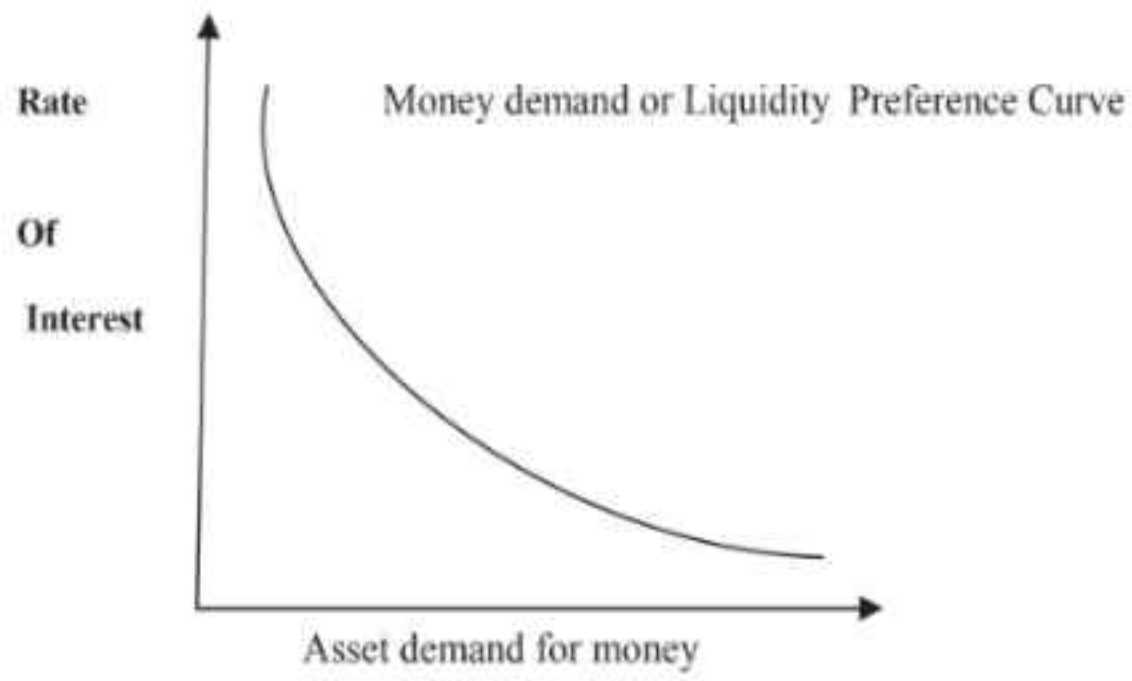

मुद्रा के वर्तमान लेन-देन को पूरी तरह से नजरअंदाज करते हुए मुद्रा को विनिमय फलन के साथ विशुद्ध रूप से एक परिसम्पत्ति माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्म के समय से ही कुछ निश्चित वस्तुओं का उपभोग करता है जो कि कम रिकार्ड होते है और अगली समयावधि में उपभोग के लिए उपलब्ध नहीं होते है। अर्थात् इन्हें पुनः उपभोग के लिए संग्रहित नहीं किया जा सकता है। यद्यपि म्दबसवूउमदज का विनिमय मुद्रा के साथ किया जा सकता है जिसे किसी समय अवधि में संग्रहित किया जा सकता है। किसी भी अवधि में युवा अपने उपभोग की वस्तुओं का विनिमय पुरानी पीढ़ी से करते है जो पुरानी-पीढ़ी को उस अवधि में उपभोग को सुविधाजनक बनाती है।

इस प्रकार ऐसा लगता है कि इन सभी मॉडल में मुद्रा ही विनिमय का माध्यम है लेकिन इसके भण्डारण मूल्य की क्षमता सम्भावित उपभोग के बदलाव की सुविधा देती है। इस प्रकार से मॉMल्स हमें यह बताने का प्रयत्न करते है कि मुद्रा की माँग परिसम्पत्ति के रूप में मानते है न कि विनिमय के रूप में। इन मॉडलों की मुख्य आलोचना इस आधार पर किया गया है कि ये इस बात को स्पष्ट करने में असफल होते है कि परिसम्पत्तियों के दूसरे रूप की अपेक्षा मुद्रा के रूप में क्यों रखा जाता है जबकि वहाँ पर कम जोखिम और धनात्मक ब्याज भी मिलता है।

19.8 उपभोक्ता माँग सिद्धान्त दृष्टिकोण

मुद्रा का विश्लेषण फ्रीडमैंन के उपभोक्ता के माँग सिद्धान्त के अन्तर्गत किया गया है। जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु का संग्रहण इसलिए करता है कि उस वस्तु का उपभोग कर सकें। यह सिद्धान्त शिकागो स्कूल से संबंधित है। जिसमें मुद्रा की माँग को किसी टिकाऊ सामान के माँग की परम्परिक सिद्धान्त का प्रत्यक्ष विस्तार बताया गया है। फ्रीडमैंन 1956 ने मुद्रा को परिसम्पत्तियों के एक ऐसे प्रकार के रूप में मानते है जिसमें सम्पत्ति संचय करने वाले अपनी सम्पत्ति के एक भाग को तरल रख सकता है। फ्रीडमैंन के अनुसार ''व्यक्ति मुद्रा का संचय उसके द्वारा प्रदान

की जाने वाली सेवाओं के लिए करते है। यह ध्यान रहे कि मुद्रा द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से अभिप्राय सामान्य क्रय-शक्ति से होता है। मुद्रा की माँग से संबंधित उनका दृष्टिकोण न तो मुद्रा संचय के किसी उद्देश्य पर विचार करता है और न ही यह सट्टा तथा क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग के बीच कोई अन्तर करता है। फ्रीडमैंन मुद्रा की माँग को केवल पूँजीगत परिसम्पत्तियों की माँग के सामान्य सिद्धान्त के प्रयोग के रूप में ही मानते है।

फ्रीडमैंन का मुद्रा नकद माँग फलन (M^d) को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$M^d = f\ (W, h, r_m, r_b, r_e, P, \quad \Delta / P.\ U)$$

चूँकि वास्तविक मुद्रा शेषों की माँग की नकद माँग को कीमत स्तर द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त किया जाता है अतः वास्तविक मुद्रा शेष को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है-

$$M^d = f\ (W, h, r_m, r_b, r_e, \ \Delta P / p.\ U)$$

जहाँ M^d मुद्रा की नकद माँग, M^d/p वास्तविक मुद्रा शेष की माँग, W व्यक्तियों की सम्पत्ति, h व्यक्तियों द्वारा संचित मानवीय सम्पत्ति तथा कुल सम्पत्ति का अनुपात, r_m ब्याज की दर, r_b ऋणपत्रों पर ब्याज की दर, r_e शेयरों पर प्रतिफल की दर, P कीमत स्तर, P / p कीमत स्तर में परिवर्तन तथा U संस्थागत तत्वों को प्रदर्शित करते है।

यह विशेष महत्वपूर्ण है कि मुद्रा की माँग को निर्धारित करने वाला प्रमुख तत्व व्यक्तियों की सम्पत्ति होती है। सम्पत्ति के अन्तर्गत फ्रीडमैंन ने ऋणपत्र शेयर या मुद्रा जैसी गैर-मानवीय सम्पत्ति ही नहीं सम्मिलित करते जिनसे प्रतिफल की विभिन्न दरें प्राप्त होती है बल्कि मानवीय पूँजी को भी सम्मिलित करते है।

कीन्स के सिद्धान्त के विपरीत फ्रीडमैंन ने यह माना कि लोग कैम्ब्रीज स्कूल के परिमाणात्मक सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा का संग्रह करते है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी विश्लेषण किया कि किसी व्यक्ति विशेष के विभिन्न परिस्थितियों में कितनी मुद्रा की आवश्यकता होती है। एक छोटा सा अन्तर फ्रीडमैंन सिद्धान्त और उसके पूर्व के सिद्धान्तों में यह है कि फ्रीडमैंन का विश्लेषण बृहद-मुद्रा पर आधारित है जबकि पहले के सिद्धान्त नैरो मनी पर आधारित है। फ्रीडमैंन ने केन्जोपरान्त मुद्रा के माँग के सिद्धान्तों का अनुसरण किया जहाँ मुद्रा वित्तीय परिसम्पत्ति का एक हिस्सा माना जाता है। फ्रीडमैंन ने बताया कि इन वास्तविक वस्तुओं को भी पोर्टफोलियों में शामिल करना चाहिए क्योंकि ये कई प्रकार की सेवाओं को उत्पन्न करते है। फ्रीडमैंन का मत है कि ''परिवर्तनशील अवसर लागत और अनुमानित मुद्रा स्फीति की दर का मुद्रा माँग फलन में सैद्धान्तिक महत्व होता है।''वर्तमान में उपभोक्ता का माँग सिद्धान्त मौद्रिक सिद्धान्त के क्षेत्र में मुख्य भूमिका अदा कर रहा

है। विचार यह है कि मौद्रिक समूह जैसे M1, M2, M3 और L के गणना में समान भारांको का उपयोग किया जाए।

प्रश्न:4 बहुविकल्पी प्रश्न

1. निम्न अर्थशास्त्रियों में कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री कौन है?

(क) मार्शल (ख) जॉन राबिन्सन

(ग) पीगू (घ) विकसेल

2. भण्डार का सिद्धान्त किसने दिया है?

(क) मार्शल (ख) टोबिन

(ग) बामोल (घ) कीन्स

उत्त्रः 1. (ख), 2. (ग

20.9 सारांश

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र असाम्य, गैर-बाजार क्लीयरिंग विश्लेषण और समयोपरि परिवर्तन से संबंधित है। वृद्धि एवं प्रावैगिकी इसके केन्द्रीय अंग है। इसलिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विस्तार पथ की अस्थिर प्रकृति की विवेचना, विश्लेषण का प्रमुख केन्द्र बन जाता है। कीन्सोत्तर आर्थिक विश्लेषण में बेरोजगारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है क्योंकि यह आर्थिक संकट से जुड़ा हुआ मुद्दा है। प्रभावपूर्ण माँग विशेष रूप से निवेश माँग को अर्थव्यवस्था की कारक शक्ति के रूप में देखा जाता है। जिसमें पूँजी संचय प्रत्याशा और वितरणात्मक प्रभावों के साथ में, वृद्धि एवं व्यापार चक्र सिद्धान्तों की धुरी होती हैं। निवेश वितरण और कीमत निर्धारण जो प्रतिस्पर्धा से संबद्ध है से गहराई से जुड़ा हुआ है। मुद्रा एवं वित्त् विश्लेषण के आरम्भ से ही वास्तविक अर्थव्यवस्था सं संबद्ध होते हैं।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का एक महत्वूपर्ण निष्कर्ष यह है कि एक दिये गये निवेश के स्तर पर अर्थव्यवस्था वहाँ संतुलन में होती है जहाँ बचत निवेश के बराबर होती है, एवं पूँजीपतियों की बचत प्रवृत्ति कम होती हैं एवं राष्ट्रीय आय में उनका हिस्सा अधिक होने के कारण मजदूरों का हिस्सा कम होगा। यह स्पष्ट कथन महत्वूपर्ण है कि क्योंकि यह नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के दावें का खण्डन करता है कि पूँजीपति इसलिए ऊँचे आय स्तर का आनन्द लेता है क्योंकि वह बचत करने के लिए कष्ट उठाता है।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों का यह परिणाम इस धारणा पर आधारित है कि बचत आय स्तर में होने वाले पविर्तनों से निष्क्रिय रूप से संबद्ध है और निवेश पूँजीपतियों के भविष्य में प्रत्याशाओं से गहनता से संबद्ध है। यदि हम आशावादी है तो निवेश बढ़ेगा, वृद्धि होगी और पूँजीपतियों का राष्ट्रीय में हिस्सा भी बढ़ेगा और आय के बढ़ने पर पूँजीपति बचत को बढ़ाकर नये कीन्सीय संतुलन के स्तर पर लायेगा जहाँ बचतें निवेश के बराबर होगी।

20.10 शब्दावली

मॉग फलन: किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी उपभोक्ताओं द्वारा मॉगी जाने वाली मात्राओं का गणितीय सम्बन्ध व्यक्त करने वाला फलन मॉग फलन कहलाता है।

पूर्ति फलन: किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उत्पादको द्वारा उस वस्तु की पूर्ति की जाने वाली मात्राओं का गणितीय सम्बन्ध पूर्ति फलन कहलाता है।

मॉग का नियम: अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु या सेवा की कीमत मे वृद्धि होने पर उसकी मॉग घटती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी मॉग बढ़ती है। अर्थात किसी वस्तु की कीमत और उसकी मॉगी जाने वाली मात्रा मे विपरीत सम्बन्ध होता है।

मॉग: एक दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की मॉग, उस वस्तु की वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय मे क्रेताओं द्वारा खरीदी जाऐगी।

पूर्ति: किसी वस्तु की पूर्ति वस्तु की उस मात्रा से है जिसे विक्रेता एक निश्चित समय मे तथा एक निश्चित कीमत पर बाजार मे बेचने को तैयार है।

20.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Rousseas, Stephen (1986), *Post Keynesian Monetary Economics*, Macmillan, London.
2. Eichner, Alfred (1985), *Toward a new economics: Essays in post Keynesian and Institutionalist theory*, Macmillan, Houndmills.
3. Davidson, Paul (1972), *Money and the real world*, Macmillan, London.
4. Kaldor, N. (1982), *The Scourge of Monetarism*, Oxford, UK.
5. Weintraub, Sidney (1978), *Keynes, Keynesian and Monetarists*, Philadelphia; University of Philadelphia press.
6. Philip Arestis (1992), *Post-Keynesian Approach to Economics*, Edward Elgar.
7. Sheila, C. Dow (1987), Post-Keynesian Monetary theory for an open economy, *Journal of Post Keynesian Economics*, Vol. IX, No. 2.
8. Allin, Cottrell (1994), post Keynesian Monetary economics: A critical Survey, *Cambridge Journal of Economics*, Vol. 18, pp. 587-605.
9. Subrananian, S. Sriram (1999), Survey of Literature on Demand for money: Theoretical and empirical work with special reference to error-correction models IMF working paper.

10. Laidler, D.E.W. (1993), *The Demand for Money: Theories Evidence and Problems,* (New York: Harperwollins).
11. Friedman, M. (ed) (1956), *Studies in the Quantity Theory of Money*, University of Chicago Press.

20.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न:1 बामोल के भण्डार सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न:2 एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न:3 कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई-21 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त: फिशर एवम् कैम्बिज दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा:

21.1 प्रस्तावना
21.2 उद्देश्य
21.3 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त
21.3.1. नकद लेन-देन दृष्टिकोण
21.3.2. नकद शेष दृष्टिकोण
21.3.3. तुलनात्मक विश्लेषण (लेन-देन एवं शेष दृष्टिकोण)
21.4 सारांश
21.5 शब्दावली
21.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
21.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
21.9 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना -

राबर्टसन एवं केंज दोनों ही अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि मुद्रा के मूल्य से अभिप्राय मुद्रा की 1 इकाई से खरीदी जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा से है। मुद्रा का मूल्य अथवा क्रय शक्ति वस्तुओं तथा सेवाओं के सामान्य कीमत स्तर पर निर्भर करती है। सामान्यतः मुद्रा के मूल्य और सामान्य कीमत स्तर (वस्तुओं तथा सेवाओं का औसत मूल्य) में विपरीत तथा मुद्रा की मात्रा और वस्तुओं के मूल्य में आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है। मुद्रा के मूल्य और कीमत से सम्बन्धित अति प्रारम्भिक सिद्धान्त मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त का अध्ययन इस इकाई में किया जायेगा। उन कारकों की व्यापक समझ पैदा होगी जो मुद्रा, मुद्रा मूल्य, सामान्य कीमत तथा सौदों की मात्रा आदि से क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।

21.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

- वस्तु के मूल्य तथा मुद्रा के मूल्य में अन्तर कर सकें,
- मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त एवं उसके जन्म सम्बन्धी विवाद को समझ सकें,
- परिमाण सिद्धान्त के विभिन्न दृष्टिकोणों के बीच तुलनात्मक अन्तर कर सकें और
- विभिन्न कीमत स्तरों से परिचित हो सकें।

21.3 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त -

21.3.1 नकद लेन-देन दृष्टिकोण -प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (जिसका प्रयोग मार्क्स ने रिकार्डो तथा उसके समवर्ती अर्थशास्त्रियों के लिए किया) ने मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त वणिकवादी विचारक डेविड ह्यूम की पुस्तक Political Discourse से प्राप्त किया। सिद्धान्त का सर्वप्रचलित रूप 1911 में इरविंग फिशर ने अपनी कृति Purchasing Power of Money में दिया। मुद्रा मूल्य का निर्धारण मुद्रा की मांग और मुद्रा की पूर्ति से होता है। मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त यह मान लेता है कि मुद्रा की मांग स्थिर रहती है और मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत एवं आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है। जॉन लॉक के अनुसार मुद्रा के दो मूल्य होते हैं- (1) विनिमय मूल्य और (2) उपयोग मूल्य। केन्टीलान ने इस ओर संकेत किया कि मुद्रा की कुल पूर्ति जानने के लिए मुद्रा की तीव्रता पर विचार करना आवश्यक है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त ह्यूम, लॉक, केन्टीलान तथा फिशर एवं अन्य अर्थशास्त्रियों के सामूहिक प्रयास का फल है।

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का कथन -

फिशर के अनुसार, 'अन्य बातें स्थिर रहने पर जब चलन में मुद्रा का परिमाण बढ़ता है तो कीमत स्तर भी प्रत्यक्ष अनुपात में बढ़ता है तथा मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है।'

टाजिंग के अनुसार, "अन्य बातें समान रहने पर मुद्रा की मात्रा दुगुनी कर देने से कीमतें पहले से दुगुनी तथा मूल्य आधा रह जायेगा। अन्य बातें समान रहने पर मुद्रा की मात्रा आधी कर देने पर मुद्रा का मूल्य पहले से दुगुना तथा कीमतें आधी हो जायेंगी।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से परिमाण सिद्धान्त के बारे में दो बातें स्पष्ट होती हैं-

1. मुद्रा की मात्रा और सामान्य कीमत स्तर में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।

2. मुद्रा की मात्रा तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है। इस तथ्य को एक तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

क्रम	मुद्रा की मात्रा	वस्तु एवं सेवा की मात्रा	सामान्य कीमत स्तर	मुद्रा का मूल्य
	M	T	P	1/P
1-	20	20	$\frac{M}{T} = \frac{20}{20} = 1$	$\frac{1}{P} = \frac{1}{1} = 1$
2-	40 (दुगुना)	20	$\frac{M}{T} = \frac{40}{20} = 2$ (दुगुना)	$\frac{1}{P} = \frac{1}{2} = 0.5$ (आधा)
3-	10 (आधा)	20	$\frac{M}{T} = \frac{10}{20} = 0.5$ (आधा)	$\frac{1}{P} = \frac{1}{0.5} = 2$ (दुगुना)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि मुद्रा की मात्रा दुगुना करने पर सामान्य कीमत स्तर दुगुना तथा मुद्रा का मूल्य आधा रह जाता है तथा इसके विपरीत भी।

मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त -परिमाण सिद्धान्त को समझने के लिए मुद्रा की मांग और पूर्ति को समझना आवश्यक है।

मुद्रा की माँग -वस्तुओं तथा सेवाओं को प्राप्त करने के लिए मुद्रा की मांग की जाती है। अतः किसी समय विशेष पर मुद्रा की मांग विनिमय की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि कुल सौदों की मात्रा T तथा सामान्य कीमत पर P है तो कुल मुद्रा की मांग ज्ञात की जा सकती है-

कुल मांग (D) = P (सामान्य कीमत स्तर पर) X T(कुल सौदे)

मुद्रा की पूर्ति -प्रचलन में विद्यमान मुद्रा (m) प्रचलित मुद्रा का संचलन वेग (v) साख मुद्रा (m^1) तथा साख मुद्रा का संचलन वेग मिलकर मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण करते हैं।

मांग और पूर्ति की उपर्युक्त धारणाओं का ही प्रयोग करके फिशर ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का समीकरण दिया।

मुद्रा परिमाण सिद्धान्त अर्थात् नकद सौदा समीकरण -

मुद्रा की मांग = मुद्रा की पूर्ति

$$P.T. = m.v.$$

फिशर का संशोधित समीकरण -

मुद्रा की मांग = मुद्रा की पूर्ति

$$P.T. = m.v. + m^1v^1$$

या $$P = \frac{m.v. + m^1v^1}{T}$$

या $$\frac{1}{P}(\text{value of money}) = \frac{T}{m.v. + m^1v^1}$$

यहाँ,

m = प्रचलन में मुद्रा या करेन्सी की मात्रा

v = प्रचलित मुद्रा या करेन्सी का प्रचलन वेग

(प्रचलन वेग से अभिप्राय मुद्रा या साख की एक इकाई के प्रयोग की आवृत्ति से है। यदि 1 रूपये के नोट को दिये हुए समय में 10 बार क्रय-विक्रय के लिए प्रयोग किया जाता है तो उसका संचलन वेग 10 होगा)।

m^1 = बैंक मुद्रा या साख मुद्रा की मात्रा

v^1 = साख मुद्रा की चलन गति

p = कीमत स्तर

$\frac{1}{P}$ = मुद्रा का मूल्य

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण -फिशर के समीकरण को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

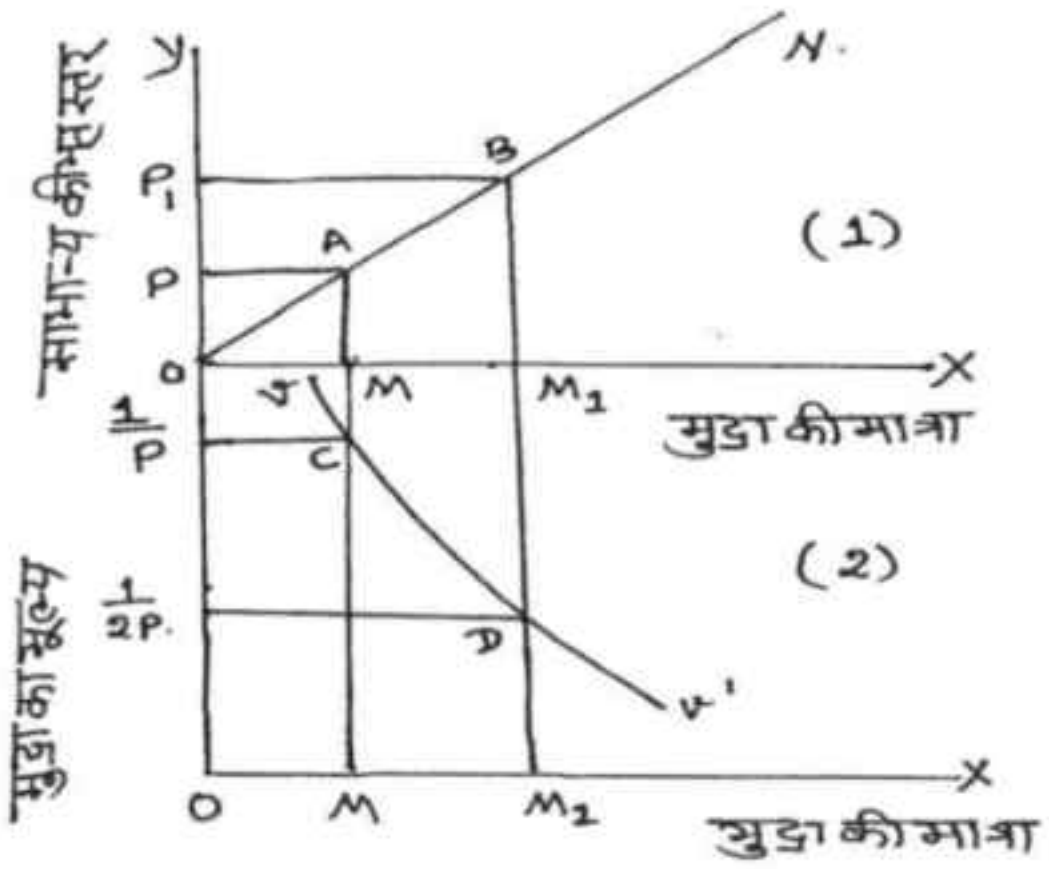

चित्र संख्या-1 में,

i. x अक्षर पर मुद्रा की मात्रा तथा y अक्ष कीमत स्तर प्रदर्शित है।

ii. मुद्रा की मात्रा OM से OM' (दुगुना) करने पर कीमत स्तर OP से बढ़कर OP' (दुगुना) हो जाता है।

iii. ON रेखा मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर के आनुपातिक सम्बन्ध को व्यक्त करती है।

चित्र संख्या-2 में,

i. Xअक्षर पर मुद्रा की मात्रा तथा Y अक्ष पर मुद्रा का मूल्य (1/P) व्यक्त है।

ii. मुद्रा की मात्रा OM से बढ़ाकर OM' (दुगुना) करने पर मुद्रा का मूल्य 1/P से घटकर 1/2P (आधा) हो जाता है।

iii. VV' मुद्रा की मात्रा तथा मुद्रा के मूल्य के बीच विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध की व्याख्या करता है।

फिशर के समीकरण की मान्यताएँ:- फिशर के समीकरण को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

1. चलन मुद्रा तथा साख मुद्रा का अनुपात स्थिर रहता है।
2. चलन मुद्रा तथा साख मुद्रा का प्रचलन वेग स्थिर रहता है।
3. मूल्य स्तर निष्क्रिय रहता है अर्थात् M, M',V, V' तथा T को प्रभावित नहीं करता है।
4. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पाया जाता है और T की मात्रा स्थिर रहती है।
5. यह सिद्धान्त दीर्घकाल की मान्यता पर आधारित है अर्थात् दीर्घकाल में मुद्रा की मात्रा तथा सामान्य कीमत स्तर में समन्वय स्थापित हो जाता है।

नकद सौदा समीकरण की आलोचनाएँ -

1. यह सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओं, जिनकी व्याख्या उपर की गयी है, पर आधारित है। ए मान्यताएँ सिद्धान्त की व्यावहारिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है।

2. यह सिद्धान्त अल्पकाल की उपेक्षा करता है जबकि अर्थव्यवस्था की अल्पकालीन समस्याएँ अधिक महत्वपूर्ण होती हैं और उनका विश्लेषण अधिक उपयोगी हुआ करता है।

3. अन्य वस्तुओं तथा सेवाओं की भांति मुद्रा का मूल्य भी मूल्य के सामान्य सिद्धान्त द्वारा निर्धारित हो सकता है। पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है। यह सिद्धान्त मौद्रिक तथा वास्तविक क्षेत्र को अलग कर देता है।

4. यह एक पक्षीय सिद्धान्त है, क्योंकि पूर्ति पक्ष पर अधिक बल देता है।

5. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन, मूल्य को किस प्रकार प्रभावित करता है, इस प्रक्रिया की व्याख्या नहीं करता है।

6. यह ब्याज दर की उपेक्षा करता है जबकि हाट्रे, हायक तथा कींस का मानना है कि मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर के बीच का सम्बन्ध ब्याज द्वारा नियमित होता है।

7. व्यवहार में बहुत सौदे वस्तु विनिमय तथा साख के द्वारा किये जाते हैं। जबकि यह सिद्धान्त नकद लेन-देन के स्तर द्वारा ही मुद्रा की क्रयशक्ति को मापता है। अतः क्रयशक्ति का सही माप प्रस्तुत नहीं करता है।

8. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का मूल्य पर प्रभाव कुछ समय बाद पड़ता है, जबकि फिशर का समीकरण इस समय विलम्बता पर ध्यान नहीं देता है।

9. यह सिद्धान्त संचित मुद्रा पर ध्यान नहीं देता है।

10. व्यापार चक्र की व्याख्या करने में असफल है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि मूल्य गिरते हैं तो मुद्रा की मात्रा बढ़ाकर मूल्य बढ़ाया जा सकता है परन्तु 1929 की विश्वव्यापी मन्दी के दौरान अनुभव बताते हैं कि ऐसा हो नहीं पाया।

मुद्रा का प्रचलन या चलन गति:- यदि 10 रुपये का नोट दिन में 10 बार विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग होता है तो उसका दैनिक प्रचलन वेग 10 होगा। मुद्रा की कुल मात्रा में इसको सम्मिलित करते हैं। किसी देश में मुद्रा का चलन गति निकालने के लिए एक वर्ष के कुल राष्ट्रीय उत्पादन में मुद्रा की चलन मात्रा से भाग दे दिया जाता है।

$$\text{प्रचलन गति (v)} = \frac{\text{कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)}}{\text{प्रचलन में मुद्रा}}$$

चलन गति को निर्धारित करने वाले तत्व -

1. मुद्रा की मात्रा यदि कम है तो चलन गति अधिक होगी क्योंकि वह बार-बार प्रयोग में लायी जायेगी।
2. यदि क्रय में उधार लेन देन का प्रचलन है, तब चलन वेग कम होगा।

3. यदि जनता में बचत की आदत कम है तब चलन गति अधिक होगी।
4. यदि जनता तथा व्यापारियों में तरलता पसंदगी अधिक है तब चलन वेग कम होगा।
5. यदि मजदूरी भुगतान देर से होता है तो लोग अपने पर अधिक नकद रखेंगे और चलन गति कम होगी।
6. यदि यातायात तथा संदेश वाहन पूर्ण विकसित अवस्था में है तो व्यापार का आकार बढ़ेगा परिणामस्वरूप चलन वेग भी बढ़ेगा।

21.3.2 नकद शेष दृष्टिकोण-कैम्ब्रिज स्कूल के अर्थशास्त्रियों (मार्शल, पीगू तथा राबर्टसन) ने स्पष्ट किया कि सामान्य कीमत स्तर मुद्रा की कुल मात्रा पर निर्भर नहीं करता, बल्कि मुद्रा की उस मात्रा पर निर्भर करता है जिसे लोग अपने पास नकद रखते हैं। यही कारण है कि इस दृष्टिकोण को 'नकद शेष दृष्टिकोण' के नाम से जाना जाता है। मार्शल तथा राबर्ट्सन ने मुद्रा के मूल्य के सिद्धान्त को मूल्य के सामान्य सिद्धान्त की ही एक दशा माना। यह सिद्धान्त मुद्रा की पूर्ति की अपेक्षा मुद्रा की मांग पर अधिक बल देता है इसलिए इसे मुद्रा की मांग का सिद्धान्त भी कहा जाता है।
सिद्धान्त की मुख्य बातें-नकद **शेष** दृष्टिकोण की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

1. मुद्रा की पूर्ति-निश्चित समय बिन्दु पर जनता के पास उपलब्ध नोट, सिक्के तथा बैंकों में मांग जमा के योग को मुद्रा की पूर्ति कहते हैं।

फिशर के समीकरण में सयम अवधि का प्रयोग किया गया है, इसलिए वहाँ चलन गति की भूमिका महत्वपूर्ण है। परन्तु समय के बिन्दु पर चलन गति का प्रभाव नहीं पड़ता है।

2. मुद्रा की मांग-कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की मांग लेन-देन करने के लिए नहीं (फिशर समीकरण) बल्कि संचय के लिए करते हैं ताकि जरूरत पड़ने पर लेन-देन कर सकें।

इस प्रकार अर्थव्यवस्था में सभी लोग अपनी वास्तविक आय का जितना हिस्सा नकद रूप में रखना चाहते हैं उसे ही मुद्रा की मांग कहा गया है।

मुद्रा की मांग में वृद्धि- लेन देन में व्यय कम - वस्तुओं के मूल्य में कमी -- मुद्रा के मूल्य में वृद्धि

मुद्रा की मांग में कमी-- लेन-देन में व्यय अधिक -- वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि -- मुद्रा के मूल्य में कमी

विभिन्न नकद समीकरण -मार्शल का समीकरण - मार्शल के मतानुसार, मुद्रा की मांग मौद्रिक आय का फलन है।

$$M = KY$$

चूंकि मौद्रिक आय (Y) कुल उत्पादन (O) तथा कीमत स्तर (P)का गुणनफल होता है। अतः

$$Y = P \times O$$

or $M = K \times P \times O$

or $P = \frac{M}{KO}$

यहाँ, M = मुद्रा की मांग

K = व्यावहारिक स्थिरांक (आय का वह भाग जो नकद रूप में रखा जा सकता है। यह आय का 1/5, 1/10 अथवा 1/20) कुछ भी हो सकता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण-

मान लिया K = ¼, O = 1000 इकाइयाँ तथा m = Rs. 2000 तो उत्पादन की एक इकाई का मूल्य-

$$P = \frac{M}{KO} = \frac{2000}{\frac{1}{2} \times 1000} = \frac{2000}{250} = 8 \text{ Rs.}$$

मार्शल के अनुसार यदि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर भी यदि K में परिवर्तन हो जाय तो कीमत स्तर में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जायेगा। मान लिया k, 1/4 से बढ़कर 1/2 हो जाता है, तब मूल्य-

$$P = \frac{M}{KO} = \frac{2000}{\frac{1}{2} \times 1000} = \frac{2000}{500} = 4 \text{ Rs.}$$

अतः यदि नकद रखने की इच्छा बढ़ जाती है तब मूल्य स्तर कम हो जायेगा।

पीगू का समीकरण :- मार्शल के नकद शेष समीकरण को संशोधित करके पीगू ने नया समीकरण प्रस्तुत किया। इसमें मौद्रिक आय के स्थान पर वास्तविक आय को वरीयता प्रदान की गयी। समीकरण इस प्रकार है- $P = \frac{K.R.}{M}$

यहाँ,

P = मुद्रा की मूल्य

K = वास्तविक आय का वह भाग जो नकद के रूप में मांगा जाता है।

R = कुल वास्तविक आय (वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में)

M = मुद्रा की कुल मात्रा

चूंकि लोग अपनी आय का नकद अंश केवल विधि ग्राह्य मुद्रा (करेन्सी) के रूप में नहीं रखते बल्कि बैंक जमा के रूप में भी संग्रह करते हैं।

इसलिए पीगू ने अपने समीकरण में संशोधन कर दिया।

i. मुद्रा की एक इकाई का मूल्य - $P = \frac{K.R.}{M}[c + h(1-c)]$

ii. वस्तु की इकाई का मूल्य - $M = \frac{K.R.}{P}[c+h(1-c)]$

यहाँ c जनता के पास नकदी,

1.c बैंक जमा

1-c बैंक जमा का वह भाग जो बैंक अपने पास नकद रखते हैं। जिसे नकद रक्षित अनुपात Cash Reserve Ratio कहते हैं।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण -

मान लिया $K = \frac{1}{1}$, $c = \frac{1}{3}$, $h\ \frac{1}{10}$ $R = 4000$ क्विंटल चावल

$$P = \frac{K.R.}{M}[c+h(1-c)]$$

$$= \frac{\frac{1}{10} \times 4000}{2000}\left[\frac{1}{3}+\frac{1}{10}\left(1-\frac{1}{3}\right)\right]$$

$$= \frac{\frac{1}{10} \times 4000}{2000}\left[\frac{1}{3}+\frac{1}{10}\left(1-\frac{1}{3}\right)\right]$$

$$= \frac{400}{2000}\left[\frac{1}{3}+\frac{1}{10} \times \frac{2}{3}\right]$$

$$= \frac{1}{5}\left[\frac{1}{3}+\frac{1}{15}\right]$$

$$= \frac{1}{5} \times \frac{2}{5}$$

$P = \ = \frac{2}{25}$ क्विंटल चावल

राबर्टसन का समीकरण :- कैम्ब्रिज समुदाय में राबर्टसन का समीकरण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। राबर्टसन ने निम्नलिखित समीकरण प्रदान किया -

$$M = PKT$$

जहाँ M = मुद्रा की मात्रा

P = सामान्य मूल्य स्तर

K = मुद्रा की वह मात्रा जो निश्चित समय में T के एक अंश के लिए मांगी जाती है।

T = एक निश्चित समय पर वस्तुओं तथा सेवाओं का कुल व्यापार

अतः $P = \frac{M}{KT}$ या $\frac{1}{KT} \times M$

अतः K और T स्थिर रहें तो T तथा M में आनुपातिक सम्बन्ध पाया जायेगा। राबर्टसन ने आनुपातिकता के नियम में अपना विश्वास प्रदर्शित किया।

कींस का समीकरण:- कींस ने अपनी पुस्तक "A tract on Monetary Reforms" में यह समीकरण दिया। उनके अनुसार लोग केवल उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने के लिए मुद्रा रखते हैं।

$$n = P(K + rK^1)$$

जहाँ

n = समाज में चलन में विद्यमान विधि ग्राह्य मुद्रा

P = उपभोग इकाई की वस्तु का मूल्य

K = उपभोग की उन इकाइयों की मात्रा जिन्हें लोग अपने पास नकद रूप में संचित करते हैं।

r = बैंकों के पास नकद धन

K1 = वस्तुओं व सेवाओं की वह मात्रा जिसे पाने के लिए लोग धन को नकद जमा के रूप में रखते हैं।

इस स्थिति में मुद्रा की एक इकाई का मूल्य – $P = \frac{n}{K + rK^1}$

अतः स्पष्ट है कि K, तए K1 के स्थिर रहने पर n में परिवर्तन से P में परिवर्तन होगा। जनता तथा बैंकों द्वारा अधिक नकदी रखने पर K का मूल्य कम तथा K1 का मूल्य अधिक होता है।

कैम्ब्रिज समीकरण की आलोचना -

1. यह सिद्धान्त प्रावैगिक संसार की जटिल आर्थिक समस्याओं की व्याख्या करने में असमर्थ है।
2. सट्टा उद्देश्य के लिए मांगी जाने वाली मुद्रा की उपेक्षा करता है, अतः अपूर्ण सिद्धान्त है।
3. अन्य समीकरणों की भांति इसमें भी K तथा ज् को स्थिर मान लिया गया जो कि अनुचित है।
4. जमा की विभिन्न श्रेणियों (चालू, बचत तथा स्थायी) के प्रभाव की उपेक्षा की गयी है।
5. डॉन पाटिंकिन के अनुसार कैम्ब्रिज समीकरण ब्याज दर की भूमिका की उपेक्षा करता है, जो अनुचित है।
6. यह सिद्धान्त नकदी की मांग पर केवल वर्तमान आय के प्रभाव की व्याख्या करता है जबकि अन्य तत्व जैसे- कीमत स्तर, मौद्रिक आदतें तथा व्यावसायिक ढांचा आदि का भी प्रभाव पड़ता है।
7. इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन उसी अनुपात में होता है, जिस अनुपात में मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होता है। अर्थात् मुद्रा की मांग की लोच इकाई के बराबर होती है परन्तु अर्थव्यवस्था में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों के कारण मांग की लोच इकाई के बराबर नहीं रहने पाती है।

21.3.3. तुलनात्मक विश्लेषण (लेन-देन एवं शेष दृष्टिकोण)

फिशर एवं कैम्ब्रिज समीकरणों की तुलना -

क्र० सं०	आधार	फिशर	कैम्ब्रिज
1.	मुद्रा की मांग	मुद्रा को विनिमय का माध्यम माना गया	मुद्रा के संचय कार्य को अधिक महत्व प्रदान किया गया
2.	मुद्रा का मूल्य निर्धारण	पूर्ति को अधिक महत्व	मांग को महत्व
3.	प्रवाह तथा स्टॉक	मुद्रा को प्रवाह माना	मुद्रा को स्टॉक माना
4.	प्रचलन गति	महत्वपूर्ण	महत्वहीन
5.	समय सीमा	समयावधि से सम्बन्धित	समय बिन्दु से सम्बन्धित
6.	कीमत स्तर	सामान्य कीमत स्तर की व्याख्या करता है	कीमत स्तर उपभोग वस्तुओं कीमत को व्यक्त करता है।
7.	काल	दीर्घकाल परिवर्तनों की ओर संकेत करता है।	अल्पकालीन समायोजन की व्याख्या करता है।
8.	ब्याज दर	ब्याज दर की उपेक्षा	ब्याज दर को महत्व

कैम्ब्रिज समीकरण की श्रेष्ठता-कैम्ब्रिज समीकरण अनेक कारणों से फिशर के समीकरण से श्रेष्ठ है। यद्यपि कि राबर्टसन ने कहा कि मोटे तौर पर दोनों समीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

1. कैम्ब्रिज समीकरण नकद शेष (K) पर विशेष बल दिया तथा इसको प्रभावित करने वाले मानवीय कारकों जैसे- प्रेरणाएँ, अनिश्चितताएँ आदि के प्रभाव को सम्मिलित करने से इसकी व्याख्या व्यापक हो गयी।

2. इसमें कुल व्यापारिक लेन-देन के स्थान पर आय के स्तर को सम्मिलित किया गया है, जो डे के अनुसार आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।

3. कुरीहारा के अनुसार कैम्ब्रिज समीकरणों के चरों को ज्ञात करना फिशर के समीकरण के चरों से अधिक सरल है।

4. फिशर का समीकरण मूल्य निर्धारण में केवल मुद्रा की पूर्ति के महत्व को स्वीकार करता है जबकि कैम्ब्रिज समीकरण मुद्रा के मूल्य सिद्धान्त को मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का ही अंश मानता है।

5. नकद शेष सिद्धान्त ने तरलता पसदंगी सिद्धान्त के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

अन्त में कैम्ब्रिज सिद्धान्त की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए प्रो0 हेंसन को उद्धृत कर सकते हैं - 'मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का मार्शल दृष्टिकोण M = KY मुद्रा तथा मूल्य के सम्बन्ध में एक सर्वथा नया तथा मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह कहना जैसा प्रायः कहा जाता है कि, नये बीजगणितीय पोषाक में यह नकद सौदा दृष्टिकोण ही है, गलत है।' ऐसा कहना वस्तुतः मार्शल के समीकरण में उल्लिखित K के महत्व की अवहेलना करना होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (फिशर समीकरण) का वर्णन करो।
2. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की मान्यताओं का वर्णन करो।
3. कैम्ब्रिज सिद्धान्त में मुद्रा की मांग से क्या आशय है।
4. मुद्रा की मांग में वृद्धि या कमी का अर्थ लिखिए।
5. फिशर एवं कैम्ब्रिज समीकरणों की तुलना कीजिए?
6. कैम्ब्रिज सिद्धान्त की विशेष ता लिखिए?
7. **निम्नलिखित कथन गलत हैं या सही**
   1. मुद्रा का मूल्य उसकी मांग द्वारा निर्धारित होता है न कि पूर्ति द्वारा।
   2. मार्शल ने मुद्रा की मांग को आय और सम्पत्ति का फलन माना है।
   3. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में प्रचलन वेग को स्थिर मान लिया गया है।
   4. फिशर का समीकरण मुद्रा को स्टॉक के रूप में महत्व देता है।
   5. नकद शेष समीकरण में कींस का भी योगदान है।
   6. फिशर के अनुसार P एक ..... है। (सक्रिय, / निष्क्रिय)
   7. कींस के अनुसार मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में ..... सम्बन्ध है।
   8. (प्रत्यक्ष, / अप्रत्यक्ष)
   9. कैम्ब्रिज समीकरण कीमत स्तर की ..... व्याख्या है।(दीर्घकालीन /अल्पकालीन)

21.4 सारांश -

बाजार अर्थव्यवस्था में कीमत स्तर में होने वाला अनुचित परिवर्तन सदैव अर्थशास्त्रियों को परेशान करता रहा है। इस परिवर्तन के अनेक मौद्रिक एवं अमौद्रिक कारण है परन्तु प्रमुख कारण मुद्रा की पूर्ति को माना गया। इसकी व्याख्या करने वाले मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को दो रूपों में व्यक्त किया गया।

i. नकद लेन-देन समीकरण जिसको MV = PT के रूप में व्यक्त किया जाता है तथा

ii. नकदी शेष समीकरण जिसको P = KR/M या M = KPO या M = KPT के रूप में लिखा जाता है, जिसे क्रमशः मार्शल, पीगू तथा राबर्टसन ने प्रस्तुत किया।

फिशर के अनुसार V और T के समय के साथ स्थिर रहने पर मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध होता है। फिशर द्वारा स्वीकार की गयी अवास्तविक मान्यताएँ ही इसकी आलोचना के लिए जिम्मेदार हैं।

फिशर ने अपने सिद्धान्त में मुद्रा के मांग पक्ष की उपेक्षा की परिणाम स्वरूप नकद शेष समीकरण में मांग पक्ष को महत्व प्रदान किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए अपनी आय का कुछ अंश नकदी के रूप में रखता है। यह तरलता पसंदगी की व्याख्या करता है जो सन्तुलन आय तथा रोजगार के निर्धारण में उपयोगी होता है। यह सिद्धान्त कीमत स्तर के नियन्त्रण में मौद्रिक नीति की सीमा की ओर भी संकेत करता है।

21.5 शब्दावली

बैंक जमा - बैंक की वह जमा जिसे जमाकर्ता बिना पूर्व सूचना के निकाला जा सकता है।

संचय - किसी समाज का वह पैसा जो सक्रिय चलन से निकाल कर अपने पास रख लिया जाता है।

पूँजी की सीमान्त क्षमता - यह पूँजी पर प्रतिफल की दर है।

मौद्रिक नीति - अर्थव्यवस्था पर वांछित प्रभाव डालने तथा अवांछित प्रभाव को कम करने के लिए केन्द्रिय बैंक द्वारा अपनायी जाने वाली नीति मौद्रिक नीति कहलाती है।

वास्तविक आय - वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में मापी गयी आय वास्तविक आय कहलाती है।

21.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

उत्तर-1. गलत, 2. सही, 3 सही, 4 सही, 5सही।6. निष्क्रिय, 7. अप्रत्यक्ष, 8. अल्पकालीन।

21.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- Seth, M.L. (2010) : 'Money Banking and International Trade', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), "Macro Economics", Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), 'Monetary Economics' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.

- Shapirio, Edward (1989) 'Macro Economic Analysis' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

21.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री -

- सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा
- लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

21.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1.मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

2.मुद्रा की चलन गति से क्या समझते हैं? इसको प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए।

3.फिशर के परिमाण सिद्धान्त की कैम्ब्रिज सिद्धान्त की तुलना कीजिए। दोनों में किसे बेहतर समझते हैं, और क्यों?

4.नकद शेष समीकरण का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई-22 मिल्टन फ्रीडमैन का मुद्रा परिमाण का आधुनिक सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा:

22.1 प्रस्तावना
22.2 उद्देश्य
22.3 मिल्टन फ्रीडमैन का मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त
22.4 सारांश
22.5 श ब्दावली
22.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
22.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
22.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
22.9 निबन्धात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना -

शिकागो के अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन को 1976 में, मौद्रिक अर्थशास्त्र, विशेष रूप से मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त, में विशेष योगदान के लिए, नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। 1936 में कींस द्वारा General Theory of Employment, Interest and Money'में परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की कटु आलोचना करने के बाद उसकी सर्वमान्यता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया। वर्तमान समय यदि परिमाण सिद्धान्त अपने मान सम्मान को वापस पा सका तो इसका श्रेय मिल्टन फ्रीडमैन को ही जाता है।

22.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य छात्रों में मुद्रा परिमाण के आधुनिक सिद्धान्त की समझ विकसित करना है। यह बात भी स्पष्ट हो जायेगी कि परिमाण सिद्धान्त को पुनः प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता क्यों पड़ी। छात्र अपने आपको परम्परागत एवं आधुनिक सिद्धान्त के बीच तुलना करने योग्य पा सकेंगे।

22.3 मिल्टन फ्रीडमैन का मुद्रा परिमाण सिद्धान्त-

परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (आगे इसे OQTM – Old Quantity Theory of Money लिखा जायेगा) के निष्कर्ष एवं समीकरण में अन्तर है। फ्रीडमैन ने इसके समीकरण को तथा पाटिन्किन ने निष्कर्ष को पुनः स्थापित किया। OQTM में मुद्रा की मुख्य भूमिका विनिमय के माध्यम के रूप में है। फिशर के बाद मुद्रा के संचय कार्य पर अधिक जोर दिया गया। फ्रीडमैन ने मुद्रा को सम्पत्ति के रूप में परिभाषित किया। अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति अनेक रूपों में पायी जाती है और प्रत्येक रूप में वह कुछ न कुछ अंश तक संचय के उद्देश्य को पूरा करती है। वास्तव में OQTM मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है जबकि परिमाण सिद्धान्त का समीकरण, मांग का समीकरण है। यह उत्पादन, मौद्रिक आय तथा कीमत स्तर का सिद्धान्त नहीं है। इसके निर्धारण हेतु मुद्रा की मांग में कुछ अतिरिक्त चरों को सम्मिलित करना पड़ेगा।

फ्रीडमैन के अनुसार सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ मिलकर सम्पत्ति सूची का निर्माण करती है जिसमें मुद्रा भी शामिल है। यही कारण है कि एक सम्पत्ति की मांग दूसरी सम्पत्ति की मांग पर भी निर्भर करता है। अतः कहा जा सकता है कि व्यवहार में बहु सम्पत्ति बाजार मॉडल पाया जाता है, जिनमें विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों का व्यापार होता है।

इसी रास्ते का सहारा लेकर फ्रीडमैन ने अपनी पुस्तक Studies in Quantiy Theory of Money में सामान्य कीमत सिद्धान्त तथा मुद्रा के सिद्धान्त को समन्वित करने का प्रयास किया।

सम्पत्ति की मांग का प्रतिपक्ष ही पूँजी की पूर्ति को व्यक्त करता है। दूसरी तरफ सम्पत्ति की पूर्ति का प्रतिपक्ष वित्तीय पूँजी की मांग को व्यक्त करता है। व्यय से अधिक आय बजटीय घाटे को व्यक्त

करता है। यह घाटे का क्षेत्र पूँजी की मांग उत्पन्न करता है, दूसरे शब्दों सम्पत्ति की पूर्ति को। अतिरेक की स्थिति में इसका ठीक उल्टा होगा।

इसीलिए मुद्रा की मांग का सिद्धान्त, पूँजी सिद्धान्त का ही एक भाग बन जाता है।

मुद्रा की मांग का आधार -मुद्रा की मांग सम्पत्ति के स्वामियों द्वारा की जाती है। स्वामी अपनी सम्पत्ति का एक निश्चित भाग, जिसे सम्पत्ति सूची कहा जाता है, अपने पास रखता है। उद्यमी विभिन्न प्रकार के उत्पादन साधनों की मांग उत्पन्न करते हैं। उद्यमियों का उत्पादन फलन, मुद्रा की मांग का निर्धारण करता है। उत्पादन के अन्य साधनों की मांग की भांति मुद्रा की मांग भी तकनीकी दशाओं पर निर्भर करती है। सम्पत्ति सूची में परिवर्तन विनिमय द्वारा होता है तथा उत्पादन साधनों की मांग में परिवर्तन उत्पादन के द्वारा होता है। मुद्रा की मांग इस परिवर्तन की प्रक्रिया को सहायता प्रदान करती है।

प्रत्येक अभिकर्ता का उद्देश्य अपने लाभ को अनुकूलतम करना होता है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी 'सम्पत्ति सूची' को पुनः समायोजित करके उपयोगिता को अधिकतम करता है। उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है।

वस्तुओं की मांग की व्याख्या -वस्तुओं की मांग की व्याख्या चुनाव के सिद्धान्त के माध्यम से की जा सकती है। अनधिमान वक्र का आकार एवं ढाल x तथा y दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (व्यक्तिनिष्ठ) को व्यक्त करता है। चयनकर्ता अपनी वास्तविक आय तथा सापेक्षिक कीमतों को ध्यान में रखकर अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है। उपभोक्ता की उपयोगिता अधिकतम तब होती तब व्यक्तिनिष्ठ सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (तटस्थता वक्र का ढाल) तथा वस्तुनिष्ठ सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (कीमत रेखा का ढाल) दोनों बराबर होते हैं। यह बिन्दु तटस्थता वक्र तथा कीमत रेखा के स्पर्श बिन्दु से परिलक्षित होता है। चयन के सिद्धान्त के समान मुद्रा की मांग निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है-

i. सम्पत्ति की कुल मात्रा- सम्पत्ति सूची के आकार को निर्धारित करता है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी सम्पत्ति को विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों में विभाजित करता है, जिसमें मुद्रा भी एक है। मान लिया सम्पत्ति का एक समूह $A_1, A_2, A_3.....A_n$ है। सम्पत्ति की कुल मात्रा बजट अवरोधक का काम करती है।

ii. उपभोक्ता की भाँति - सम्पत्ति का स्वामी भी मूल्य को दिया हुआ मान लेता है। सापेक्षिक कीमतें तथा विभिन्न सम्पत्तियों पर प्रतिफल की दर सम्पत्ति सूची की संरचना को निर्धारित करती है।

iii. सम्पत्ति के स्वामी - सम्पत्ति के स्वामी का सम्पत्ति के लिए एक निश्ति अधिमान सूची होती है। सम्पत्ति के प्रति व्यक्तिनिष्ठ अधिमान सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारणों से प्रभावित होता है। यह मान लिया गया है कि सम्पत्ति के प्रति अधिमान का पैमान समय के साथ अपरिवर्तित रहता है। अल्पकाल में केवल 'बाह्य झटके' ; ही अधिमान सूची को

प्रभावित कर सकते हैं। इस प्रकार सम्पत्ति सूची का एक निश्चित आकार एवं संरचना होती है।

परन्तु चयन के सिद्धान्त को सम्पत्ति के सन्दर्भ में ज्यों का त्यों लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि सम्पत्ति के दो स्वरूप हैं-1. स्टॉक तथा 2. प्रवाह। स्टॉक का सम्बन्ध एक समय बिन्दु से है जबकि प्रवाह का सम्बन्ध समयावधि से है। प्रत्येक सम्पत्ति अपने धारक को एक निश्चित प्रवाह की गारण्टी प्रदान करती है। इसे ही प्रतिफल की दर या सम्पत्ति की उपज कहते हैं। प्रत्येक सम्पत्ति, उपज, आकार तथा गुणवत्ता के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न होती है। यही चुनाव की समस्या उत्पन्न करती है। परन्तु स्टॉक में प्रतिफल की दर से गुणा करके आय (प्रवाह) में परिवर्तित किया जा सकता है। इसी प्रकार आय में प्रतिफल की दर से भाग देकर पूँजीगत मूल्य ज्ञात किया जा सकता है।

आय (प्रवाह) $y = w \cdot r$

पूँजीगत मूल्य $w = y / r$

जहाँ - $y =$ Income (flow)

$w =$ Wealth (Capitalised Value)

$r =$ Rate of Return प्रतिफल की दर

सम्पत्ति की सापेक्षिक कीमतें सम्पत्ति के चयन का निर्देशन करती है।

मुद्रा का मांग फलन - उपर्युक्त विश्लेषण के उपरान्त हम अब इस स्थिति में पहुँच चुके हैं कि मुद्रा के मांग फलन का निर्धारण कर सकें। एक सम्पत्ति के रूप में मुद्रा की मांग के निम्नलिखित निर्धारक हैं-

सम्पत्ति का स्टॉक - सम्पत्ति की कुल मात्रा सम्पत्ति सूची के आकार को निर्धारित करती है। कुल सम्पत्ति मानवीय एवं गैर मानवीय सम्पत्ति से मिलकर बनती है। मानवीय सम्पत्ति भी जीवनकाल में आय उत्पन्न करती है। अतः सम्पत्ति मुद्रा की मांग का निर्धारण करती है। पूँजीगत मूल्य में प्रतिफल की दर से गुणा करने पर दूसरा निर्धारक आय प्राप्त होता है।

मुद्रा के सिद्धान्त में आय को स्थायी आय के रूप में स्वीकार किया गया है, यह मापित आय से भिन्न है। स्थायी आय, दीर्घकालनी आय को इंगित करता है, जिसे प्रत्याशित आय भी कहते हैं। इसके घटक निम्नलिखित हैं-

- वर्तमान सम्पत्ति से आय
- वार्षिक आय में अल्प उतार-चढ़ाव तथा
- भविष्य में कमाने की क्षमता

अर्थात् स्थायी आय की अवधारणा भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों पर आधारित हैं। अतः स्थायी आय मुद्रा की मांग का प्रथम निर्धारक हैं।

सम्पत्ति को मानवीय तथा गैर मानीवय दोनों रूपों में रखा जा सकता है। मान लिया गैर मानवीय पूँजी का मानवीय पूँजी से अनुपात (w) है। गैर मानवीय पूँजी का तो सीधे बाजार में व्यापार होता है परन्तु मानवीय पूँजी के बारे में ऐसा नहीं है। अतः w में परिवर्तन मुद्रा की मांग का दूसरा निर्धारक है।

विभिन्न परिसम्पत्तियों पर मिलने वाला प्रतिफल भी मुद्रा की मांग को प्रभावित करता है। सम्पत्ति का स्वामी उसी संयोग का चुनाव करता है जो सूची के उत्पाद को अधिकतम कर सके। उत्पादक उद्यमी सम्पत्ति को निर्गमित करके या उसे बेचकर पूँजी खरीदते हैं। जब उद्यमी पूँजी खरीदता है तब उसे लागत चुकानी पड़ती है। ऐसे में लाभ तब अधिकतम होगा जब सम्पत्ति की सापेक्षित प्रतिफल दर तथा पूँजी खरीदने की लागत दोनों बराबर हों। अतः सम्पत्ति के स्वामी तथा उद्यमी दोनों की मुद्रा की मांग को एक समान चर प्रभावित करते हैं।

सम्पत्ति सूची की संरचना में शामिल मुद्रा, बाण्ड, इक्वीटी तथा भौतिक वस्तुएँ, इन चारों की उपज मुद्रा की मांग को निर्धारित करते हैं। मुद्रा की उपज को क्रयशक्ति $\left(\frac{1}{P}\right)$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। अतः यह मुद्रा की मांग का तीसरा निर्धारक है।

बाण्ड की उपज को तइ से दर्शाया जा सकता है। बाण्ड पर मिलने वाला ब्याज बाजार ब्याज के बराबर नहीं भी हो सकता है। अतः तइ मुद्रा की मांग का चौथा निर्धारक है।

इक्वीटी भी तनिक अन्तर के साथ बाण्ड ही है। इस पर मिलने वाला प्रतिफल कीमत स्तर में परिवर्तन से सम्बद्ध रहता है। अतः इक्वीटी के प्रतिफल में तीन तत्व शामिल रहते हैं, मौद्रिक उपज r_e कीमत स्तर तथा आय का धनात्मक एवम् ऋणात्मक मूल्य (I) अतः r_e मुद्रा की मांग का पाँचवाँ निर्धारक है।

अन्त में भौतिक वस्तुओं का प्रतिफल आर्थिक एवं गैर-आर्थिक रूप में होता है। भौतिक वस्तुओं की मौद्रिक उपज पुनः $\frac{1}{P} \cdot \frac{\partial P}{\partial t}$ पर निर्भर करता है। भौतिक वस्तुओं के पूँजीगत मूल्य में वृद्धि या कमी कमी कीमत परिवर्तन से सम्बन्धित है। इस प्रकार $\frac{1}{P} \cdot \frac{\partial P}{\partial t}$ मुद्रा की मांग का छठवाँ निर्धारक है।

सम्पत्ति सूची में सम्पत्ति के स्वामी तथा उत्पादक उद्यमी के रुचि एवं अधिमान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः रूचि एवं अधिमान, जिसके लिए ष्नष् का प्रयोग किया जा सकता है, मुद्रा की मांग का सातवां निर्धारक है।

अतः मुद्रा मांग के फलन को इस प्रकार लिखा जा सकता है-

$$M = f\left(P,\ y,\ \frac{1}{P} \cdot \frac{\partial P}{\partial t},\ r_b,\ r_e,\ w,\ u\right)$$

जहाँ-

M = मुद्रा की कुल मांग

P = सामान्य कीमत स्तर

y = कुल आय का प्रवाह

$\frac{1}{P} \cdot \frac{\partial P}{\partial t}$ = भौतिक वस्तुओं के मौद्रिक प्रतिफल का आकार

r_b = बाण्ड की उपज (बाण्ड की बाजार ब्याज दर)

r_e = इक्वीटी की उपज

w = मानवीय एवं गैर मानवीय सम्पत्ति का अनुपात

u = रूचि एवं अधिमान व्यक्त करने वाला चर

आधुनिक परिमाण सिद्धान्त की आलोचना -फ्रीडमैन के दृष्टिकोण की दो आधारों पर आलोचना की जाती है।

प्रथम- फ्रीडमैन का तर्क है कि समाज में नकद शेष की मांग के निर्धारण में ब्याज दर की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण नहीं रहती है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ब्याज दर में वृद्धि निश्चित रूप से नकद रखने की लागत को बढ़ा देगा और नकद की मांग को कम कर देगा, परिणामस्वरूप बैंकों में जमा में वृद्धि ही जायेगी। ब्याज दर कम होने पर इसके विपरीत व्यवहार देखने को मिलेगा। अतः यह मान्यता कि जमा ब्याज के प्रति बेलोचदार होती है सही नहीं है।

द्वितीय- दूसरी मान्यता यह है कि किसी समाज में मुद्रा की पूर्ति आय तथा कीमत स्तर में परिवर्तन से स्वतन्त्र होती है। बल्कि मुद्रा की पूर्ति आय एवं कीमत स्तर का निर्धारण करती है। परन्तु अनुभव पर आधारित अध्ययन यह बताते हैं कि आय तथा कीमत स्तर भी समान रूप से मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

आधुनिक सिद्धान्त की श्रेष्ठता -अनेक आलोचनाओं के बावजूद यह सिद्धान्त OQTM से श्रेष्ठ है। यह पूर्व सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक बेहतर एवं व्यापक रूप से मुद्रा की मांग की व्याख्या करता है। फ्रीडमैन ने स्वयं अपने योगदान के सैद्धान्तिक स्वरूप का अनुभव के द्वारा परीक्षण किया तथा उसकी प्रामाणिकता को स्थापित किया।

अभ्यास प्रश्न -

1. फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को किस रूप में प्रस्तुत किया।
2. फ्रीडमैन ने किन कारकों को मुद्रा की मांग का निर्धारक माना।
3. फ्रीडमैन के परिमाण सिद्धान्त के सम्बन्ध में कौन सा कथन सहीं नहीं है।

(अ) वास्तविक आय तथा मुद्रा की मांग के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है।

(ब) ब्याज दर तथा मुद्रा की मांग के बीच प्रत्यक्ष समबन्ध पाया जाता है।

(स) कीमत स्तर तथा मुद्रा की मांग के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है।

(द) कीमत स्तर में परिवर्तन तथा मुद्रा की मांग के बीच प्रत्यक्ष एवं आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।

22.4 सारांश -

मिल्टन फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को पुनः स्थापित कियाय। फ्रीडमैन ने स्पष्ट किया कि यह मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है। उत्पादन, आय या कीमत का सिद्धान्त नहीं है। इन्होंने सम्पत्ति के वृहत् रूप को परिभाषित किया। मानवीय तथा गैर मानवीय पूँजी के साथ-साथ भौतिक एवम् अभौतिक पूँजी को भी सम्मिलित किया। फ्रीडमैन ने बहुत स्पष्ट एवम् व्यापक मुद्रा के मांग फलन को व्युत्पन्न किया। फ्रीडमैन का मांग फलन कीमत स्तर, बॉण्ड, इक्विटी, आय, कीमत स्तर में परिवर्तन की दर आय और रुचि चर पर निर्भर करता है।

22.5 श ब्दावली -

उत्पादन फलन -उत्पादन तथा उत्पादन साधनों के बीच विद्यमान फलनात्मक सम्बन्ध

सीमान्त प्रतिस्थापन की दर - X वस्तु की एक इकाई पाने के लिए Y वस्तु की छोड़ी जाने वाली मात्रा

कीमत रेखा - दो वस्तुओं X तथा Y के कीमत अनुपात को व्यक्त करती है।

वास्तविक आय ;त्मंस प्दबवउमद्ध मौद्रिक आय में कीमत से भाग देकर वास्तविक आय ज्ञात की जाती है।

उपयोगिता - इच्छा को सन्तुष्ट करने की क्षमता

22.6 अभ्यास प्रश्न के उत्तर-

उत्तर - 3(द)

22.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- Seth, M.L. (2010) : 'Money Banking and International Trade', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), "Macro Economics", Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), 'Monetary Economics' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.

- Shapirio, Edward (1989) 'Macro Economic Analysis' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

22.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री -

सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा

लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद

मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

22.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. फ्रीडमैन के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
2. स्पष्ट कीजिए कि फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।
3. इस बात की व्याख्या कीजिए कि कैसे मिल्टन फ्रीडमैन का परिमाण सिद्धान्त मूलतः मुद्रा की मांग का सिद्धान्त है।

इकाई-23 मुद्रा स्फीति के सिद्धान्त, प्रभाव एवं नियन्त्रण

इकाई की रूपरेखा:

23.1 प्रस्तावना
23.2 उद्देश्य
23.3 मुद्रा स्फीति का अर्थ
23.3.1 मुद्रा स्फीति के रूप
23.3.2 मुद्रा स्फीति के विभिन्न सिद्धान्त अथवा मुद्रा स्फीति के कारण
23.3.3 मुद्रा स्फीति के प्रभाव
23.3.4 मुद्रा स्फीति का नियन्त्रण
23.4 सारांश
23.5 शब्दावली
23.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
23.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
23.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
23.9 निबन्धात्मक प्रश्न

23.1 प्रस्तावना -

अर्थशास्त्र मनुष्य के दैनिक जीवन का व्यावहारिक शास्त्र है। इस तथ्य की सार्थकता उस समय और सिद्ध हो जाती है जब हम स्फीति का अध्ययन करते हैं। स्थैतिक रूप में मूल्य में वृद्धि को स्फीति कहते हैं, परन्तु प्रावैगिक रूप में कीमतों में सतत् वृद्धि को स्फीति कहते हैं। आर्थिक अस्थिरता कभी विकसित देशा की समस्या हुआ करती थी, परन्तु आज विश्व अर्थव्यवस्था के बदले हुए स्वरूप ने इसे सबके लिए एवं सबकी समस्या में परिवर्तित कर दिया है। स्फीति एवं अवस्फीति इसके मुख्य घटक हैं। यह इकाई स्फीति के अध्ययन से सम्बन्धित है। स्फीति के विभिन्न पहलुओं जैसे-क्या है, क्यों घटित होती है, किसे प्रभावित करती है तथा कैसे नियन्त्रित की जा सकती है? आदि की विस्तृत व्याख्या इस अध्याय में प्रस्तुत की जायेगी। यद्यपि की मुद्रा स्फीति बहुत व्यापक अवधारणा है किन्तु इस इकाई में अत्यन्त महत्वपूण्र एवं उपयोगी सामग्री पर ही विचार किया जायेगा।

23.2 उद्देश्य -

इस अध्याय का उद्देश्य छात्रों के अन्दर निम्नलिखित की समझ पैदा करना है।

- मुद्रा स्फीति का अर्थ एवं परिभाषा से परिचित कराना।
- मुद्रा स्फीति के विभिन्न रूपों को समझना।
- स्फीटिक अन्तराल की धारणा को स्पष्ट करना।
- मुद्रा स्फीति के विभिन्न सिद्धान्तों/कारणों को स्पष्ट करना।
- मुद्रा स्फीति के प्रभावों की समझ उत्पन्न करना।
- मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के तरीकों से परिचित कराना।

23.3 मुद्रा स्फीति का अर्थ -

मुद्रा स्फीति एक विवादित अवधारणा है। एक सर्वमान्य परिभाषा न होने के कारण इसके स्वरूप तथा स्वभाव की व्याख्या करने के लिए प्रचलित परिभाषाओं को तीन भागों में बांटा जाता है।

(अ) सामान्य दृष्टिकोण -क्राउथर के अनुसार, "स्फीति वह स्थिति है जिसमें मुद्रा का मूल्य गिर रहा हो अर्थात् वस्तुओं की कीमतें बढ़ रही हों।" यह परिभाषा सभी प्रकार की मूल्य वृद्धि को स्फीति मानती है। जबकि मन्दीकाल में मूल्यों में होने वाली वृद्धि स्फीति नहीं कही जायेगी। इसके अलावा यह परिभाषा केवल रोग के लक्षण को व्यक्त करती है इसके कारण एवं स्वभाव को नहीं।

(ब) मुद्रा परिमाण सिद्धान्त दृष्टिकोण -हाट्रे, केमरर तथा गोल्डेन वीजर तथा मिल्टन फ्रीडमैन स्फीति को मौद्रिक घटना मानते हैं। फ्रीडमैन के अनुसार, "प्रत्येक जगह एवं प्रत्येक समय मुद्रा स्फीति एक मौद्रिक घटना है और यह उत्पादन की तुलना में मुद्रा की मात्रा में अधिक वृद्धि होने के कारण उत्पन्नन होती है।" अर्थात् वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल लेन-देन के सन्दर्भ में मुद्रा की मात्रा

मूल्य स्तर का निर्धारण करती है। वस्तुओं तथा सेवाओं की तुलना में यदि मुद्रा की मात्रा अधिक हो जाय तो निश्चित रूप से मूल्य में वृद्धि होगी और यही मुद्रा स्फीति होगी। इसी बात को कोलबार्न से इस प्रकार व्यक्त किया। "बहुत अधिक मुद्रा द्वारा बहुत कम वस्तुओं का पीछा करना ही मुद्रा स्फीति है।" पीगू ने लिखा कि, ".....too much money cashes too few goods" अर्थात् बहुत अधिक मुद्रा बहुत कम वस्तुएँ प्राप्त करती है। टी0ई0 ग्रेगरी, हाट्रे तथा केमरर भी मुद्रा की मात्रा में असामान्य वृद्धि को ही मुद्रा स्फीति मानते हैं।

उपर्युक्त सभी परिभाषाएँ यह मानती हैं कि मुद्रा की पूर्ति स्फीति का मुख्य कारण हैं। सभी परिभाषाएँ अपना ध्यान एक विशेष प्रकार की स्फीतिक स्थिति पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। यह मान लिया गया है कि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और मांग तथा पूर्ति में कोई परिवर्तन बिना किसी अपवाद के कीमत में परिवर्तन करता है परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता ही शायद कभी पायी जाती हो। इसके अलावा कीमतों को कभी-कभी सरकार द्वारा भी नियन्त्रित किया जाता है।

(ग) पूर्ण रोजगार दृष्टिकोण -कींस मुद्रा परिमाण दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। उनके अनुसार यदि अर्थव्यवस्था में मानवीय एवं गैर मानवीय संसाधन बेकार पड़े हैं तब मुद्रा की मात्रा में वृद्धि मूल्य में वृद्धि करने के बजाय उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि करेगी तथा स्फीतिक दशाएँ उत्पन्न नहीं होगी। कींस ने पूर्ण रोजगार के पहले भी मूल्य में वृद्धि की सम्भावना को स्वीकार किया परन्तु उसे आंशिक स्फीति की संज्ञा दी। पूर्ण रोजगार के बाद अतिरिक्त मांग की दशाएँ, पूर्ति के बेलोचदार हो जाने के कारण, वास्तविक स्फीति को जन्म देती है। कींस के सिद्धान्त को एक चित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

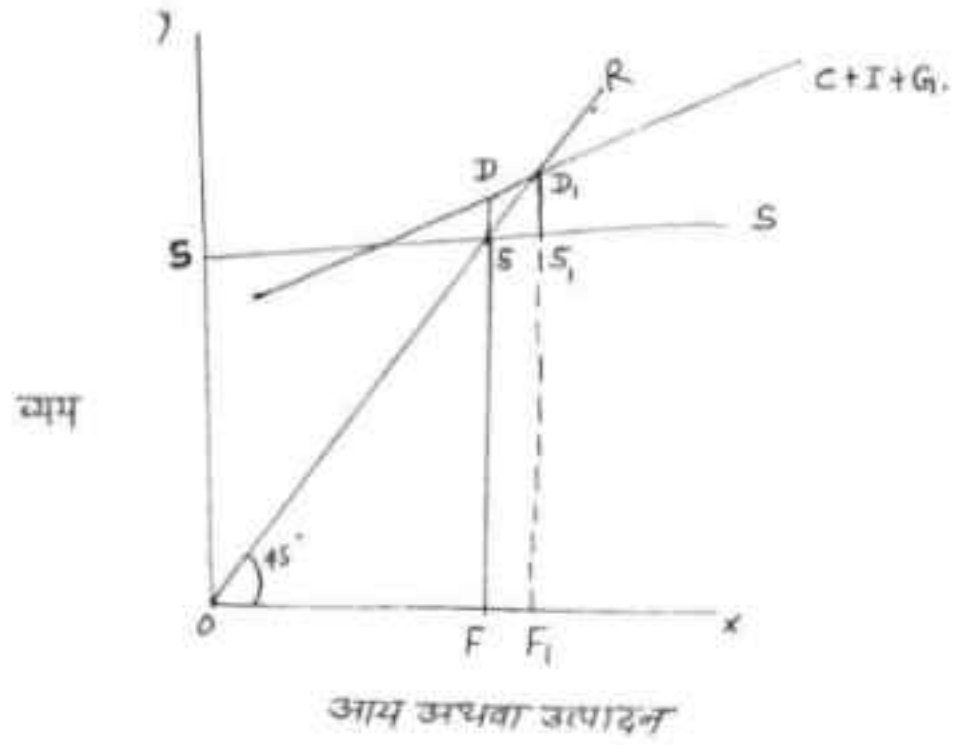

उपर्युक्त चित्र में X अक्षर पर आय तथा Y अक्षर पर व्यय प्रदर्शित है। OR समान वितरण रेखा आय तथा व्यय के बीच सन्तुलन बिन्दुओं को व्यक्त करती है। C + I + G (उपभोग व्यय (C) विनियोग व्यय (I) तथा सरकारी व्यय (G)) आय के विभिन्न स्तरों पर समग्र प्रभावपूर्ण मांग को व्यक्त करता है। पूर्ण रोजगार का स्तर OS या OF द्वारा व्यक्त किया गया है। SS रेखा X अक्ष के समानान्तर एक

सीधी रेखा है जो यह बताता है कि पूर्ण रोजगार के बाद उत्पादन में वृद्धि सम्भव नहीं है। चित्र से स्पष्ट है कि OF आय के स्तर पर उत्पादन की क्षमता FS तथा प्रभावपूर्ण मांग FD है। अर्थात् DS अतिरिक्त मांग है। आय के OF_1 स्तर पर अतिरिक्त मांग D_1S_1 है। अतः पूर्ण रोजगार के बाद अतिरिक्त मांग की मात्रा कीमत स्तर के व्यवहार का निर्धारण करती है। स्पष्ट है कि समग्र प्रभावपूर्ण मांग को पूर्ण क्षमता स्तर तक लाकर अतिरिक्त मांग को समाप्त किया जा सकता है।

23.3.1 मुद्रा स्फीति के रूप -मुद्रा स्फीति को मात्रा, गति प्रक्रिया तथा समय के आधार पर कई रूपों में व्यक्त किया जा सकता है।

खुली एवं दमित स्फीति -खुली स्फीति की दशा में बाजार स्वतन्त्र होता है तथा मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित मूल्य स्तर अतिरिक्त मांग की स्थिति, जिसे स्फीति कहते हैं, को व्यक्त करता है। दमित स्फीति का सम्बन्ध नियन्त्रित कीमतों से होता है। यह कीमतें जीवन लागत सूचकांक को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है और मांग तथा पूर्ति की वास्तविक स्थिति को प्रतिबिम्बित नहीं करती है।

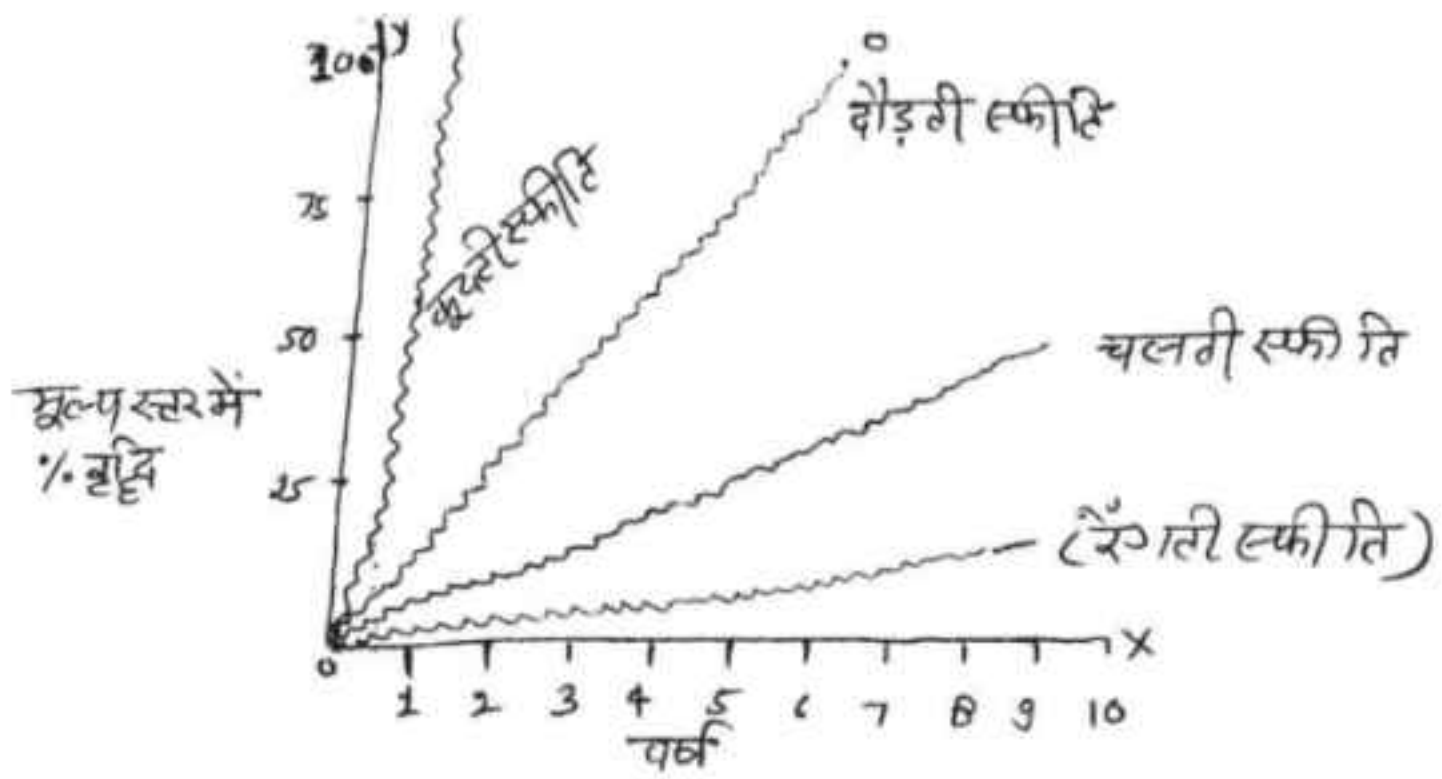

रेंगती, चलती-दौड़ती तथा कूदती मुद्रा स्फीति-रेंगती स्फीति का स्वभाव नम्र होता है तथा यह अर्थव्यवस्था के लिए उत्प्रेरक का कार्य करती है। केण्ट का मानना है कि 3 प्रतिशत वार्षिक मूल्य वृद्धि को रेंगती स्फीति समझना चाहिए। चलती स्फीति तब होती है जब वार्षिक मूल्य वृद्धि 3 से 4 प्रतिशत वार्षिक हो। दौड़ती हुई स्फीति में वार्षिक मूल्य वृद्धि की दर 10 प्रतिशत वार्षिक होती है, जबकि कूदती स्फीति में वार्षिक मूल्य वृद्धि की दर 100 प्रतिशत तक हो जाती है। उपर्युक्त स्थितियों को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

वस्तु स्फीति-उत्पादन में कमी होने के कारण जब सामान्य मूल्य में वृद्धि होती है तब उसे वस्तु स्फीति कहते हैं।

मुद्रा स्फीति-जब अत्यधिक पत्र मुद्रा निर्गमन के कारण सामान्य मूल्य स्तर बढ़ता है तब उसे मुद्रा स्फीति कहते हैं। ऐसे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी में हुआ।

साख स्फीति-जब मुद्रा की पूर्ति तो स्थिर रहे परन्तु व्यापारिक बैंकों द्वारा अत्यधिक साख का सृजन करने के कारण सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि हो तब उसे साख स्फीति कहते हैं।

घाटा प्रेरित स्फीति-जब सरकार अपने व्यय को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था (नोट निर्गमन) अपनाती है तब सामान्य मूल्य स्तर बढ़ जाता है, इसे घाटा प्रेरित स्फीति कहते हैं।

मजदूरी प्रेरित स्फीति-श्रम संघ सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति का प्रयोग करके मजदूरी बढ़वाने में सफल हो जाते हैं, जिससे लागत बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में मूल्य में होने वाली वृद्धि लागत प्रेरित स्फीति कहलाती है।

लाभ प्रेरित स्फीति-निर्माताओं के लाभ में वृद्धि के कारण मूल्य स्तर में होने वाली वृद्धि लाभ प्रेरित स्फीति कहलाती है।

पूर्ण एवं आंशिक स्फीति-जब मूल्य स्तर में वृद्धि समाज के सभी वर्गों तथा सभी वस्तुओं को प्रभावित करती है तब उसे पूर्ण स्फीति कहते हैं परन्तु यदि प्रभाव कुछ विशेष क्षेत्र एवं वस्तुओं तक सीमित रहता है तब उसे आंशिक स्फीति कहते हैं।

23.3.2. मुद्रा स्फीति के विभिन्न सिद्धान्त अथवा मुद्रा स्फीति के कारण -यद्यपि की मुद्रा स्फीति के अनेक कारण हैं, परन्तु इस इकाई में हम लोग तीन महत्वपूर्ण कारण अथवा सिद्धान्त पर चर्चा करेंगे -

(क) मांगजन्य मुद्रा स्फीति :- कींसवादी तथा मुद्रावादी दोनों ही यह मानते हैं कि अतिरिक्त मांग मुद्रा स्फीति का कारण है। मुद्रावादियों के अनुसार मुद्रा की मात्रा में वृद्धि स्फीति के लिए जिम्मेदार है जबकि कींसवादियों के अनुसार कुल व्यय में वृद्धि मांग को बढ़ाती है जो स्फीति का कारण है। इसका अभिप्राय यह है कि मूल्य में वृद्धि केवल मुद्रा की मात्रा में वृद्धि से ही नहीं होती, बल्कि मुद्रा की मात्रा अपरिवर्तित रहने पर भी यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा व्यक्ति की उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि के कारण कुल व्यय में होने वाली वृद्धि मूल्य स्तर को बढ़ा देगी।

कींस के अनुसार पूर्ण रोजगार के पहले मुद्रा की मात्रा या मांग में वृद्धि से मूल्य में होने वाली वृद्धि बाधा स्फीति ;ठवजजसम दमबा प्दसिंजपवदद्ध कहलाती हैं। पूर्ण रोजगार के बाद यदि मांग और

बढ़ती है तो केवल मूल्य में वृद्धि होती है। इसे ही वास्तविक स्फीति कहा जाता है। इस स्थिति को चित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

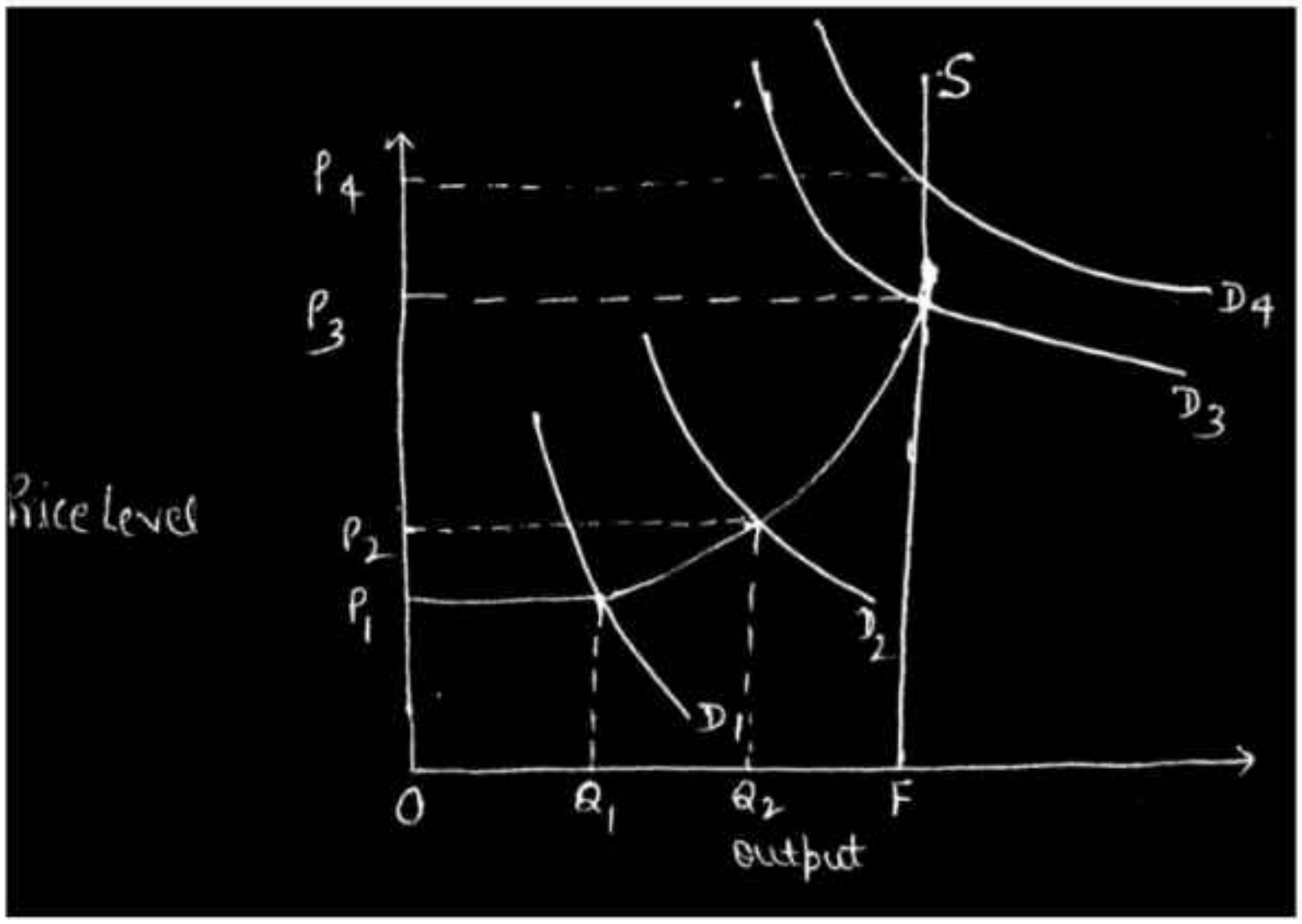

उपर्युक्त चित्र में मांग प्रेरित स्फीति प्रदर्शित है। x अक्ष पर उत्पादन तथा y अक्ष पर कीमत स्तर प्रदर्शित है। थ् बिन्दु पूर्ण रोजगार बिन्दु है। F बिन्दु के पहले मांग बढ़ने पर (P_1 से P_2) उत्पादन एवं मूल्य दोनों बढ़ते हैं। इसलिए कींस इसे अर्द्ध स्फीति कहते हैं। किन्तु थ् बिन्दु के वाद मांग बढ़ने से केवल मूल्य P_3 से P_4 हो जाता है जबकि उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती है और पूर्तिरेखा S पूर्णतया बेलोचदार हो जाती है, यही वास्तविक स्फीति है।

लागत वृद्धि स्फीति -जॉन मेनार्ड कींस द्वारा प्रतिपादित 'जनरल थियरी' तथा 'हाऊ टू पे फार द वार' के प्रकाशन के बाद मूल्य स्तर के निर्धारण में लागत की अवहेलना की गयी। 1959 में विलाई थार्प तथा रिचर्ड क्वांट ने अपनी पुस्तक 'द न्यू इन्फ्लेशन' में मूल्य स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों में लागत पर जोर दिया। लागतों में आक्रामक वृद्धि के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे- एकाधिकारी अंश की विद्यमानता, श्रम संघों का दबाव, उत्पादक का अल्पाधिकारी दशाओं में कार्य करना, दबाव डालने वाले अन्य सामाजिक कारण, सरकार द्वारा चलाये गये श्रम कल्याणकारी कार्यक्रम तथा सरकारी नियम और कानून आदि लागत में वृद्धि कर सकते हैं, लागत प्रेरित स्फीति 3 प्रकार की होती है-

मजदूरी प्रेरित स्फीति-श्रम लागतों में वृद्धि के कारण लागत में वृद्धि से मूल्य में होने वाली वृद्धि को मजदूरी प्रेरित स्फीति कहते हैं।

लाभ प्रेरित स्फीति-लाभ में वृद्धि के कारण मूल्यों में होने वाली वृद्धि को लाभ प्रेरित स्फीति कहते हैं।

सामग्री लागत प्रेरित - उत्पादन साधनों की कीमतों में वृद्धि होने के कारण मूल्य स्तर में होने वाली वृद्धि सामग्री लागत प्रेरित स्फीति कहलाती है।

लागत प्रेरित स्फीति को रेखाचित्र द्वारा समझाया जा सकता है।

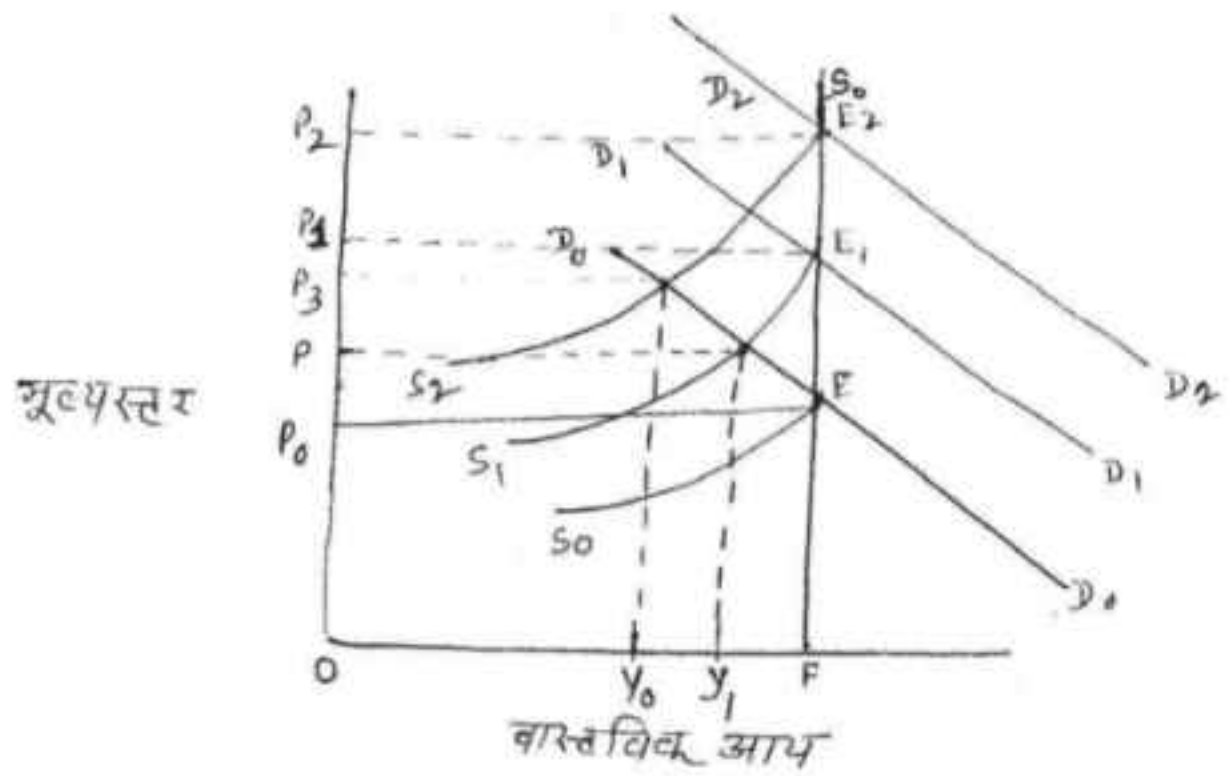

इस चित्र में D_0 D_0 मांग फलन तथा S_0 S_0 पूर्ति फलन है जो E बिन्दु के बाद पूर्णतया बेलोचदार हो जाती है। OF पूर्ण रोजगार स्तर की आय है। E बिन्दु पर अर्थव्यवस्था साम्य में है क्योंकि यहाँ मांग (D_0D_0) तथा पूर्ति (S_0S_0) बराबर हैं। मान लिया मजदूरों की मजदूरी बढ़ने तथा एकाधिकारिक या अल्पाधिकारिक उद्योगों द्वारा ऊँची कीमत लिये जाने के कारण पूर्ति रेखा S_1S_0 हो जाती है। परिणामस्वरूप नया साम्य पूर्ण रोजगार स्तर से कम आय OY_1 तथा मूल्य स्तर OP पर स्थापित होता है। पूर्ति के और विवर्तित होने पर पूर्ति रेखा S_2 S_0 हो जाती है जो आय के स्तर OY_0 तथा मूल्य स्तर $0P_0$ पर सन्तुलन स्थापित करता है। यदि सरकार पूर्ण रोजगार के स्तर के आय OF को बनाये रखना चाहती है तब उसे मांग बढ़ाना पड़ेगा। मांग के D_1D_1 होने पर आय के OF स्तर पर कीमत स्तर OP_1 है जो OP से अधिक है। यदि मांग और बढ़ कर D_2D_2 हो जाती है तब आय के OF स्तर पर कीमत स्तर OP_2 हो जायेगी जो OP_3 से अधिक है।

मांग आधिक्य तथा लागत वृद्धि स्फीति की व्याख्या से स्पष्ट होता है कि वास्तव में मुद्रा स्फीति दोनों कारणों का मिश्रित प्रभाव है। स्फीति का प्रारम्भ किसी भी एक कारण से हो सकता है परन्तु अन्तिम रूप में दोनों संयुक्त रूप से प्रभाव डालते हैं।

मुद्रा स्फीति के कारणों को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं-

मुद्रा स्फीति के कारण

माँग प्रेरित (मांग में वृद्धि)	**लागत प्रेरित (लागत में वृद्धि)**
बढ़ता सार्वजनिक व्यय	प्राकृतिक कारण
बढ़ता निजी विनियोग	औद्योगिक संकट
करारोपण में कमी	सरकार की व्यापारिक नीति
काला धन	पूर्ति का अभाव
सार्वजनिक ऋण में कमी	संचय की प्रवृत्ति
जनसंख्या में वृद्धि	युद्ध
व्यापारिक बैंक द्वारा साख निर्माण	उत्पादन लागत में वृद्धि
प्रयोज्य आय में वृद्धि	तकनीकी परिवर्तन

23.3.3 मुद्रा स्फीति के प्रभाव -1922 में जर्मनी में व्याप्त मुद्रा स्फीति पर गौर करें तो हम पाते हैं कि स्फीति, आर्थिक विश मता, सामाजिक असन्तोश , भ्रष्टाचार एवं नैतिक पतन, बनावटी समृद्धि, साधनों का अनुपयुक्त आवंटन तथा मुद्रा में अविश्वास, जैसी समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। मुद्रा स्फीति के प्रभाव के चार भागों में बांटा जा सकता है-

(अ) आर्थिक प्रभाव **(ब) गैर आर्थिक प्रभाव**
(स) सामाजिक प्रभाव **(द) राजनैतिक प्रभाव**

1. उत्पादन तथा रोजगार पर प्रभाव - स्फीति की मन्द गति निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था के लिए बूस्टर का कार्य करती है। मूल्यों में थोड़ी वृद्धि उत्पादकों में सकारात्मक उत्साह पैदा करती है, जिससे उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती और उनका लाभ बढ़ता है परन्तु पूर्ण रोजगार के बाद केवल कीमतें बढ़ती हैं, जिससे उत्पादन में कमी तथा बेरोजगारी फैलती है। तीव्र स्फीति उत्पादन के बजाय सट्टेबाजी को बढ़ावा देती है, जिससे बाजार में अनिश्चितता उत्पन्न होती है। वास्तविक आय कम हो जाने के कारण बचत तथा पूँजी निर्माण प्रभावित होता है। बाहरी वस्तुओं के सस्ता होने के कारण लोग आयात पर अधिक आश्रित होने लगते हैं, जिससे देश की पूँजी बाहर की ओर पलायन करने लगती है। मूल्य अधिक होने के कारण लोगों में वस्तुओं के संचय की प्रवृत्ति बढ़ती है, जिससे वस्तुओं की कमी की समस्या संचयी रूप ले लेती है। साधनों का बंटवारा भी लाभपूर्ण उद्योगों के पक्ष में हो जाता है,

परिणामस्वरूप आवश्यक वस्तुओं के स्थान पर विलासित पूर्ण वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

2. आय तथा सम्पत्ति के वितरण पर प्रभाव - मुद्रा स्फीति निश्चित रूप से मौद्रिक आय में तेजी से वृद्धि करती है परन्तु इसका बंटवारा समाज के सभी वर्गों में बराबर नहीं होता है चूंकि सभी वस्तुओं के मूल्य में समान वृद्धि नहीं होती है, इसलिए आय के वितरण में असमानता स्वाभाविक है। उत्पादक, व्यापारी तथा सट्टेबाज स्फीति से लाभान्वित होते हैं, क्योंकि कींस के अनुसार - कीमत तथा मजदूरी (लागत) की दौड़ में मजदूरियाँ सदैव पीछे रह जाती हैं और इन्हें आकस्मिक लाभ प्राप्त होता रहता है।

3. ऋणी तथा ऋणदाता पर प्रभाव -मुद्रा स्फीति से ऋणी को लाभ तथा ऋणदाता को हानि होती है। एक व्यक्ति 2010 में किसी साहूकार से 10 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से रु0 1000 उधार लेता और उससे 1 क्विंटल गेहूँ खरीदता है। 2012 में वह साहूकार को रु0 1200 वापस करता है परन्तु स्फीति के कारण 1 क्विंटल गेहूँ का मूल्य रु0 1400 हो गया है। ऐसे में साहूकार को रु0 200 का लाभ नहीं बल्कि रु0 200 की हानि होगी।

4. निवेश क पर प्रभाव -निवेश के स्वरूप के अनुसार निवेशकों पर प्रभाव पड़ता है। बाण्ड तथा ऋण पत्रों में, जिनका प्रतिफल स्थिर रहता है, निवेश कम हो जाता है। इक्वीटी, जिस पर प्रतिफल की दर मूल्य स्तर से सम्बद्ध होती है, में निवेश हो सकता है। कीमत बढ़ने पर शेयरों पर प्रतिफल बढ़ता है इसलिए निवेश हो सकता है।

5. स्थिर आय वर्ग पर -निश्चित रूप से आय के स्थिर रहने पर स्फीति से क्रय शक्ति घट जाती है और स्थिर आय वर्ग पर विशेष कर वेतनभोगी वर्ग पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि की श्रम संघ कुछ वेतन बढ़वाने में सफल हो जाते हैं किन्तु जैसा कि कींस ने कहा कि मजदूरियाँ सदैव पीछे रह जाती हैं।

6. किसानों पर प्रभाव - किसान उत्पादक तथा ऋणी दोनों होते हैं, इसलिए इनके उपर स्फीति का अच्छा प्रभाव पड़ता है। कर और ब्याज बढ़ते तो हैं लेकिन उपज का मूल्य अधिक तेजी से बढ़ता है। इसके साथ ही उन्हें अपने ऋणों की अदायगी करने में भी सहायता मिलती है।

7. उपभोक्ता वर्ग - यदि उपभोक्ता की आय परिवर्तनशील है तब तो स्फीति का प्रभाव बुरा नहीं पड़ेगा, परन्तु इस श्रेणी के उपभोक्ता कम ही होते हैं। अधिकतर उपभोक्ताओं की आय स्थिर होती है तथा स्फीति उनकी क्रय शक्ति को कम कर देता है। परिणामस्वरूप इन्हें अपने वर्तमान जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए पहले से अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

जर्मनी की स्फीति को लक्ष्य करके सेम्युलसन ने लिखा कि, "पहले हम जेब में द्रव्य ले जाते थे और टोकरे में सामान ले आते थे और अब हम टोकरे में द्रव्य ले जाते हैं और जेब में सामान ले आते हैं।"

(ब) गैर-आर्थिक प्रभाव -मुद्रा स्फीति के गैर आर्थिक प्रभाव निम्नलिखित हैं-

1. नैतिक पतन -ऊँचे मूल्य से अधिक लाभ कमाने के लिए उत्पादक तथा व्यापारी अनैतिक कार्यों, जैसे- मिलावट, किस्म में गिरावट तथा मुनाफाखोरी, में संलग्न हो जाते है।

2. घूसखोरी का प्रोत्साहन -नियन्त्रणों को लागू करने के नाम पर सरकारी तन्त्र भी उस व्यवस्थित अव्यवस्था का अंग बन जाता है और घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार शिष्टाचार का रूप लेता है।

(स) सामाजिक प्रभाव -मुद्रा स्फीति के सामाजिक प्रभाव निम्नलिखित है-

1. आर्थिक विषमता -मुद्रा स्फीति धनी तथा अवसर सम्पन्न लोगों को और धनी तथा गरीबों और मजलूमों को और अधिक मजबूर कर देती है। इससे समाज में असन्तोश तथा अशान्ति बढ़ती है।

2. बेरोजगारी में कमी -इसे बुराई का अच्छा लाभ कहा जा सकता है, बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना होने के कारण बेरोजगारी की समस्या का काफी हद तक समाधान हो जाता है।

3. संचय में कमी - स्फीतिकाल में क्रय शक्ति में कमी होने के भय से लोग वस्तुओं को खरीदना प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे संचय की प्रवृत्ति घटती है।

4. हड़तालें-स्फीति काल में मजदूरी बढ़ाने के लिए प्रायः हड़तालें होती रहती हैं।

(द) राजनैतिक प्रभाव -

1. राजनैतिक परिवर्तन -सरकारों के लिए सदैव मूल्यों में तीव्र वृद्धि चिन्ता का विषय रही है। यह जनता में असन्तोश तथा सरकार के प्रति जनता में अविश्वास उत्पन्न करती है। इसका अन्य विपक्षी दल लाभ उठाते हैं तथा कभी-कभी सत्ता ही परिवर्तित हो जाती है। स्फीति के कारण इटली, फ्रान्स तथा स्पेन में सत्ता परिवर्तन हुए हैं।

2. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वेमानी-स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए सरकार द्वारा तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, जिससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रभावित होती है तथा प्रजातन्त्र व्यावहारिक स्वरूप खो देते हैं।

23.3.4 मुद्रा स्फीति का नियन्त्रण-समाज के विभिन्न वर्गों पर पड़ने वाले कुप्रभाव को देखते हुए मुद्रा स्फीति पर त्वरित एवं प्रभावशाली नियन्त्रण अपरिहार्य है। मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए तीन उपाय किये जा सकते है।

(अ) मौद्रिक उपाय **(ब) राजकोषीय उपाय** **(स) अन्य उपाय**

मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के विभिन्न उपायों को संक्षेप में इसप्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

स्फीति रोकने के उपाय

मौद्रिक उपाय	राजकोषीय उपाय	अन्य उपाय
• मुद्रा की मात्रा	कर प्रबन्धन	उत्पादन का नियमन
• पर नियन्त्रण	व्यय प्रबन्धन	वितरणात्मक न्याय
• प्रचलित करेंसी का	ऋण प्रबन्धन	सट्टेबाजी पर नियन्त्रण
• विमुद्रीकरण	मुद्रा का अधिमूल्यन	मूल्य नियन्त्रण तथा
• साख का नियमन		राशनिंग
		आयात प्रोत्साहन
		मजदूरी नीति का निर्धारण

मौद्रिक उपाय - अर्थव्यवस्था पर वांछनीय प्रभाव डालने के लिए केन्द्रीय बैंक जो उपाय अपनाता है उसे मौद्रिक उपाय कहा जाता है। केन्द्रीय बैंक इस उद्देश्य से निम्नलिखित यन्त्रों का प्रयोग करता है।

i. **मुद्रा की मात्रा पर नियन्त्रण-** मुद्रावादियों के अनुसार स्फीति का मुख्य कारण मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि है। स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए मुद्रा की मात्रा को कम करना अनिवार्य प्राथमिकता है, इसलिए नोट निर्गमन पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए।

ii. **पुरानी करेंसी का विमुद्रीकरण-** पुरानी एवं बड़ी नोटों का विमुद्रीकरण (कानूनी ग्राह्यता समाप्त करना) एक तरफ तो मुद्रा की मात्रा को कम करके स्फीति को नियन्त्रित करने में मदद करता है, दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था से कालेधन को कम करने में भी सहायक होता है।

iii. **साख का नियमन -** केन्द्रीय बैंक परिमाणात्मक तथा चयनात्मक विधियों द्वारा साख की मात्रा को नियमित करके स्फीति के प्रभाव को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है। इसके लिए केन्द्रीय बैंक निम्नलिखित यन्त्र का प्रयोग करता है। बैंक दर में वृद्धि करके केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों की साख सृजन की क्षमता कम कर देता हे, जिससे मुद्रा की पूर्ति कम हो जाती है और स्फीति को नियन्त्रित किया जा सकता है।

न्यूनतम नकद कोष - इस कोष में वृद्धि करके भी मुद्रा की पूर्ति को कम किया जाता है, जिसको स्फीति का प्रभाव कम होता है।

खुले बाजार की क्रियाएँ - सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय खुले बाजार की क्रियाएँ कहलाती हैं। प्रतिभूतियों को बेचकर जनता की क्रय शक्ति कम करके स्फीति के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

साख की राशनिंग - केन्द्रीय बैंक कानूनी एवं नैतिक दबावों का प्रयोग करके साख सृजन की अधिकतम सीमा निर्धारित कर सकता है, जो मुद्रा की पूर्ति को सीमा में रखकर स्फीति के प्रभाव को कम कर सके।

मौद्रिक नीति की सीमाएँ - जर्मनी की स्फीति तथा महानमन्दी ने यह सिद्ध कर दिया कि मौद्रिक नीति की अपनी सीमाएँ है। वास्तव में कीमत के बढ़ने तथा घटने की प्रत्याशा दोनों (स्फीति एवं अवस्फीति) को संचयी बना देती है, परन्तु प्रत्याशा पर मौद्रिक नीति प्रहार नहीं कर पाती है।

(ब) राजकोषीय उपाय -अर्थव्यवस्था पर वांछनीय प्रभाव डालने के लिए सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली नीतियों को राजकोषीय नीति अथवा उपाय कहते हैं।

सरकार अतिरिक्त क्रय शक्ति को कम करने के लिए कर में वृद्धि कर सकती है।

सरकारी बड़े पैमाने पर जनता से ऋण लेकर उत्पादक कार्य में लगा सकती है। इससे एक तरफ तो क्रय शक्ति कम होगी तथा दूसरी तरफ उत्पादन बढ़ेगा। इस प्रकार दोनों क्रियाएँ स्फीति के प्रभाव को कम करेंगी। सरकार सार्वजनिक व्यय में कमी करके, विशेष कर अनुत्पादक व्यय में, स्फीति को नियन्त्रित कर सकती है।

सरकार उपभोक्ता वस्तुओं पर कर लगाकर बचत को प्रोत्साहित कर सकती है, जिससे कम क्रय शक्ति बाजार का रुख करें। सरकार मुद्रा का अधिमूल्यन करके स्फीति को नियन्त्रित कर सकती है। अधिमूल्यन से आयात बढ़ता है तथा निर्यात कम होता है। दोनों से देश में पूर्ति बढ़ती है और कीमत को कम करने में सहायता मिलती है।

(स) अन्य उपाय - इसे प्रत्यक्ष उपाय भी कहा जाता है, इसका प्रयोग करके स्फीति के प्रभाव को कम या समाप्त किया जा सकता है। सरकार निम्नलिखित उपायों द्वारा स्फीति को नियन्त्रित कर सकती है-

i. **उत्पादन में वृद्धि** - सरकार वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग करके, कच्चे माल की पूर्ति बढ़ाकर तथा प्रबन्धन की कुशलता सुनिश्चित करके उत्पादन में वृद्धि करके मूल्य को नियन्त्रित कर सकती है।

ii. **लाभ वितरण पर प्रतिबन्ध -** सरकार लाभ वितरण को प्रतिबन्धित करके हिस्सेदारों का उपभोग व्यय कम कर सकती है। इससे एक सीमा तक मुद्रा प्रसार को नियन्त्रित किया जा सकता है।

iii. **सट्टेबाजी पर नियन्त्रण-** सट्टेबाजी भावी सौदों का मूल्य बढ़कर मनोवैज्ञानिक वातावरण उत्पन्न कर देती हैं, जिससे स्फीति का प्रभाव संचयी हो जाता है। सट्टेबाजी पर नियन्त्रण लगाकर स्फीति को एक सीमा तक कम किया जा सकता है।

iv. मूल्य नियन्त्रण एवं राशनिंग-सरकार आर्थिक नीति के अन्तर्गत (क) वस्तुओं का अधिकतम मूल्य तय कर सकती है। (ख) राशनिंग द्वारा मांग को नियन्त्रित कर सकती है। (ग) मजदूरी की अधिकतम दर तय कर सकती है तथा सरकार आवश्यक व्यवस्था अपने हाथ में ले सकती है।

v. **आयात प्रोत्साहन -** वस्तुओं तथा सेवाओं में वृद्धि करने के लिए सरकार आयातों का प्रोत्साहित कर सकती है तथा निर्यातों पर प्रतिबन्ध लगा सकती है।

vi. **मजदूरी नीति -** मजदूरियों में वृद्धि लागत को बढ़ाकर स्फीतिक प्रभाव उत्पन्न करती है और कीमत वृद्धि पुनः मजदूरी वृद्धि को प्रोत्साहित करती है तथा यह क्रम चलता रहता है। उचित मजदूरी नीति के द्वारा इस चक्र को नियन्त्रित किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न -

1. मुद्रा स्फीति से क्या अर्थ है?
2. आंशिक स्फीति किसे कहते हैं?
3. मांग प्रेरित स्फीति क्या है?
4. लागत प्रेरित स्फीति क्या है?
5. मुद्रा स्फीति के दो प्रमुख कारण बताइये?
6. मुद्रा स्फीति का ऋणी तथा ऋणदाता पर क्या प्रभाव पड़ता है?
7. मुद्रा स्फीति नियन्त्रण के मौद्रिक उपाय बताइये?
8. मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के राजकोषीय उपाय बताइये?

निम्नलिखित कथन सही है या गलत:

1. स्फीति की दशा में मुद्रा का मूल्य बढ़ता है तथा वस्तु का मूल्य घटता है।
2. स्फीति ऋणदाताओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।
3. स्फीति रोकने के मुद्रा की पूर्ति करनी चाहिए।
4. आंशिक स्फीति पूर्ण रोजगार के पहले होती है।
5. शुद्ध स्फीति पूर्ण रोजगार के पहले आती है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. मुद्रा स्फीति का सम्बन्ध ..... कीमतों से है। (a.ऊँची, b. बढ़ती हुई।)
2. स्फीतिक अन्तराल का कारण मांग की तुलना में पूर्ति का ..... होना है। (a.अधिक,b.कम)
3. लागत प्रेरित स्फीति में मांग ..... (a.घटती है, b. स्थिर रहती है)
4. मुद्रा स्फीति का ..... पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। (a.ऋणी, b.ऋणदाता)
5. मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के लिए ..... मुद्रा नीति अपनानी चाहिए (a. सस्ती, ,b.महँगी)

23.4 सारांश -

मुद्रा स्फीति कीमतों में सतत् वृद्धि को कहते हैं। जब वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा कम होती है और बाजार में क्रय शक्ति अधिक होती है तब मुद्रा स्फीति उत्पन्न होती है। कींस ने कहा कि पूर्ण रोजगार के बाद ही पूर्ण स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती। पूर्ण रोजगार के पहले मूल्य में वृद्धि उत्पादन तथा रोजगार को बढ़ाती है इसलिए इसे अर्द्ध स्फीति कहा जाता है।

मुद्रा स्फीति को अनेक कारण प्रभावित करते हैं, जिन्हें दो भागों में व्यक्त किया जा सकता है-

माँग प्रेरित स्फीति -जब कीमतों में वृद्धि अतिरिक्त मांग के कारण होती है।

लागत प्रेरित स्फीति -जब कीमतों में वृद्धि उत्पादन लागत बढ़ने के कारण होती है।

मांग प्रेरित स्फीति में स्फीति मांग पक्ष में उत्पन्न होती है तथा लागत प्रेरित स्फीति में स्फीति पूर्ति पक्ष से प्रारम्भ होती है। कारण चाहे जो भी हो परन्तु बाद में मिश्रित प्रभाव ही दृष्टिगोचर होते हैं।

मुद्रा स्फीति से उत्पादकों, व्यापारियों, सट्टेबाजों तथा ऋणी वर्ग को लाभ होता है। जिनकी आय स्थिर रहती है, उन्हें हानि होती है। लागते बढ़ती हैं, परन्तु कीमत और मजदूरी की दौड़ में मजदूरियाँ सदैव पीछे रह जाती है।

मुद्रा स्फीति को मौद्रिक उपायों- बैंक दर में वृद्धि, न्यूनतम आरक्षित अनुपात में वृद्धि तथा प्रतिभूतियों की बिक्री आदि के द्वारा नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है। सरकार राजकोषीय उपाय जैसे- कर में वृद्धि, व्यय में कमी तथा ऋणों में वृद्धि करके स्फीति को रोकने का प्रयास करती है। इसके अलावा सरकार प्रत्यक्ष उपाय द्वारा भी स्फीति को नियन्त्रित करने का प्रयास करती है। प्रत्यक्ष उपाय मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के पूरक है।

23.5 शब्दावली -

मांग प्रेरित स्फीति- समग्र मांग का उत्पादन एवं रोजगार से अधिक होने पर होने वाली स्फीति

लागत प्रेरित स्फीति - कच्चे माल की कीमत बढ़ने, मजदूरी में वृद्धि तथा लाभ की गुंजाइश बढ़ने से लागत में वृद्धि से होने वाली स्फीति

बैंक दर - ब्याज की वह दर जो केन्द्रीय बैंक व्यवसायिक बैंकों से वसूल करता है।

खुले बाजार की क्रियाएँ - प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय को खुले बाजार की क्रियाएँ कहते हैं।

घाटे की वित्ता व्यवस्था - अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा नोट का निर्गमन घाटे की वित्त व्यवस्था कहलाता है।

23.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

निम्नलिखित कथन सही है या गलत:

1.गलत, 2. सही, 3. सही, 4. सही, 5. गलत।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए उत्तर-1.b,2.b, 3.a, 4.a, 5.b।

23.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- Seth, M.L. (2010) : 'Money Banking and International Trade', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), "Macro Economics", Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), 'Monetary Economics' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) 'Macro Economic Analysis' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

23.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री -

सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा

लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद

मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

23.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. "किसी वस्तु की मांग समस्त पूर्ति से अधिक होना ही मुद्रा स्फीति है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए और मुद्रा स्फीति के कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. मुद्रा स्फीति के आर्थिक प्रभावों की व्याख्या कीजिए। स्फीतिक दबावों को रोकने के लिए आप कौन से सुझाव बतायेंगे।
3. मांग प्रेरित तथा लागत प्रेरित स्फीति में अन्तर कीजिए, सिद्ध कीजिए कि मुद्रा स्फीति एक मिश्रित स्फीति है।
4. मुद्रा स्फीति केवल विकसित देशों की समस्या है, इस कथन पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

इकाई-24 मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी

इकाई की रूपरेखा:

24.1 प्रस्तावना
24.2 उद्देश्य
24.3 मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी
24.3.1 स्फीति और बेरोजगारी की व्याख्या फिलिप्स वक्र द्वारा
24.3.2 फिलिप्स वक्र की वैधानिकता
24.4 सारांश
24.5 श ब्दावली
24.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
24.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
24.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
24.9 निबन्धात्मक प्रश्न

24.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपको स्फीति के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराया गया। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य आप के अन्दर स्फीति और बरोजगारी के सम्बन्ध की समझ पैदा करने का प्रयास है। कींस के मॉडल में आपने देखा कि पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त होने के बाद समग्र पूर्ति रेखा लम्बवत हो जाती है। ऐसी दशा में राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों में विस्तारवादी परिवर्तन केवल मूल्यों में वृद्धि करता है न कि रोजगार में।

चूंकि मजदूरी की लागत (आपने लागत वृद्धि स्फीति में देखा है) कीमत संरचना में महती भूमिका अदा करती है, इसलिए पूर्ति विश्लेषण में दिलचस्पी रखने वाले अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी की दर में वृद्धि तथा बेरोजगारी की दर के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस सम्बन्ध की सर्वमान्य व्याख्या फिलिप्स ने प्रस्तुत की। वर्तमान अध्याय में आप फिलिप्स की व्याख्या का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

24.2 उद्देश्य-

इस अध्याय में आपको -

- स्फीति की और व्यापक समझ पैदा होगी।
- बेरोजगारी की विस्तृत समझ आयेगी
- स्फीतिक अन्तराल की धारणा को स्पष्ट करना।
- मुद्रा स्फीति के विभिन्न सिद्धान्तों/कारणों को स्पष्ट करना।
- मुद्रा स्फीति के प्रभावों की समझ उत्पन्न करना।
- मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के तरीकों से परिचित कराना।

24.3 मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी

24.3.1 स्फीति और बेरोजगारी की व्याख्या फिलिप्स वक्र द्वारा-आप जानते हैं कि प्रायः सभी अर्थव्यवस्थाओं के सामने स्फीति और बेरोजगारी दो बड़ी समस्याएँ हैं। फिलिप्स ने स्पष्ट कहा कि यदि बेरोजगारी दूर करना चाहते हैं तो स्फीति को, और यदि स्फीति खत्म करना चाहते हैं तो बेरोजगारी को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना पड़ेगा। इसका अभिप्राय यह है कि दोनों का एक स्वीकार्य स्तर निर्धारित करना पड़ेगा।

1950 में मांग प्रेरित स्फीति तथा लागत प्रेरित स्फीति अर्थशास्त्रियों के मध्य विवाद का विषय बना हुआ था, उसी समय लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के अर्थशास्त्री ए॰डब्ल्यू॰फिलिप्स ने The Relation Between Unemployment and the Rate of Change in Money Wage

Rates in United Kingdom in 1861-1957 (Economica- Nov. 1958) शोध-पत्र का प्रकाशन किया।

फिलिप्स ने 1861 से 1957 के मध्य ब्रिटेन में होने वाले बेरोजगारी की दर में प्रतिशत परिवर्तन तथा मौद्रिक मजदूरी की दरों में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से सम्बन्धित आँकड़ों का विश्लेषण किया। इस विश्लेषण को रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया, जो फिलिप्स वक्र के नाम से आर्थिक जगत में विख्यात हुआ।

फिलिप्स के विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य इस बात की व्याख्या करना था कि-

अध्ययन काल के दौरान ब्रिटेन में लागत प्रेरित और मांग प्रेरित स्फीति में कौन अधिक प्रभावशाली रही तथा

यह निर्धारित करना था कि किस सीमा तक नियन्त्रित मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियाँ स्फीति के नियन्त्रण में अधिक सफल हो सकती है।

फिलिप वक्र को चित्र संख्या-1 द्वारा व्यक्त किया जा सकता है-

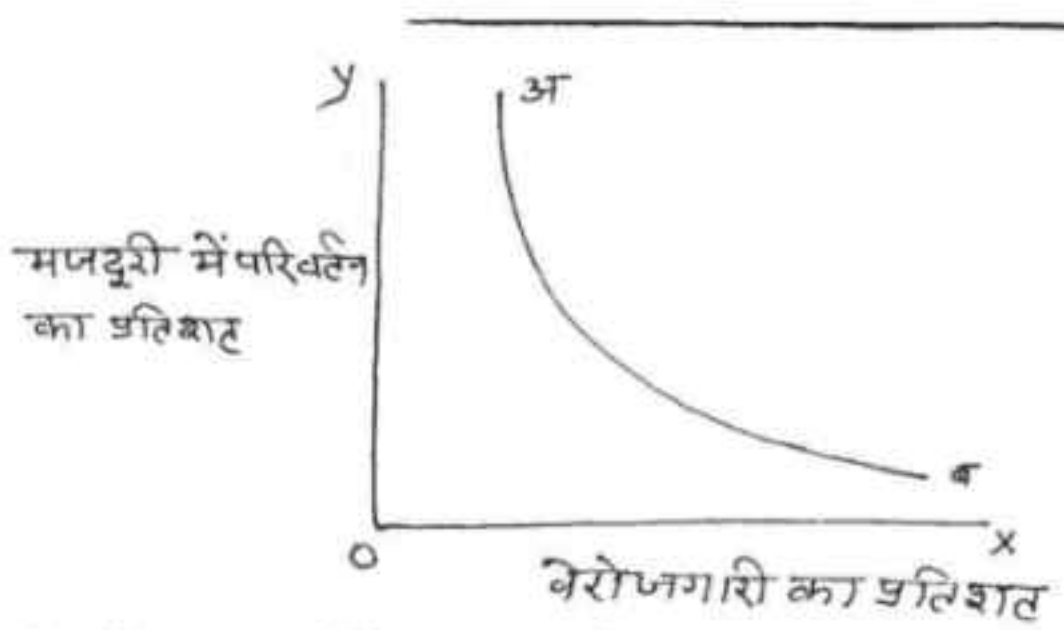

उपर्युक्त चित्र में x अक्ष पर बेरोजगारी का प्रतिशत तथा ल अक्ष पर मजदूरी में परिवर्तन का प्रतिशत प्रदर्शित किया गया है।

चित्र से स्पष्ट है कि मजदूरी में परिवर्तन का प्रतिशत (मजदूरी प्रेरित स्फीति) तथा बेरोजगारी का प्रतिशत के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। फिलिप्स वक्र अ, ब द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

i. मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी दोनों साथ-साथ पाये जा सकते हैं।
ii. जिस समय काल का फिलिप्स ने अध्ययन किया, उस दौरान लागत प्रेरित तत्वों की अपेक्षा मांग प्रेरित तत्वों का प्रभाव अधिक रहा।
iii. फिलिप्स ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि नियन्त्रित मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां मांग प्रेरित स्फीति को नियन्त्रित कर सकती है परन्तु लागत प्रेरित स्फीति को नियन्त्रित करने में असफल रहती है।

अतः स्पष्ट हे कि समाज में मूल्य स्थिरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बेरोजगारी के दंश को बर्दाश्त करना ही पड़ेगा।

24.3.2 फिलिप्स वक्र की वैधानिकता-इस भाग में आप जानेंगे कि क्या फिलिप्स वक्र एक अनिवार्य सत्य है? अनुभव पर आधारित अध्ययन इसके सर्वमान्य एवं सर्वकालिक होने पर प्रश्न चिह्न खड़ा करते हैं। 1950-60 के दौरान यू॰एस॰ए॰ की अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से फिलिप वक्र का अनुपालन करती है। बेरोजगारी के प्रतिशत में प्रत्येक एक प्वाइण्ट की कमी के परिणामस्वरूप मौद्रिक मजदूरी की दर में 3/4 प्वाइण्ट की वृद्धि हुई।

परन्तु 1970 में अमेरिका की आर्थिक स्थिति की व्याख्या करने में फिलिप वक्र असफल हो गया। उस समय स्टैगफ्लेशन की वह अप्रत्याशित अवस्था उत्पन्न हुई, जब उच्च स्फीति और उच्च बेरोजगारी दोनों एक साथ अनुभव किया गया। स्टैगफ्लेशन की व्याख्या करने में कींस का मॉडल तथा फिलिप्स का मॉडल दोनों ही असफल हो गये। मिल्टन फ्रीडमैन ने फिलिप वक्र को चुनौती दी तथा स्टैगफ्लेशन की अवस्था को पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया। उनके अनुसार केवल अल्पकाल में नीचे की ओर गिरता हुआ फिलिप वक्र पाया जाता है परन्तु यह स्थिर नहीं रहता है यह प्रायः बायें अथवा दायें खिसकता रहता है। फ्रीडमैन ने कहा कि अर्थव्यवस्था का दीर्घकालीन सन्तुलन बेरोजगारी की प्राकृतिक दर पर होता है। अर्थात् दीर्घकाल में स्फीति और बेरोजगारी के बीच कोई ट्रेड ऑफ नहीं होता है बल्कि फिलिप्स वक्र X अक्ष पर एक लम्बवत् रेखा होती है। इसे चित्र संख्या-2 में व्यक्त किया गया है।

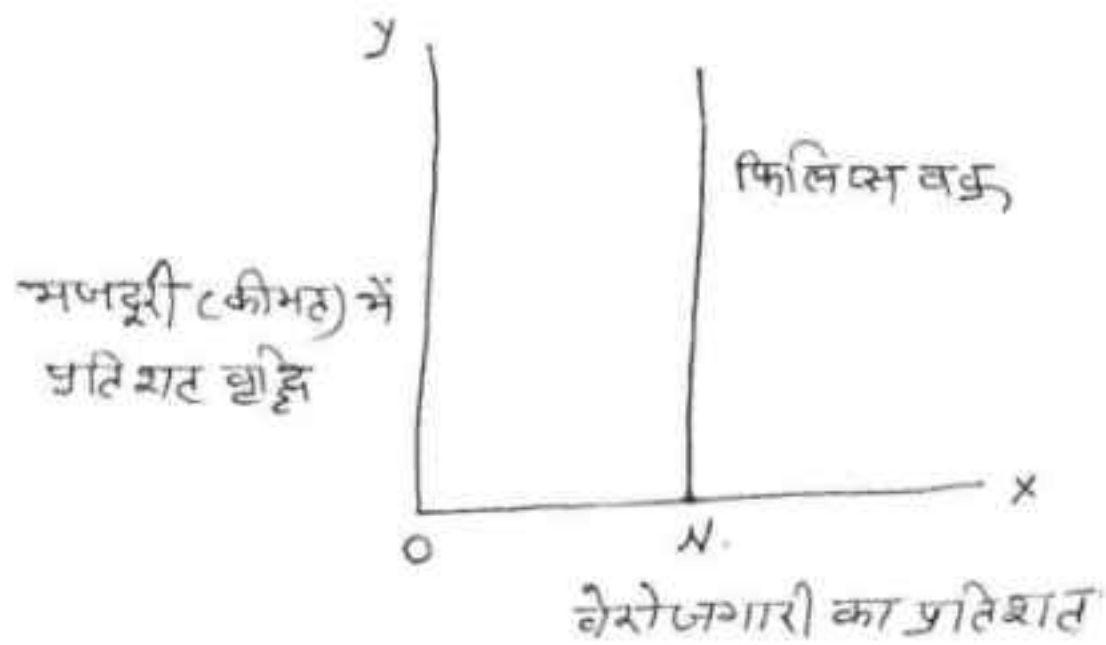

बेरोजगारी की प्राकृतिक दर वह दर है जिस पर उपलब्ध रोजगार के अवसर तथा श्रम बाजार में बेरोजगारों की संख्या दोनों बराबर होती है। यदि स्फीति की वास्तविक दर प्रत्याशित दर से अधिक होती है, तब अल्पकाल में बेरोजगारी, प्राकृतिक दर से नीचे आ सकती है परन्तु दीर्घकाल में पुनः बेरोजगारी की प्राकृतिक दर स्थापित हो जायेगी।

फ्रीडमैन यह स्वीकार करता है कि कीमत और मजदूरी की दौड़ में मजदूरी सदैव पीछे रह जाती है, जिससे व्यावसायिक लाभ में वृद्धि होती है और उत्पादन तथा रोजगार बढ़ता है। यही कारण है कि

अल्पकाल में बेरोजगारी प्राकृतिक दर से नीचे आ जाती है। इसी व्याख्या के आधार पर हाल में नवीन समष्टि अर्थशास्त्र में विवेकपूर्ण प्रत्याशा का सिद्धान्त विकसित किया गया। इस व्याख्या में यह मान लिया गया कि कीमत और मजदूरी के बीच समायोजन में कोई समय अन्तराल नहीं पाया जाता है, इसलिए कीमत तथा मजदूरी के बीच ट्रेड ऑफ व्यक्त करने वाला कोई फिलिप्स वक्र अस्तित्व में नहीं पाया जाता है। कुल मांग में वृद्धि से बेरोजगारी की दर में कोई कमी नहीं होती है। इस व्याख्या से आप समझ गये होंगे कि विवेकपपूर्ण प्रत्याशा के सिद्धान्त के अनुसार कुल पूर्ति रेखा पूर्ण रोजगार के स्तर पर एक लम्बवत रेखा होती है। इसका अभिप्राय यह है कि कीमत और स्फीति के बीच कोई ट्रेड ऑफ नहीं पाया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि नीचे की ओर गिरते हुए फिलिप्स वक्र का अस्तित्व ही संदिग्ध है।

अभ्यास प्रश्न -

1. फिलिप्स वक्र क्या है?
2. स्टैगफ्लेशन समझाइए?
3. विवेकपूर्ण प्रत्याशा का सिद्धान्त क्या है?
4. फिलिप्स वक्र निम्न के बीच सम्बन्ध बताता है-
   a. स्फीति और रोजगार
   b. मजदूरी की दर तथा बेरोजगारी
   c. कर की दर तथा कर आय
   d. सार्वजनिक आय एवं व्यय
5. ऊँची कीमत तथा ऊँची बेरोजगारी के सह-अस्तित्व को कहते हैं-
   a. स्फीति
   b. अवस्फीति
   c. अपस्फीति
   d. स्टैगफ्लेशन
6. स्टैगफ्लेशन तब पाया जाता है जब -
   a. समग्र पूर्ति रेखा नीचे की ओर गिरती हुई हो।
   b. समग्र पूर्ति रेखा उपर की ओर उठती हुई हो।
   c. समग्र मांग रेखा उपर की ओर उठती हुई हो।
   d. समग्र मांग रेखा नीचे की ओर गिरती हुई हो।

24.4 सारांश -

स्फीति और बेरोजगारी दोनों ही विकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य समस्याएँ हैं। फिलिप्स ने अनुभव पर आधारित अध्ययन का सहारा लेकर यह स्पष्ट किया कि स्फीति और

बेरोजगारी के मध्य विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। इसे व्यक्त करने के लिए फिलिप्स वक्र का प्रयोग किया। फ्रीडमैन ने कहा कि फिलिप्स वक्र अल्प काल में तो सक्रिय रहता है परन्तु दीर्घकाल में यह लम्बवत् हो जाता है जिससे ट्रेड ऑफ का प्रश्न ही नहीं उठता है। आगे चलकर नवीन समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत विवेकपूर्ण प्रत्याशा का सिद्धान्त विकसित किया गया, जिसके अनुसार पूर्ण रोजगार के स्तर पर समग्र पूर्ति रेखा एक लम्बवत रेखा होती है। इसका अभिप्राय यह है कि कीमत और स्फीति के बीच कोई ट्रेड ऑफ नहीं होता है और नीचे गिरते हुए फिलिप्स वक्र का अस्तित्व संदेहास्पद है।

24.5 शब्दावली-

1. फिलिप्स वक्र :- कीमत और बेरोजगारी के मध्य ट्रेड ऑफ व्यक्त करने वाला वक्र।
2. बेरोजगारी की प्राकृतिक दर :- वह दर जिस पर बेरोजगारों की संख्या और उपलब्ध रोजगारों के अवसर दोनों बराबर होते हैं।
3. स्टैगफ्लेशन . :- ऊँची कीमत तथा ऊँची बेरोजगारी का सह-अस्तित्व।
4. मौद्रिक नीति :- आर्थिक स्थिति को नियमन करने के लिए केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रयोग की जाने वाली नीतियाँ।
5. राजकोषीय नीति :- आर्थिक स्थिति के नियमन के लिए सरकार द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपाय।

24.6 बोध प्रश्न एवं उनके उत्तर-

उत्तर- 4. a ,5. d ,6. b

24.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- Seth, M.L. (2010) : 'Money Banking and International Trade', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), "Macro Economics", Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), 'Monetary Economics' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) 'Macro Economic Analysis' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

24.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री -

1. सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
2. सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा
3. लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
4. मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

24.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. फिलिप्स वक्र स्फीति और बेरोजगारी के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या करता है। इस कथन को विस्तार से समझाइये।
2. फिलिप्स वक्र की वैधानिकता पर एक निबन्ध लिखिए।
3. फिलिप्स वक्र की उत्पत्ति का ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखिए।

इकाई-25: मौद्रिक नीति के यन्त्र

इकाई की रूपरेखा:

25.1 प्रस्तावना
25.2 उद्देश्य
25.3 मौद्रिक नीति के यन्त्र
    25.3.1. मौद्रिक नीति क्या है?
    25.3.2. मौद्रिक नीति का उद्देश्य
    25.3.3. मौद्रिक नीति के मुख्य यन्त्र
25.4 सारांश
25.5 श ब्दावली
25.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
25.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
25.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
25.9 निबन्धात्मक प्रश्न

25.1 प्रस्तावना -

पिछले अध्याय में आपने मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति का नाम सुना है। वर्तमान अध्याय मौद्रिक नीति के कुछ खास पहलुओं पर प्रकाश डालेगा। मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति तथा ऋण प्रबन्धन संयुक्त रूप से किसी अर्थव्यवस्था की आर्थिक नीति का निर्धारण करते हैं। "जनरल थियरी" (1936) के प्रकाशन के पहले समष्टि आर्थिक नीति के रूप में मौद्रिक नीति ही प्रभावपूर्ण तरीके से विद्यमान थी। मुख्य आर्थिक एवं गैर आर्थिक उद्देश्य जैसे- पूर्णरोजगार, मूल्य स्थिरता, आर्थिक विकास, ब्याज दर की लोचशीलता, भुगतान सन्तुलन तथा मजदूरी का नियमन आदि को प्राप्त करने के लिए मौद्रिक नीति का सहारा लिया जाता रहा है। जे0बी0 से के बाजार नियम के अनुसार- 'पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न करती है' जिससे बाजार में सदैव पूर्ण रोजगार की स्थिति बनी रहती है। न तो मांग की अधिकता होती है न ही पूर्ति की। यह भी विश्वास था कि यदि फौरी, तौर पर असन्तुलन पाया भी जाता है तो बाजार की शक्तियाँ (मांग और पूर्ति) स्वयं समायोजन कर लेती हैं परन्तु 1929 की महा मन्दी ने यह भ्रम चकनाचूर कर दिया। बाजार की शक्तियां तथा मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने में असमर्थ रहे। इसी समय जॉन मेनार्ड कींस ने राजकोषीय नीति का विकल्प प्रस्तुत कर सरकार के हस्तक्षेप की अपरिहार्यता को सुनिश्चित किया। धीरे-धीरे सरकार का स्वरूप पहरेदार से बदलकर कल्याणकारी राज्य का हो गया। एक समय था जब सरकार का कोई भी हस्तक्षेप जनता पर अत्याचार करने के समान था जबकि आज पालने से लेकर (पोलियो ड्राप पिलाने) कब्र तक की जिम्मेदारी कल्याणकारी राज्य की हो गयी।

25.2 उद्देश्य -

वर्तमान अध्याय का उद्देश्य आपके अन्दर निम्नलिखित की समझ पैदा करना है-

- मौद्रिक नीति क्या है।
- मौद्रिक नीति के विभिन्न यन्त्र कौन हैं?
- मौद्रिक नीति आर्थिक नीति का एक अंग है।
- विभिन्न यन्त्रों के सापेक्षित गुण-दोश की पहचान।
- मौद्रिक नीति की क्रियाशीलता को समझना।

25.3 मौद्रिक नीति के यन्त्र -

25.3.1. मौद्रिक नीति क्या है-सीधे और सरल शब्दों में किसी देश के केन्द्रीय बैंक (वह बैंक जो सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवस्था का नियमन करता है अर्थात् जो बैंकों का बैंक होता है) द्वारा अर्थव्यवस्था पर वांछित प्रभाव डालने (पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने, मूल्य स्थिरता को बनाये रखने, आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने तथा जन सामान्य को सम्मानजनक जीवन सतर प्रदान करने) तथा अवांछनीय प्रभाव (बेरोजगारी को कम करना, स्फीति तथा अवस्फीति को दूर करना तथा भुगतान सन्तुलन के असाम्य को ठीक करना) को कम करने के लिए अपनायी जाने वाली नीति मौद्रिक नीति कहलाती है।

संकीर्ण अर्थों में मौद्रिक नीति से आशय केन्द्रीय बैंक तथा सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली उस नीति से है, जिसके द्वारा मुद्रा तथा साख की मात्रा का नियमन किया जाता है। ताकि ब्याज दर को प्रभावित करके बाजार में कुल मांग और कुल पूर्ति को संयमित किया जा सके। परन्तु व्यापक अर्थ में गैर मौद्रिक उपायों जैसे- मजदूरी तथा कीमतों पर नियन्त्रण एवं बजटीय क्रियाओं को भी मौद्रिक नीति में शामिल किया जाता है।

आर0पी0 केन्ट के अनुसार - मौद्रिक नीति, स्पष्ट रूप से निर्धारित पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रचलन में मुद्रा की यात्रा का विस्तार एवं संकुलचन करने, के प्रबन्ध का नाम है।

एच0जी0 जॉनसन के अनुसार - मौद्रिक नीति के अन्तर्गत वे सभी मौद्रिक निर्णय एवं उपाय सम्मिलित हैं, जिनके उद्देश्य चाहे मौद्रिक हो या अमौद्रिक तथा वे सभी अमौद्रिक निर्णय एवं उपाय सम्मिलित हैं, जिनके उद्देश्य मौद्रिक हैं। निश्चित रूप से यह परिभाषा बहुत व्यापक है परन्तु मौद्रिक नीति के विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने में बहुत सहायक नहीं है।

25.3.2. मौद्रिक नीति का उद्देश्य -आप जान गये हैं कि मौद्रिक नीति आर्थिक नीति का एक अंग है। इसका अभिप्राय यह है कि मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को समग्र आर्थिक उद्देश्य का ही एक भाग माना जाना चाहिए। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले तक परम्परागत मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर तथा मूल्य स्तर को स्थिरता प्रदान करना था।

रेडक्लिफ समिति ने खासकर विकसित देशों के लिए मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य बताये-

1. उच्चतम एवं स्थिर रोजगार का स्तर।
2. उचित मूल्य स्थिरता ताकि मुद्रा का आन्तरिक मूल्य सम्मानजनक स्तर पर बना रहे।
3. सतत् आर्थिक विकास ताकि आय के स्तर में वृद्धि हो सके और राष्ट्र के जीवन स्तर में सुधार हो सके।

4. अर्थव्यवस्था के बहिर्मुखी विकास हेतु भुगतान सन्तुलन को नियमित करना।
5. विनिमय दर को स्थिरता प्रदान करना तथा विदेशी विनिमय कोष को मजबूत करना।

यद्यपि कि मौद्रिक नीति के उपर्युक्त उद्देश्य बताये गये। परन्तु समय-समय पर बदलते सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के कारण मौद्रिक नीति के उद्देश्य तथा उनकी प्राथमिकताएँ बदलती रही हैं। सामान्य तौर पर मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकार किये गये हैं।

- मुद्रा की उदासीनता
- विनिमय दर स्थिरता
- कीमत स्थिरता
- पूर्ण रोजगार और
- आर्थिक वृद्धि
- मुद्रा की उदासीनता

वीकस्टीड , हायक तथा राबर्टसन का मानना है कि सर्वश्रेष्ठ मौद्रिक नीति वह है जो मुद्रा को पूर्णतया उदासीन बनाये रखे। अर्थात् मुद्रा की भूमिका अर्थव्यवस्था के संचालन में मात्र एक निष्क्रिय साधन की रहे। मुद्रा को अर्थव्यवस्था के संचालन में बिना कोई अव्यवस्था उत्पन्न किये, केवल विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करना चाहिए। मुद्रा की उदासीनता के उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि मुद्रा की मात्रा प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रखी जाय। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार-मुद्रा एक तकनीकी यन्त्र है जो अर्थव्यवस्था के संचालन में निष्क्रिय भूमिका अदा करती है। इसका मुख्य उद्देश्य केवल राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सुचारु रूपेण संचालन में सहयोग प्रदान करना है। संचय की प्रवृत्ति तथा संचलन वेग के मद्देनजर मुद्रा की मात्रा को स्थिर बनाये रखने के लिए मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन करना पड़ता है। अर्थव्यवस्था में होने वाले आधारभूत परिवर्तनों जैसे - जनसंख्या में परिवर्तन, उत्पादन तकनीक में परिवर्तन तथा नवप्रवर्तन आदि को अप्रभावी करने के लिए मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन में आवश्यक होता है। अतः यदि मुद्रा की मात्रा में समय-समय पर परिवर्तन नहीं किया गया तो यह अपने मुख्य गुण उदासीनता का पालन करने में असमर्थ रहेगी।

आलोचना -अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा की उदासीनता का निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की।

1. मुद्रा की उदासीनता की अवधारणा समय के साथ अपना महत्व खो चुके मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त पर आधारित है इसलिए यह भी महत्वहीन है।

2. उदासीनता कीमत स्थिरता के उद्देश्य को प्राप्त करने में असमर्थ है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति उत्पादन वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसी स्थिति में यदि मुद्रा की मात्रा स्थिर रखी जाय तो यह केवल अवस्फीतिक दशाएँ उत्पन्न करेगी, जिससे कीमतों में गिरावट आयेगी।
3. मन्दी के दौरान उदासीन मुद्रा नीति अप्रभावी रहती है। अतः इस अवधि में इसका अनुपालन नहीं किया जा सकता है।
4. मुद्रा की उदासीनता की अवधारणा स्वयं में विरोधाभासी है। एक तरफ यह मुद्रा के निष्क्रिय स्वरूप को स्वीकार करके अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन करता है दूसरी तरफ आधारभूत परिवर्तनों के अनुरूप मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन की वकालत भी करता है। दोनों एक साथ कैसे सम्भव है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका एक सक्रिय यन्त्र की है। मुद्रा की उदासीनता व्यावसायिक उच्चावचनों को नियन्त्रित करने में असफल है।

विनिमय दर स्थिरता - विनिमय दर की स्थिरता तथा स्वर्णमान युग को यदि एक-दूसरे का पर्याय कहा जाय तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी। भुगतान सन्तुलन के अनुकूल होने पर बाहर से स्वर्ण देश में आने लगता है। ऐसे में मौद्रिक सत्ता करेंसी तथा साख में विस्तार करके आन्तरिक मूल्यों में वृद्धि कर देती है, परिणामस्वरूप देश के भीतर वेदना लाभप्रद हो जाता है। इस प्रकार स्वर्ण के आगमन को प्रतिबन्धित करके विनिमय दर की स्थिरता को बनाये रखा जाता है। इसी प्रकार भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने पर जब स्वर्ण का निर्यात प्रारम्भ हो जाता है तब करेंसी तथा साख की मात्रा में संकुचन करके आन्तरिक मूल्य को कम कर दिया जाता है जिससे वस्तुओं का बाहरी बाजार में वेचना लाभप्रद हो जाता है। इस प्रकार स्वर्ण के निर्यात को नियन्त्रित करके विनिमय दर को स्थिर बनाये रखा जाता है।

तीस के दशक में यूरोपीय देशों से स्वर्णमान लगभग उन्मूलन हो गया, साथ ही स्थायी विनिमय दर भी बीते दिनों की बात हो गया। पत्र मुद्रा के वर्तमान युग में विनिमय दर की स्थिरता विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं के सामने एक मुख्य चुनौती है। अब तो यहाँ तक कहा जाने लगा है कि मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर को स्थिर बनाये रखना है। आप जानते हैं कि विनिमय दर वह दर है जिस पर दो देशों की मुद्राओं का आपस में लेन-देन होता है। विनिमय दर की अस्थिरता मुख्य रूप से निम्न समस्याएँ उत्पन्न करती हैं-

1. विनिमय दर में बड़े पैमाने पर पायी जाने वाली अस्थिरता मुद्रा बाजार में सट्टा कार्य को बढ़ावा देती है।

2. यह विदेशी निवेशकों के मन में डर एवं अविश्वास उत्पन्न कर देता है, जिससे देश में विदेशी विनियोग तथा पूँजी निर्माण की दर बुरी तरह प्रभावित हो सकती है तथा विदेश अपनी पूँजी अपने देश वापस ले जा सकते हैं।
3. यह सम्बन्धित देश में बड़े पैमाने पर आन्तरिक कीमत स्थिरता को नुकसान पहुँचा सकती है।

आलोचना -विनिमय दर की स्थिरता की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

- आपने देखा की स्वर्णमान में विनिमय दर की स्थिरता आन्तरिक मूल्यों के उतार-चढ़ाव की लागत पर प्राप्त की जाती है। आन्तरिक मूल्यों में हिंसक अस्थिरता आर्थिक प्रगति को बुरी तरह प्रभावित कर सकती है।
- विनिमय दर की स्थिरता का एक दुष्परिणाम यह है कि विदेश में होने वाली कोई भी आर्थिक हलचल सरलतापूर्णक सम्बन्धित देश में हस्तान्तरित हो जाती है।

आप जानते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना की गयी, जिसका मुख्य उद्देश्य सदस्यों के बीच विनिमय दर की स्थिरता को बनाये रखना है। परिणामस्वरूप सदस्य देशों के लिए मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर की स्थिरता न होकर पूर्ण रोजगार एवं आर्थिक विकास है। 1973 में डालर के अवमूल्यन के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था समाप्त हो गयी और विश्व अर्थव्यवस्था एक बार पुनः परिवर्तनशील विनिमय दर के हवाले हो गयी। इसका अभिप्राय यह है कि विनिमय दर की स्थिरता अभी भी मौद्रिक नीति की अनिवार्य अतिरिक्त जिम्मेदारी है। मुद्रा कोष द्वारा स्थापित बहुपक्षीय व्यापारी प्रणाली के अन्तर्गत प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन होने पर भी सदस्य देश व्यापारिक कार्य जारी रख सकते हैं।

पूर्ण रोजगार - आपने देखा की विभिन्न कारणों से मुद्रा की उदासीनता तथा विनिमय दर की स्थिरता मौद्रिक नीति के बहुत महत्वपूर्ण उद्देश्य नहीं रहे। किंस ने 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'जनरल थियरी ऑफ इम्पालयमेण्ट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी' में स्पष्ट किया कि मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करना होना चाहिए। पूर्ण रोजगार की दशा में ही संसाधनों का अधिकतम एवं उत्पादक प्रयोग किया जा सकता है जो अधिकतम सामाजिक कल्याण के उद्देश्य को प्रापत करने के लिए अनिवार्य है। प्रो0 जी0एन0 हॉम ने भी कींस की इस विचारधारा का समर्थन किया। यद्यपि पूर्ण रोजगार की अवधारणा अपने आप में विवाद का विषय है। M.ब्ल्यू.M.ब्ल्यू.हार्ट के अनुसार पूर्ण रोजगार को परिभाषित करने का प्रयास करना बहुत लोगों का रक्तचाप बढ़ाने जैसा है। पूर्ण रोजगार का मतलब यह कतई नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति जो स्वस्थ और कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है उसे वर्तमान मजदूरी की दर तक उत्पादक कार्य करने का अवसर उपलब्ध है। वास्तव में पूर्ण रोजगार के साथ मौसमी तथा घर्षणात्मक बेरोजगारी पायी जा सकती है।

मौद्रिक नीति द्वारा कैसे पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है-

आप जानते हें कि कींस के अर्थशास्त्र में आय का समीकरण $Y = C + I$ है। आय बढ़ने के लिए (आपको पता है कि कींस के अर्थशास्त्र में - राष्ट्रीय आय, उत्पादन, रोजगार तथा प्रभावपूर्ण मांग सब एक ही है) कुल व्यय (उपभोग व्यय तथा विनिमय व्यय) का बढ़ना आवश्यक है। यह तो सामान्य ज्ञान की बात है कि अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति लगभग स्थिर रहती है इसलिए मौद्रिक नीति को पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्रापत करने के लिए विनिमय पर केन्द्रित होना चाहिए। सरकार मन्दी के दौरान निजी निवेशकों को प्रोत्साहित करने के लिए सस्ती मुद्रा नीति लागू करनी चाहिए ताकि निम्न ब्याज दर से आकर्षित होकर निवेशक विनियोग के प्रति व्याप्त निराशा से बाहर आ सके। परन्तु सस्ती मुद्रा नीति को पूर्ण रोजगार बिन्दु के बाद महँगी मुद्रा नीति से विस्थापित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह अतिस्फीति को जन्म देगी। ऐसी दशा में स्थिर कीमत स्तर नीति को अपनाया जाना चाहिए। पूर्ण रोजगार का उद्देश्य इसलिए सर्वोत्तम है क्योंकि मौद्रिक नीति के अन्य उद्देश्य विनिमय दर की स्थिरता तथा कीमत स्थिरता अपने आप ही इसमें शामिल हो जाते हैं। मौद्रिक सत्ता को चाहिए कि वह प्रत्येक दशा में पूर्ण रोजगार के सतर पर बचत तथा विनियोग में समानता कायम रखे।

आर्थिक संवृद्धि -हाल के वर्षों तक पूर्ण रोजगार को मौद्रिक नीति का आदर्श उद्देश्य माना जाता रहा है। परन्तु अब इसका स्थान आर्थिक संवृद्धि ने ले लिया है। विकसित तथा विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की प्राथमिकता आर्थिक संवृद्धि को सुनिश्चित करना हो गया है क्योंकि -

- किसी भी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को तीव्र आर्थिक विकास की दर के बगैर प्राप्त करना सम्भव नहीं है।
- तेजी से बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताएँ तथा उनकी विविध रुचियों को बिना तीव्र आर्थिक संवृद्धि के पूरा करना सम्भव नहीं है तथा
- आज के इस अन्तर्राष्ट्रीय गला घोंट प्रतिस्पर्धा के दौर में अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए सतत् एवं तीव्र वृद्धि विकासशील देशों के लिए जीने मरने का प्रश्न है।

यू0एस0ए0 ने रोजगार अधिनियम, 1946 में यह घोश णा की कि न केवल अधिकतम रोजगार बल्कि अधिकतम उत्पादन को भी सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाये जायें। उपर्युक्त कारणों से आर्थिक संवृद्धि हाल के वर्षों में मौद्रिक नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य बन गया।
यद्यपि कि प्रो0 एलिस के अनुसार विकासशील देशों द्वारा आर्थिक संवृद्धि के लिए मौद्रिक नीति के द्वारा किया जाने वाला कोई भी प्रयास स्फीतिक दशाओं के कारण असफलता ही प्रदान करेगा। परन्तु प्रो0 एलिस का यह तर्क बहुत स्वीकार्य नहीं है क्योंकि विकासशील देश उपयुक्त नियामक नीति का प्रयोग करके स्फीतिक दशाओं को नियन्त्रित कर सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि आर्थिक संवृद्धि क्या है? और तीव्र आर्थिक वृद्धि के लक्ष्य को प्रापत करने में मौद्रिक नीति की क्या भूमिका हो सकती है? सीधे और सरल शब्दों में वास्तविक राष्ट्रीय आय में सतत् वृद्धि को आर्थिक वृद्धि कहते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में विद्यमान समस्त संसाधनों, भौतिक एवं मानवीय का पूर्ण एवं उत्पादक प्रयोग हो। यही विकासशील देशों की मुख्य समस्या है, क्योंकि एक बड़ा क्षेत्र अमौद्रिक होने के कारण बड़े पैमाने पर संसाधन अगतिशील बने रहते हैं। अतः कहा जा सकता है कि मुद्रा संसाधनों को गतिशीलता प्रदान करने वाला यन्त्र है। ऐसे में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करने से अप्रयुक्त संसाधनों का प्रयोग बढ़ता है जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन बढ़ता है जो आर्थिक संवृद्धि को गति प्रदान करता है। इस प्रकार मौद्रिक नीति आर्थिक संवृद्धि में सहायक है। परन्तु मौद्रिक नीति तब लाभकारी होगी जब उसमें निम्न विशेष ताएँ हों-

मौद्रिक नीति लोचपूर्ण होनी चाहिए - मुद्रा की समग्र मांग तथा वस्तुओं की समग्र पूर्ति के बीच साम्य बनाये रखने के लिए, मौद्रिक नीति का लोचपूर्ण होना अनिवार्य है। यदि मुद्रा की समग्र मांग, वस्तुओं तथा सेवाओं की समग्र पूर्ति से अधिक है तब नियन्त्रित मौद्रिक नीति के द्वारा करेंसी तथा साख की मात्रा को कम करके स्फीतिक प्रभाव को रोका जा सकता है। इसके विपरीत स्थिति में करेंसी तथा साख की मात्रा बढ़ाकर अवस्फीति को नियन्त्रित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में आन्तरिक साम्य स्थापित करने के लिए मौद्रिक नीति का लोचपूर्ण होना आवश्यक है।

मौद्रिक नीति में पूँजी निर्माण की क्षमता होनी चहिए , पूंजी निर्माण आर्थिक वृद्धि की प्रमुख शर्त है। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो न केवल घरेलू विनिमय बल्कि विदेशी विनियोग के लिए भी उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करें। इसके लिए आवश्यक है कि आन्तरिक कीमत स्तर स्थिर रहे। क्योंकि इसमें अस्थिरता घरेलू तथा विदेशी दोनों विनियोजकों के अन्दर भय और संशय की स्थिति उत्पन्न करता है जो विनियोग तथा पूंजी निर्माण के लिए ठीक नहीं है।

आर्थिक वृद्धि मौद्रिक नीति का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य हो सकता है क्योंकि अन्य उद्देश्य जैसे- पूर्ण रोजगार, विनिमय दर तथा मूल्य स्तर की स्थिरता आदि इसमें अपने आप सम्मिलित हो जाते हैं।

उपर आपने मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्यों का विस्तार से अध्ययन किया परन्तु कौन-सा उद्देश्य सर्वश्रेष्ठ है, यह विवाद का विषय बना हुआ है। अर्थशास्त्री काफी हद तक इस बात से सहमत हैं कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए पूर्ण रोजगार एवं स्थिरता तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए आर्थिक विकास मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

25.3.3. मौद्रिक नीति के मुख्य यन्त्र -अब तक आप जान गये होंगे कि मौद्रिक नीति क्या है? तथा उसके उद्देश्य क्या हैं? अब हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि वे कौन से यन्त्र हैं, जिनका प्रयोग करके सरकार या केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा तथा साख की मात्रा का नियमन करते हैं। हम अपनी सुविधा के लिए इन यन्त्रों को दो भागों में बांट लेते हैं-

1. परिमाणात्मक यन्त्र

2. गुणात्मक यन्त्र

परिमाणात्मक यन्त्र :- वे यन्त्र जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर बिना किसी भेदभाव के प्रभाव डालते हैं, उन्हें परिमाणात्मक यन्त्र कहते हैं। ये निम्नलिखित है-

(अ) बैंक दर नीति

(ब) खुले बाजार की क्रियाएँ

(स) नकदरक्षित अनुपात

(द) संवैधानिक तरलता अनुपात

2. चयनात्मक या गुणात्मक यन्त्र: इसके अन्तर्गत निम्नलिखित उपाय अपनाये जाते हैं -

(अ) मार्जिन में परिवर्तन

(ब) साख की राशनिंग

(स) सीधी कार्यवाही

(द) नैतिक दबाव

(अ) बैंक दर नीति

बैंक दर वह दर है जिस पर व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक से उधार लेता है। दूसरे शब्दों में यह वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के प्रथम कोटि के व्यापारिक बिलाकें की पुनर्कटौती करता है। आर0ए0 यंग के अनुसार, 'बैंक दर वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक सदस्य बैंकों की प्रतिभूतियों की कटौती करता है या उन्हें उधार देता है।'

यहाँ आप यह समझ लिजिए कि बैंक दर तथा बाजार दर में भिन्नता है। बैंक दर, केन्द्रीय बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों से लिया जाने वाला ब्याज दर है जबकि ब्याज दर वह दर है जो व्यापारिक बैंक जनता से वसूल करती है।

बैंक दर नीति की क्रियाशीलता -केन्द्रीय बैंक साख के विस्तार अथवा संकुचन के लिए बैंक दर को एक यन्त्र के रूप में प्रयोग करता है।

साख का विस्तार :- बाजार तथा व्यापारिक क्रियाकलापों को गति प्रदान करने के लिए केन्द्रीय बैंक साख का विस्तार करता है। इस उद्देश्य से वह बैंक दर को कम कर देता है, जिसके प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है -

बैंक दर में कमी ⟶व्यापारिक बैंकों को कम ब्याज दर ऋण की प्राप्ति ⟶व्यापारियों को कम ब्याज पर ऋण की प्राप्ति ⟶ विनियोग में वृद्धि ⟶उत्पादन, मूल्य, रोजगार तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि।

साख का संकुचन :- जब केन्द्रीय बैंक यह अनुभव करता है कि बाजार में साख की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो गयी है और यह स्फीतिक दशाएँ उत्पन्न कर रही हैं, तब केन्द्रीय बैंक बैंक दर को बढ़ाकर साख की मात्रा को नियमित करने का प्रयास करता है। बैंक दर को कम करने के प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

बैंक दर में वृद्धि → व्यापारिक बैंकों को अधिक ब्याज पर ऋण की प्राप्ति → व्यापारितयों को महंगा ऋण → विनियोग में कमी → उत्पादन, मूल्य रोजगार तथा राष्ट्रीय आय में कमी।
परन्तु बैंक दर तभी प्रभावशाली भूमिका अदा कर सकती है जब अन्य बातें समान रहें।

- अर्थव्यवस्था पूर्णतया लोचदार होनी चाहिए।
- मुद्रा बाजार की अन्य ब्याज दरें बैंक दर से सम्बद्ध होनी चाहिए।
- काली मुद्रा तथा काली अर्थव्यवस्था जैसी चीजें नहीं पायी जानी चाहिए।
- व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक पर निर्भर हों तथा
- व्यापारी वर्ग बैंकों पर निर्भर हों।

(ब) खुले बाजार की क्रियाएँ -करेंसी तथा साख को नियमित करने के लिए इस यंत्र का प्रयोग पहली बार प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हुआ। संकीर्ण अर्थों में खुले बाजार की क्रियाओं से अभिप्राय केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से है। व्यापक अर्थों में इसके अन्तर्गत योग्य प्रपत्रों तथा निजी क्षेत्रा की प्रतिभूतियों तथा बिलों का क्रय-विक्रय भी सम्मिलित हैं।

साख का विस्तार - केन्द्रीय बैंक यदि अनुभव करता है कि साख का विस्तार होना चाहिए तब वह खुले बाजार में प्रतिभूतियों को क्रय करना प्रारम्भ कर देता है। ऐसा करने पर प्रतिभूति बैंक के पास चली जाती है और नकदी जनता के पास तथा व्यापारिक बैंकों के पास पहुँच जाती है। परिणामस्वरूप व्यापारिक बैंकों की साख सृजन करने की क्षमता बढ़ जाती है।

साख का संकुचन :- केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा कम करने के लिए खुले बाजार में प्रतिभूतियों का विक्रय प्रारम्भ कर देता है, जिससे जनता तथा व्यापारिक बैंकों के पास नकदी की मात्रा कम हो जाती है और व्यापारिक बैंक भी पहले से कम साख की मात्रा का सृजन कर पाते हैं।

खुले बाजार की क्रियाएँ अर्थव्यवस्था में तब प्रभाव प्रदर्शित कर पाती हैं, जब निम्नलिखित दशाएँ विद्यमान हों -

- प्रतिभूतियों की मांग तथा पूर्ति सदैव एवं पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहनी चाहिए।
- मुद्रा बाजार पूर्ण विकसित होना चाहिए।
- खुले बाजार की क्रियाओं से व्यापारिक बैंकों के कोष प्रभावित होने चाहिए।
- व्यापारिक बैंकों की ऋण नीति अपरिवर्तित रहनी चाहिए।
- ऋणों की मांग यथावत रहनी चाहिए।
- केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियों को क्रय तथा विक्रय करने की शक्ति असीमित होनी चाहिए।

(स) नकदरक्षित अनुपात :- मौद्रिक नीति के परिमाणात्मक यन्त्रों में यह तीसरा महत्वपूर्ण यन्त्र है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम 1933 में अमेरिका के फेMरल रिजर्व सिस्टम ;थ्मकमतंस त्मेमतअम Sलेजमउद्ध द्वारा किया गया। प्रत्येक व्यापारिक बैंक को अपने कुल जमा का एक निश्चित प्रतिशत

कानूनी तौर पर केन्द्रीय बैंक के पास नकद कोष के रूप में जमा करना पड़ता है। इसे वैधानिक न्यूनतम नकद कोष कहा जाता है।

केन्द्रीय बैंक न्यूनतम नकद कोष में परिवर्तन करके व्यापारिक बैंकों की साख सृजन क्षमता को नियोजित करता है।

साख का विस्तार :- साख का विस्तार करने के लिए केन्द्रीय बैंक नकद रक्षित कोष के प्रतिशत को कम कर देता है। ऐसा करने पर व्यापारिक बैंकों की नकदी की क्षमता बढ़ जाती है तथा अब वे पहले से अधिक साख का सृजन कर सकते हैं, यानी उधार दे सकते हैं।

साख का संकुचन :- अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा को कम करने के लिए केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों की उधार देने की क्षमता को कम कर देता है। इसके लिए वह नकद रक्षित कोष का प्रतिशत बढ़ा देता है, जिससे व्यापारिक बैंकों के पास नकदी की मात्रा घट जाती है और अब वे पहले से कम उधार देने में समर्थ होते हैं।

आपको यह बात समझातें चलें कि यह नीति तभी फलदायी होगी जब सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाकलाप वैधानिक संरचना के अन्तर्गत सम्पन्न हों।

(द) वैधानिक तरलता अनुपात :- बैंकों की तरफ दौड़ को रोकने तथा अपनी विश्वसनीयता को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि व्यापारिक बैंक अपनी तरलता को बनाये रखे। इसी उद्देश्य से केन्द्रीय बैंक ने यह कानून बना दिया कि प्रत्येक व्यापारिक बैंक अपने कुल जमा का एक निश्चित प्रतिशत अपने पास नकद रूप में रखेंगे। इसी प्रतिशत को वैधानिक तरलता अनुपात कहते हैं।

केन्द्रीय बैंक जब साख का विस्तार करना चाहता है तब तरलता अनुपात को कम कर देता है, जिससे व्यापारिक बैंकों को उधार देने की क्षमता बढ़ जाती है। इसके विपरीत जब साख की मात्रा कम करनी होती है तब वैधानिक तरलता अनुपात बढ़ा दिया जाता है।

2. गुणात्मक यन्त्र :- अभी तब आपने उन मौद्रिक यन्त्रों के बारे पढ़ा जो किसी भेदभाव के सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। परन्तु व्यवहार में कभी-कभी कुछ खास क्षेत्रों को प्रभावित करने की जरुरत होती है। इसके लिए गुणात्मक यन्त्र, जिसे चयनात्मक यन्त्र भी कहते हैं, का प्रयोग किया जाता है। गुणात्मक यन्त्रों के रूप में निम्नलिखित उपाय अपनाये जाते हैं-

(अ) मार्जिन में परिवर्तन :-प्रतिभूतियों के मूल्य तथा उधार की राशि के अन्तर को सीमा कहते हैं। किसी खास क्षेत्र तथा खास मद को प्रभावित करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। सरकार यदि चाहती है कि कृषि क्षेत्र में खासकर दलहन का उत्पादन बढ़े तो वह इसको दिये जाने वाले ऋण के लिए मार्जिन कम कर सकती है। इसी प्रकार यदि विलासिता की वस्तुओं पर व्यय रोकना चाहती है तो उनके लिए मार्जिन बढ़ा सकती है।

(ब) साख की राशनिंग :-केन्द्रीय बैंक सर्व अधिकार प्राप्त बैंक है। वह किसी बैंक को दिये जाने वाले उधार की मात्रा निश्चित कर सकता है। किसी बैंक को उधार देने से मना कर सकता है। व्यापारिक बैंकों के लिए साख सृजन करने की अधिकतम मात्रा (कोटा) निश्चित कर सकता है। इस प्रकार वह इच्छानुसार क्षेत्र में साख की मात्रा को नियमित कर सकता है।

(स) सीधी कार्यवाही :- व्यापारिक बैंकों के मनमानी करने पर तथा केन्द्रीय बैंक के नियमों का उल्लंघन करने पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के खिलाफ सीधी कार्यवाही कर सकता है। इसके अन्तर्गत वह निम्नलिखित कार्य कर सकता है।

व्यापारिक बैंकों से अर्थ दण्ड वसूलना।

व्यापारिक बैंकों तथा किसी खास बैंक को सहयोग न करना।

सीधी कार्यवाही की सफलता के लिए आवश्यक है कि-;पद्ध केन्द्रीय बैंक शक्तिशाली हो ;पपद्ध मुद्रा बाजार में उसका पूरा नियन्त्रण हो तथा ;पपपद्ध अन्य बैंकों के साथ उसका सम्बन्ध सकारात्मक हो।

(द) नैतिक दबाव :-केन्द्रीय बैंक के मुखिया की भूमिका में होने के कारण वह सबसे लिए सहज स्वीकार्य है। वह बैंकों को समझा-बुझाकर, अनुरोध करके तथा नैतिक दबाव द्वारा नीतियों का पालन करने के लिए बाध्य कर सकता है। स्फीति की दशा में केन्द्रीय बैंक बैंकों को मना कर सकता है कि वे अधिक ऋण न दें तथा अवस्फीतिकाल में ऋण देने के लिए प्रेरित कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य छांटिये -

(क) मौद्रिक नीति केन्द्रीय बैंक द्वारा लागू की जाती है। (सत्य/असत्य)

(ख) मौद्रिक नीति के उद्देश्य विकसित तथा विकासशील देशों के लिए अलग-अलग हैं। (सत्य/असत्य)

(ग) मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति, आर्थिक नीति के ही भाग हैं। (सत्य/असत्य)

(घ) बैंक दर एवं बाजार दर दोनों अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। (सत्य/असत्य)

(च) बैंक दर केन्द्रीय बैंक द्वारा लिया जाने वाला ब्याज है। (सत्य/असत्य)

(छ) न्यूनतम रक्षित अनुपात को Sस्त् कहते हैं। (सत्य/असत्य)

(ज) खुले बाजार की क्रियाएँ, चयनात्मक यन्त्र के अन्तर्गत आती है। (सत्य/असत्य)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) बैंक दर बढ़ने पर साख सृजन की क्षमता ..... जाती है। (घट/बढ़)

(ख) व्यापारिक बैंक ..... अपने पास रखता है। (CRR/SLR)

(ग) व्यापारिक बैंकों को ..... केन्द्रीय बैंक के पास रखना होता है। (CRR/SLR)

(घ) मौद्रिक नीति का सर्वोत्तम उद्देश्य ..... है। (पूर्ण रोजगार/ आर्थिक वृद्धि)

25.4 सारांश -

हमने देखा कि सरकार केन्द्रीय बैंक से विचार-विमर्श करके मौद्रिक नीति का निर्माण करती है परन्तु उसके क्रियान्वयन की जिम्मेदारी केन्द्रीय बैंक की होती है। मौद्रिक के सामान्यतः 4 उद्देश्य बताये गये, जिसमें आर्थिक संवृद्धि को सर्वोत्तम माना गया क्योंकि बाकी तीन उद्देश्य इसके साथ अपने आप पूरे हो जाते हैं। अर्थशास्त्रियों में यह सामान्य सहमति है कि विकसित देशों को पूर्ण रोजगार तथा

विकासशील देशों को आर्थिक संवृद्धि के लक्ष्य को प्राथमिकता देना चाहिए। आपने देखा कि मौद्रिक नीति के यंत्रों को दो बड़े भागों- परिमाणात्मक तथा गुणात्मक में विभाजित किया जाता है। परिमाणात्मक यन्त्रों के अन्तर्गत - बैंक दर नीति, न्यूनतम रक्षित अनुपात, वैधानिक तरलता अनुपात तथा खुले बाजार की क्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया। गुणात्मक यन्त्रों के अन्तर्गत मार्जिन में परिवर्तन, साख की राशनिंग, प्रत्यक्ष कार्यवाही तथा नैतिक दबाव शामिल हैं।

25.5 शब्दावली -

मौद्रिक नीति - करेंसी तथा साख की मात्रा को नियोजित करने वाली नीति

केन्द्रीय बैंक - बैंकों के बैंक को केन्द्रीय बैंक कहते हैं।

विनिमय दर - वह दर जिस पर दो देशों की मुद्राओं की अदला-बदली होती है।

मुद्रा की उदासीनता - इसका अभिप्राय यह है कि मुद्रा अर्थव्यवस्था के संचालन में निष्क्रिय भूमिका अदा करती है।

बैंक दर - वह दर जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों की प्रतिभूतियों का पुनर्कटौती करता है।

न्यूनतमरक्षित अनुपात - कुल जमा का वह प्रतिशत जो व्यापारिक बैंकों को केन्द्रीय बैंक के पास रखना पड़ता है।

वैधानिक तरलता अनुपात - कुल जमा का वह प्रतिशत जो व्यापारिक बैंकों को अपने पास नकद रूप में रखना पड़ता है।

खुले बाजार की क्रियाएँ - केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय को खुले बाजार की क्रियाएँ कहते हैं।

25.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य छांटिये -

(क) सत्य ,(ख) सत्य ,(ग) सत्य, (घ) सत्य,(च) सत्य ,(छ) असत्य ,(ज) असत्य

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य छांटिये -

(क) घट ,(ख) SLR, (ग) CRR, (घ) वृद्धि

25.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- Seth, M.L. (2010) : 'Money Banking and International Trade', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.

- Mithani, D.M. (2004), "Macro Economics", Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), 'Monetary Economics' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) 'Macro Economic Analysis' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

25.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री -

1. सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
2. सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा
3. लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
4. मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

25.9 निबन्धात्मक प्रश्न-

प्रश्न-1 मौद्रिक नीति से आप क्या समझते हैं? मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न-2 मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्य क्या हैं? क्या मौद्रिक नीति उन्हें अकेले प्राप्त कर सकती हैं?

प्रश्न-3 मौद्रिक नीति के यन्त्र के रूप में न्यूनतम रक्षित अनुपात तथा खुले बाजार की क्रियाओं में कौन बेहतर हैं? तर्क दीजिए।

प्रश्न-4 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

a) मुद्रा की उदासीनता
b) मूल्य स्थिरता
c) विनिमय दर की स्थिरता
d) पूर्ण रोजगार
e) आर्थिक संवृद्धि

इकाई-26: विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की भूमिका

इकाई की रूपरेखा:

26.1 प्रस्तावना
26.2 उद्देश्य
26.3 विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की भूमिका
26.3.1. विकसित तथा विकासशील देश
26.3.2. मौद्रिक नीति की भूमिका
26.3.2. मौद्रिक नीति की असफलता के कारण
26.3.3. भारत में मौद्रिक नीति का उद्देश्य
26.3.4. भारत की वर्तमान मौद्रिक नीति: एक परिदृष्य
25.4 सारांश
25.5 शब्दावली
25.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
25.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
25.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
25.9 निबन्धात्मक प्रश्न

26.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि कोई भी आर्थिक नीति सर्वकालिक नहीं होती है। विकसित तथा विकासशील देशों में - प्रतिव्यक्ति आय, बचत एवं पूजी निर्माण की दर, शिक्षा, स्वास्थ्य, भौतिक सुविधाओं की उपलब्धि, तकनीकी ज्ञान एवं नव प्रवर्तन की स्थिति आदि के आधार पर अन्तर किया जाता है। यही कारण है कि दोनों ही देशों के लिए मौद्रिक नीति का एक ही उद्देश्य तथा एक ही कार्य प्रणाली हो यह सम्भव नहीं है। आप जान गये होंगे कि अनेक विवादों के बावजूद अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विकसित देशों में मौद्रिक नीति का उद्देश्य पूर्ण रोजगार होना चाहिए तथा विकासशील देशों में आर्थिक संवृद्धि। वर्तमान अध्याय में आप जान पायेंगे कि मौद्रिक नीति कैसे विकासशील देशों में आर्थिक संवृद्धि को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

26.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि -

- विकसित एवं विकासशील देश में क्या अन्तर है?
- विकासशील देशों में मौद्रिक नीति कैसे उपयोगी हो सकती है?
- मौद्रिक नीति क्यों पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाती है?
- भारत में मौद्रिक नीति का उद्देश्य क्या रहा है?
- वर्तमान समय में मौद्रिक नीति के यंत्रों का मूल्य क्या है?

26.3 विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की भूमिका-

26.3.1 विकसित तथा विकासशील देश - आपको सीधे और सरल शब्दों में बताते हैं कि अविकसित वह है, जहाँ विकास की आशा ही नहीं है जैसे- अन्टार्कटिक, आर्कटिक तथा सहारा का कुछ भाग। विकासशील वह है जहाँ विकास के पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं है, जैसे- भारत, पाकिस्तान, युगाण्डा पनामा आदि। विकसित वह है जहाँ इच्छानुसार विकास की सभी सम्भावनाएँ एवं अवसर उपलब्ध हैं, जैसे- अमेरिका, जापान, ब्रिटेन तथा फांस आदि। तकनीकी रूप में विकसित तथा विकासशील देशों को उनकी कृषि पर निर्भरता, प्रति व्यक्ति आय, गरीबी का स्तर, बेरोजगारी, उद्यमशीलता, उत्पादन तथा उत्पादकता का स्तर, बचत एवं पूँजी निर्माण की दर तथा मानव विकास सूचकांक आदि के आधार पर पृथक किया जाता है।

26.4 मौद्रिक नीति की भूमिका-

हम जानते हैं कि विकसित तथा विकासशील देशों में आर्थिक उद्देश्य, आर्थिक संसाधन तथा आर्थिक दशाएँ अलग-अलग होती हैं। ऐसे में दोनों के लिए एक ही मौद्रिक नीति कैसी उपयोगी हो सकती है। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति का कार्य अत्यन्त कठिन होता है क्योंकि उसे उस देश को प्राथमिक अवस्था से निकालकर आत्मस्फूर्ति की अवस्था तक ले जाना होता है। आप जानते हैं कि विकासशील देशों को आधारभूत समस्या गरीबी और बेरोजगारी है। इसे दूर करने के लिए मुद्रा तथा साख का विस्तार अनिवार्य है, भले ही मूल्य स्तर थोड़ा ऊँचा ही क्यों न हो जाय। इसका अभिप्राय यह है कि आर्थिक विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने के लिए उदार मौद्रिक नीति लागू करना आवश्यक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि विकासशील देशों में विकास केन्द्रित मौद्रिक नीति किस भूमिका में वास्तव में होना चाहिए? अर्थात् विकासशील देश में मौद्रिक नीति को किन जरुरतों को पूरा करना चाहिए। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति को लागू करते समय मौद्रिक अधिकारियों को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

स्फीतिक प्रभाव पर नियन्त्रण - आप जानते हैं कि अर्थव्यवस्था चाहे पूंजीवादी हो चाहे समाजवादी दोनों का ही उद्देश्य अधिकतम सामाजिक हित सुरक्षा करना है। यही कारण है कि सरकारें बड़े पैमाने पर विभिन्न विकास परियोजनाओं में एक साथ निवेश करती है। इसका परिणाम यह होता है कि कुल प्रभावपूर्ण मांग बढ़ जाती है परन्तु उसी अनुपात उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि नहीं होती है। इसलिए आन्तरिक कीमतों में तेजी से वृद्धि होती है। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो स्फीति पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित कर सके। यदि मौद्रिक नीति ऐसा करने में असफल रहती है तब वह विकास प्रक्रिया में सहायक नहीं बन पायेगी। विकास के लिए आवश्यक है कि बचत पर्याप्त होने के साथ-साथ निवेश के बराबर भी हो। अल्पविकसित देशों में बचत की कमी को पूरा करने के लिए साख के विस्तार तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जाता है, जो स्फीतिक प्रभावों में वृद्धि करते हैं। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो जनता में बचत की प्रवृत्ति को बढ़ाये तथा विनियोग के लिए साख के विस्तार तथा घाटे की वित्त व्यवस्था पर से निर्भरता कम करे।

नये क्षेत्रों का मौद्रिकीकरण :- व्यापार के आकार में वृद्धि तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त एवं कुशल मौद्रिक क्षेत्र का होना एक अनिवार्य जरूरत है। अतः मौद्रिक नीति की प्राथमिकी जिम्मेदारी है कि वह देश के उन क्षेत्रों में, जहां या तो बैंकिंग सुविधाएँ नहीं है या तो कम हैं, बैकिंग सुविधाओं का विस्तार करे ताकि बैंकिंग आदतों में सुधार अथवा वृद्धि हो सके। हम जानते हैं कि बड़े पैमाने पर अमौद्रिक क्षेत्र का पाया जाना ही विकासशील देशों का सबसे बड़ा लक्षण है। ऐसे क्षेत्र में ब्याज दर के परिवर्तन तथा मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का आर्थिक क्रियाकलापों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। क्योंकि आर्थिक लेन-देन में मुद्रा सम्मिलित नहीं रहती है और सभी सौदे वस्तु

विनिमय प्रणाली द्वारा सम्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में एक बहुत बड़ा क्षेत्र मौद्रिक नीति के नियन्त्रण से बाहर रहता है। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे इन क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार हो। यह एक तरफ तो जनता की निष्क्रिय बचत तो गतिशीलता प्रदान करेगी जिससे प्राथमिक उद्योगों को निवेश हेतु पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हो सकेंगे दूसरी तरफ मौद्रिक क्षेत्र का विस्तार होने से अधिक से अधिक क्षेत्र मौद्रिक नीति के नियन्त्रण में आ जायेंगे। इन सबके परिणामस्वरूप मौद्रिक नीति और भी प्रभावशाली हो जायेगी।

संगठित तथा असंगठित क्षेत्र का समन्वय :- हम जानते हैं कि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था दो भागों में विभाजित होती है- संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्र। विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक का नियन्त्रण केवल संगठित क्षेत्र तक ही सीमित रहता है और असंगठित क्षेत्र इसकी पहुँच से बाहर रहते हैं। ऐसे में जब केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है तब यह असंगठित क्षेत्र भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करता है। आवश्यकता इस बात की है कि असंगठित क्षेत्र को बैंकिंग व्यवस्था के साथ समन्वित किया जाय। अतः मौद्रिक नीति की यह जिम्मेदारी है कि वह संगठित तथा असंगठित क्षेत्र को समन्वित करने के लिए आवश्यक कदम उठाये। हम यह भी जानते हैं कि बिल बाजार के अविकसित होने के कारण अल्पविकसित देशों में मुद्रा बाजार भी अस्पष्ट एवं अविकसित होता है। ऐसे में बिल बाजार को विकसित करने के लिए जरुरी कदम उठाना मौद्रिक नीति के लिए अपरिहार्य है।

अविकसित मुद्रा बाजार :- अब तक तो आप यह समझ ही गये होंगे कि कमजोर मुद्रा बाजार अल्पविकसित देशों की विशेष ता होने के साथ-साथ उनकी परेशानी का कारण भी है। मुद्रा बाजार अविकसित होने कारण समान ब्याज दर संरचना नहीं पायी जाती है। अर्थव्यवस्था में व्याप्त विभिन्न ब्याज दरों का बैंक दर से कोई ताल-मेल नहीं पाया जाता है। बैंक दर में कोई परिवर्तन इन विभिन्न ब्याज दरों को प्रभावित नहीं कर पाता है। परिणामस्वरूप केन्द्रीय बैंक का मौद्रिक बाजार पर प्रभाव नियन्त्रण स्थापित नहीं हो पाता है। इसका अभिप्राय यह है कि मौद्रिक नीति को इस प्रकार होना चाहिए ताकि वह विभिन्न ब्याज दरों के बीच तालमेल स्थापित कर एक समन्वित ब्याज दर संरचना का विकास कर सके।

विनियोग प्रोत्साहन :-आप जानते हैं कि विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक एवं सामाजिक उपरिसुविधाओं का पर्याप्त मात्रा में होना अनिवार्य है। यह तभी सम्भव है जब केन्द्रीय बैंक, व्यावसायिक बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का आपस में पूर्ण समन्वय हो। अतः मौद्रिक नीति की यह जिम्मेदारी है कि वह मुद्रा बाजार के सभी घटकों के बीच सहयोगात्मक दृष्टिकोण विकसित करें। ऐसा करने पर ही मौद्रिक नीति बचत को गतिशील कर विनियोग तथा उत्पादन को बढ़ाने में सकारात्मक भूमिका निभा सकती है।

26.3.2 मौद्रिक नीति की असफलता के कारण :-विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की सफलता में संदेह रहता है। इसका कारण यह है केन्द्रीय बैंक या सरकार को बेलोचपूर्ण अर्थव्यवस्था, जनता, औद्योगिक, जनता, औद्योगिक तथा शासन का सहयोग नहीं मिलता है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो- आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक तथा राजनैतिक मोर्चे पर विद्यमान कुप्रबन्धन एवं भ्रष्टाचार विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की असफलता के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है। सहयोग न मिलने के कारण निम्नलिखित है-

विकासशील देशों में वस्तु विनिमय प्रणाली, सौदों की बहुत बड़ी मात्रा को नियन्त्रित करती है। जाहिर है कि मुद्रा का प्रयोग न होने के कारण मौद्रिक नीति की सफलता भी सन्देह के घेरे में आ जाती है।

विकासशील देशों में कुल साख की मात्रा का एक बड़ा भाग साहूकारों, जमीनदारों तथा सूदखोरों द्वारा पूरा किया जाता है। इनकी कार्य प्रणाली पर केन्द्रीय बैंक का प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसे में स्पष्ट है कि मौद्रिक नीति वांछनीय सफलता नहीं प्राप्त कर सकती है।

विकासशील देशों स्कन्ध बाजार के सुव्यवस्थित न होने के कारण केन्द्रीय बैंकों को खुले बाजार की क्रियाएँ (प्रतिभूतियों का क्रय तथा विक्रय) सम्पन्न करने में असुविधा होती है। जाहिर है कि मौद्रिक नीति ऐसे में पूर्ण सफल नहीं हो सकती है।

विकासशील देशों में बैंकों के बीच आपसी व्यवहार में दृढ़ता पाये जाने के साथ-साथ उनके बीच असहयोगात्मक रवैया पाया जाता है। इसी वजह से मौद्रिक नीति को अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त होती है। मौद्रिक नीति को सफल बनाने के लिए मजबूत बैंकिंग व्यवस्था का गठन आवश्यक है।

26.3.3 भारत में मौद्रिक नीति का उद्देश्य :- भारतीय मौद्रिक पद्धति पर कार्य करने के लिए गठित चक्रवर्ती समिति ने 1985 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें मौद्रिक नीति के निम्नलिखित समष्टि आर्थिक उद्देश्य निर्धारित किये गये -

(अ) मूल्य स्थिरता

(ब) बचत को प्रोत्साहन

(स) गैर स्फीतिक तरीके से संसाधनों को गतिशील करना।

(द) अधिक उत्पादकता के उद्देश्य से संसाधनों का प्राथमिकता के क्षेत्र में आवंटन तथा।

(य) कुशल भुगतान पद्धति को बढ़ावा देना।

भारत में योजना काल के दौरान मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य रहे हैं-

(अ) बचतों को गतिशील करना।

(ब) विनियोग को प्रोत्साहन देना तथा ऐसा माहौल उत्पन्न करना जो योजना के उद्देश्यों को प्रापत करने में सहायक हो सके।

(स) सम्पूर्ण आर्थिक वृद्धि के लख्य को सुनिश्चित करने के लिए कृषि, उद्योग तथा अन्य उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त साख सुविधाएँ उपलब्ध करना।

(द) स्फीति को रोकना तथा सापेक्षिक कीमतों और सामान्य कीमत स्तर का विवेकपूर्ण तथा अर्थव्यवस्था सहयोगी स्वरूप सुनिश्चित करना।

(य) बिना किसी वित्तीय व्यवधानों के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाना।

आप यदि ध्यान दें तो पायेंगे कि सभी उद्देश्य एक-दूसरे से सम्बन्धित है। हाँ, थोड़ा विवाद दो बड़े लक्ष्यों- आर्थिक वृद्धि तथा कीमत स्थिरता की बीच हो सकता है। अतः इन दोनों का भी समन्वय आवश्यक है। साठ के दशक से रिजर्व बैंक की नीति नियन्त्रित विस्तार की रही है। जबकि सत्तर के दौरान आर0बी0आई0 का उद्देश्य स्थिरता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास रहा है। अर्थात् विकास के वितरणात्मक पहलू पर विशेष ध्यान दिया गया। वर्तमान समय में प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को पर्याप्त साख उपलब्ध कराने के लिए केन्द्रीय बैंक उदार मौद्रिक नीति का पालन कर रहा है।

26.3.4 भारत की वर्तमान मौद्रिक नीति: एक परिदृष्य :- आप जानते हैं कि भारत का केन्द्रीय बैंक रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया है, जो मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन करता है। रिजर्व बैंक के गवर्नर डॉ0 डी0 सुब्बाराव ने 17 अप्रैल, 2012 को वित्तीय वर्ष 2012-13 के लिए मौद्रिक नीति की घोषणा की। यहाँ हम मौद्रिक नीति के मुख्य बिन्दुओं को संक्षेप में जानेंगे।

प्रक्षेपण :-

i. वर्तमान वित्तीय वर्ष के लिए सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की दर 7.3 प्रतिशत निर्धारित की गयी।
ii. मार्च 2013 के लिए स्फीति की दर 6.5 प्रतिशत तय की गयी।
iii. वित्तीय वर्ष 2012-13 के M3 में वृद्धि दर 15 प्रतिशत निर्धारित की गयी।

प्राथमिकताएँ :-

i. विभिन्न नीतिगत दरों वर्तमान वृद्धि सुधारों के अनुरूप समायोजित करना।
ii. मांग प्रेरित स्फीति के जोखिम से सुरक्षा प्रदान करना।
iii. वित्तीय व्यवस्था और अधिक तरल बनाना।

मौद्रिक उपाय :-

i. बैंक दर को 9 प्रतिशत पर समायोजित किया गया।

ii. अनुसूचित बैंकों के लिए नकदरक्षित अनुपात उनके NDTL (Net Demand and Time Liability) अर्थात् शुद्ध मांग एवं समय दायित्व का 4.75 प्रतिशत निर्धारित किया गया।

iii. तरलता समायोजन सुविधा के अन्तर्गत रेपो रेट 8 प्रतिशत निर्धारित की गयी।

iv. रेपो रेट के अनुपालन में ही रिवर्स रेपो रेट 7 प्रतिशत निर्धारित की गयी है।

v. मार्जिनल स्टैण्डिंग फैसिलिटी MSF दर 9 प्रतिशत निर्धारित की गयी जो रेपो रेट से 1 प्रतिशत अधिक होती है।

सम्भावित उपलब्धियाँ : - यह सम्भावना व्यक्त की गयी कि यदि अन्य बातें समान नहीं तो वर्तमान मौद्रिक नीति निम्न उद्देश्य हासिल करने में सफल रहेगी।

i. संकटकाल के बाद अर्थव्यवस्था की जो वर्तमान प्रवृत्ति है, उसमें स्थिरता आयेगी।

ii. स्फीति तथा स्फीतिक प्रत्याशाओं को नियन्त्रित करने में सफल रहेगी।

iii. आर्थिक व्यवस्था को अधिक से अधिक तरलता प्रदान कर सकेगी।

अभ्यास प्रश्न

निम्न कथनों में से सत्य या असत्य छांटियें -

(क) मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति के साथ ही उपयोगी हो सकती है। (सत्य/असत्य)

(ख) विकासशील देशों में अमौद्रिक क्षेत्र कम हैं। (सत्य/असत्य)

(ग) विकासशील देशों में बैंकों का आपस में सहयोग नहीं है। (सत्य/असत्य)

(घ) विकासशील देशों में स्कन्ध बाजारपूर्ण विकसित नहीं होते हैं। (सत्य/असत्य)

(च) चक्रवर्ती समिति ने अपनी रिपोर्ट 1985 में प्रस्तुत की। (सत्य/असत्य)

(छ) डॉ0 डी0 सुब्बाराव आर0बी0आई0 के वर्तमान गवर्नर है। (सत्य/असत्य)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) साठ के दशक में रिजर्व बैंक की नीति ..... विस्तार की रही है। (नियन्त्रित/अनियन्त्रित)

(ख) सत्तर के दशक में आर0बी0आई0 का उद्देश्य ..... रहा है। (स्फीति नियन्त्रण/स्थिरता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास)

(ग) हाल के वर्षों में केन्द्रीय बैंक की नीति ..... का पालन रहा है। (उदार मौद्रिक नीति/कठोर मौद्रिक नीति)

(घ) वित्तीय वर्ष 2012-13 के लिए ..... को घोश णा हुई। (17 अप्रैल 2012/12 अप्रैल 2012)

(च) वर्तमान वित्तीय वर्ष के लिए जी0डी0पी0 की वृद्धि दर ..... निर्धारित की गयी। (73 प्रतिशत/8 प्रतिशत)

(छ) मार्च 2013 के लिए स्फीति दर ..... तय की गयी है। (6.5 प्रतिशत/7 प्रतिशत)

(ज) वर्तमान बैंक दर ..... है। (4.75 प्रतिशत/4.50 प्रतिशत)

(झ) मौद्रिक नीति का प्रयास अर्थव्यवस्था ..... तरलता प्रदान करना है। (अधिक/कम)

26.4 सारांश -

आपने जाना कि विकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के चरित्र में आधारभूत अन्तर होने के कारण दोनों में मौद्रिक नीति की क्रियाशीलता भिन्न-भिन्न होती है। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की प्राथमिकता यद्यपि की आर्थिक विकास रहा है परन्तु स्फीति नियन्त्रण तथा स्थिरता एवं सामाजिक न्याय की भी अनदेखी नहीं की गयी है। यह अवश्य है कि समय एवं परिस्थिति को देखते हुए प्राथमिकताओं के क्रय एवं तीव्रताओं में परिवर्तन होते रहे हैं।

26.5 शब्दावली -

उदार मौद्रिक नीति-जिसमें मुद्रा तथा साख के विस्तार की प्रवृत्ति होती है।

बैंक दर- वह दर जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को उधार देता है।

रेपो रेट- वह दर जिस केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के बिलों की कटौती करता है।

रिवर्स रेपो रेट- वह दर जिस पर व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक के बिलों की कटौती करते हैं।

26.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

निम्न कथनों में से सत्य या असत्य छांटियें -

(क) सत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्य, (घ) सत्य, (च), सत्य, (छ) सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) नियन्त्रित, (ख) स्थिरता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास,(ग) उदार मौद्रिक नीति

26.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- Seth, M.L. (2010) : 'Money Banking and International Trade', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), "Macro Economics", Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), 'Monetary Economics' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.

- Shapirio, Edward (1989) 'Macro Economic Analysis' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.
- Monetary and Credit Information Review, April 2012.

26.8 उपयोगी पाठ्य सहायक सामग्री-

- सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा
- लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

26.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की विवेचना कीजिए।
2. विकासशील देशों में मौद्रिक प्रबन्धन के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
3. भारत में मौद्रिक नीति के क्या उद्देश्य रहे हैं? विवेचना कीजिए।
4. भारत की मौद्रिक नीति 2012-13 पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई-27: राजकोषीय नीति के यन्त्र

इकाई की रूपरेखा:

27.1 प्रस्तावना
27.2 उद्देश्य
27.3 राजकोषीय नीति के यन्त्र
27.3.1. राजकोषीय नीति क्या है?
27.3.2. राजकोषीय नीति का उद्देश्य
27.3.3. राजकोषीय नीति के मुख्य यन्त्र
25.4 सारांश
25.5 श ब्दावली
25.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
25.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
25.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
25.9 निबन्धात्मक प्रश्न

27.1 प्रस्तावना -

अब तक आप ने देखा कि मौद्रिक नीति तथा राजकोषीय नीति, आर्थिक नीति के दो महत्वपूर्ण घटक हैं। पिछले अध्याय में आपने मौद्रिक नीति के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की। आपने देखा कि 1929 की विश्वव्यापी मन्दी के दौरान से चर्चा की। आपने देखा कि 1929 की विश्वव्यापी मन्दी के दौरान बाजार की अपूर्णताओं तथा उपभोक्ताओं की प्रत्याशाओं की सक्रियता के कारण बाजार तन्त्र पूरी तरह असफल हो गया। ऐसे में अर्थव्यवस्था को पुनः पटरी पर लाने के लिए जॉन मेनार्ड केंज ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक General Theory of Employment, Interest and Money में राजकोषीय नीति को विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। राजकोषीय नीति ने पहली बार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की प्रचलित विचारधारा कि 'वह सरकार सर्वोत्तम है जो न्यूनतम शासन करती है' पर जोरदार प्रहार किया और अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए सरकार के पूर्ण हस्तक्षेप की जमकर वकालत की। संयोग बस केंस के सुझाये गये उपाय के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए और तभी से राजकोषीय नीति एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक यन्त्र के रूप में प्रयोग की जाने लगी है। वर्तमान अध्याय में हम राजकोषीय नीति से जुड़ी कुछ खास बातों पर ही चर्चा करेंगे।

27.2 उद्देश्य -

वर्तमान इकाई का उद्देश्य आपके अन्दर निम्नलिखित के प्रति समझ उत्पन्न करना है-

- आप मौद्रिक एवम् राजकोषीय नीति में अन्तर या तुलना कर सके।
- आप राजकोषीय नीति के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त कर सके।
- राजकोषीय नीति के विभिन्न यन्त्रों से परिचित हो सके।
- विभिन्न यन्त्रों की क्रियाशीलता समझ सके।
- विभिन्न यन्त्रों के सापेक्षित गुण-दोष से परिचित हो सके।

27.3 राजकोषीय नीति के यन्त्र -

27.3.1 राजकोषीय नीति: अर्थ, परिभाषा एवं विकास -आपने देखा कि 1936 में 'जनरल थियरी' के प्रकाशन के बाद यह समझा जाने लगा कि सरकार के आय एवं व्यय कार्यक्रमों द्वारा भी राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार को प्रभावित किया जा सकता है।

राजकोषीय नीति को परिभाषित करते हुए आर्थर स्मिथिज ने लिखा है कि- 'राजकोषीय नीति वह नीति है जिसके अन्तर्गत सरकार अपने व्यय एवम् राजस्व कार्यक्रमों का उपयोग करके राष्ट्रीय,

उत्पादन तथा रोजगार पर वांछनीय प्रभाव डालने की कोशिश करती है तथा अवांछनीय प्रभाव से बचने का प्रयास किया जाता है।'

'राजकोषीय नीति से हम कर एवं लोक व्यय की प्रक्रिया को ऐसा आकार प्रदान करना समझते हैं, जिससे ;पद्ध व्यापार चक्र के उतार-चढ़ाव को कम किया जा सके तथा ;पपद्ध चंचल मुद्रा स्फीति से स्वतन्त्र रहते हुए अर्थव्यवस्था को रोजगार के ऊँचे एवं वृद्धिमान स्तर पर कायम रखा जा सके।'

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के बाद आप सरलतम शब्दों में राजकोषीय नीति के अर्थ को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। राजकोषीय नीति, आर्थिक नीति का वह भाग है जिसे सरकार अर्थव्यवस्था पर वांछित प्रभाव डालने तथा अवांछनीय प्रभावों को कम करने लिए प्रयोग करती है। तकनीकी शब्दों में आप यह कह सकते हैं कि - राजकोषीय नीति वह यन्त्र है, जिसे सरकार मूल्य स्थिरता, पूर्ण रोजगार तथा आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयोग करती है।

राजकोषीय नीति का विकास -यदि आप आर्थिक विचारों के इतिहास का अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि राजकोषीय नीति अथवा सिद्धान्त का विकास तीन महत्वपूर्ण चरणों से होकर गुजरा है-ए चरण है-1. प्रतिष्ठित विचारधारा, 2. नव-प्रतिष्ठित विचारधारा तथा 3. केंज की विचारधारा।

इन चरणों की विस्तार से व्याख्या, राजकोषीय नीति: विभिन्न अवधारणाएँ शीर्षक के अन्तर्गत की जायेगी।

1. प्रतिष्ठित विचारधारा अथवा समृद्ध वित्त का सिद्धान्त:- प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री इस बात से मतैक्य थे कि सरकार का कार्यक्षेत्र सीमित (केवल शान्ति एवं सुरक्षा तक) होना चाहिए साथ ही इसके बजट का आकार छोटा तथा स्वरूप सन्तुलित होना चाहिए। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की इस विचारधारा का मुख्य आधार जे0बी0 से का बाजार नियम था, जिसके अनुसार - पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न करती है तथा अर्थव्यवस्था में जो कुछ भी उत्पादन होता है वह तत्काल ही पूरा का पूरा बिक जाता है। अर्थात् कभी भी अतिरेक की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है। इसका अभिप्राय यह है कि अर्थव्यवस्था में न तो कभी अति उत्पादन हो सकता है न ही बेरोजगारी। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह दृढ़ विश्वास था कि आर्थिक प्रणाली के पूंजीवादी स्वरूप का अनुपालन करने वाले समाज में सदैव पूर्ण रोजगार पाया जाता है। परिणामस्वरूप आर्थिक मामलों में सरकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए सरकार को अहस्तक्षेप की नीति का पालन करना चाहिए।

अर्थात् सरकार को न्यूनतम कर लगाना चाहिए तथा न्यूनतम व्यय करना चाहिए। इसी को उन्होंने समृद्ध वित्त का सिद्धान्त कहा। समृद्ध वित्त के सिद्धान्त को हेन्सन ने इस प्रकार व्यक्त किया 'समृद्ध वित्त के सिद्धान्त से अभिप्राय उदासीन राजकोषीय नीति से है, जिसमें दो बातों का प्रयास किया जाता है- 1. अधिकतम सम्भावित सीमा तक सरकारी व्यय को कम करना तथा 2.कर प्रबन्धन को

न्यूनतम सम्भावित सीमा तक ले जाना ताकि आय का सापेक्षिक प्रतिष्ठित कर विहीन समाज की तरह अप्रभावित रहे।'

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अतिरेक तथा घाटे के बजट की जगह सन्तुलित बजट की वकालत की। उनका मानना था कि अतिरेक बजट में सरकार व्यय कम करती है तथा कर से आय अधिक प्राप्त करती है। ऐसी स्थिति में संसाधन निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र की तरफ स्थानान्तरित हो जाते हैं और इसे वे अनुत्पादक मानते थे। इसी प्रकार घाटे के बजट में भी सरकार द्वारा उधार लिये जाने के कारण संसाधनों का निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र की ओर प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। यही कारण है कि संसाधनों के सवोत्तम आवंटन को सुनिश्चित करने के लिए प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने सन्तुलिजत बजट की वकालत की।

समृद्ध वित्त की सीमाएँ :-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह धारणा कि प्रभाव के दृष्टिकोण से सन्तुलित बजट, अर्थव्यवस्था में उदासीन रहता है, वास्तव में सही नहीं है। सन्तुलित बजट के भी विस्तारकारी प्रभाव हो सकते हैं। इसके अलावा उनकी स्वयं समायोजन तथा पूर्ण रोजगार के स्तर पर सतत् साम्य के पाये जाने की मान्यता भी अत्यवहारिक है। इस प्रकार के सन्तुलित बजट की नीति स्वयं स्थिरता के उद्देश्य के विपरीत कार्य करती है। स्फीति काल में बिना कर की दर में परिवर्तन किये भी कर आय में वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप सन्तुलन को बनाये रखने के लिए व्यय में वृद्धि करनी पड़ती है।

यह प्रक्रिया स्फीतिक प्रभाव को और गहन बनाती है। दूसरी तरफ मन्दीकाल के दौरान उसी कर की दर पर काय आय कम हो जाती है। परिणाम स्वरूप बजट के सन्तुलन को बनाये रखने के लिए या तो कर की दर बढ़ानी पड़ेगी या व्यय को कम करना पड़ेगा। दोनों ही दशाएँ मन्दी के प्रभाव को तीव्र करने में सहायक होती है।

अतः कहा जा सकता है कि सन्तुलित बजट उदासीन न होकर अस्थिरता उत्पन्न करने वाला होता है। यही कारण है कि केंज तथा लर्नर ने समृद्ध वित्त के सिद्धान्त को नकार दिया और उसके स्थान पर कार्यात्मक वित्त के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

2.नव प्रतिष्ठित विचारधारा :-इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मार्शल एवं पीगू हैं। इनका मानना है कि अहस्तक्षेप ककी नीति पर आधारित पूंजीवादी व्यवस्था का समाज पर सर्वाधिक अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। अधिकतम सामाजिक लाभ के उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए सरकार अहस्तक्षेप की नीति को त्याग कर आर्थिक मामलों में सक्रिय भूमिका अदा करे। उनके अनुसार अर्थव्यवस्था में अवांछनीय प्रवृत्तियों को रोकने के लिए सरकार को सक्रियता के साथ हस्तक्षेप करना चाहिए। उदाहरण के लिए सरकार अवांछनीय क्षेत्रों में विनियोग को कम करने के लिए राजकोषीय उपायों का प्रयोग कर सकती है अथवा इच्छित क्षेत्र में विनियोग बढ़ाने के लिए अनुदान

या छूट का उपयोग कर सकती है। सरकार को केवल उत्पादन बढ़ाने में ही नहीं बल्कि सामाजिक-आर्थिक असमानता को कम करने में भी पहल करनी चाहिए। परन्तु यह सब अधिक आय एवं अधिक व्यय से ही सम्भव है। अतः नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अर्थव्यवस्था में अधिकतम कल्याण को प्राप्त करने के लिए बड़े बजट की वकालत की।

3. केंजियन विचारधारा -आप जानते हैं कि 1936 में केंज की 'जनरल थियरी' के प्रकाशन के बाद राजकोषीय नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। केंज ने प्रतिष्ठित विचारधारा पर पूर्ण विराम लगा दिया। केंज ने जे0बी0 से के बाजार नियम को चुनौती दी और कहा कि प्रत्येक पूर्ति अपनी मांग उत्पन्न नहीं करती परिणामस्वरूप पूंजीवादी समाज में बेरोजगारी तथा अति उत्पादन की सम्भावना विद्यमान रहती है। हाँ, यदि किसी प्रकार इस मांग की कमी को पूरा किया जा सके तो अर्थव्यवस्था में न तो अति उत्पादन होगा न तो बेरोजगारी। केंज के अनुसार इस समग्र मांग की कमी को दो तरीके से पूरा किया जा सकता है-

i. उपभोग व्यय में वृद्धि करके तथा
ii. विनियोग व्यय में वृद्धि करके

चूंकि अल्पकाल में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (आय में वृद्धि का वह भाग जो उपभोग पर किया जाता है) स्थिर रहती है इसलिए उपभोग व्यय में वृद्धि व्यवहारिक नहीं है। अतः स्वाभाविक रूप से समग्र में वृद्धि करने के लिए विनियोग व्यय पर निर्भरता बढ़ जाती है। यह भी बताते चलें कि केंज ने अल्पकालीन व्याख्या को ही महत्व दिया क्योंकि उनका मानना था कि दीर्घकाल में हम सब मर जाते हैं। मन्दीवाल में जब लाभ की प्रत्याशा कम हो जाती है तब उदार मुद्रा नीति भी निजी विनियोग को प्रोत्साहित नहीं कर पाती है। ऐसे में सार्वजनिक विनियोग में वृद्धि ही व्यय की कमी को पूरा करने का एक मात्र विकल्प शेष बचता है। अर्थात् सरकार को सार्वजनिक कार्यों जैसे- सड़क, सिंचाई, सार्वजनिक भवन आदि पर विनियोग बढ़ाकर व्यय की कमी को पूरा करना चाहिए। केंज ने ऐसी स्थिति कें असन्तुलित बजट की वकालत की। साथ में यह भी सुझाव दिया कि घाटे को पूरा करने के लिए 'घाटे की वित्त व्यवस्था' का प्रयोग करना चाहिए और इस उद्देश्य नोट छापना चाहिए। केंज के अनुसार बेरोजगारी के साथ मन्दी की भयावह स्थिति से निपटने के लिए विकसित देशों के पास असन्तुलित बजट एक मात्र विकल्प है।

कार्यात्मक वित्त का सिद्धान्त :-विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में हाल के वर्षों में जो प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है, उसे कार्यात्मक वित्त के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। यद्यपि कि कार्यात्मक वित्त का सिद्धान्त केंज की विचारधारा पर आधारित है परन्तु इसे विकसित और संशोधित करने का श्रेय ए0पी0 लर्नर को जाता है। ए॰पी॰ लर्नर के अनुसार, 'राजकोषीय नीति का स्वभाव स्फीति एवं अवस्फीति विरोधी होना चाहिए तथा उसे अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थिरता के

उद्देश्य के प्राप्त करने के लिए एक यन्त्र के रूप में प्रयोग किया जा सके। इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार का बजट सन्तुलित नहीं होना चाहिए। मन्दी तथा बेरोजगारी की स्थिति में घाटे का बजट तथा तेजी और अति पूर्ण रोजगार की स्थिति में अतिरेक का बजट बनाया जाना चाहिए। घाटे के बजट में सरकार का व्यय उसकी आय से अधिक होता है तथा इस घाटे को नोट छापकर पूरा किया जाना चाहिए। मौद्रिक प्रसार की यह नीति अर्थव्यवस्था में मन्दी और बेरोजगारी दूर करने में सहायक होगी। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा का प्रवाह बढ़ाने पर उत्प्रेरक शक्तियाँ काम करने लगती हैं तथा मूल्य स्तर बढ़ने लगता है।'

इसके विपरीत यदि अर्थव्यवस्था स्फीति एवं अति पूर्ण रोजगार की स्थिति से गुजर रही है तब उस स्थिति से निबटने के लिए सरकार को अतिरेक का बजट बनाना चाहिए। जनता के पास से अतिरिक्त क्रयशक्ति को वापस लेने के लिए भारी मात्रा में व्यक्तिगत तथा वस्तुओं पर कर लगाया जाना चाहिए। अर्थव्यवस्था में विद्यमान अतिरिक्त क्रय शक्ति के प्रभाव को उदासीन बनाने के लिए सरकार को जनता से उधार लेने का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर चलाना चाहिए। स्फीतिक शक्तियों से निबटने के लिए सरकार को अपने व्यय कार्यक्रमों को कम करना चाहिए। उपर्युक्त सभी प्रयासों का परिणाम अतिरेक बजट है जो स्फीतिक से प्रभावों को रोकने के लिए प्रतिरोधक का कार्य करता है। दूसरे शब्दों में आप यह कह सकते हैं कि कार्यात्मक वित्त का सिद्धान्त, अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने के लिए, घाटे की वित्त व्यवस्था अर्थात् घाटे का बजट तथा अतिरेक बजट के विवेकपूर्ण अर्थात् घाटे का बजट तथा अतिरेक बजट के विवेकपूर्ण समन्वय की वकालत करता है। परन्तु अल्पविकसित या विकासशील देशों में कार्यात्मक वित्त, विशेष कर घाटे के बजट को आर्थिक विकास के यन्त्र के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए। आप अगले पाठ में विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की भूमिका के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

क्षतिपूरक राजकोषीय नीति - क्षतिपूरक राजकोषीय नीति के अन्तर्गत आय, व्यय तथा सार्वजनिक ऋण से सम्बन्धित वे विवेकपूर्ण समायोजन सम्मिलित हैं, जिनका उद्देश्य स्फीतिविहीन पूर्ण रोजगार को सुनिश्चित करता है -

i. स्वयं समायोजित क्षतिपूरक नीति
ii. विवेकाधीन राजकोषीय नीति

1.बिल्ट-इन स्टैबिलाइजर स्वचालित स्थिरीकरण की तकनीक है जहाँ कर तथा व्यय राष्ट्रीय आय से सम्बद्ध होते हैं। कर की दर में बिना कोई परिवर्तन किये राष्ट्रीय आय के बढ़ने पर कर आय बढ़ जाती है जबकि राष्ट्रीय आय तथा व्यय में विपरीत सम्बन्ध पाया जाती है। राष्ट्रीय आय कम होने पर कर का प्रतिशत निर्धारित होने के कारण कर आय कम हो जाती है। ठीक उसी समय सरकार का सामाजिक सुरक्षा तथा बेरोजगारी राहत पर व्यय स्वयं बढ़ जाता है। जो स्वचालित तरीके से घाटे के

बजट में परणित हो जाता है जो अवस्फीति को रोकने में सहायक होता है। दूसरी तरफ कर की दरों में स्वचालित वृद्धि तथा राहत व्यय में कमी बजट अतिरेक की स्थिति उत्पन्न करता है जो स्फीति को नियन्त्रित करता है।

2. विवेकाधीन राजकोषीय नीति के अन्तर्गत बजट में सोच-समझकर परिवर्तन किये जाते हैं। इसके तीन रूप हो सकते हैं-

- सरकारी व्यय को स्थिर रखते हुए करों में परिवर्तन।
- करों को स्थिर रखते हुए सरकारी व्यय में परिवर्तन।
- कर तथा व्यय दोनों में समान रूप से परिवर्तन।

विवेकाधीन राजकोषीय नीति के अन्तर्गत बताये गये उपायों का प्रयोग विकसित तथा विकासशील देशों में स्वचालित स्थिरीकरण की नीति को मजबूती प्रदान करने तथा आर्थिक विकास कार्यक्रमों को गति प्रदान करने के लिए किया जाता है।

क्राउडिंग आउट :- इस नीति के अन्तर्गत निजी व्यय (विनियोग) को सरकारी व्यय में वृद्धि करके (घाटे के बजट द्वारा) कम किया जाता है। ऐसा करने के लिए सरकार करों में कमी कर देती है तथा मुद्रा की पूर्ति एवं बाण्ड का निर्गमन बढ़ा देती है। सरकारी व्यय में वृद्धि राष्ट्रीय आय, समग्र मांग और ब्याज दर में वृद्धि कर देता है। परिणामस्वरूप निजी निवेश कम हो जाता है। इसे ही क्राउडिंग प्रभाव कहते हैं।

राजकोषीय नीति के यन्त्र :- यदि आप से सरल शब्दों में कहें तो राजकोषीय नीति के यन्त्र निम्नलिखित हैं-

1. **बजट**
2. **कर**
3. **सार्वजनिक व्यय तथा**
4. **सार्वजनिक ऋण**

1.बजट :- बजट अर्थव्यवस्था पर वांछित प्रभाव डालने तथा अवांछित प्रभावों को कम करने का एक महत्वपूर्ण यन्त्र है। उपर की गयी व्याख्या से आप जान गये हैं कि स्फीतिकाल में अतिरेक बजट (जहाँ व्यय आय से कम होता है) तथा मन्दीकाल में घाटे का बजट (जहाँ व्यय अधिक तथा आय कम होती है) व्यवस्था को सुधारने तथा चक्रीय उच्चावचनों को नियन्त्रित करने में सहायक होता है। सन्तुलित बजट (आय एवं व्यय बराबर होते हैं) का शुद्ध राष्ट्रीय आय की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है कि कर के कारण उपभोग में होने वाली कमी सरकारी व्यय के बराबर नहीं होती है। इसे ही सन्तुलित बजट गुणक के रूप में परिभाषित किया जाता है।

2.कर :- उपभोग्य आय उपभोग तथा विनियोग को नियोजित करने के लिए कर एक अत्यन्त प्रभावशाली यन्त्र है, जिसका प्रयोग सार्वजनिक सत्ता आवश्यकतानुसार करती रहती है। कर संरचना में होने वाला परिवर्तन आर्थिक क्रियाओं के सामान्य स्तर पर व्यापक प्रभाव डालता है।

3. सार्वजनिक व्यय - कर की अपेक्षा सार्वजनिक व्यय का आर्थिक क्रियाओं के सामान्य स्तर पर अधिक सीधा और व्यापक प्रभाव पड़ता है। यह आय, उत्पादन तथा रोजगार पर ठीक उसी प्रकार प्रभाव डालता है जैसे विनियोग।

4.सार्वजनिक ऋण -पिछले कुछ दशकों से सार्वजनिक ऋण एक महत्वपूर्ण रोजकोषीय यन्त्र के रूप में उभर कर आया है। यह अर्थव्यवस्था की तरलता को परिवर्तित करके समग्र व्यय को नियोजित करने का प्रयास करता है।

स्फीतिकाल के दौरान राजकोषीय यन्त्र :-यहाँ आप संक्षेप में देखेंगे कि स्फीति के नियन्त्रण में राजकोषीय यन्त्र कैसे सहयोगी होती है।

1. **सार्वजनिक व्यय एवं स्फीति :-**आप जानते हैं कि स्फीति के दौरान अनियोजित निजी व्यय की अधिकता के कारण समग्र मांग में तेजी से वृद्धि हो जाती है। ऐसे में सरकार अपना व्यय कम करके समग्र मांग को सीमित कर सकती है और स्फीति पर नियन्त्रण कर सकती है।
2. **करारोपण एवं स्फीति :-**आप जानते हैं कि वस्तुओं तथा सेवाओं की तुलना में उपभोग्य आय की अधिकता ही स्फीति का प्रमुख कारण है। ऐसे में करारोपण एक महत्वपूर्ण यन्त्र के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। वर्तमान कर की दर तथा नये करों को बढ़ाकर प्रचलन में मुद्रा की मात्रा तथा उपभोग्य आय को कम किया जा सकता है। यह स्थिति स्फीति को रोकने में सहायक होगी।
3. **सार्वजनिक उधार एवं स्फीति :-** इसे एक दूसरे स्फीति नियामक यन्त्र के रूप में प्रयोग कियाजाता है। सार्वजनिक उधार के माध्यम से सरकार जनता की अतिरिक्त क्रयशक्ति अपने पास रख लेती है। सार्वजनिक उधार ऐच्छिक एवं अनिवार्य दोनों हो सकता है। भारत में भी 1974 में कर्मचारियों तथा करदाताओं के लिए अनिवार्य बचत योजना, स्फीति को ध्यान में रखकर, लागू की गयी। क्रय शक्ति कम हो जाने पर मूल्य स्तर पर दबाव कम हो जाता है।
4. **ऋण प्रबन्धन एवं स्फीति :-**ऋण प्रबन्धन कुछ इस प्रकार होना चाहिए ताकि वह मुद्रा की पूर्ति तथा साख के विस्तार को नियन्त्रित कर सके। सरकार बॉण्ड तथा प्रतिभूतियों को गैर बैंकिंग विनियोजकों (बीमा कम्पनियाँ, बचत बैंक तथा व्यक्ति विशेष) को बेचकर क्रयशक्ति को नियन्त्रित कर सकती है परन्तु शर्त यह है कि ये लोग खरीदने के इच्छुक हों। उस समय भी यह योजना अप्रभावी रहेगी यदि गैर-बैंकिंग विनियोजक इस कार्य में उस निष्क्रिय मुद्रा का प्रयोग करते हैं, जिसका अभी तक वे प्रयोग नहीं कर रहे थे।
5. **बजट नीति एवम् स्फीति :-**आप जानते हैं कि अतिरेक बजट का स्फीति विरोधी प्रभाव होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि स्फीति के दौरान सर्वोत्तम बजट नीति वह होगी

जो सरकारी व्यय को कम करें तथा कर को बढ़ायें। एक प्रतिबन्धित राजकोषीय नीति समग्र मांग को कम करके स्फीति को नियन्त्रित करती है। हाँ, यदि स्फीति संरचनात्मक कारणों (साधनों की पूर्ति में कमी, लागत में वृद्धि, मजदूरी एवं लाभ आदि) से है तब सरकार को व्यय एवं कर के स्थान पर दूसरे तरीकों पर विचार करना चाहिए।

मन्दी के दौरान राजकोषीय नीति :- अभी आप ने देखा कि कैसे राजकोषीय नीति स्फीति को नियन्त्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यहाँ हम देखेंगे कि राजकोषीय नीति कैसे मन्दीकाल में उपयोगी होती है।

बजट नीति एवं मन्दी :- आप जानते हैं कि घाटे का बजट ;क्मपिबपज ठनकहमजपदहद्ध मन्दी काल के लिए सर्वोत्तम है। इसके अन्तर्गत सरकार मांग बढ़ाकर समग्र मांग को प्रभावित करती है तथा अपने अतिरिक्त व्यय का वित्तीय प्रबन्धन करने के लिए नोट छापती है। इन सब का परिणाम यह होता है कि अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त क्रय शक्ति प्रवाहित होती है जो मन्दी तथा बेरोजगारी को दूर करने में सहायक होती है।

घाटे के बजट के विस्तारकारी प्रभाव को एक चित्र के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है-

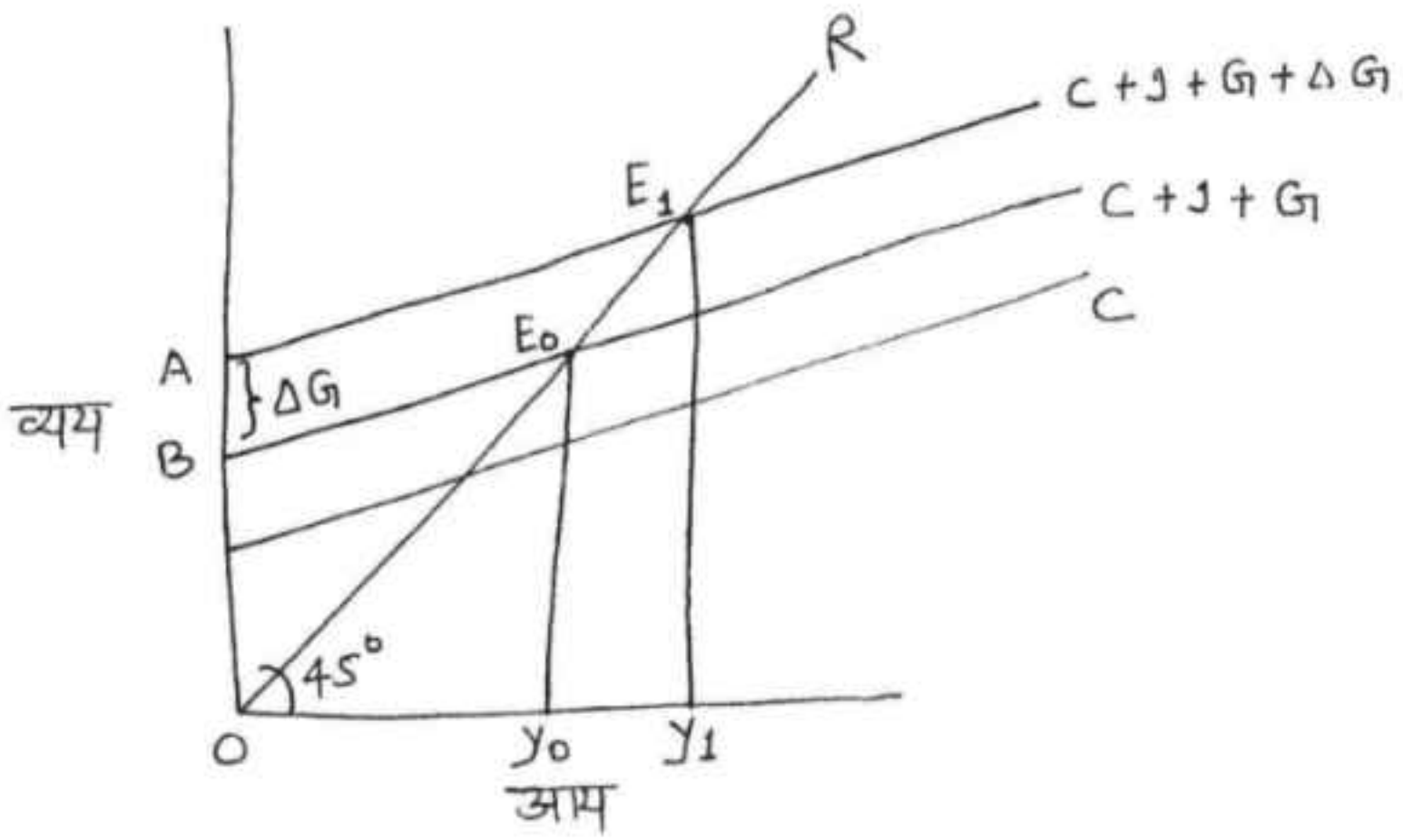

उपर्युक्त चित्र में X अक्ष पर आय तथा Y अक्षर पर व्यय प्रदर्शित है। OR आय तथा व्यय के समान वितरण को व्यक्त करता है। C उपभोग को तथा C+I+Y कुल व्यय (उपभोग, विनियोग तथा सरकारी व्यय) को व्यक्त करता है। प्रारम्भिक सन्तुलन E_0 बिन्दु है जहाँ आय का स्तर Y_0 है। जब

सरकार के व्यय में ΔG की वृद्धि होती है तब नया सन्तुलन Y_1 आय के स्तर तथा E_1 बिन्दु पर होता है। स्पष्ट है कि आय में वृद्धि Y_0Y_1 आय के स्तर तथा E_1 बिन्दु पर होता है। स्पष्ट है कि आय में वृद्धि Y_0Y_1 व्यय में वृद्धि AB से अधिक है। यह अधिकता गुणक प्रभाव के कारण हैं। यही कारण है कि गुन्नार मिर्डल ने मन्दी काल में घाटे के बजट को व्यावहारिक अनिवार्यता बताया।

करारोपण एवं मन्दी :- केंज के अनुसार मन्दी के दौरान कर नीति ऐसी होनी चाहिए ताकि उपभोग एवं विनियोग दोनों में समान रूप से वृद्धि हो सके। उपभोग में वृद्धि करने के लिए वस्तुओं पर कर की दर, जैसे बिक्री दर तथा उत्पाद शुल्क कम करना चाहिए। दूसरी तरफ विनियोग में वृद्धि करने के लिए व्यापार कर तथा निगम कर कम करना चाहिए। ऐसा करने से पूंजी की सीमान्त क्षमता बढ़ती है जो विनियोग प्रवृत्ति को अनिवार्य रूप से प्रोत्साहित करती है।

चूंकि अमीर लोगों की सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम होती है इसलिए सरकार प्रगतिशील करारोपण द्वारा अमीरों से आय प्राप्त कर उसे गरीबों पर अनुदान आदि के रूप में व्यय कर सकती है जिससे कुल उपभोग मांग में वृद्धि होगी। इसे करारोपण का पुनर्वितरण प्रभाव कहते हैं। इस तरह कवायद निश्चित रूप से मन्दी एवं बेरोजगारी से निबटने में सहायक होगी।

सार्वजनिक व्यय एवं मन्दी :-आप जानते हैं कि मन्दीकाल में प्रभावपूर्ण मांग कम हो जाती है, ऐसे में सार्वजनिक व्यय नीति कुछ ऐसी होनी चाहिए कि वह प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि कर सके। ऐसी दशा में सार्वजनिक व्यय दो प्रकार का हो सकता है-

1. **प्रोत्साहन व्यय**
2. **क्षतिपूरक व्यय**

मन्दी के दौरान गतिहीनता के दौर से गुजरती हुई अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए उपर्युक्त दोनों विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रोत्साहन व्यय द्वारा सरकार अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त मुद्रा का प्रवाह करती है जिससे लोगों की क्रय शक्ति बढ़ जाती है। यह स्थिति निजी निवेशकों को विनियोग के लिए प्रोत्साहित करती है। यह व्यय निजी विनियोग को सिर्फ प्रोत्साहित करता है उसी कमी को पूरा करने का प्रयास नहीं करता है। जबकि क्षतिपूरक व्यय वह व्यय है जो निजी व्यय की कमी को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा किया जाता है। गुझाक तथा त्वरक प्रभाव के कारण इस व्यय राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर बहुआयामी प्रभाव पड़ता है। सरकार क्षतिपूरक व्यय तब तक जारी रखती है जब तक कि निजी व्यय अपने सामान्य अवस्था में न पहुँच जाय। क्षति पूरक व्यय के अन्तर्गत सरकार सार्वजनिक कार्यों तथा सामाजिक सुरक्षा के उपायों पर व्यय करती है। सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन के प्रभाव को IS तथा LM वक्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है-

आपको बताते चलें कि IS वक्र (आय तथा ब्याजदर के उन विभिन्न स्तरों को व्यक्त करता है जहाँ मुद्रा की मांग और पूर्ति बराबर होते हैं) वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार के सन्तुलन को व्यक्त करता है।

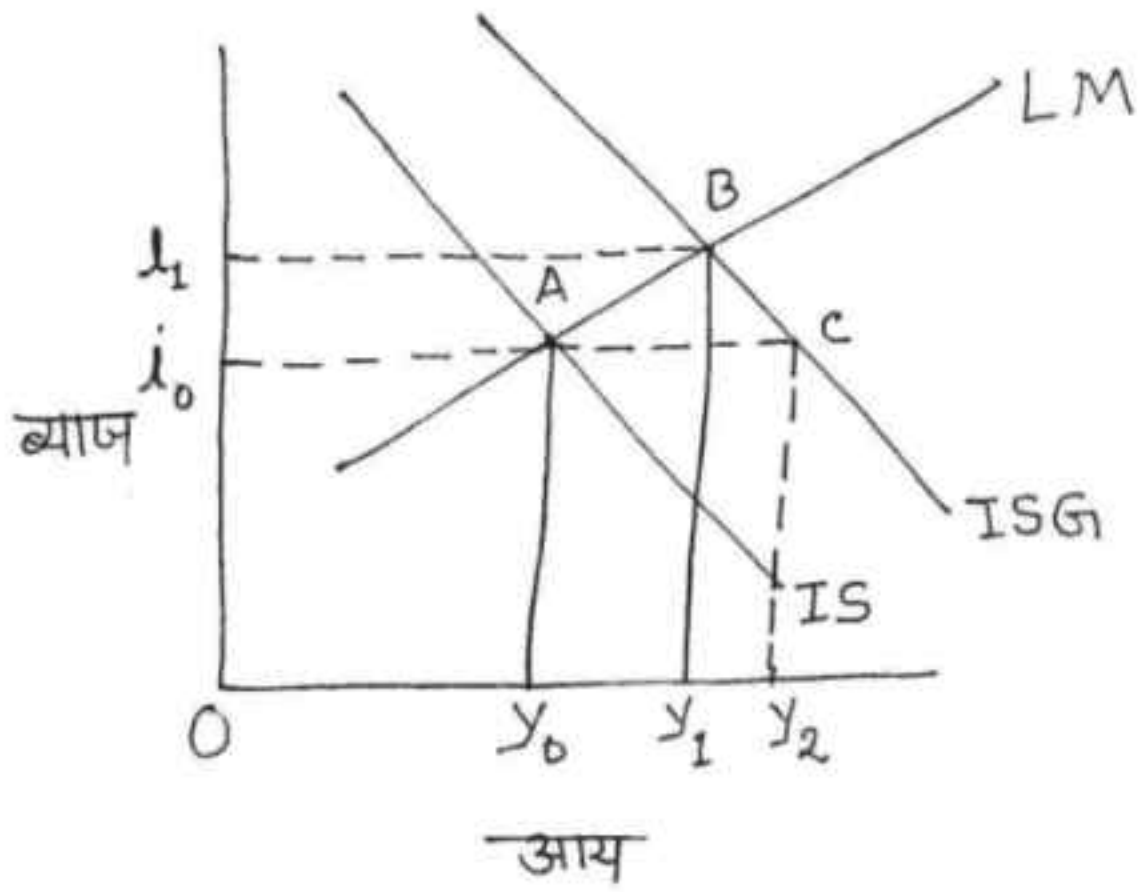

चित्र से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक सन्तुलन A बिन्दु पर है। सरकारी व्यय में वृद्धि होने पर IS रेखा दाहिनी ओर खिसक जाती हैं नयी रेखा ISG हो जाती है। यदि ब्याज दर अपरिवर्तित रहे तो सन्तुलन C बिन्दु पर होगा जहाँ आय में अधिकतम वृद्धि (Y_2) होगी और गुणक का प्रभाव सर्वाधिक होगा। परन्तु यदि ब्याज दर स्थिर नहीं रहती है तब सन्तुलन B बिन्दु पर होगा, जहाँ आय में वृद्धि (Y_1) अपेक्षाकृत कम होगी और गुणक का प्रभाव भी कम होगा। आपने देखा कि मन्दी के दौरान सार्वजनिक व्यय निश्चित रूप से एक प्रभावशाली यन्त्र है। परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ हैं-

प्रथम - सार्वजनिक व्यय कार्यक्रम को समय से लागू करना कठिन है क्योंकि मन्दी का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

द्वितीय - योजनाओं का समय-अन्तराल अधिक होने के कारण उनका परिणाम चक्रीय उच्चावचनों से तालमेल नहीं खाता है।

तृतीय - चूंकि सार्वजनिक व्यय का एक अंश सार्वजनिक उधार द्वारा पूरा किया जाता है इसलिए इसका भार जनता पर भी पड़ता है तथा

चतुर्थ - महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्यों जैसे- अस्पताल, स्कूल, सड़क तथा नहर आदि के लिए मन्दी का इन्तजार नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त सीमाओं के कारण अर्थशास्त्रियों का मानना है कि सामाजिक सुरक्षा पर व्यय जैसे- बीमा, राहत व्यय, सामाजिक सुरक्षा लाभ, पेंशन तथा अनुदान आदि अपेक्षाकृत सार्वजनिक कार्यक्रमों पर व्यय से बेहतर है। अन्त में कहा जा सकता है कि मन्दी से उतरने के लिए सर्वोत्तम नीति वह है जिसमें सार्वजनिक व्यय कार्यक्रमों तथा सामाजिक सुरक्षा व्यय का विवेकपूर्ण समन्वय हो।

राजकोषीय नीति एवं आय की असमानता :- यहाँ आप जानेंगे कि राजकोषीय नीति कैसे समाज में आय एवं धन के वितरण की विषमता को कम करने में सहायक होती है। इस कार्य में महत्वपूर्ण योगदान करारोपण एवं सार्वजनिक व्यय का है।

प्रगतिशील करारोपण आय और धन के वितरण की विषमताको दूर करने का सबसे सफल साधन है। सरकार अमीरों से अधिक कर वसूल कर गरीबों को छूट या अनुदान के रूप में उपलब्ध करा देती है। इसके अलावा सम्पत्ति कर तथा उपहार कर द्वारा भी असमनता को कम करने का प्रयास किया जाता है। इसी उद्देश्य से विलासिता तथा आयातित वस्तुओं पर भारी कर लगाया जाता है।

सार्वजनिक व्यय, जो राजकोषीय नीति का दूसरा महत्वपूर्ण यन्त्र है, को आय तथा धन के वितरण की विषमता को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है। सरकार इस प्रकार की व्यय नीति बनाती है जो समाज के कमजोर, उपेक्षित तथा शारीरिक रूप से अक्षम लोगों के हित में हो। सरकार द्वारा इस वर्ग को निःशुल्क भोजन, वस्त्र, आवास, चिकित्सा, शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधाएँ उलपब्ध करा सकती हैं और इस प्रकार सार्वजनिक व्यय के माध्यम से समाज में आय एवं धन के पुनर्वितरण को विवेकपूर्ण बना सकती है।

राजकोषीय नीति एवं आर्थिक सवृद्धि:-अब तक आप जान गये होंगे कि आर्थिक सवृद्धि सामाजिक बचत तथा निजी विनियोग का प्रतिफल है। अतः राजकोषीय नीति ऐसी होनी चाहिए जो सामाजिक बचत तथा निजी विनियोग को प्रोत्साहित करे। आप जानते हैं कि अल्प विकसित तथा विकासशील देशों में भौतिक संसाधनों की प्रचुरता होती है परन्तु वित्तीय संसाधनों के अभाव के कारण वे निष्क्रिय पड़े रहते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि राजकोषीय नीति के विभिन्न यन्त्रों- करारोपण, सार्वजनिक व्यय, ऋण तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि वे पर्याप्त वित्तीय संसाधन सृजित कर निष्क्रिय पड़े भौतिक संसाधनों को गतिशील कर सकें।

करारोपण - आर्थिक सवृद्धि हेतु वित्तीय प्रबन्धन के लिए करारोपण एक महत्वपूर्ण यन्त्र है। इस उद्देश्य की सरकार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों करों का प्रयोग करती है। सवृद्धि हेतु आवश्यक राजस्व एकत्रित करने के लिए सरकार प्रत्यक्ष कर के अन्तर्गत - आयकर, सम्पत्ति कर, उपहार कर, पूंजीकर तथा मृत्युकर लगा सकती है। इसका प्रभाव अधिकतर अमीर वर्ग पर ही पड़ता है। अप्रत्यक्ष कर के अन्तर्गत सरकार विलासिता की वस्तुओं (जिसका उपभोग प्रायः अमीर वर्ग करता है) पर कर

लगाकर अतिरिक्त राजस्व एकत्रित करती है। आर्थिक सवृद्धि पर करारोपण का प्रभाव इस बात का निर्भर करता है कि वह किस सीमा तक निजी क्षेत्र के उत्पादक विनियोग तथा बचत को गतिशील कर सकता है।

सार्वजनिक व्यय - आप जानते हैं कि आर्थिक सवृद्धि के लिए मजबूत एवं आधुनिक सामाजिक आर्थिक उपरिसुविधाओं, जैसे-सड़क, रेलवे, दूर संचार, सिंचाई सुविधाएँ, बिजली, कोयला, खनन तथा तकनीकी शिक्षा आदि का होना अनिवार्य शर्त है। अतः सरकार बड़े पैमाने पर सार्वजनिक व्यय करके इन सुविधाओं को विकसित करने का प्रयास करती है। इसके अलावा सरकार उन उद्योगों में विनियोग करती है, जैसे-अल्पविकसित विकसित देशों में कृषि, जो अन्य उद्योगों के लिए आधार का काम करते हैं। इसके अलावा श्रम कल्याण पर किया जाने वाला व्यय भी आर्थिक सवृद्धि को बढ़ाता है क्योंकि कल्याण कार्यक्रम श्रम उत्पादकता में वृद्धि करते हैं।

सार्वजनिक ऋण - सरकार विनियोग योग्य कोण में वृद्धि करने के लिए करारोपण के साथ-साथ अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सार्वजनिक उधार का भी सहारा ले सकती है। उधार पर चूंकि सरकार ब्याज देती है इसलिए करारोपण की अपेक्षा इसका जन विरोध कम होता है। सरकार विदेशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय उधार एजेन्सियों से भी ऋण ले सकती है। ऐसा करते समय उसे सिर्फ इतना ध्यान रखना चाहिए कि इससे उसकी आर्थिक एवं राजनैतिक सम्प्रभुता अप्रभावित रहे।

घाटे की वित्त व्यवस्था - यह भी राजकोषीय नीति का एक महत्वपूर्ण यन्त्र है। हाल के वर्षों में अधिकांश विकासशील देशों ने आर्थिक सवृद्धि हेतु वित्तीय प्रबन्धन के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रयोग किया है। घाटे की वित्त व्यवस्था के बारे में आप विस्तार से पढ़ चुके हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. सही विकल्प पर निशान लगायें-

(अ) समृद्ध बजट है-
a. सन्तुलित बजट, b.अतिरेक का बजट, c. घाटे का बजट

(ब) सन्तुलित बजट का प्रभाव है-
a. समग्र मांग में वृद्धि, b. मन्दी पर नियन्त्रण, c. राष्ट्रीय आय में शुद्ध वृद्धि

(स) कार्यात्मक वित्त का उद्देश्य है-
a. करारोपण में न्याय, b. आर्थिक स्थिरता, c. आर्थिक कल्याण

(द) क्राउडिंग प्रभाव है-
a. कीमतों में वृद्धि, b. निजी विनियोग में कमी c. ब्याज दर में कमी

(य) प्रोत्साहन व्यय का उद्देश्य है-

a. निजी विनियोग को प्रोत्साहित करना,
b. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि,
c. निजी विनियोग की कमी को पूरा करना।

(र) क्षतिपूरक व्यय का उद्देश्य है-
a. निजी विनियोग को प्रोत्साहित करना
b. निजी व्यय की कमी को पूरा करना।
c. सार्वजनिक व्यय में कमी करना।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(अ) बाजार नियम का प्रतिपादन ..... ने किया। (मार्शल/जे0बी0 से/पीगू)

(ब) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री ..... की नीति के समर्थक थे। (सरकारी हस्तक्षेप/अहस्तक्षेप/कम हस्तक्षेप)

(स) जनरल थियरी ..... की उपज है। (तेजी/मन्दी)

(द) नोट निर्गमन ..... से सम्बन्धित है। (सन्तुलित बजट/घाटे की वित्त व्यवस्था)

(र) विकासशील देशों में राजकोषीय नीति का उद्देश्य ..... है।(आर्थिक विकास/स्थिरता)

(ल) स्वचालित स्थिरीकरण की नीति ..... से सम्बन्धित है। (राष्ट्रीय आय/विनियोग)

(व) क्राउडिंग आउट के अन्तर्गत ..... को कम किया जाता है। (निजी विनियोग/सार्वजनिक व्यय)

27.4 सारांश -

आपने देखा कि विकसित एवं विकासशील देशों की आधारभूत विशेष ताओं में अन्तर होने के कारण राजकोषीय नीति की भूमिका दोनों देशों में अलग-अलग है। राजकोषीय यन्त्रों करारोपण, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा बजट नीति का प्रयोग जहाँ विकसित देशों में स्थिरता को बनाये रखने तथा समाज में आय एवं धन के वितरण की विषमताको दूर करने के लिए किया जाता है वहीं विकासशील देशों में इसका उद्देश्य आर्थिक विकास है। आपने यह भी देखा कि कार्यात्मक वित्त, प्रोत्साहन व्यय तथा क्षतिपूरक व्यय की नीति राजकोषीय नीति के प्रगतिशील यन्त्र है।इस अध्याय में आप राजकोषीय नीति के विभिन्न यन्त्रों तथा उनका अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले उपयोगी तथा अनुपयोगी प्रभावों को विस्तार से समझ सके हैं।

27.5 शब्दावली -

अहस्तक्षेप नीति - सरकार का न्यूनतम हस्तक्षेप।

समृद्ध वित्त - न्यूनतम कर तथा न्यूनतम व्यय की स्थिति को समृद्ध वित्त का सिद्धान्त कहा जाता है।

क्राउडिंग आउट इफेक्ट - सार्वजनिक व्यय द्वारा निजी विनियोग को कम करना क्राउडिंग आउट इफेक्ट कहलाता है।

कर - एक अनिवार्य अंशदान, जिसके बदले कुछ मिलने की गारण्टी नहीं होती है।

समग्र मांग - अधिकतम प्रत्याशित आय

समग्र पूर्ति - न्यूनतम प्रत्याशित आय

प्रभावपूर्ण मांग - जहाँ समग्र मांग एवं समग्र पूर्ति बराबर होते हैं।

प्रोत्साहन व्यय - वह सार्वजनिक व्यय जो निजी विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता है।

क्षतिपूरक व्यय - जो सार्वजनिक निजी विनियोग की कमी को पूरा करने के लिए किया जाता है, उसे क्षतिपूरक व्यय कहते हैं।

27.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. सही विकल्प पर निशान लगायें (अ) a, (ब) b, (स) b, (द) b, (य) a, (र) b

प्रश्न-2. (अ) जे0बी0 से, (ब) अहस्तक्षेप, (स) मन्दी, (द) घाटे की वित्त व्यवस्था,

(य) आर्थिक विकास, (र) दोनों से, (ल) राष्ट्रीय आय, (व) निजी विनियोग

27.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- Seth, M.L. (2010) : 'Money Banking and International Trade', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : Money Banking and International Trade, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), "Macro Economics", Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), 'Monetary Economics' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) 'Macro Economic Analysis' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

26.8 उपयोगी पाठ्य सहायक सामग्री-

1. सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
2. सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा
3. लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
4. मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

27.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. समृद्ध वित्त तथा कार्यात्मक वित्त की अवधारणाओं में अन्तर कीजिए। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने क्यों असन्तुलित बजट का विरोध किया?
2. राजकोषीय नीति के यन्त्र कौन से हैं? वे कैसे कार्य करते हैं? विवेचना कीजिए?
3. चक्रिय उच्चावचनों को नियन्त्रित करने के यन्त्र के रूप में क्षतिपूरक राजकोषीय नीति की व्याख्या कीजिए।
4. आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने में असन्तुलित बजट की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
5. समाज में आय एवं धन के वितरण की विषमताको दूर करने में राजकोषीय नीति के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
6. राजकोषीय नीति कैसे आर्थिक सवृद्धि को प्रोत्साहित कर सकती है।

इकाई-28: विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की भूमिका

इकाई की रूपरेखा:

28.1 प्रस्तावना
28.2 उद्देश्य
28.3 विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की भूमिका
28.3.1. विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की भूमिका/ उद्देश्य/कार्य/महत्व
28.3.2. राजकोषीय नीति के यन्त्र एवं उनका उपयोग
28.3.3. विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की सीमाएँ
28.3.4. मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति
28.4 सारांश
28.5 शब्दावली
28.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
28.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
28.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
28.9 निबन्धात्मक प्रश्न

28.1 प्रस्तावना -

आप जान गये होंगे कि सरकार अर्थव्यवस्था पर वांछित प्रभाव डालने तथा अवांछित प्रभाव को कम करने के लिए बनायी गयी आर्थिक नीति का क्रियान्वयन मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति के माध्यम से करती है। आपने यह भी देखा कि विकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में आधारभूत अन्तर पाया जाता है। दोनों की समस्याएं एवं संसाधन भिन्न-भिन्न है। ऐसे में राजकोषीय नीति को दोनों देशा में अलग भूमिका निभानी पड़ती है। विकसित देशों की मुख्य समस्या चक्रीय प्रत्येक दशा में आर्थिक स्थिरता को बनाये रखना होता है जबकि विकासशील देशों में असली समस्या संरचनात्मक परिवर्तनों की होती है। ए लम्बे समय से गतिरोध की स्थिति में रहते हैं। ऐसी अर्थव्यवस्था में वित्तीय संसाधनों की कमी तथा पूंजी एवं तकनीकी ज्ञान के अभाव में बड़े पैमाने पर उपलब्ध भौतिक संसाधन निष्क्रिय पड़े रहते हैं। विकासशील देशों के सामने दो समस्याएँ रहती हैं- 1.कैसे अदृश्य बेरोजगारी को दूर किया जाय तथा 2. कैसे विशाल जनसंख्या को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जाय। स्पष्ट है कि दोनों देशों के लिए राजकोषीय नीति को अलग-अलग भूमिका निभानी पड़ती है। प्रो॰ चेल्लैया के अनुसार, 'राजकोषीय नीति को अविकसित देशों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होती है किन्तु यह भूमिका विकसित देशों के लिए विचारी गयी भूमिका से बहुत भिन्न है।'

मसग्रेव ने भी इसका समर्थन करते हुए लिखा है कि, "विकास के समस्त काल में राजकोषीय नीति का रोजगार के स्तर व कीमतों व आर्थिक विकास की वृद्धि दर पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है परन्तु राजकोषीय नीति की कार्यप्रणालियाँ और इस पर निर्भर करने वाली आवश्यकताएँ अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ बदलती रहती है।"

इस अध्याय में आप यह जान पायेंगे कि विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की क्या भूमिका होती है? कौन सा यन्त्र आर्थिक प्रभावशाली होता है? तथा उन यन्त्रों की क्रियाशीलता क्या है?

28.2 उद्देश्य -

वर्तमान इकाई का उद्देश्य आपको निम्नलिखित से परिचित कराना है-

- विकासशील देशों की मूल समस्या जान सकेंगे।
- विकासशील देशों के लिए उपयोगी राजकोषीय यन्त्र के बारे में जान सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति एक-दूसरे के पूरक हैं।
- भारत के वर्तमान बजट की मुख्य बातें जान सकेंगे।
- विभिन्न यन्त्रों के सापेक्षित गुण-दोश से परिचित हो सके।

28.3 विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की भूमिका-

28.3.1 राजकोषीय नीति: अर्थ, परिभाशा एवं विकास/उद्देश्य/कार्य/ महत्व-अब तक आप जान गये हैं कि राजकोषीय नीति से सम्बन्धित केंजवादी विश्लेषण विकसित देशों के लिए उपयुक्त है। इन देशों में राजकोषीय नीति की भूमिका, पूर्ण रोजगार की दशा को बनाये रखना, आर्थिक स्थिरता कायम रखना तथा आर्थिक वृद्धि की दर को स्थिरता प्रदान करना होता है जबकि विकासशील देशों में इसकी मुख्य भूमिका, पूंजी निर्माण तथा विनियोग को प्रेरित करने की होती है। दूसरे शब्दों में इसकी मुख्य भूमिका पूँजी निर्माण तथा विनियोग को प्रेरित करने की होती है। अतः आप कह सकते हैं कि राजकोषीय नीति को आर्थिक सवृद्धि के यन्त्र के रूप में निर्मित किया जाना चाहिए।
बेन्जमिन हिगींस के अनुसार राजकोषीय नीति का आर्थिक विकास के यन्त्र से अभिप्राय यह है कि यह क्रमिक विकास की नीति के स्थान पर बड़े धक्के की नीति का समर्थन करती है। आर0एन0 त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'Public Finance in Under Developed Countries P-62में लिखा है कि, 'मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कार्य कर रहे विकासशील देश में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने वाली लोक वित्त की नीतियों के चार महत्वपूर्ण आयाम हैं-

1. निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में उत्पादक विनियोग को गति प्रदान करना।
2. निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र की मांग को पर्याप्त रूप से पूरा करने के लिए वित्तीय संसाधनों को गतिशील करना।
3. आर्थिक वृद्धि की दर को अधिकतम बनाये रखते हुए मौद्रिक स्थिरता को कायम रखने के लिए उपयुक्त उपायों को प्रोत्साहित करना तथा।
4. बढ़ते हुए राष्ट्रीय उत्पाद का पुनर्वितरण सुनिश्चित करना।

उपर्युक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विकासशील देशों में राजकोषीय नीति, एक विनियोजक,स्थिरकर्ता,बचतकर्ता तथा आय के पुनः वितरक के रूप में कार्य करती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्त उप-आयोग (1949) की रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों में राजकोषीय नीति को निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

- समाज में आय एवं धन के वितरण की अतिरिक्त एवं हानिकारक असमानता को कम करना चाहिए। घरेलू बाजार का विस्तार करना चाहिए तथा अनावश्यक आयात को कम करना चाहिए।
- आर्थिक विकास से उत्पन्न होने वाली स्फीति को नियन्त्रित करना।

- मनोनुकूल आर्थिक विकास की दिशा के लिए इच्छानुसार आर्थिक विकास के कार्यों को मदद प्रदान करना।
- आर्थिक विकास के लिए उपलब्ध कुल बचत की मात्रा में वृद्धि करना।

उपरोक्त की व्याख्या से आप जान गये हैं कि विकासशील देशों में राजकोषीय नीति आर्थिक विकास का मुख्य साधन है, इस सन्दर्भ में उसे निम्नलिखित भूमिका निभानी पड़ती है-

1. संसाधनों का प्रभावी गतिशीलन -विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय का आकार छोटा होने के कारण स्वायत्त स्वाभाविक रूप से कम होती है। जबकि रेगनर नर्कसे के हवाले से आप जानते हैं कि सीमान्त बचत प्रवृत्ति आर्थिक विकास का प्रमुख निर्धारक है।

विकासशील देशों में सरकारें इस प्रकार राजकोषीय नीति का निर्माण करती है कि यह वित्तीय संसाधनों को इस प्रकार गतिशील बनाये ताकि पूँजी निर्माण के आवश्यक बचत, जबरदस्ती ही सही, उत्पन्न की जा सके। सरकार प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों के माध्यम से संसाधनों को गतिशील करने का प्रयास करती है, क्योंकि विकासशील देशों के करारोपण संसाधनों के गतिशीलन का प्रमुख श्रोत है। सरकार अपने व्यय में कमी करके तथा सार्वजनिक उपक्रमों के अतिरेक में वृद्धि करके सार्वजनिक बचत बढ़ाकर संसाधनों को गतिशील कर सकती है। इसके अलावा सरकार कर संरचना में सकारात्मक सुधार करके निजी बचत को प्रोत्साहित कर सकती है और ट्रेजरी बिल एवं बॉण्ड निर्गत करके उधार के माध्यम से पूँजी निर्माण के लिए आवश्यक बचत उत्पन्न कर सकती है। कभी-कभी सरकार का कार्य के लिए देश तथा विदेश से प्रत्यक्ष ऋण लेने के साथ-साथ घाटे की वित्त व्यवस्था का भी सहारा लेती है।

2. वित्तीय संसाधनों का कुशल आवंटन - विकासशील देशों में संसाधनों विशेष कर वित्तीय का अभाव होता है इसलिए सरकारें ऐसी राजकोषीय नीति को प्राथमिकता देती हैं जो सीमित वित्तीय संसाधनों का कुशल एवं उत्पादक आवंटन सुनिश्चित कर सके। राजकोषीय नीति सामाजिक रूप से उपयोगी वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में अधिक तथा अनुपयोगी वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में कम संसाधनों का आवंटन करती है।

3. आय एवं सम्पत्ति के वितरण की असमानता को कम करना - राजकोषीय नीति का एक प्रमुख उद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गों में समता या सामाजिक न्याय स्थापित करना है। इसके लिए सरकार धनी वर्ग से अधिक तथा कमजोर वर्ग से कम कर वसूल करती है। कर से प्राप्त राजस्व को सरकारी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों तथा समाज के गरीब लोगों की दशा सुधारने पर व्यय करती है। इसके अलावा सरकार विलासितापूर्ण वस्तुओं अथवा धनी वर्ग द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं पर कर की दर अधिक तथा आवश्यक वस्तुओं (जिसका उपभोग आम अदमी करता है) पर

कर की दर कम रखती है। आप जानते हैं कि अधिकतम सामाजिक कल्याण के लिए प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से अधिक जरूरी है समाज में राष्ट्रीय आय का समान वितरण।

4. कीमत स्थिरता और स्फीति पर नियन्त्रण - स्फीति पर नियन्त्रण रखना तथा कीमतों को स्थिर बनाये रखना, राजकोषीय नीति की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। हमने देखा कि आर्थिक विकास के लिए बड़े पैमाने पर विनियोग आवश्यक है। रेगनर नर्कसे का कहना है कि विनियोग तथा स्फीति दोनों साथ-साथ चलते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि विनियोग बन्द कर देना चाहिए बल्कि स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए राजकोषीय नीति के अन्य उपायों जैसे- राजकोषीय घाटे को कम करना, कर बचत योजनायें लागू करना तथा वित्तीय संसाधनों का उत्पादक उपयोग करना, का प्रयोग करना चाहिए।

5. रोजगार सृजन - विकासशील देशों में सरकारी राजकोषीय नीति के माध्यम से रोजगार सृजित करने का हर सम्भव प्रयास करती है। आधारभूत संरचना (सड़क, नहर, पुल, बाँध, रेलवे तथा दूरसंचार आदि) में विनियोग करने की नीति रोजगार को बड़े पैमाने पर सृजित करती है। लघु एवं कुटीर उद्योगों को कर की छूट देकर इस क्षेत्र में अतिरिक्त विनियोग को आमन्त्रित किया जा सकता है जो बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर भी उपलब्ध करायेगा। सरकारें ग्रामीण समस्यायें को दूर करने के लिए अनेक ग्रामीण रोजगार तथा स्वरोजगार कार्यक्रम चलाती है।

6. सन्तुलित क्षेत्रीय विकास - आप जानते हैं कि संसाधन, कुशलता तथा अवसर की असमानता के कारण विकासशील देशों में व्यापक स्तर पर क्षेत्रीय असन्तुलन देखने को मिलता है। इस क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करना, राजकोषीय नीति का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। सरकार राजकोषीय उपायों द्वारा पिछड़े क्षेत्रों में संसाधनों का आवंटन सुनिश्चित कर सकती है। पिछड़े क्षेत्रों में नयी परियोजनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार नकद अनुदान दे सकती है, कर छुट्टी ;जूंग भ्वसपकंलेद्ध के रूप में कर तथा ड्यूटी में छूट दे सकती है तथा निम्न ब्याज दर पर वित्त उपलब्ध करा सकती है।

7. भुगतान सन्तुलन के घाटे को कम करना - आप जानते हैं कि विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय का आकार छोटा होने के कारण निर्यात योग्य अतिरेक कम उत्पन्न होता है जबकि तीव्र आर्थिक विकास के लिए बड़े पैमाने पर पूँजीगत उपकरण तथा तकनीकी ज्ञान का आयात करना उनकी मजबूरी होती है। ऐसे में भुगतान सन्तुलन प्रायः प्रतिकूल बना रहता है। सरकार राजकोषीय उपायों के माध्यम से निर्यात को प्रोत्साहित तथा आयात को हतोत्साहित करके भुगतान सन्तुलन को अनुकूल करने का प्रयास करती है।

इसके लिए सरकार निम्नलिखित उपाय अपना सकती है-

- निर्यात से प्राप्त आय को कर मुक्त कर सकती है।
- केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा सीमा शुल्क में कमी कर सकती है।
- बिक्री कर एवं चुंगी में छूट दे सकती है।
- आयात प्रतिस्थान उद्योगों को प्रोत्साहित कर सकती है।

निर्यात तथा आयात प्रतिस्थापन द्वारा आर्जित विदेशी मुद्रा का प्रयोग सन्तुलन को अनुकूल बनाने के लिए किया जा सकता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि आयात पर प्रतिबन्ध लगाकर तथा निर्यात को छूट देकर प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक किया जा सकता है।

8. पूँजी निर्माण - अब तक आप जान गये होंगे कि पूँजी निर्माण आर्थिक विकास की अनिवार्य शर्त है। पूँजी की कमी के कारण ही विकासशील देश गरीबी के दुष्चक्र ;टपबपवने ब्पतबसमद्ध में फँसे रहते हैं। विकासशील देशों में ऐसी राजकोषीय नीति उपयोगी होती है जो पूजी निर्माण की दर में वृद्धि करके एक तरफ तो आर्थिक विकास को सुनिश्चित करें, दूसरी तरह उसे गरीबी के दुष्चक्र से मुक्ति प्रदान करे। राजकोषीय नीति के माध्यम से ऐसे उपाय किये जा सकते हैं जो बचत में वृद्धि करें तथा व्यय को हतोत्साहित करें।

9. राष्ट्रीय आय में वृद्धि - आप जानते हैं कि राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि का अभिप्राय समस्त आर्थिक क्रियाकलापों में विस्तार है। यह राजकोषीय नीति की प्राथमिकता में शामिल है। आपने देखा कि राजकोषीय नीति पूंजी निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि आर्थिक सवृद्धि को सुनिश्चित कर सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि करती है। परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय में स्वाभाविक वृद्धि हो जाती है।

10. आधारभूत संरचना का विकास - आप जानते हैं कि तीव्र एवं सतत् विकास के लिए पर्याप्त, मजबूत एवं गुणवत्तापूर्ण आधारभूत संरचना का होना अनिवार्य है। विकासशील देश ऐसी राजकोषीय नीति का निर्माण कर सकते हैं जो आधारभूत संरचना के विकास में सहायक हो। इसके अन्तर्गत सरकार कर आय को आधारभूत सरंचना के विकास में सीधे विनियोग कर सकती है। निजी-सार्वजनिक साझेदारी की रणनीति लागू कर सकती है। इस क्षेत्र के लिए अनुदान एवं छूट की घोश णा कर सकती है, तरह-तरह के कर राहत दे सकती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राजकोषीय नीति के उद्देश्यों - आर्थिक विकास, मूल्य स्थिरता, सामाजिक न्याय तथा अन्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब इसके यन्त्रों, जैसे- सार्वजनिक व्यय, करारोपण, उधार तथा घाटे की वित्त व्यवस्था को प्रभावशाली

ढंग से उपयोग हो। राजकोषीय नीति की सफलता सुशासन तथा उसके समय से क्रियान्वयन पर निर्भर करती है।

28.3.3. राजकोषीय नीति की सीमाएँ - आपने देखा कि विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है, फिर भी कुछ ऐसे तत्व हैं, जो इसकी प्रभावशीलता को कम करते रहते हैं, वे निम्नलिखित हैं-

- अर्द्धविकसित तथा विकासशील देशों में उचित एवं लोचपूर्ण कर प्रणाली के लिए उपयुक्त माहौल का अभाव रहता है।
- विकासशील क्षेत्रों में अमौद्रिक क्षेत्र की विद्यमानता राजकोषीय नीति की प्रभावशीलता को कम कर देती है।
- विकासशील देशों में पर्याप्त एवं प्रमाणिक आंकड़ों का अभाव होता है, परिणामस्वरूप आय, व्यय, बचत तथा रोजगार सम्बन्धी अनुमानों के सही न होने के कारण राजकोषीय नीति का प्रभाव सीमित हो जाता है। भारत में गरीबी के आंकड़े पर विवचार इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।
- अशिक्षा विकासशील देशों की बड़ी समस्या है। इसका परिणाम यह होता है कि एक बड़ी जनसंख्या राजकोषीय नीति, इसके उद्देश्य तथा महत्व से अनभितज्ञ रहती है। यही कारण है कि इसकी प्रभावशीलता कम हो जाती है।
- उत्तरदायित्व को न महसूस करना तथा जवाबदेही का अभाव विकासशील देशों की मुख्य समस्या है। ऐसे में कर चोरी की सम्भावना बढ़ने से राजकोषीय नीति की क्रियाशीलता कम हो जाती है।
- विकासशील देशों में - भ्रष्ट प्रशासन, अजागरूक समाज तथा स्वार्थी राजनीतिज्ञ मिलकर राजकोषीय नीति के प्रभाव को न्यूनतम कर देते हैं। राजकोषीय नीति की सफलता के लिए मजबूत राष्ट्रीयता का होना अनिवार्य है।

उपर्युक्त कठिनाइयों का यदि निवारण कर भी दिया जाय फिर भी राजकोषीय नीति की सफलता संदिग्ध रहेगी क्योंकि -

- बजट समस्त आर्थिक क्रियाकलापों का एक बहुत छोटा भाग है, जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित नहीं कर सकता है।
- जन प्रतिनिधि अर्थव्यवस्था की जरूरतों पर कम तथा सस्ती लोकप्रियता पर अधिक ध्यान देते हैं।

- कर प्रणाली देश, काल और परिस्थिति के कारण लोचपूर्ण नहीं होती है।
- प्रशुल्क नीति का विवेकपूर्ण क्रियान्वयन नहीं हो पाता है।
- क्षेत्रीय असन्तुलन के कारण प्रत्येक क्षेत्र में समान प्रभाव नहीं देखने को मिलता है।

28.3.4. मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति :- अब तक हम लोग मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। अब हम लोग इस स्थिति में आ चुके हैं कि यह देखें कि ;पद्ध दोनों में कौन श्रेष्ठ है? ;पपद्ध क्या दोनों एक-दूसरे की प्रतिद्वन्दी है? तथा ;पपपद्ध क्या दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं? इस शीर्षक में इन्हीं प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा की गयी है-

आपने देखा कि केंजवादी विचारकों के अनुसार राजकोषीय नीति मौद्रिक नीति से बेहतर है क्योंकि यह समग्र मांग को प्रभावित करती है। 1929 में जब मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था को मन्दी से उबारने में सफल नहीं रही तब यह लोगों का विश्वास खो बैठी। इसी समय राजकोषीय नीति अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान में पूर्णतया सफल रही और बड़ी ही सरलता से मौद्रिक नीति को प्रतिस्थापित कर सकी।

आप जानते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व की तमाम अर्थव्यवस्थाओं ने स्फीतिक दशाओं का अनुभव होने लगा और आज पूरे विश्व के सामने स्फीति एक बड़ी चुनौती बनकर सामने खड़ी है। जो राजकोषीय नीति मन्दी को नियन्त्रित करने में पूर्णतया सफल रही वही स्फीति के सम्बन्ध में सम्बन्ध में पूर्णतया असफल है। मन्दीकाल में पूर्णतया असफल रही मौद्रिक नीति एक बार पुनः स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए नीति नियामकों को एकमात्र आशा की किरण दिखायी पड़ रही है। यह बात बड़े पैमाने पर प्रचलित है कि विश्वयुद्ध के दौरान तथा उसके बाद स्फीति को नियन्त्रित करने में मौद्रिक नीति ने आश्चर्यजनक भूमिका निभाई है। अतः यह बात सिद्ध होती है कि मन्दी की अपेक्षा स्फीति को नियन्त्रित करने में मौद्रिक नीति अधिक कारगर है।

निम्नलिखित कारणों से मौद्रिक नीति मन्दी के दौरान सफल नहीं हो पाती है-

- मन्दी के दौरान विनियोग की ब्याज लोचशीलता समाप्त हो जाती है, जिसके कारण सस्ती मुद्रा नीति विनियोग को प्रोत्साहित नहीं कर पाती है।
- मन्दी के दौरान विनियोग ब्याज दर पर नहीं बल्कि भविष्य के प्रति प्रत्याशा पर निर्भर करता है।
- उपर्युक्त कारणों से सस्ती मुद्रा नीति तथा मुद्रा का विस्तार मन्दी के दौरान प्रभावपूर्ण भूमिका निभाने में असमर्थ रहती है। ऐसे में राजकोषीय नीति दो कारणों से मन्दी तथा बेरोजगारी से निबटने में सफल हो जाती है। वे कारण निम्नलिखित हैं-

- सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन करके समग्र मांग में प्रत्यक्ष रूप से आवश्यकतानुसार परिवर्तन करती है।
- करों तथा हस्तान्तरण भुगतानों के द्वारा उपभोग को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।
- दूसरी तरफ तेजी अथवा स्फीति को नियन्त्रित करने में मौद्रिक नीति अपेक्षाकृत अधिक सफल है। यह अनावश्यक साख विस्तार तथा घाटे के वित्तीय प्रबन्धन को नियमित करके कीमतों में वृद्धि तथा सट्टा कार्यों को नियन्त्रित कर सकती है।

आपने देखा कि मौद्रिक नीति स्फीतिक दशाओं से निबटपने के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी अस्त्र है परन्तु जब उसे ऐसी दशा में प्रयोग किया जाता है तब निम्नलिखित समस्याएँ उत्पन्न होती हैं-

- बहुत लम्बे समय तक स्फीति विरोधी उपायों के अपनाने से विनियोग हतोत्साहित होता है तथा कीमतें गिरने लगती हैं, जिससे अर्थव्यवस्था मन्दी की चपेट में आ जाती है। इससे आर्थिक विकास की प्रक्रिया को धक्का लग सकता है।
- मौद्रिक सत्ता स्फीतिक स्थितियों में महँगी मुद्रा नीति को लागू करने में सफल नहीं रहती है क्योंकि इसे बैंक, व्यापारी, उत्पादक तथा व्यवसायी वर्ग के विरोध का सामना करना पड़ता है।
- मुद्रावादियों का मानना है कि समष्टि आर्थिक चरों को प्रभावित करने में राजकोषीय नीति असफल है। उनका मानना है कि केवल मौद्रिक नीति राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार को प्रभावित कर सकती है। उनके अनुसार यदि अन्य बातें समान रहें तब सरकारी व्यय गुणक प्रभाव उत्पन्न करता है परन्तु अन्य बातें (जैसे-ब्याज दर) स्थिर नहीं रहती है। यदि सरकारी व्यय का प्रबन्धन सार्वजनिक उधार से लिया गया है तब ब्याज दर बढ़ जोयगा और यह निजी विनियोग को कम करेगा। इसी दशा को क्राउडिंग आउट इफेक्ट कहते हैं। मौद्रिक नीति, मुद्रावादियों की दृष्टि से बेहतर है। परन्तु उनका मानना है कि मौद्रिक नीति विवेक पर आधारित न होकर स्थिर होनी चाहिए। विवेकाधीन मौद्रिक नीति का अर्थव्यवस्था पर अस्थिरकारी प्रभाव होता है। मौद्रिक करें न केवल स्थिर होनी चाहिए बल्कि सभी को ज्ञात भी होनी चाहिए उपरोक्त के आधार पर आप यह समझ गये होंगे कि प्रावैगिक दृष्टिकोण से मौद्रिक नीति की मुख्य समस्या मुद्रा के स्टॉक में अनुकूलतम वृद्धि की दर को निर्धारित करना है।

यद्यपि की मौद्रिक नीति की अनेक सीमाएँ हैं फिर भी उसे राजकोषीय नीति की तुलना में अनेक लाभ प्राप्त हैं-

1. मौद्रिक नीति के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाकलापों में सरकार का हस्तक्षेप न्यूनतम होता है जबकि राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकारी हस्तक्षेप अधिकतम होता है।
2. मौद्रिक नीति राजनैतिक दबावों से पूर्णतया मुक्त होती है जबकि राजकोषीय नीति पर इसका पूरा प्रभाव होता है।
3. मौद्रिक नीति स्वभाव से वस्तुगत, व्यक्तिगत निरपेक्ष तथा निष्पक्ष होती है जबकि राजकोषीय नीति समाज तथा उद्योग के विभिन्न वर्गों में निश्चित रूप से विभेद करती है।
4. मौद्रिक नीति अपेक्षाकृत अधिक लोचपूर्ण होती है। आर्थिक स्थितियों में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप मौद्रिक नीति में तीव्रता से सुधार या परिवर्तन किया जा सकता है। इसके विपरीत राजकोषीय नीति में दृढ़ता पायी जाती है।

हम लोगों ने विस्तार से मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के सापेक्षित गुण-दोश की चर्चा की। सम्पूर्ण विश्लेषण को तीन वाक्यों में व्यक्त किया जा सकता है-

i. मुद्रा महत्वपूर्ण है अर्थात् मौद्रिक नीति श्रेष्ठ है।
ii. मुद्रा महत्वपूर्ण नहीं है अर्थात् राजकोषीय नीति श्रेष्ठ है।
iii. मुद्रा महत्वपूर्ण है, परन्तु इतना अधिक नहीं अर्थात् मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति एक-दूसरे की पूरक है।

आपने देखा कि अकेले कोई भी नीति अपने में पूर्ण नहीं है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि समय एवं परिस्थिति के अनुसार मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति को समन्वित रूप से प्रयोग करके अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प चुनकर लिखिए-

1.अर्द्ध विकसित देश में राजकोषीय नीति का उद्देश्य है-

(अ) पूर्ण रोजगार प्राप्त करना। (ब) आर्थिक सवृद्धि
(स) आर्थिक असमानता को दूर करना (द) उपर्युक्त सभी।

2. राजकोषीय नीति के अन्तर्गत अतिरिक्त साधनों को एकत्रित किया जा सकता है-

(अ) करारोपण द्वारा (ब) सार्वजनिक उधार द्वारा
(स) घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा (द) उपर्युक्त सभी।

3.विकासशील देशों में पूँजी की कमी के कारण निम्न में से कौन-सा दुष्चक्र पाया जाता है-

(अ) निर्धनता का दुष्चक्र (ब) आर्थिक विषमताका दुष्चक्र
(स) आर्थिक शोश ण का दुष्चक्र (द) उपर्युक्त सभी।

निम्नलिखित कथन सही है या गलत।

(अ) मुद्रा महत्वपूर्ण है परन्तु इतना भी नहीं।

(ब) विकासशील देशों में करारोपण नीति उत्पादनपरक होती है।

(स) सार्वजनिक ऋण स्फीति विरोधी होती है।

(द) विकासशील देशों में लोचपूर्ण कर प्रणाली के लिए परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं।

(र) अल्पविकसित देशों में केवल प्रत्यक्ष सार्वजनिक व्यय से ही आर्थिक विकास किया जा सकता है।

(ल) विकासशील देशों में घाटे की वित्त व्यवस्था अतिरिक्त साधन जुटाने का महत्वपूर्ण साधन है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1.विकासशील देशों में राजकोषीय नीति का प्रमुख उद्देश्य ..... की दर को बढ़ाना है। (अ) आर्थिक विकास, (ब) सामाजिक विकास

2.विदेशी ऋण विकासशील देशों के लिए पूंजी के साथ-साथ ..... आयात करने में समर्थ होते हैं। (अ) तकनीकी ज्ञान, (ब) उपकरण

3.विकासशील अर्थव्यवस्थाओं का एक बहुत बड़ा क्षेत्र..... होता है। (अ) मौद्रिक, (ब) अमौद्रिक

28.4 सारांश -

विकासशील देशों में राजकोषीय नीति के उद्देश्य/भूमिका/कार्य/महत्व के बारे में आपने विस्तार से अध्ययन किया। यदि सम्पूर्ण विवेचन को संक्षेप में व्यक्त करना हो तो हम कहेंगे कि कर एवं बजट नीति ऐसी होनी चाहिए जो निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त कर सके ताकि आर्थिक विकास, आर्थिक समानता तथा अधिकतम सामाजिक कल्याण के लक्ष्य को सुनिश्चित कियाजा सके।

- विनियोग तथा पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि कर सके ताकि आर्थिक सवृद्धि को गति मिल सके।
- समाज के दृष्टिकोण से अधिक उपयोगी क्षेत्रों में संसाधनों का आवंटन करना।
- निजी विनियोग में वृद्धि करने के लिए वास्तविक एवं सम्भावित उपभोग को नियन्त्रित करना।
- मूल्य स्थिरता तथा आर्थिक विकास के लिए क्रयशक्ति के प्रवाह को नियमित करना।
- जनसंख्या के दीर्घकालीन हितों को ध्यान में रखते हुए आय एवं धन के वितरण की असमानता को कम करना।
- अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करना।

- संसाधनों को अनुत्पादक प्रयोग से उत्पादक प्रयोग की तरफ विस्थापित करना।
- समाज के सभी वर्गों, विशेष कर गरीब समुदाय के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठाना।

28.5 शब्दावली -

राजकोषीय घाटा - जब सरकार को अपना व्यय पूरा करने के लिए उधार लेना पड़ता है।

अदृष्य बेरोजगारी - जब रोजगार में लगे श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति - आय में वृद्धि का वह भाग जो उपभोग कर लिया जाता है।

प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन - जब निर्यात मूल्य, आयात मूल्य से कम रहता है।

उत्पाद षुल्क - वस्तुओं के उत्पादन पर लगने वाला शुल्क

सकल घरेलू उत्पाद - निश्चित समयावधि (1 वर्ष) में एक देश की भौगोलिक सीमा के अन्दर उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं का मौद्रिक मूल्य।

गुणक - प्रारम्भिक विनियोग तथा आय में अन्तिम वृद्धि का अनुपात ही गुणक कहलाता है।

28.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

सही विकल्प चुनकर लिखिए-(1) द, (2) द, (3) अ

निम्नलिखित कथन सही है या गलत।(अ) सत्य, (ब) सत्य, (स) सत्य, (द) असत्य, (र) असत्य, (ल) सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -(1) अ, (2) अ, (3) ब

28.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- Monetary and Credit Information Review, April 2012.
- Tyagi, B.P. – 'Public Finance' Published by Jai Prakash Nath & Co., Meerut.
- Higgins, Benjamin – Economic Development (1957)
- Tripathi, R.N. – Public Finance in Under Development Countries.
- Hansen, A.H. – Fiscal Policy and and Business Cycles – 1941.

28.8 उपयोगी पाठ्य सहायक सामग्री-

- सिंह, एस0के0 (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- सिन्हा, वी0सी0 (2009) 'अर्थशास्त्र', बी0ए0 द्वितीय वर्ष, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा
- लाल, एस0एन0 (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- मिश्र, जे0पी0 (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी

28.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. राजकोषीय नीति से आप क्या समझते हैं? विकासशील देशों में इसकी भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
2. आर्थिक विकास के सन्दर्भ में राजकोषीय नीति की भूमिका की विवेचना कीजिए।
3. राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति एक-दूसरे के पूरक हैं, विवेचना कीजिए।
4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए-

i. राजकोषीय नीति के उद्देश्य
ii. विकासशील देशों में करारोपण का स्वरूप।
iii. विकासशील देशों में सार्वजनिक व्यय नीति का स्वरूप।
iv. राजकोषीय नीति के प्रमुख उपकरण
v. विकासशील देशों में सार्वजनिक ऋण की भूमिका।
vi. विकासशील देशों में राजकोषीय नीति की सीमाएँ।

इकाई 29:- व्यापार-चक्र, व्यापार-चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त

इकाई संरचना

29.1 प्रस्तावना
29.2 उद्देश्य
29.3 आर्थिक उच्चावचन का अर्थ
29.4 व्यापार चक्र का अभिप्राय
29.5 व्यापार-चक्र की विशेष ताएं
29.6 व्यापार-चक्र के प्रकार
29.7 व्यापार-चक्र की अवस्थाएं
29.8 व्यापार-चक्र के सिद्धान्त
29.9 व्यापार-चक्र का मौद्रिक सिद्धान्त
29.9.1 विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त-
29.9.2 मौद्रिक अति-निवेश का सिद्धान्त
29.10 सारांश
29.11 शब्दावली
29.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
29.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
29.14 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
29.15 निबन्धात्मक प्रश्न

29.1 प्रस्तावना

पिछले खण्डों के विभिन्न इकाईयों में समष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न पहलुओं पर काफी विस्तार से विवेचना प्रस्तुत किया गया। इन विभिन्न पहलुओं के अन्तर्गत एक मुख्य विचारणीय प्रश्न यह था कि अर्थव्यवस्था में आय का निर्धारण कैसे होता है ? अर्थात इसके अन्तर्गत इस समस्या का विश्लेषण किया गया कि दी गयी परिस्थिति में आय का स्तर पूर्ण रोजगार का है या अपूर्ण रोजगार के सन्तुलन का है ? यदि अपूर्ण रोजगार का सन्तुलन है तो इसके क्या कारण हो सकते हैं तथा किस प्रकार पूर्ण रोजगार के सन्तुलन को प्राप्त किया जा सकता है ? परन्तु समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ही एक दूसरे प्रकार की समस्या पर भी विचार किया जाता है। वह समस्या यह होती है कि दीर्घकाल में आय के सन्तुलन की प्रवृत्ति क्या होती है ? वस्तुतः विकसित देशों के सन्दर्भ में किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त किया गया कि दीर्घकाल में इन देशों के आय एवं अन्य आर्थिक क्रियाओं में एक दीर्घकालीन प्रवृत्ति के इर्द-गिर्द उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। इस खण्ड के समस्त इकाईओं के अन्तर्गत इसी समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जायेगा।

इस इकाई के अध्ययन द्वारा आर्थिक उच्चावचन के सिद्धान्त, विशेष कर मौद्रिक सिद्धान्त, को विस्तार से समझना है। वस्तुतः आर्थिक उच्चावचन के सिद्धान्त का तात्पर्य उस विश्लेषण से होता है जिसके अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि आर्थिक क्रियाओं में उतार-चढ़ाव उत्पन्न होने के लिये कौन-कौन से आर्थिक कारक उत्तरदायी होते हैं तथा ये कारक किस प्रकार से क्रियाशील होकर आर्थिक क्रियाओं में नियमित रूप से उतार-चढ़ाव उत्पन्न करते हैं। इस सन्दर्भ में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने अलग-अलग सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। परन्तु उन सिद्धान्तों को समझने से पहले कुछ आधारभूत पहलुओं को जान लेना आवश्यक होगा। अतः इस इकाई के अन्तर्गत व्यापार-चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त की भी विवेचना की जायेगी।

29.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बता सकेंगे कि आर्थिक उच्चावचन का क्या अभिप्राय होता है।
- समझा सकेंगे कि व्यापार-चक्र की विशेष ताएं क्या है।
- व्यापार-चक्र के अभिप्राय एवं उसके प्रमुख प्रकार को बता सकेंगे।
- व्यापार-चक्र की अवस्थाओं को समझा सकेंगे।

29.3 आर्थिक उच्चावचन का अभिप्राय

आर्थिक उच्चावचनों का सम्बन्ध पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं से होता है तथा इन अर्थव्यवस्थाओं के लिये यह एक अत्यन्त गम्भीर समस्या के रूप में होती है। आर्थिक उच्चावचन का अभिप्राय सामान्य रूप से आर्थिक क्रियाओं में होने वाले उतार-चढ़ाव से होता है। आर्थिक क्रियाओं मे होने वाले ये उतार-चढ़ाव मुख्य रूप से चार प्रकार के हो सकते हैं। ये चारो प्रकार हैं- मौसमी उच्चावचन, आकस्मिक अथवा अनियमित उच्चावचन, दीर्घकालीन उच्चावचन तथा चक्रीय उच्चावचन। मौसमी उच्चावचन उत्पन्न होने के प्रमुख कारण मौसम में होने वाले परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार के उच्चावचन प्रायः कृषि अथवा कृषि से सम्बन्धित उद्योगों में पाये जाते हैं तथा इस प्रकार के उच्चावचनों का पूर्वानुमान किया जा सकता है। दूसरी तरफ, आकस्मिक उच्चावचनों के उत्पन्न होने के पीछे कुछ अनियमित कारक जैसे- बाढ़, भूकम्प, सूखा, युद्ध, महामारी इत्यादि होते हैं। इसीलिये इस प्रकार के उच्चावचनों का पूर्वानुमान किया ही नहीं जा सकता है। दीर्घकालीन उच्चावचन ऐसे उच्चावचन होते हैं जो अपेक्षाकृत लम्बी अवधि में फैले रहते हैं तथा इस प्रकार के उच्चावचन कुछ प्रावैगिक कारकों, जैसे- तकनीकी एवं जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होते हैं। चक्रीय उच्चावचनों के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं में नियमित रूप से उतार-चढ़ाव उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार के उच्चावचन उत्पन्न होने के पीछे विशुद्ध रूप से आर्थिक कारक ही उत्तरदायी हाते हैं और आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत इस प्रकार के उच्चावचनों को ही व्यापार-चक्र के नाम से जाना जाता है।

29.4 व्यापार चक्र का अभिप्राय

सामान्य अर्थ में व्यापार चक्र का अभिप्राय एक ऐसी घटना से होता है जिसके अन्तर्गत आर्थिक चरों, यथा - उत्पादन, आय, कीमत, रोजगार इत्यादि में एक 'दीर्घकालीन प्रवृत्ति' के इर्द-गिर्द लगातार उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। अर्थात् यदि आर्थिक चरों में कुछ समय के लिये विस्तार की अवस्था तथा उसके पश्चात् संकुचन की अवस्था दृष्टिगोचर हो तथा इन अवस्थाओं की पुनरावृत्ति होती रहे तो यह घटना व्यापार चक्र के रूप में जानी जाती है।

व्यापार-चक्र की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किया है। एक अर्थशास्त्री जेम्स आर्थर ईस्टे के अनुसार, ''चक्रीय उच्चावचनों में विस्तार एवं संकुचन की वैकल्पिक लहरें दृष्टिगोचर होती हैं। इनके लय स्थिर नहीं होते हैं, परन्तु ये चक्रीय इस अर्थ में होते हैं कि संकुचन तथा विस्तार की अवस्थायें बार-बार घटित होती रहती हैं और उनका स्वरूप लगभग एक सा ही होता है।'' प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केन्स ने व्यापार-चक्र को परिभाषित करते हुए कहा कि, ''एक व्यापार-चक्र बढ़ती हुई कीमतों तथा कम बेरोजगारी वाले अच्छे व्यापार के समय के पश्चात् ऊँची बेरोजगारी तथा गिरती हुई कीमतों वाले बुरे व्यापार की अवधियों के अस्तित्व

से निर्मित होता है।'' कीन्स की ही तरह हैबरलर ने भी व्यापार-चक्र को परिभाषित करते हुए कहा कि, ''व्यापार-चक्र को सामान्य अर्थ में इस तरह परिभाषित किया जा सकता है कि यह अच्छे तथा बुरे व्यापार की समृद्धि तथा मन्दी की अवधियों का अदल-बदल है।'' गोर्डन के अनुसार, ''व्यापार-चक्र, कुल आर्थिक क्रिया में विस्तार तथा संकुचन की आवर्ती अदला-बदली से निर्मित होता है और वैकल्पिक गतियॉ प्रत्येक दिशा में आत्म-समर्थक होती हैं तथा वस्तुतः अर्थव्यवस्था के सभी भागों में छा जाती हैं।'' अमेरिकन अर्थशास्त्री डब्ल्यू सी मिचेल तथा आर्थर एफ बर्न ने व्यापार-चक्र की अत्यन्त ही स्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, ''व्यापार-चक्र उस प्रकार के उच्चावचन होते हैं जो उन देशों की आर्थिक क्रियाओं में पाये जाते हैं जो अपने कार्य को प्रमुख रूप से व्यापार उद्यमों में संगठित करते हैं। व्यापार-चक्र में, सामान्य विस्तार की अवस्था मे लगभग समान समय पर बहुत सी आर्थिक क्रियाओं में विस्तार होता है तथा इसके उपरान्त सामान्य प्रतिसार, संकुचन और पुनरूत्थान की अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं जो अगले चक्र की विस्तार की अवस्था में मिल जाती हैं। परिवर्तनों का यह क्रम आवर्ती तो होता है परन्तु नियत कालिक नहीं होता।''

व्यापार-चक्र के सन्दर्भ में व्यक्त किये गये उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में सामान्य उतार-चढ़ाव की स्थिति को व्यापार-चक्र के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। अर्थव्यवस्था में जब कुछ स्पष्ट विशेष ताओं के साथ उतार-चढ़ाव की स्थित उत्पन्न हो तभी इसे व्यापार-चक्र के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। प्रश्न यह उठता है कि वे कौन सी विशेष तायें हैं जिनके आधार पर आर्थिक चरों में उतार-चढ़ाव को व्यापार-चक्र के रूप में समझा जाय ? इस प्रश्न के उत्तर के लिये व्यापार-चक्र की विशेष ताओं को समझना होगा।

29.5 व्यापार-चक्र की विशेषताएं

व्यापार-चक्र के सन्दर्भ में विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किये गये परिभाषाओं के आधार पर व्यापार-चक्र की निम्न विशेष तायें परिलक्षित होती हैं-

1-व्यापार चक्रों की गति 'लहरों' के समान होती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था रूपी समुद्र में यही लहरें तेजी के पश्चात् मन्दी और मन्दी के पश्चात् तेजी लाती हैं।

2-व्यापार-चक्र से उत्पन्न होने वाले उतार-चढ़ाव का स्वरूप चक्रीय होता है। दूसरे शब्दों में, व्यापार चक्रों के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले उतार-चढ़ाव बार-बार उत्पन्न होते रहते हैं तथा उनमें पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति पायी जाती है। अर्थत् तेजी के पश्चात् मन्दी तथा मन्दी के पश्चात् तेजी का क्रम चलता रहता है।

3-व्यापार-चक्र के अन्तर्गत प्रत्येक अवस्था - विस्तार एवं संकुचन, का स्वरूप संचयी होता है। अर्थात् प्रत्येक अवस्था अपने आप ऐसे कारकों का संचय करती रहती है जो इसे आगे की ओर ले जाती है।

4-व्यापार-चक्र के प्रभावों में समक्रमिता की विशेष ता पायी जाती है। इसका अर्थ यह है कि व्यापार-चक्र के प्रभाव अर्थव्यवस्था के किसी एक अंग अथवा एक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहतें हैं अपितु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

5-व्यापार-चक्र के विभिन्न अवस्थाओं में सामयिकता का गुण पाया जाता है। अर्थात् तेजी-मन्दी का चक्र लगभग एक निश्चित अवधि में पूर्ण हो जाता है।

व्यापार-चक्र की उपरोक्त विशेष ताओं के आधार पर इस घटना को सामान्य रूप में निम्न चित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है-

चित्र–1

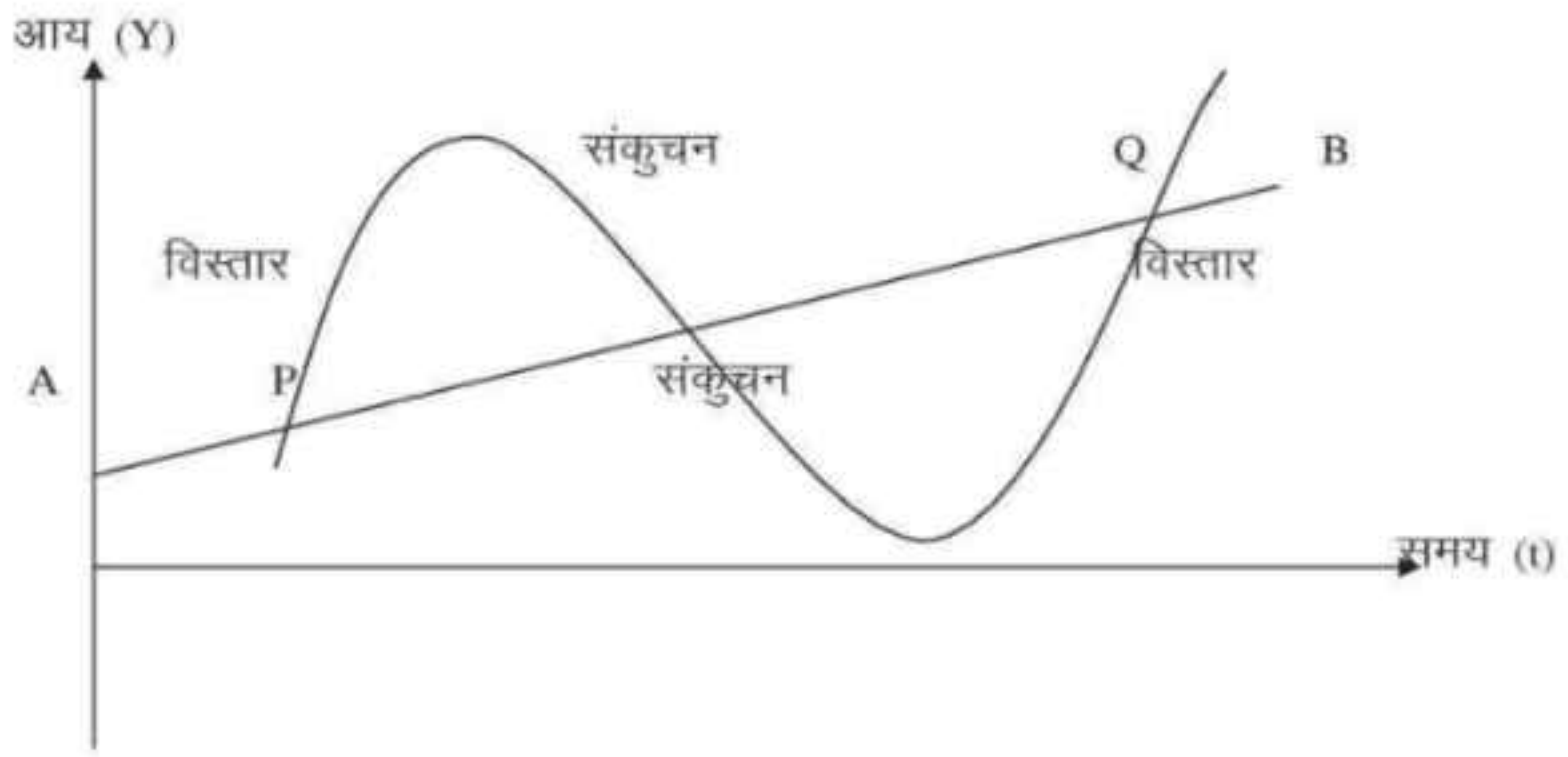

चित्र में AB रेखा अर्थव्यवस्था के आर्थिक क्रियाओं में विस्तार की एक दीर्घकालीन प्रवृत्ति को प्रदर्शित कर रही है। व्यापार-चक्र की घटना वक्राकार पथ के द्वारा प्रदर्शित है। बिन्दु P से Q तक की स्थिति एक चक्र को प्रदर्शित कर रही है।

29.6 व्यापार-चक्र के प्रकार

व्यापार-चक्र की विशेषता से यह स्पष्ट है कि एक चक्र एक निश्चित अवधि में पूर्ण हो जाती है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि यह अवधि कितनी लम्बी होती है ? हेन्सन के विचार में एक चक्र की सामान्य अवधि 7 से 10 वर्ष तक की होती है। परन्तु इस सन्दर्भ में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने-अपने

अध्ययनों के आधार पर भिन्न-भिन्न अवधियों का उल्लेख किया है। वस्तुतः इन विचारों के आधार पर ही व्यापार-चक्र को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया है जो निम्नवत् हैं-

लघु चक्र-इस प्रकार के चक्रों की खोज 1923 में एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री जोसेफ किचिन ने किया था। इसीलिये इस प्रकार के चक्रों को 'किचिन-चक्र' के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार के चक्र व्यावसायिक क्रियाओं में हल्के उतार-चढ़ाव को प्रदर्शित करते हैं और एक लघु चक्र की अवधि लगभग 40 माह की होती है।

प्रमुख चक्र-इस प्रकार के चक्रों की खोज 1862 में एक फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री क्लीमेन्ट जगलर ने किया था। इसीलिये इस प्रकार के चक्रों को 'जगलर-चक्र' के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार के चक्र प्रमुख मन्दी तथा प्रमुख सुस्ती के बीच के समयान्तर को व्यक्त करते हैं। इन चक्रों की अवधि लगभग 10 वर्ष की होती है। प्रायः एक प्रमुख चक्र में दो अथवा तीन लघु चक्र शामिल रहते हैं।

दीर्घ लहरें-इस प्रकार के चक्रों की खोज 1925 में एक रूसी अर्थशास्त्री निकोलस डी0 कोन्द्रातीफ ने किया था। इसीलिये इस प्रकार के चक्रों को 'कोन्द्रातीफ-चक्र' के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार के चक्र व्यापार-चक्र की दीर्घकालीन लहरों को व्यक्त करते हैं तथा इनकी अवधि लगभग 50 से 60 वर्ष तक की होती है। इस प्रकार के एक चक्र में अनेक 'लघ' तथा 'प्रमुख' चक्र शामिल रहते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्री इस प्रकार के चक्रों को ही व्यापार-चक्र के रूप मे स्वीकार करते हैं।

निर्माण कार्य चक्र -इस प्रकार के चक्रों की खोज 1937 में दो अर्थशास्त्रियों वारन तथा पियर्सन ने मिलकर किया था। इस प्रकार के चक्र निर्माण कार्यों से सम्बन्धित होते हैं तथा इनकी अवधि लगभग 15 से 20 वर्ष तक की होती है।

29.7 व्यापार-चक्र की अवस्थाएं

उपरोक्त गद्यांशों में प्रस्तुत किये गये विवेचनाओं से स्पष्ट है कि व्यापार-चक्र की घटना के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं में चक्रीय रूप से परिवर्तन होते रहते हैं। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि एक चक्र किन-किन अवस्थाओं से होकर सम्पूर्णता को प्राप्त करता है ? इस सन्दर्भ में दो अर्थशास्त्रियों बर्न तथा मिचेल ने एक चक्र को कुल नौ अवस्थाओं में विभाजित किया। जबकि शुम्पिटर ने इस सन्दर्भ में दो प्रकार के चक्रों का उल्लेख किया। एक को उन्होंने दो अवस्थाओं वाले जबकि दूसरे को चार अवस्थाओं वाले चक्र के रूप में प्रस्तुत किया। सामान्य रूप से आधुनिक आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत चार अवस्थाओं वाले व्यापार चक्रों का ही उल्लेख किया जाता है। ये चार अवस्थाएं हैं - समृद्धि, प्रतिसार, मन्दी तथा पुनरूत्थान। इन चारो अवस्थाओं की मूलभूत विशेष ताएं निम्नवत् हैं -

समृद्धि अथवा विस्तार - यह व्यापार-चक्र की वह अवस्था होती है जिसमें सभी आर्थिक क्रियाओं तथा चरों में तेजी की प्रवृत्ति पायी जाती है। इस अवस्था में आय, उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि होती रहती है और रोजगार के स्तर में भी वृद्धि होती रहती है। इसके साथ ही साथ मॉग तथा कीमतों में भी वृद्धि होती रहती है और मजदूरी एवं ब्याज दर में भी वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है। कीमतों में वृद्धि के कारण लाभ की मात्रा में वृद्धि होती रहती है और इससे निवेश की क्रिया को प्रोत्साहन मिलता रहता है। ये सभी कारक इस प्रकार से क्रियाशील रहते हैं कि आर्थिक क्रियाओं में विस्तार की क्रिया संचयी रूप धारण कर लेती है।

प्रतिसार अथवा सुस्ती - इस अवस्था में सभी आर्थिक क्रियाओं तथा चरों में सुस्ती की प्रवृत्ति पायी जाती है। कीमतों की अपेक्षा लागतें अपेक्षाकृत अधिक स्तर पर होती हैं जिसके फलस्वरूप लाभ की मात्रा कम होती है। इस अवस्था में निवेश की मात्रा में कमी होती है जिसके फलस्वरूप रोजगार के अवसरों तथा आय के स्तर में गिरावट होती रहती है। इस अवस्था में उपरोक्त सभी कारक संचयी रूप में क्रियाशील होकर सुस्ती की स्थिति को आगे बढ़ाते रहते हैं।

मन्दी अथवा संकुचन- इस अवस्था में सभी आर्थिक क्रियाएं अत्यन्त निम्न स्तर पर होती हैं। यह ऐसी अवस्था होती है जिसमें आय तथा उत्पादन का स्तर अत्यधिक कम होता है तथा अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी पायी जाती है। इसके फलस्वरूप मॉग में कमी तथा कीमतों मे गिरावट की प्रवृत्ति पायी जाती है। वस्तुतः यह अवस्था औद्योगिक निराशावाद की स्थिति होती है और इस अवस्था में निवेश में लगातार कमी होती रहती है। ये सभी तत्व सम्मिलित रूप से क्रियाशील रहते हैं और मन्दी की स्थिति को संचयी स्वरूप प्रदान करते हैं।

पुनरूत्थान - इस अवस्था में उत्पादन, रोजगार तथा आय में वृद्धि की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। आय में वृद्धि के कारण मॉग एवं कीमतों में भी वृद्धि होने लगती है। इस अवस्था में मजदूरी तथा ब्याज दर अपेक्षाकृत नीचा होने के कारण लागत कम होती है। इस अवस्था में लाभ की मात्रा अधिक होती है जो निवेशकों को ज्यादा निवेश करने के लिये प्रेरित करती है। पुनरूत्थान की अवस्था प्रारम्भ होते ही उपरोक्त सभी कारक संचयी रूप में कार्य करने लगते हैं और अर्थव्यवस्था में सक्रियता निरन्तर बढ़ने लगती है।

व्यापार-चक्र के अन्तर्गत उपरोक्त अवस्थाओं के अतिरिक्त दो मोड़ बिन्दु भी पाये जाते हैं। ये मोड़ बिन्दु शिखर तथा गर्त के नाम से जाने जाते हैं। व्यापार-चक्र के अन्तर्गत 'शिखर बिन्द' का तात्पर्य उस स्थिति से होता है जहॉ पर समृद्धि की अवस्था रूक जाती है तथा प्रतिसार की अवस्था प्रारम्भ होती है। 'गर्त बिन्द' का तात्पर्य उस स्थिति से होता है जहॉ मन्दी की अवस्था समाप्त हो जाती है तथा पुनरूत्थान की अवस्था प्रारम्भ होती है। व्यापार-चक्र की चारों अवस्थाओं तथा दानो मोड़ बिन्दुओं को निम्न चित्र में प्रदर्शित किया गया है –

चित्र–2

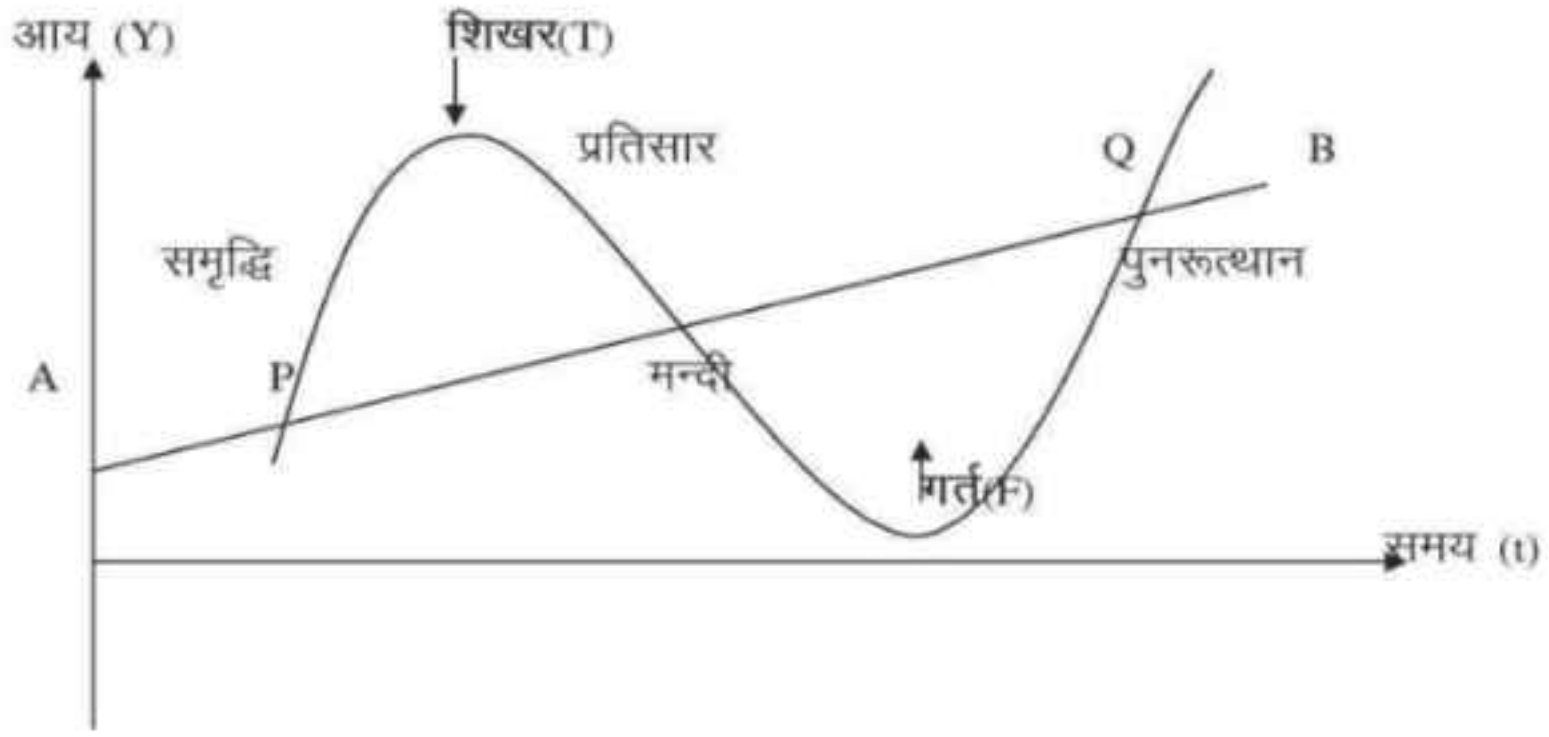

29.8 व्यापार-चक्र के सिद्धान्त

जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में ही उल्लेख किया जा चुका है कि व्यापार-चक्र के सिद्धान्त का तात्पर्य उन कारकों का विश्लेषण करना होता है हो व्यापार-चक्र की घटना को उत्पन्न करने के लिये उत्तरदायी होते हैं। इस सन्दर्भ में आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। इन सभी सिद्धान्तों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है - बाह्य सिद्धान्त तथा आन्तरिक सिद्धान्त। बाह्य सिद्धान्त के अन्तर्गत जो सिद्धान्त शामिल किये जाते हैं वे सभी व्यापार-चक्र की घटना उत्पन्न होने के लिए बाह्य कारकों, जैसे- मौसम, युद्ध, राजनीतिक घटनायें, प्राकृतिक आपदा, जनसंख्या परिवर्तन, प्राविधिक परिवर्तन इत्यादि को ही उत्तरदायी मानते हैं। जबकि आन्तरिक सिद्धान्त के अन्तर्गत इसके लिए विशुद्ध रूप से आन्तरिक कारकों को ही उत्तरदायी माना जाता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत प्रतिपादित सिद्धान्तों को पुनः दो उपश्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है - मौद्रिक सिद्धान्त तथा अमौद्रिक सिद्धान्त। मौद्रिक सिद्धान्त के अन्तर्गत शामिल किये जाने वाले सिद्धान्त व्यापार-चक्र की घटना की व्याख्या मौद्रिक कारकों के आधार पर जबकि अमौद्रिक सिद्धान्त व्यापार-चक्र की घटना की व्याख्या अमौद्रिक कारकों के आधार पर करते हैं।

29.9 व्यापार-चक्र का मौद्रिक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यापार-चक्र की घटना के उत्पन्न होने के लिये मौद्रिक कारकों को ही उत्तरदायी माना गया है। इस विचारधारा के समर्थक अर्थशास्त्रियों की यह धारणा है कि मौद्रिक कारक ही अर्थव्यवस्था के अनेक आन्तरिक कारकों पर इस प्रकार प्रभाव उत्पन्न करते हैं कि विस्तार तथा संकुचन की प्रक्रिया संचयी रूप धारण कर लेती है। आर्थिक साहित्य में इस

विचारधारा के अन्तर्गत प्रमुख रूप से दो सिद्धान्तों का उल्लेख किया जाता है - विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त तथा मौद्रिक अति-निवेश सिद्धान्त।

29.9.1 विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त - इस सिद्धान्त को एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री आर0 जी0 हाट्रे ने प्रतिपादित किया। उनकी यह धारणा थी कि व्यापार-चक्र विशुद्ध रूप से एक मौद्रिक घटना है। उन्हीं के शब्दों में, ''व्यापार-चक्र विशुद्ध रूप से एक मौद्रिक घटना होती है क्योंकि सामान्य मॉग अपने आप में एक मौद्रिक घटना होती है।'' उनका स्पष्ट मत था कि समस्त आर्थिक क्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों का मुख्य कारण 'मुद्रा की प्रवाह' में होने वाला परिवर्तन ही होता है। चूकि मुद्रा की प्रवाह को निर्धारित करने वाला मुख्य घटक बैंकों की साख क्रियाएं होती हैं। इसलिये हाट्रे ने बैंकों की साख क्रियाओं को ही व्यापार-चक्र के प्रमुख निर्धारक घटक के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार बैंकों की साख में विस्तार की क्रिया व्यापार-चक्र की विस्तार की अवस्था को उत्पन्न करती है जबकि साख में संकुचन की क्रिया व्यापार-चक्र की संकुचन की अवस्था को उत्पन्न करती हैं। उन्होंने यह तो स्वीकार किया कि व्यापार-चक्र के निर्धारण में अमौद्रिक कारकों की भी भूमिका होती है परन्तु साथ ही साथ यह विचार व्यक्त किया कि इन कारकों का व्यापार-चक्र पर उत्पन्न होने वाला प्रभाव मौद्रिक कारकों के माध्यम से ही होता है।

हाट्रे ने अपने विश्लेषण में निम्न कारकों के आधार पर व्यापार-चक्र की व्याख्या प्रस्तुत किया:-

बैंकों के नकद जमा कोष - बैंकों के पास नकद जमा कोष की अधिकता होने पर बैंक 'सरल ऋण-नीति' को अपनाते हुए साख की मात्रा में विस्तार करते हैं जबकि नकद जमा कोष की कमी होने पर बैंक 'कठोर ऋण-नीति' को अपनाते हुए साख की मात्रा में संकुचन करते हैं। साख में विस्तार तथा संकुचन की क्रिया ही व्यापार-चक्र को उत्पन्न करती है।

मुद्रा प्रवाह - मुद्रा की प्रवाह में परिवर्तन होने पर अर्थव्यवस्था के कुल व्यय की मात्रा में भी परिवर्तन हो जाता है। इसके लिए हाट्रे ने 'फिशर के समीकरण' को आधार के रूप में प्रस्तुत किया जो निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है:

$$MV = PT$$

जहॉ पर **MV** कुल मुद्रा प्रवाह को तथा **PT** कुल व्यय को व्यक्त करता है।

व्यापारियों का व्यवहार - हाट्रे ने अपने विश्लेषण में व्यापारी वर्ग के व्यवहार, विशेष कर स्टॉक रखने की प्रवृत्ति, को प्रमुख आधार के रूप में प्रस्तुत किया।

ब्याज दर - हाट्रे ने ब्याज-दर को व्यापारियों के स्टॉक जमा करने के सम्बन्ध में मुख्य निर्धारक घटक माना तथा उनकी यह धरणा थी कि व्यापारी वर्ग ब्याज-दर के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। उनका तर्क यह था कि ब्याज-दर व्यापारियों के लिए ऋण की लागत के रूप में होती है। इसलिए ब्याज-दर में कमी होने पर व्यापारियों द्वारा ऋण की मॉग में वृद्धि की जाती है जबकि ब्याज-दर में वृद्धि होने पर ऋण के मॉग में कमी की जाती है।

इन कारकों के आधार पर व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या निम्न प्रकार से किया जाता हैं-

समृद्धि अथवा विस्तार की अवस्था-समृद्धि की अवस्था बैंकों की साख में विस्तार के कारण प्रारम्भ होती है। इसका कारण यह है कि जब बैंकों के पास नकद जमा कोष की अधिकता हो जाती है तो वे 'सरल ऋण-नीति' को अपनाते हुए साख की मात्रा में विस्तार करते हैं तथा साथ ही साथ ब्याज-दरों में भी कमी करते हैं। साख में विस्तार अर्थव्यवस्था में मुद्रा की प्रवाह में वृद्धि उत्पन्न कर देता है और इसके फलस्वरूप कुल व्यय की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है। दूसरी तरफ, चूँकि व्यापारी वर्ग ब्याज-दर के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होते हैं इसलिये ब्याज-दर में होने वाली कमी व्यापारियों को अधिक स्टॉक रखने के लिये प्रेरित करती है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यापारियों द्धारा अधिकाधिक ऋण की मॉग की जाती है तथा इसकी पूर्ति बैंकों की उदार साख नाति के द्धारा होता रहता है। साख विस्तार के फलस्वरूप मुद्रा की प्रवाह में वृद्धि हो जाती है और इसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की मॉग में वृद्धि हो जाती है। बढ़े हुए मॉग के कारण रोजगार, उत्पादन तथा आय में भी वृद्धि होती है। आय में वृद्धि होने के कारण मॉग में और अधिक वृद्धि होती है जो व्यापारियों को और अधिक स्टॉक रखने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार आर्थिक विस्तार की प्रक्रिया संचयी हो जाती है। विस्तार की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि बैंक साख का विस्तार करते रहते हैं।

प्रतिसार अथवा सुस्ती की अवस्था - इस अवस्था के प्रारम्भ होने का कारण बैंको के साख विस्तार की क्रिया का रूक जाना होता है। साख विस्तार की क्रिया के रूकने का कारण यह होता है कि समृद्धि की अवस्था में बैंकों द्धारा अधिकाधिक ऋण दने के परिणामस्वरूप उनके नकद जमा कोष में कमी होती रहती है। एक समय ऐसा आता है जबकि बैंकों के पास उपलब्ध नकद जमा कोष अपने निम्न स्तर पर पहुँच जाती है। ऐसी परिस्थिति में बैंकों द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु 'कठोर ऋण-नीति' अपनाया जाता है। फलस्वरूप, बैंकों द्वारा साख विस्तार की क्रिया रोक दी जाती है और ब्याज-दरों में वृद्धि कर दी जाती है। साथ ही साथ बैंकों द्वारा पूर्व में दिये गये ऋणों की वापसी के लिए व्यापारियों पर दबाव उत्पन्न किया जाता है। यह दबाव व्यापारियों को जमा किये गये स्टॉक को बेचने के लिए विवश कर देता है। इसका परिणाम यह होता है कि बाजार में वस्तुओं के कीमतों में गिरावट होती है। कीमतों में होने वाली कमी उत्पादकों के लाभ को कम

करती है जिसके फलस्वरूप उत्पादक उत्पादन में कमी करने के लिए विवश हो जाते हैं। उत्पादन में कमी के कारण रोजगार में कमी होती है जिसके फलस्वरूप आय में भी कमी हो जाती है। ये समस्त प्रभाव संचयी रूप से क्रियाशील होकर अर्थव्यवस्था में सुस्ती की स्थिति उत्पन्न करते हैं।

मन्दी अथवा संकुचन की अवस्था - हाट्रे के अनुसार मन्दी की अवस्था के उत्पन्न होने का कारण साख के मात्रा में अत्यधिक संकुचन होना होता है। साख में संकुचन होने के कारण व्यापारियों को ऋण प्राप्त करने में मुश्किल का सामना करना पड़ता है। इसलिए व्यापारियों द्वारा स्टॉक रखने की मॉग कम कर दी जाती है। इसके साथ ही साथ साख में संकुचन के कारण अर्थव्यवस्था के कुल व्यय के आकार में भी कमी होती है। पर्याप्त मॉग के अभाव में बाजार में वस्तुओं की कीमतों तथा उत्पादकों को मिलने वाले लाभ की मात्रा में गिरावट होती है। इसका परिणाम यह होता है कि उत्पादक उत्पादन में कमी करने के लिए विवश हो जाते हैं। उत्पादन में कमी के कारण रोजगार में कमी होती है जिससे आय में भी कमी हो जाती है। आय में होने वाली कमी के कारण मॉग में पुनः कमी होती है जिसके परिणामस्वरूप रोजगार, उत्पादन तथा आय में पुनः गिरावट होती है। इस प्रकार संकुचन की प्रक्रिया संचयी रूप धारण कर लेती है और अर्थव्यवस्था मन्दी के दुःश्चक्र में फॅस जाती है।

पुनरूत्थान की अवस्था - मन्दी काल में ऋण की मॉग कम होने के कारण बैंकों के पास नकद जमा कोष संचित होते रहते हैं और ब्याज-दर में भी गिरावट होती रहती है। केन्द्रीय बैंक भी बैंक-दर में कमी करती है और प्रतिभूतियों के क्रय द्वारा बैंकों की तरलता में वृद्धि करने की नीति अपनाती है। जब बैंक नीची ब्याज-दर पर साख का विस्तार करने को तैयार हो जाते हैं तो व्यापारी तथा उत्पादक ऋणों की मॉग करने लगते हैं। इसके फलस्वरूप बैंक साख में विस्तार करना आरम्भ करतें हैं। यहीं से अर्थव्यवस्था में पुनरूत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। क्योंकि साख में विस्तार की क्रिया कुल व्यय के आकार में वृद्धि करती है जिसके फलस्वरूप मॉग में वृद्धि होती है। मॉग में होने वाली वृद्धि व्यापारियों द्वारा स्टॉक रखने की मॉग में वृद्धि उत्पन्न करती है। मॉग पर उत्पन्न होने वाला विस्तारकारी प्रभाव रोजगार, उत्पादन तथी आय पर संचयी प्रभाव उत्पन्न करता है। इस प्रकार पुनरूत्थान की प्रक्रिया आगे बढ़ती है।

पुनरूत्थान की अवस्था प्रारम्भ होने मे एक अवरोध क्रियाशील हो सकता है। यह अवरोध 'साख-गतिरोध' के रूप में हो सकती है। यह वह स्थिति होती है जिसमें ब्याज-दर में कमी करने पर भी व्यापारियों द्वारा ऋणों की मॉग में वृद्धि नहीं की जाती है। इसका कारण यह है कि मन्दी की अवस्था में कीमतें तथा मॉग अत्यन्त निम्न स्तर पर गिर जाते हैं। साख-गतिरोध की स्थिति कों हाट्रे ने स्वीकार तो किया परन्तु उनका स्पष्ट रूप से यह मानना था कि 'उदार ऋण-नीति' इस प्रकार के गतिरोध को दूर करने में सफल हो जाती है।

सिद्धान्त की समीक्षा - हाट्रे का सिद्धान्त व्यापार-चक्र की घटना का एक तर्कबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा फ्रीडमैंन जैसे अर्थशास्त्रियों ने हाट्रे के सिद्धान्त का पूर्ण समर्थन किया है। परन्तु अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की त्रुटियों का उल्लेख करते हुए आलोचना किया है। इनमें कुछ आलोचनायें निम्नवत् हैं-

1. यह सिद्धान्त आर्थिक उतार-चढ़ाव के लिये केवल मौद्रिक कारकों को ही उत्तरदायी मानता है जबकि इसके लिए अनेक प्रकार के अमौद्रिक कारक भी उत्तरदायी होते हैं। इसीलिए इस सिद्धान्त को व्यापार-चक्र के सिद्धान्त के अन्तर्गत एक आंशिक सिद्धान्त के रूप में ही स्वीकार किया जाता है।
2. इस सिद्धान्त में व्यापारियों की भूमिका विशेष कर उनके स्टॉक रखनें के व्यवहार को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया है।
3. व्यापारियों के स्टॉक रखने के व्यवहार के निर्धारण में ब्याज-दर पर विचार किया गया है। जबकि इस सन्दर्भ में कई अन्य कारको जैसे व्यापार प्रत्याशायें,कीमतों में परिवर्तनों की सम्भावनायें तथा स्टॉक रखने की लागत इत्यादि की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।
4. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत साख में विस्तार तथा संकुचन को आर्थिक तेजी और मन्दी के कारण के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो उपयुक्त नहीं है। इस सन्दर्भ में पीगू ने आलोचना करते हुए कहा कि बैंक मुद्रा में होने वाले परिवर्तन व्यापार-चक्र के अंग होतेहैं,उनकेकारण नहीं। व्यावहारिक अनुभवों से भी यह सिद्ध किया गया है कि साख में विस्तार के द्वारा उत्थान सम्भव नहीं होता है और न ही साख में संकुचन मन्दी की स्थिति उत्पन्न कर सकती है।
5. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यापारियों की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए बैंक साख को ही प्रमुख स्रोत माना गया है। जबकि वास्तव में व्यापारी अपने वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए केवल बैंक साख पर ही निर्भर नहीं रहते हैं बल्कि अपने निजी संचित कोषों तथा निजी स्रोतों से उधार-ग्रहण करके अपने व्यापार के लिए वित्त का प्रबन्ध कर सकते हैं।

29.9.2 मौद्रिक अति-निवेश सिद्धान्त

इस सद्धिान्त का प्रतिपादन 'आस्ट्रियन स्कूल' के अर्थशास्त्रियों ने किया था। परन्तु इसको विकसित करने का प्रमुख श्रेय आस्ट्रिया के ही एक अर्थशास्त्री एफ ए हेयक को जाता है। यह सिद्धान्त भी व्यापार-चक्र का एक मौद्रिक सिद्धान्त है क्योकि इस सिद्धान्त के अन्तर्गत भी व्यापार-चक्र की व्याख्या मौद्रिक कारकों के आधार पर ही की जाती है। फिर भी यह सिद्धान्त हाट्रे द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त से थोड़ा भिन्न है। यह भिन्नता दो रूपों में है। प्रथम, हाट्रे का सिद्धान्त व्यापार-चक्र उत्पन्न होने के लिए विशुद्ध रूप से मौद्रिक प्रणाली में उत्पन्न होने वाले असन्तुलन को उत्तरदायी मानता है जबकि हेयक इसके लिए उत्पादन ढॉचे में उत्पन्न होने वाले असन्तुलन को उत्तरदायी मानते हैं।

दूसरा, हाट्रे के सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यापार-चक्र की व्याख्या मॉग पक्ष पर आधारित है क्योंकि यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र की व्याख्या साख में परिवर्तनों का व्यापररियों के स्टॉक रखने के व्यवहार तथा उपभोग व्यय पर उत्पन्न होने वाले प्रभाव के माध्यम से करता है। जबकि हेयक के सिद्धान्त अन्तर्गत व्यापार-चक्र की व्याख्या पूर्ति पक्ष पर आधारित है क्योंकि यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र की व्याख्या साख में परिवर्तन का उत्पादन के ढॉचे पर उत्पन्न होने वाले प्रभाव के माध्यम से किया जाता है।

हेयक ने अपने विश्लेषण में निम्न कारकों के आधार पर व्यापार-चक्र की व्याख्या प्रस्तुत किया:-

बैंकों के नकद जमा कोष - बैंकों के पास नकद जमा कोष की अधिकता होने पर बैंक 'सरल ऋण-नीति' को अपनाते हुए साख की मात्रा में विस्तार करते हैं जबकि नकद जमा कोष की कमी होने पर बैंक 'कठोर ऋण-नीति' को अपनाते हुए साख की मात्रा में संकुचन करते हैं। साख में विस्तार तथा संकुचन की क्रिया ही व्यापार-चक्र को उत्पन्न करती है।

ब्याज-दर - हेयक ने अपने सिद्धान्त में दो प्रकार के ब्याज-दरों - 'बाजार ब्याज-दर' तथा 'स्वाभाविक ब्याज-दर' की अवधारणाओं पर विचार किया। वस्तुतः ब्याज दर की इन दो अवधारणाओं को एक अर्थशास्त्री नट विकसेल ने विकसित किया था। स्वाभाविक ब्याज दर वह ब्याज दर होती है जिस पर ऋण योग्य कोषों की मॉग ऐच्छिक बचतों की पूर्ति के बराबर होती है जबकि बाजार ब्याज दर वह ब्याज दर होती है जो बाजार में प्रचलित होती है तथा यह दर मौद्रिक शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है।

निवेश के लए कोषों की मॉग - हेयक ने निवेश निर्धारण की प्रक्रिया में ब्याज दर को ही प्रमुख घटक के रूप में प्रस्तुत किया। ब्याज-दर में होने वाली कमी निवेश की क्रिया को प्रेरित करती है।

पूर्ण रोजगार की मान्यता - हेयक ने अपने विश्लेषण को पूर्ण रोजगार की मान्यता के आधार प्रस्तुत किया तथा यह विचार व्यक्त किया कि किसी एक उद्योग के मॉग में होने वाली वृद्धि के कारण उत्पादन के साधन दूसरे उद्योगों से उस उद्योग की तरफ हस्तान्तरित होंते हैं।

हेयक ने अपने विश्लेषण के अन्तर्गत यह विचार प्रस्तुत किया कि जब तक 'स्वाभाविक ब्याज दर' तथा 'बाजार ब्याज दर' के बीच समानता बनी रहती है तब तक अर्थव्यवस्था में संतुलन बना रहता है और निवेश के लिए कोषों की मॉग बचत की पूर्ति के बराबर बनी रहती है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन दोनों ब्याज दरों के बीच अन्तर उत्पन्न होता है। हेयक का यह मानना था कि यह अन्तर तब उत्पन्न होता है जब बैंक अपनी ऋण-नीति में परिवर्तन करते हुए ब्याज दरों में परिवर्तन कर देते हैं। यदि बाजार ब्याज दर स्वाभाविक बयाज दर से कम हो जाती है तो निवेश के लिए काषों की मॉग बचत की पूर्ति से अधिक हो जाती है। इस परिस्थिति में बचत की मॉग तथा पूर्ति के बीच के अन्तर को बैंक साख के द्वारा पूरा किया जाता है। दूसरी तरफ यदि बाजार ब्याज दर स्वाभाविक बयाज दर से अधिक हो जाती है तो निवेश के लिए काषों की मॉग बचत की पूर्ति से कम हो जाती है। इस परिस्थिति में बैंकों द्वारा कठोर ऋण नीति अपनाया जाता है और साख में संकुचन किया जाता है। साख क्रियाओं में किया जाने वाला परिवर्तन ही अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव को उत्पन्न करता

है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या निम्न प्रकार से किया जाता है-

समृद्धि अथवा विस्तार की अवस्था - समृद्धि की अवस्था तब प्रारम्भ होती है जब बैंक 'उदार ऋण-नीति' अपनाते हैं तथा साख में विस्तार के साथ-साथ ब्याज दर में भी कमी कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप 'बाजार ब्याज दर' 'स्वाभाविक ब्याज दर' से कम हो जाती है। ब्याज दर में होने वाली कमी निवेशकों को ज्यादा निवेश के लिए प्रेरित करती है। इसका परिणाम यह होता है कि उत्पादक पूँजीगत उद्योगों में निवेश करने के लिए बैंकों से ऋणों की माँग में वृद्धि करते हैं। पूँजीगत उद्योगों में निवेश की मात्रा में वृद्धि होने से पूँजीगत वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो जाती है। इसके फलस्वरूप पूँजीगत वस्तुओं के कीमतों में वृद्धि हो जाती है और पूँजीगत उद्योग में लाभ प्राप्त होने की संभावना में वृद्धि हो जाती है।

हेयक ने अपने विश्लेषण में पूर्ण रोजगार की मान्यता के आधार पर यह तर्क प्रस्तुत किया कि पूँजीगत वस्तुओं के माँग में होने वाली वृद्धि के कारण उत्पादन के साधन उपभोक्ता उद्योग से पूँजीगत उद्योगों की तरफ हस्तान्तरित होंगें। इसका परिणाम यह होगा कि पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में तो वृद्धि होगी जबकि उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में गिरावट होगी। उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में कमी होने कारण इन वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उपभोग वस्तुओं पर किये जाने वाले व्यय की मात्रा में कमी हो जाती है और अनैच्छिक, अर्थात् बलात्, बचतों में वृद्धि हो जाती है। दूसरी तरफ, पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होने के कारण इन वस्तुओं के उद्योग में साधनों की आय, विशेष कर मजदूरियों में, लगातार वृद्धि होती रहती है। साधनों की आय में होने वाली वृद्धि उपभोग वस्तुओं की माँग में वृद्धि उत्पन्न करती है। पूँजीगत वस्तुओं के साथ-साथ उपभोग वस्तुओं के माँग में वृद्धि होने के कारण उपलब्ध साधनों को आकर्षित करने के लिए दोनों उद्योगों के बीच प्रतिस्पर्धा होने लगती है। इसका परिणाम यह होता है कि साधनों की कीमतों में वृद्धि होने लगती है। इसके फलस्वरूप साधनों की आय में पुनः वृद्धि होती है और उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है। माँग में होने वाली वृद्धि उत्पादन, रोजगार तथा आय पर विस्तारकारी प्रभाव उत्पन्न करती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में विस्तार की प्रक्रिया संचयी हो जाती है।

मन्दी अथवा संकुचन की अवस्था - हेयक ने अपने विश्लेषण में यह विचार व्यक्त किया कि आर्थिक क्रियाओं में विस्तार की प्रक्रिया अनवरत रूप से जारी नहीं रहती है। इसका कारण यह है कि विस्तार की प्रक्रिया में साधनों की कीमतों में लगातार वृद्धि होते रहने के कारण उत्पादन लागतों में भी वृद्धि होती रहती है। इसका प्रभाव यह होता है कि उत्पादकों को प्राप्त होने वाले लाभ की मात्रा में क्रमशः कमी होती जाती है। लाभ में कमी की आशंका उत्पादकों को पूँजीगत उद्योगों में निवेश में कमी करने के लिए विवश करती हैं। ऐसी परिस्थिति में बैंक भी निवेशकों को ऋण देने में रूकावटें उत्पन्न करते हैं क्योंकि विस्तार की प्रक्रिया में बैंकों के नकद जमा कोष में कमी होती जाती है। लाभ में कमी की आशंका तथा ऋणों की उपलब्धता में कमी के कारण उत्पादक पूँजीगत

वस्तुओं के उत्पादन में कमी करते हैं और उत्पादन प्रक्रिया में श्रम गहन तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में कमी हाने के कारण साधनों को पूँजीगत उद्योगों से उपभोक्ता उद्योगों की तरफ हस्तानान्तरित किया जाता है। परन्तु इस प्रक्रिया में पूँजीगत उद्योगों से जितने साधन हटाये जाते हैं वे सभी साधन उपभोक्ता उद्योगों में खप नहीं पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न होने लगती है और साधनों के कीमतों में गिरावट होती है। साधनों की कीमतों में गिरावट के कारण उनकी आय में कमी होती है और आय में होने वाली यह कमी अर्थव्यवस्था में माँग पर संकुचनकारी प्रभाव उत्पन्न करती है। इसके परिणामस्वरूप रोजगार, उत्पादन तथा आय में गिरावट होती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में संकुचन की प्रक्रिया संचयी रूप धारण कर लेती है।

पुनरूत्थान की अवस्था - हेयक ने पुनरूत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के सन्दर्भ में यह तर्क प्रस्तुत किया कि मन्दी की अवस्था में कीमतों में लगातार गिरावट होती रहती है परन्तु एक ऐसी स्थिति आती है जब कीमतों में गिरावट रूक जाती है। यह वह स्थिति होती है जब अर्थव्यवस्था में निराशावाद, आशावाद के रूप में परिवर्तित हो जाती है। चूँकि मन्दी की अवस्था में बैंकों के पास नकद जमा कोष संचित होते रहते हैं इसलिए ऐसी परिस्थिति में बैंक भी उदार ऋण- नीति अपनाते हुए साख का विस्तार करते हैं तथा ब्याज दर में कमी करते हैं जिसके फलस्वरूप 'बाजार ब्याज दर' 'स्वाभाविक ब्याज दर' से कम हो जाती है। बाजार ब्याज दर में कमी होने से अर्थव्यवस्था में निवेश माँग में वृद्धि होने लगती है। यहीं से पुनरूत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

सिद्धान्त की समीक्षा-

1. हाट्रे के सिद्धान्त की ही तरह यह सिद्धान्त भी व्यापार-चक्र की व्याख्या केवल कुछ ही कारकों के आधार पर करता है। इसलिए इस सिद्धान्त को भी केवल आंशिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाता है।
2. निवेश निर्धारण की प्रक्रिया में ब्याज दर को ही प्रमुख घटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो उचित नहीं है। क्योंकि निवेश के निर्धारण में कई अन्य घटकों जैसे- अनुमानित लाभ, व्यापार संभावनायें इत्यादि की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है।
3. सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।
4. पूँजीगत उद्योगों तथा उपभोक्ता उद्योगों के बीच प्रतिस्पर्धा की मान्यता सही नहीं है। क्योंकि वस्तुतः ये दोनों उद्योग एक दूसरे के पूरक होते हैं, न कि प्रतिस्पर्धी।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आर्थिक उच्चावचन से आप क्या समझते हैं?
2. ''व्यापार-चक्र की घटना आर्थिक उच्चावचन का एक अंग है''। इस वाक्यांश को स्पष्ट कीजिए।

3. व्यापार-चक्र की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
4. व्यापार-चक्र की मूलभूत विशेष ताओं का उल्लेख कीजिए।
5. 'प्रमुख चक्र', 'लघु चक्र' तथा 'दार्घ लहरों' से आप क्या समझते हैं?
6. व्यापार-चक्र से आपका क्या अभिप्राय है ? इसके विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
7. व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख करते हुए इन अवस्थाओं को स्पष्ट कीजिए।
8. विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रमुख निर्धारक घटकों को स्पष्ट कीजिए।
9. 'मौद्रिक अति-निवेश सिद्धान्त' के अन्तर्गत प्रमुख निर्धारक घटकों को स्पष्ट कीजिए।
10. हाट्रे के सिद्धान्त तथा हेयक के सिद्धान्त के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

29.10 सारांश

अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि कि व्यापार-चक्र का अभिप्राय आर्थिक क्रियाओं में हाने वाले उतार-चढ़ाव से होता है परन्तु अर्थव्यवस्था में सामान्य उतार-चढ़ाव की स्थिति को व्यापार-चक्र के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। अर्थव्यवस्था में जब कुछ स्पष्ट विशेष ताओं के साथ उतार-चढ़ाव की स्थिति उत्पन्न हो तभी इसे व्यापार-चक्र के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। वस्तुतः व्यापार-चक्र से उत्पन्न होने वाले उतार-चढ़ाव का स्वरूप चक्रीय होता है और एक चक्र के अन्तर्गत चार अवस्थाएं होती है और ये चार अवस्थाएं हैं - समृद्धि, प्रतिसार, मन्दी तथा पुनरूत्थान। ये चारों अवस्थाएं क्रमिक रूप से बार-बार उत्पन्न होती रहती हैं अर्थात् समृद्धि के पश्चात् प्रतिसार, तत्पश्चात् मन्दी तथा उसके पश्चात् पुनरूत्थान और पुनः समृद्धि का क्रम चलता रहता है।

जहाँ तक व्यापार-चक्र की घटना को उत्पन्न करने के लिये उत्तरदायी कारकों का सम्बन्ध है तो इस सन्दर्भ में आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत अनेक सिद्धान्त विकसित किये गये हैं। परन्तु इस इकाई के अन्तर्गत मौद्रिक सिद्धान्त को ही स्पष्ट किया गया है जिसके अन्तर्गत व्यापार-चक्र की घटना के उत्पन्न होने के लिये मौद्रिक कारकों को ही उत्तरदायी माना गया है। आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत इस विचारधारा के अन्तर्गत प्रमुख रूप से दो सिद्धान्तों का उल्लेख किया जाता है - हाट्रे का विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त तथा हेयक का मौद्रिक अति-निवेश सिद्धान्त। इस विचारधारा के समर्थक अर्थशास्त्रियों की यह धारणा है कि मौद्रिक कारक ही अर्थव्यवस्था के अनेक आन्तरिक कारकों पर इस प्रकार प्रभाव उत्पन्न करते हैं कि विस्तार तथा संकुचन की प्रक्रिया संचयी रूप धारण कर लेती है और व्यापार-चक्र की चारों अवस्थाएं क्रमिक रूप से बार-बार उत्पन्न होती रहती हैं।

29.11 शब्दावली

प्रावैगिक कारक- इसका सम्बन्ध उन कारकों से होता है जो अल्पकाल में तो स्थिर हो सकते हैं परन्तु दीर्घकाल में परिवर्तनशील होते हैं। जैसे- उत्पादन की तकनीकी, जनसंख्या इत्यादि।

पुनरावृत्ति- किसी घटना के बार-बार घटित होने की क्रिया पुनरावृत्ति कहलाती है।

आत्म-समर्थक- यदि कोई घटना अनेक अवस्थाओं से से निर्मित होती है और प्रत्येक अवस्था अगली अवस्था को उत्पन्न करती रहती है तो यह व्यवहार आत्म-समर्थक कहलाती है।

सामयिकता- जब विभिन्न घटनाएं लगभग एक निश्चित अवधि में पूर्ण हो जाती हैं तो घटनाओं का यह गुण सामयिकता कहलाता है।

प्राविधिक परिवर्तन- इसका सम्बन्ध उन परिवर्तनों से होता है जो तकनीकी में होने वाले परिवर्तनों को व्यक्त करते हैं।

मुद्रा की प्रवाह- इसका तात्पर्य अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा की मात्रा से होता है।

साख क्रियाएं- इसका तात्पर्य बैंकों की ऋण देने की क्रिया से होता है।

स्टॉक- व्यापारियों द्वारा संग्रह की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा स्टॉक कहलाती है।

साख-गतिरोध- यह उस स्थिति को व्यक्त करती जिसमें ब्याज-दर में कमी करने पर भी व्यापारियों द्वारा ऋणों की मॉग में वृद्धि नहीं की जाती है।

अति-निवेश- आवश्यकता से अधिक निवेश की क्रिया अति-निवेश कहलाती है।

पूँजीगत उद्योग- इसका अभिप्राय उन उद्योगों से होता है जिनमें उत्पादित वस्तुओं का उपयोग निवेश क्रियाओं के लिए किया जाता है।

उपभोग उद्योग- इसका अभिप्राय उन उद्योगों से होता है जिनमें उत्पादित वस्तुओं का उपयोग उपभोग क्रियाओं के लिए किया जाता है।

अनैच्छिक, अर्थात् बलात्, बचत- इसका तात्पर्य उन बचतों से होता है जो मजबूरी में किये जाते हैं।

29.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्न 1.उत्तरः 29.3 में देखें। 2.उत्तर 29.3 में देखें। 3.उत्तरः 29.4 में देखें। 4.उत्तरः 29.5 में देखें। 5.उत्तरः 29.6 में देखें। 6.उत्तरः 29.4एवं 29.6 में देखें। 7उत्तरः 29.7 में देखें। 8.उत्तरः 29.9.1 में देखें। 9.उत्तरः 29.9.2 में देखें। 10. उत्तरः 29.9.2 में देखें।

29.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Burns F and Wesley C. Mitchell (1946): *Measuring Business Cycles*, National Bureau of Economic Research, New York.
2. Estey J.A. (1962): *Business Cycles* (Third Edition).
3. Gordon, Robert A (1961): *Business Fluctuations* (2end Edition), Harper & Row, New York.
4. Haberler G. (1960): *Prosperity and Depression*, Fourth Edition.
5. Hansen A.H. (1964): *Business Cycles and National Income*
6. Hawtrey R.G. (1928): *Trade and Credit*, Green and Co. , London.

7. Louis A Dow. (1968): *Business Fluctuations in a Dynamic Economy*, Charles E Merril, Columbus.
8. Mitchell Wesley C. (1941): *Business Cycles and Their Causes*, University of California Press, Berkeley.

29.14 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Ackely G. (1978): *Macro Economics – Theory and Policy*, Macmillon, New York.
2. Ahuja H.L. (2010): *Principles of Macro Economics*, S Chand, New Delhi.
3. Jhingan M.L. (2004): *Macro Economic Theory*, Vrinda publications, Delhi.
4. Seth M.L. (2001): *Macroeconomics*, Laxksmi Narain Agarawal Educational Publishers, Agra
5. झिंगन एम एल ;2007द्धः समष्टि अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन, दिल्ली।

29.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''आर्थिक क्रियाओं में सामान्य रूप से होने वाले उतार-चढ़ाव को व्यापार-चक्र नहीं कहा जा सकता है''। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? अपने मत की व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।
2. व्यापार-चक्र की विशेष ताओं एवं अवस्थाओं का उल्लेख करते हुए इसकी अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
3. ''व्यापार-चक्र की घटना विशुद्ध रूप से एक मौद्रिक घटना है''। इस कथन की व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।
4. व्यापार-चक्र के सिद्धान्त के रूप में 'विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त' की विवेचना कीजिए। क्या आप समझते हैं कि यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र की उचित व्याख्या करने में सक्षम है ? अपने मत को स्पष्ट कीजिए।
5. व्यापार-चक्र के 'मौद्रिक अति-निवेश सिद्धान्त' की विवेचना कीजीए। यह सिद्धान्त 'विशुद्ध मौद्रिक सिद्धान्त' से किस प्रकार से भिन्न है ?

इकाई 30:- गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया, सैम्युल्सन का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त

इकाई संरचना

30.1 प्रस्तावना
30.2 उद्देश्य
30.3 गुणक का अभिप्राय
30.4 त्वरक का अभिप्राय
30.5 गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया
30.6 सैम्युल्सन का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त
30.7 सारांश
30.8 शब्दावली
30.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
30.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
30.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
30.12 निबन्धात्मक प्रश्न

30.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई के अन्तर्गत व्यापार-चक्र से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं तथा उसकी व्याख्या के लिए मौद्रिक सिद्धान्त की विवेचना प्रस्तुत किया गया। मौद्रिक सिद्धान्त के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया कि व्यापार-चक्र के उत्पन्न होने के लिए मौद्रिक कारक ही उत्तरदायी होते हैं तथा इन्हीं कारकों के आधार पर ही व्यापार-चक्र की व्याख्या प्रस्तुत किया गया। इसके विपरीत, आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत दूसरा दृष्टिकोंण है जो व्यापार-चक्र की घटना के लिए अमौद्रिक कारकों को उत्तरदायी मानता है तथा इन्हीं कारकों के आधार पर व्यापार-चक्र की व्याख्या करने का प्रयास करता है। इसी दृष्टिकोंण के अन्तर्गत एक विचार गुणक-त्वरक की अन्तःक्रिया पर आधारित है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम एक अर्थशास्त्री पॉल ए सैम्युल्सन ने गुणक-त्वरक की अन्तःक्रिया को स्पष्ट करते हुए इसके माध्यम से व्यापार-चक्र की घटना का विश्लेषण प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् एक दूसरे अर्थशास्त्री जे आर हिक्स ने इस मॉडल को और अधिक विकसित किया। इस इकाई के अन्तर्गत गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया तथा सैम्युल्सन के मॉडल को स्पष्ट किया जायेगा। हिक्स के मॉडल को अगले इकाई में प्रस्तुत किया जायेगा।

30.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बता सकेंगे कि गुणक की अवधारणा का क्या अभिप्राय होता है।
- समझा सकेंगे कि त्वरक की अवधारणा का क्या अभिप्राय होता है।
- गुणक-त्वरक के बीच अन्तःक्रिया को समझा सकेंगे।
- सैम्युल्सन के व्यापार-चक्र के सिद्धान्त की विवेचना कर सकेंगे।

30.3 गुणक की अवधारणा तथा गुणक प्रभाव

गुणक एक ऐसा गुणांक होता है जिससे यह ज्ञात किया जा सकता है कि यदि किसी समय निवेश व्यय में परिवर्तन कर दिया जाय तो आय में कितनी मात्रा से परिवर्तन हो जायेगा। वस्तुतः, यदि किसी समय निवेश व्यय में परिवर्तन कर दिया जाय तो इसके फलस्वरूप आय में होने वाला परिवर्तन निवेश व्यय में किये गये परिवर्तन की मात्रा के एक गुणांक के गुणनफल के बराबर होता है। इस गुणांक को ही निवेश गुणक अथवा सामान्य रूप में 'गुणक' के नाम से जाना जाता है और निवेश व्यय में परिवर्तन का आय पर उत्पन्न होने वाले उपरोक्त प्रभाव को ही गुणक प्रभाव के नाम से जाना जाता है। यदि किसी समय निवेश व्यय में ΔI की मात्रा से परिवर्तन के फलस्वरूप आय में होने वाला परिवर्तन ΔY के बराबर हो तो गुणक प्रभाव को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है:-

$$\Delta Y = K \Delta I$$

जहाँ पर K 'गुणक' को व्यक्त करता है। इसका मान उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति के द्वारा निर्धारित होता है। यदि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति का मान α हो तो गुणक के मान को निम्न सूत्र के द्वारा ज्ञात किया जाता है-

$$K = 1/(1-\alpha)$$

पिछले इकाईयों में आपने पढ़ा होगा कि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) का मान 0 से लेकर 1 के बीच होता है। इसलिए गुणक का भी एक न्यूनतम तथा एक अधिकतम मान होता है तथा यह न्यूनतम मान 1 और अधिकतम मान ∞ (अनन्त) के बराबर होता है। उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) का मान जितना ही अधिक होता है गुणक का मान भी उतना ही अधिक होता है। इसके विपरीत उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) का मान जितना ही कम होता है गुणक का मान भी उतना ही कम होता है।

उदाहरण के लिए, जब उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) का मान 0.5 होगा तो

$$K = 1/(1-0.5) = 1/0.5 = 2$$

और जब उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) का मान 0.75 होगा तो

$$K = 1/(1-0.75) = 1/0.25 = 4$$

गुणक प्रभाव को एक उदाहरण के द्वारा इस प्रकार से समझा जा सकता है कि यदि गुणक का मान 2 के बराबर हो और किसी समय निवेश व्यय की मात्रा में 10 इकाई के बराबर परिवर्तन कर दिया जाय तो आय में होने वाले परिवर्तन को निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है-

$$\Delta Y = 2 \times 10$$

अर्थात्, $$\Delta Y = 20$$

इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि आय का प्रारम्भिक स्तर 100 पर हो तो 10 इकाई निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप आय का नया स्तर 120 (100 + 20) हो जायेगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि गुणक प्रभाव के कारण निवेश व्यय में परिवर्तन के फलस्वरूप आय का स्तर एक सन्तुलन से दूसरे सन्तुलन स्तर पर विस्थापित हो जाता है।

यहाँ पर एक तथ्य महत्वपूर्ण है कि गुणक प्रभाव तात्कालिक रूप में घटित नहीं होता है अपितु एक प्रक्रिया के माध्यम से घटित होता है। प्रश्न यह उठता है कि वह प्रक्रिया किस प्रकार से घटित होता है ? इसको समझने के लिए गुणक प्रक्रिया को समझना होगा जिसका वर्णन निम्न प्रकार से किया जा रहा है-

गुणक प्रक्रिया:- निवेश व्यय में परिवर्तन का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि कुल व्यय के आकार में परिवर्तन हो जाता है। कुल व्यय के आकार में होने वाला परिवर्तन उतना ही होता है

जितना कि निवेश व्यय की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। यहीं से गुणक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। क्योंकि कुल व्यय में परिवर्तन के फलस्वरूप आय के स्तर में भी परिवर्तन हो जाता है। इसका कारण यह है कि सन्तुलन की स्थिति के लिए यह आवश्यक है कि आय का स्तर कुल व्यय के बराबर हो। चूँकि उपभोग आय से निर्धारित होता है इसलिए आय में परिवर्तन होने के कारण उपभोग माँग प्रेरित होती है और इसके फलस्वरूप उपभोग व्यय में परिवर्तन हो जाता है। उपभोग व्यय में परिवर्तन के कारण पुनः कुल व्यय के आकार में परिवर्तन हो जाता है जिससे पुनः आय के स्तर में परिवर्तन हो जाता है। आय में होने वाला परिवर्तन पुनः उपभोग माँग और उपभोग व्यय में परिवर्तन उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया आगे बढ़ता रहती है।

गुणक प्रक्रिया

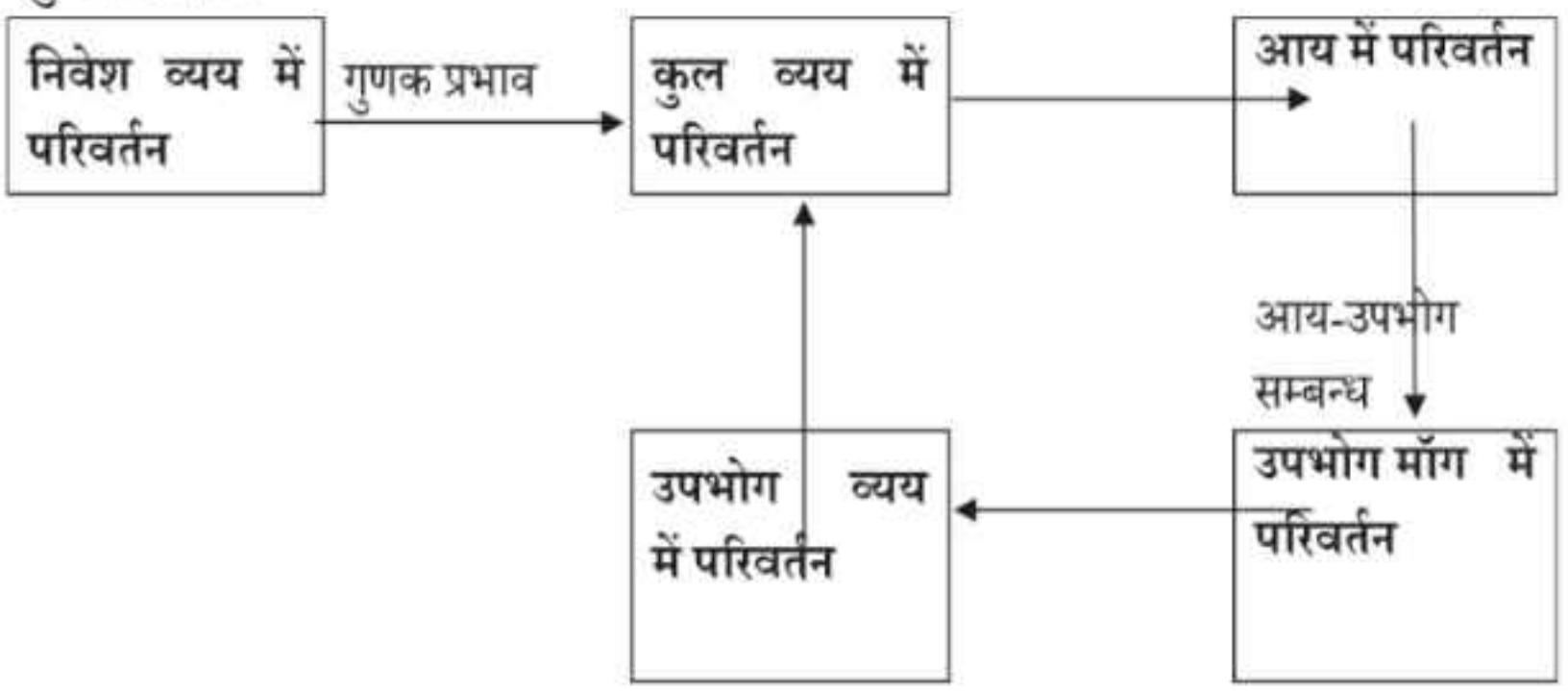

प्रश्न यह उठता है कि यदि उपरोक्त प्रक्रिया आगे बढ़ती रहती है तो किस प्रकार आय नये सन्तुलन पर विस्थापित होता है ? इसका कारण यह है कि चूँकि उपभोग में होने वाला परिवर्तन उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति से निर्धारित होता है और इसका मान 1 से कम होता है। इस कारण से उक्त प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में उपभोग व्यय में होने वाला परिवर्तन आय में होने वाले परिवर्तन की अपेक्षा कम होता है और गुणक प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ती है वैसे-वैसे उपभोग में होने वाले परिवर्तन में उत्तरोत्तर रूप में कमी होती जीती है। एक स्थिति ऐसी आती है जब उपभोग व्यय में होने वाला परिवर्तन शून्य के बराबर हो जाता है और यहीं पर उपरोक्त प्रक्रिया रूक जाती है। इस प्रकार गुणक प्रक्रिया सम्पूर्णता को प्राप्त करती है।

यदि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) का मान 0.5 अर्थात् 1/2 हो तो गुणक प्रक्रिया को एक गणितीय उदाहरण के माध्यम से निम्न तालिका में स्पष्ट किया जा सकता है-

तालिका – 1

प्रक्रिया के चरण	निवेश व्यय	उपभोग व्यय	निवेश में परिवर्तन	आय = कुल व्यय	आय में परिवर्तन	उपभोग में परिवर्तन
	(I)	(C)	(ΔI)	Y= C + I + ΔI + ΔC	(ΔY)	ΔC = ½ ΔY
प्रारम्भिक	40	60	..	100	..	..
प्रथम	40	60	10	110	10	5
द्वितीय	40	60	10	115	5	2.5
तृतीय	40	60	10	117.5	2.5	1.25
चतुर्थ	40	60	10	118.75	1.25	0.625
।	।	।	।	।	।	।
।	।	।	।	।	।	।
।	।	।	।	।	।	।
।	।	।	।	।	।	।
अन्तिम	40	60	10	120	0	0

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि यदि निवेश व्यय का स्वरूप केवल स्वायत्त प्रकृति का हो तो गुणक प्रभाव के कारण आय के स्तर में परिवर्तन तो होगा परन्तु इस परिवर्तन की प्रक्रिया अनवरत् जारी नहीं रहेगी अपितु एक नये सन्तुलन स्तर को प्राप्त करके रूक जायेगी। गुणक प्रभाव के सन्दर्भ में एक दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि आय के स्तर में जो परिवर्तन होता है वह मॉग पक्ष में परिवर्तन के कारण ही होता है। क्योंकि यह प्रभाव निवेश व्यय तथा उपभोग व्यय में परिवर्तन के कारण ही उत्पन्न होता है।

गुणक के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी होता है कि यह दोनों दिशाओं में क्रियाशील हो सकता है। अर्थात् यह धनात्मक और ऋणात्मक दोनों दिशाओं में क्रियाशील हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि निवेश व्यय में वृद्धि हो जाय तो आय में वृद्धि होगी जबकि यदि निवेश व्यय में कमी हो जाय तो आय में कमी हो जायेगी।

30.4 त्वरक की अवधारणा तथा त्वरक सिद्धान्त

त्वरक एक ऐसा गुणांक होता है जो यह व्यक्त करता है कि यदि आय के स्तर में परिवर्तन हो जाय तो इसके फलस्वरूप निवेश की मात्रा में कितना परिवर्तन होगा। आय में परिवर्तन का निवेश पर उत्पन्न होने वाला यह प्रभाव ही त्वरक सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है। यह सिद्धान्त मुख्य रूप से दो अवधारणाओं पर आधारित है - एक तो यह कि पूँजीगत वस्तुओं अर्थात् निवेश की मॉग उपभोग वस्तुओं के मॉग से व्युत्पन्न होती है और दूसरा कि अतिरिक्त इकाई उत्पादन में वृद्धि के लिए एक निश्चित मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि किसी समय उपभोग वस्तुओं की मॉग में वृद्धि हो जाय तो इस मॉग की पूर्ति के लिए अतिरिक्त पूँजीगत वस्तुओं

की आवश्यकता होगी और इसके लिए निवेश में वृद्धि की आवश्यकता होगी । इसीलिए इस सिद्धान्त को गणितीय रूप में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है:-

$$\Delta I = \beta.\Delta C \text{----------(i)}$$

जहाँ पर ΔI निवेश में परिवर्तन, ΔC उपभोग माँग में परिवर्तन तथा β त्वरक गुणांक को व्यक्त करता है । वस्तुतः त्वरक एक तकनीकी गुणांक होता है और इसको एक दूसरे नाम 'पूँजी-उत्पाद अनुपात' के नाम से भी जाना जाता है ।

चूँकि $C = f(Y)$ जिसका तात्पर्य यह होता है कि उपभोग व्यय आय से निर्धारित होता है इसलिए उपभोग में परिवर्तन (ΔC) को निन्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

$$\Delta C = \alpha\Delta Y \text{----------(ii)}$$

जहाँ पर α उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति को तथा ΔY आय में परिवर्तन को व्यक्त करता है । यदि समीकरण (ii)से ΔC का मान समीकरण (i)में रख दिया जाय तो त्वरक सिद्धान्त को निम्न रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है:-

$$\Delta I = \beta.\alpha.\Delta Y \text{----------(iii)}$$

इस प्रकार त्वरक सिद्धान्त को समीकरण (i)तथा (iii)दोनों रूपों में व्यक्त किया जाता है और दोनों ही रूपों का अभिप्राय यह है कि आय में परिवर्तन निवेश को प्रेरित करती है ।

त्वरक के सन्दर्भ में दो तथ्य ध्यान रखना पड़ता है-

1. इसके क्रियाशीलन के लिए यह आवश्यक होता है कि उपभोग वस्तुओं के उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता विद्यमान नहीं होनी चाहिए जबकि पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता विद्यमान होनी चाहिए ।
2. त्वरक केवल धनात्मक दिशा में ही कार्य करता है । अर्थात् उपभोग माँग में वृद्धि होने पर निवेश में वृद्धि तो होगी परन्तु उपभोग माँग में कमी होने की स्थिति में इसका क्रियाशीलन रूक जाता है ।

30.5 गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया

एक अर्थशास्त्री पॉल ए सैम्युल्सन ने 1939 में आय के निर्धारण में एक साथ गुणक तथा त्वरक दोनों की भूमिका पर विचार करते हुए गुणक तथा त्वरक के बीच अन्तःक्रिया को स्पष्ट किया । गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया को इस प्रकार से समझा जा सकता है । यदि स्वायत्त निवेश में वृद्धि कर दिया जाय तो गुणक प्रभाव के फलस्वरूप आय पर विस्तारकारी प्रभाव उत्पन्न हो जायेगा । चूँकि उपभोग आय से निर्धारित होता है इसलिए आय में वृद्धि होने के कारण उपभोग माँग प्रेरित हो जायेगी । उपभोग माँग में वृद्धि होने से त्वरक का क्रियाशीलन प्रारम्भ हो जायेगा जिसके फलस्वरूप

निवेश प्रेरित होगी। निवेश व्यय में वृद्धि होने से पुनः गुणक प्रभाव क्रियाशील होता है और आय पर विस्तारकारी प्रभाव उत्पन्न होता है। आय में होने वाली वृद्धि पुनः उपभोग मॉग को प्रेरित करती है। उपभोग मॉग में वृद्धि होने से पुनः त्वरक प्रभाव के कारण निवेश में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार यह प्रक्रिया आगे बढ़ती रहती है और इस प्रक्रिया को ही गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया के नाम से जाना जाता है।

गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया

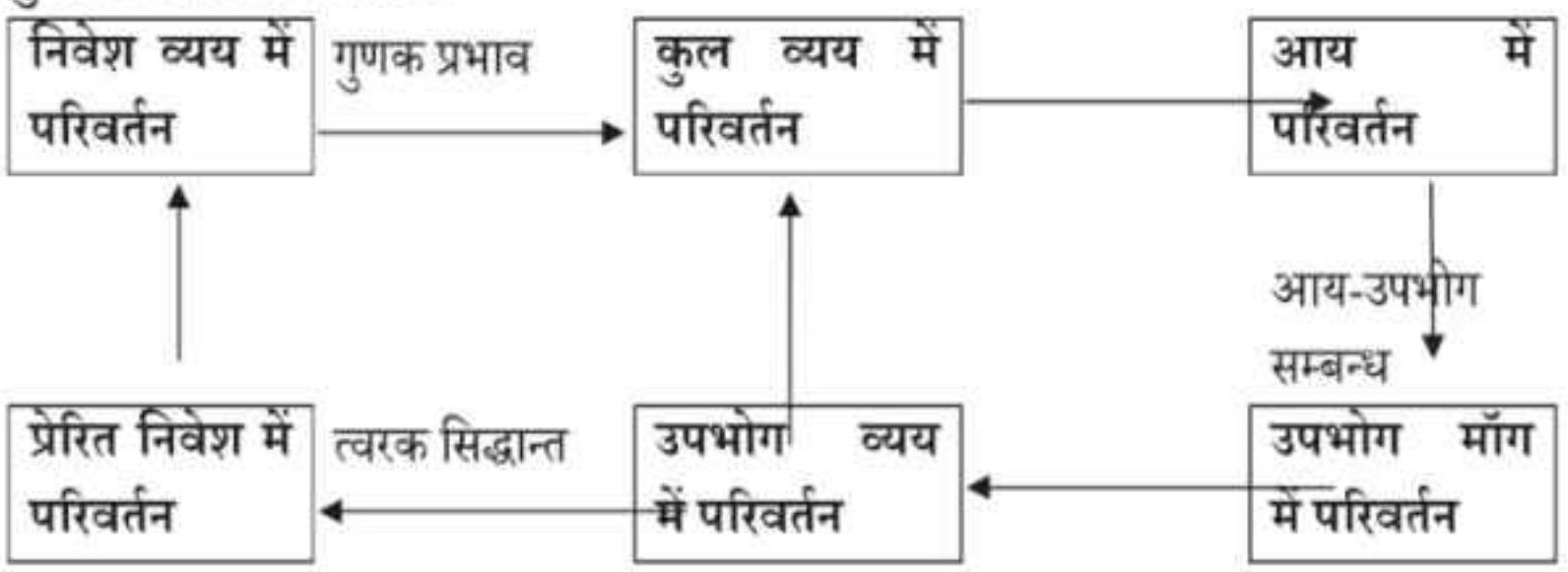

गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया को एक गणितीय उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। इस उदाहरण में उपभोग फलन तथा निवेश फलन को उसी रूप में शामिल किया गया है जैसा कि सैम्युल्सन ने अपने व्यापार-चक्र के मॉडल में शामिल किया था। अतः इस उदाहरण में उपभोग फलन तथा निवेश फलन का स्वरूप निम्न प्रकार का है:-

$$Ct = \alpha Yt\text{-}1$$

अतः

$$\Delta C = \alpha\,(Yt\text{-}1 - Yt\text{-}2)$$

$$It = I + \beta(Ct - Ct\text{-}1)$$

जहाँ पर C_t तथा C_{t-1},क्रमशः t तथा t-1 समय के उपभोग को, α उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति को, Y_{t-1}, t-1 समय के आय को, I_t, t समय के निवेश को, I, स्वायत्त निवेश को तथा β त्वरक गुणांक को व्यक्त करता है। यदि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) का मान 0.5, अर्थात् 1/2 तथा त्वरक गुणांक (β) का मान 2.0 हो तो गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया को निम्न तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है -

तालिका – 2

प्रक्रिया के चरण	निवेश व्यय	उपभोग व्यय	स्वायत्त निवेश में परिवर्तन	आय = कुल व्यय	उपभोग में परिवर्तन	प्रेरित निवेश में परिवर्तन
	(I)	(C)	(ΔI)	$Y = C + I + \Delta I + \Delta C$	$\Delta C = ½ (Y_{t-1} - Y_{t-2})$	$\Delta I = 2\Delta C$
प्रारम्भिक	40	60	--	100	--	--
प्रथम	40	60	10	110	--	--
द्वितीय	40	60	10	125	5	10
तृतीय	40	60	10	134	8(7.50)	16
चतुर्थ	40	60	10	125	5(4.50)	10
पंचम	40	60	10	95	- 5(4.5)	- 10
षष्टम	40	60	10	65	-15	-30
सप्तम	40	60	10	65	-15	-30
अष्टम	40	60	10	110	0	0
नवम	40	60	10	179	23(22.50)	46
।	।	।	।	।	।	।
।	।	।	।	।	।	।
।	।	।	।	।	।	।

उपरोक्त तालिका में स्पष्ट है कि प्रथम चरण में जब स्वायत्त निवेश में 10 इकाई के बराबर वृद्धि कर दिया जाता है तो गुणक प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और इसके तात्कालिक प्रभाव के फलस्वरूप आय पर विस्तारकारी प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। प्रथम चरण में आय का स्तर बढ़कर 100 से 110 इकाई के स्तर पर पहुँच जाता है। आय में वृद्धि होने के कारण उपभोग मॉग प्रेरित हो जाती है। परन्तु, चूँकि उपभोग क्रिया में समय पश्चता की अवधारणा को माना जा रहा है इसलिए प्रथम चरण में आय में होने वाली वृद्धि अगले चरण अर्थात् द्वितीय चरण के उपभोग स्तर में वृद्धि उत्पन्न करती है। उपभोग व्यय में वृद्धि होने से त्वरक का क्रियाशीलन प्रारम्भ हो जाता है जिसके फलस्वरूप द्वितीय चरण में प्रेरित निवेश की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है। निवेश व्यय में वृद्धि होने से पुनः गुणक प्रभाव क्रियाशील होता है और आय पर विस्तारकारी प्रभाव उत्पन्न होता है। द्वितीय चरण में आय में होने वाली वृद्धि अगले चरण अर्थात् तृतीय चरण के उपभोग स्तर में वृद्धि उत्पन्न करती है। उपभोग व्यय में वृद्धि होने से पुनः त्वरक क्रियाशील होता है और इसके फलस्वरूप तृतीय चरण में प्रेरित निवेश की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार यह प्रक्रिया आगे बढ़ती रहती है और गुणक-त्वरक के परस्पर क्रियाशीलन के फलस्वरूप आय में वृद्धि होती जाती है। परन्तु इस प्रक्रिया के अन्तर्गत तृतीय चरण तक तो आय में वृद्धि हो रही है जबकि चतुर्थ चरण से आय में गिरावट की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है और यह प्रवृत्ति सप्तम चरण तक जारी रहती है। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत अष्टम चरण से पुनः आय में वृद्धि की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि जब आय निर्धारण में केवल गुणक की भूमिका पर विचार किया जाता है जो निवेश व्यय में परिवर्तन होने पर जो गुणक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है वह सम्पूर्णता को प्राप्त करती और आय का स्तर एक नये सन्तुलन को प्राप्त कर लेता है। परन्तु गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया के अन्तर्गत जो परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है वह निरन्तर इस रूप में आगे बढ़ती रहती है कि आय में उतार-चढ़ाव उत्पन्न होता है। प्रश्न यह उठता है कि आय में उत्पन्न होने वाले उतार-चढ़ाव की वास्तविक प्रवृत्ति क्या होगी ? इसको जानने के लिए सैम्युल्सन के व्यापार-चक्र के सिद्धान्त को समझना होगा जिसकी विवेचना आगे प्रस्तुत है।

30.6 सैम्युल्सन का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त

सैम्युल्सन ने 1939 में गुणक तथा त्वरक के बीच अन्तःक्रिया को स्पष्ट करने के लिए एक मॉडल को विकसित किया। वस्तुतः इस सन्दर्भ में सैम्युल्सन से पहले एक अर्थशास्त्री ए एच हैन्सन ने यह विचार व्यक्त किया था कि आर्थिक क्रियाओं में होने वाली अस्थिरता गुणक तथा त्वरक के बीच अन्तःक्रिया की परिणाम हो सकती है। हैन्सन के इस विचार को ही सैम्युल्सन ने एक गणितीय मॉडल के रूप में विकसित किया और यही मॉडल सैम्युल्सन के व्यापार-चक्र के सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है। इस मॉडल में सैम्युल्सन ने आय निर्धारण के उस स्वरूप पर विचार किया जो एक बन्द अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है। अर्थात् सैम्युल्सन ने अपने मॉडल में आय निर्धारण में केवल निजी उपभोग व्यय (C) निजी निवेश व्यय (I) तथा सरकारी व्यय (G)जैसे घटकों पर ही विचार किया। सैम्युल्सन ने अपने मॉडल को कुछ मान्यताओं के आधार पर प्रस्तुत किया। अतः इस मॉडल को समझने से पहले सर्वप्रथम उन मान्यताओं को समझ लेना होगा। ये मान्यताएं निम्न प्रकार से हैं -

1-सैम्युल्सन ने हैन्सन के विचार का अनुसरण करते हुए उपभोग की क्रिया में समय पश्चता की अवधारणा को शामिल किया। अर्थात्, उन्होंने यह माना कि किसी समय का उपभोग व्यय (Ct) उसके पहले वाले समय के आय (Yt-1) से निर्धारित होती है। अतः इस मॉडल में उपभोग फलन को निम्न रूप में व्यक्त किया जाता है:-

$$Ct = \alpha Yt\text{-}1 \quad \text{----------} \quad (1)$$

जहाँ पर α उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति को व्यक्त करता है।

2- निवेश फलन को सैम्युल्सन ने अपने मॉडल में निम्न रूप में शामिल किया

$$It = I + \beta(Ct - Ct\text{-}1)$$

जहाँ पर I स्वायत्त निवेश तथा β त्वरक गुणांक को व्यक्त करता है।

चूँकि $Ct = \alpha Yt\text{-}1$, इसलिए निवेश फलन को निम्न रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है-

$$It = \beta(\alpha Yt\text{-}1 - \alpha Yt\text{-}2) \text{ ---------- } (2)$$

3- सैम्युल्सन ने अपने मॉडल में उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) तथा त्वरक (β) के मान को स्थिर माना।

आय निर्धारण का मॉडल

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर सैम्युल्सन ने आय निर्धारण के मॉडल को निम्न रूप में व्यक्त किया-

$$Yt = Ct + It + Gt$$

समीकरण (1) तथा (2) से Ct तथा It का मान रखने पर

$$Yt = \alpha Yt\text{-}1 + I + \beta(\alpha Yt\text{-}1 - \alpha Yt\text{-}2) + Gt$$

अर्थात् $$Yt = \alpha Yt\text{-}1 + \beta\alpha Yt\text{-}1 - \beta\alpha Yt\text{-}2 + I + Gt$$

अर्थात् $$\mathbf{Yt = \alpha(1 + \beta)Yt\text{-}1 - \alpha\beta Yt\text{-}2 + I + Gt \text{ ----------(3)}}$$

समीकरण (3) ही सैम्युल्सन के मॉडल में आय निर्धारण के समीकरण को व्यक्त करता है। वस्तुतः, स्वायत्त निवेश **(I)** तथा सरकारी व्यय **(G)** के किसी दिये गये मान पर आय निर्धारण के उपरोक्त समीकरण के माध्यम से आय के पथ को प्रदर्शित किया जा सकता है। आय का पथ किस प्रकार का होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) तथा त्वरक (β) के मान किस प्रकार है। चूँकि गुणक का मान उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) से ही निर्धारित होता है इसलिए सैम्युल्सन ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि गुणक तथा त्वरक दोनों आपस में मिलकर आय के पथ को निर्धारित करते हैं।

आय निर्धारण का मॉडल तथा व्यापार-चक्र

सैम्युल्सन ने अपने मॉडल में एक गणितीय विश्लेषण के अन्तर्गत आय निर्धारण के समीकरण में स्वायत्त निवेश **(I)** तथा सरकारी व्यय **(G)** के दिये हुए मान पर उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) तथा त्वरक (β) के विभिन्न संयुग्मों के मानों को रखकर आय के सन्तुलन स्थिति का विश्लेषण किया। अपने विश्लेषण में उन्होंने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि α तथा β के विभिन्न संयुग्मों के मान आय के भिन्न-भिन्न पथ प्रदर्शित करते हैं। वस्तुतः सैम्युल्सन ने अपने विश्लेषण के अन्तर्गत α तथा

β के समस्त सम्भावित संयुग्मों के लिए आय के कुल पॉच प्रकार के पथ को प्राप्त किया। इन पॉचों प्रकार के पथों से सम्बन्धित α तथा β के समस्त सम्भावित संयुग्मों को निम्न चित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है-

चित्र-1

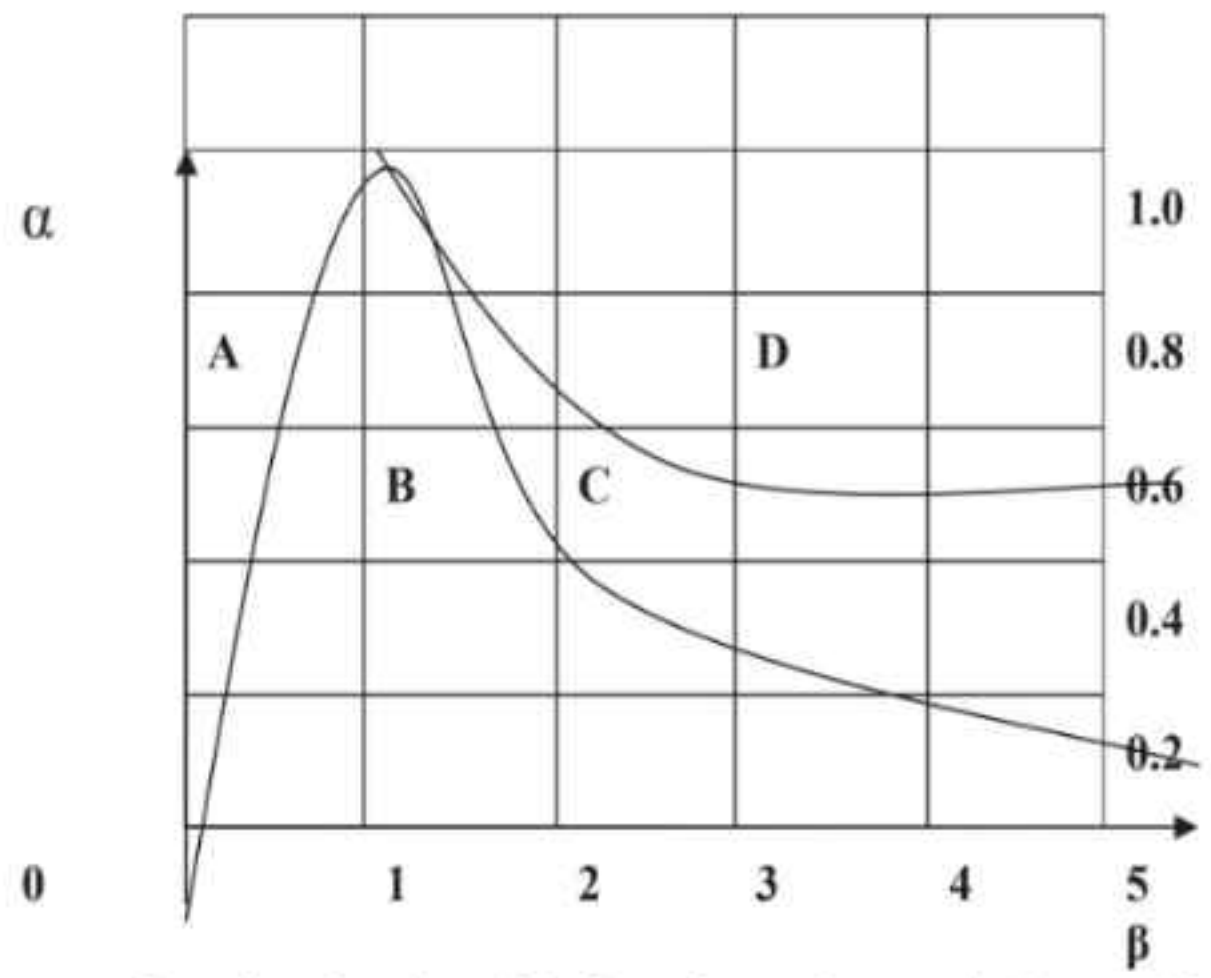

α तथा β के समस्त मान यदि उपरोक्त चित्र में प्रदर्शित क्षेत्र Aसे सम्बन्धित मानों की तरह होते हैं तो आय में होने वाला उतार-चढ़ाव एक चक्रहीन पथ के रूप में प्राप्त होता है जबकि α तथा β के समस्त मान यदि चित्र में प्रदर्शित क्षेत्र B से सम्बन्धित मानों की तरह होते हैं तो आय में होने वाला उतार-चढ़ाव एक अवमन्दित चक्रों वाले पथ के रूप में प्राप्त होता है। परन्तु यदि α तथा β के समस्त मान चित्र में प्रदर्शित क्षेत्र C से सम्बन्धित मानों की तरह होते हैं तो आय में होने वाला उतार-चढ़ाव एक विस्फोटक चक्रों वाले पथ की तरह प्राप्त होता है जबकि α तथा β के समस्त मान यदि चित्र में प्रदर्शित क्षेत्र D से सम्बन्धित मानों की तरह होते हैं तो आय में होने वाला उतार-चढ़ाव एक विस्फोटक विस्तार वाले पथ के रूप में प्राप्त होता है। जब α तथा β के समस्त मान क्षेत्र B तथा C के सीमा वाले वक्र से सम्बन्धित होता है तो आय में होने वाला उतार-चढ़ाव नियमित चक्रों वाले पथ के रूप में प्राप्त होता है।

सैम्युल्सन के मॉडल में वर्णित आय के पॉचों प्रकार के प्रवृत्तियों को आगे स्पष्ट किया जा रहा है-

प्रथम प्रवृत्ति - चक्रहीन पथ:- इस प्रकार का पथ तब प्राप्त होता है जबकि त्वरक का मान शून्य से लेकर इकाई के बीच होता है तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति का मान शून्य से लेकर इकाई के बीच होता है जैसा कि चित्र-1 के क्षेत्र A द्वारा प्रदर्शित है। इस स्थिति में त्वरक का मान अत्यन्त कम होने के कारण केवल गुणक प्रभाव ही क्रियाशील होता है और त्वरक या तो क्रियाशील होता ही नहीं या इसका प्रभाव अत्यन्त कम होता है। इसीलिए इस स्थिति में निवेश व्यय में परिवर्तन होने पर आय में परिवर्तन तो होता है परन्तु इसमें उतार-चढ़ाव उत्पन्न नहीं होता है बल्कि आय एक नयें सन्तुलन स्तर को प्राप्त कर लेती है। इस प्रवृत्ति को चित्र-2 में प्रदर्शित किया गया है जिसमें आय का प्रारम्भिक स्तर Y0 है। इस स्थिति में स्वायत्त निवेश की मात्रा में वृद्धि कर देने पर आय का स्तर परिवर्तित होकर नये सन्तुलन स्तर Y1 पर पहुँच जाता है।

चित्र-2

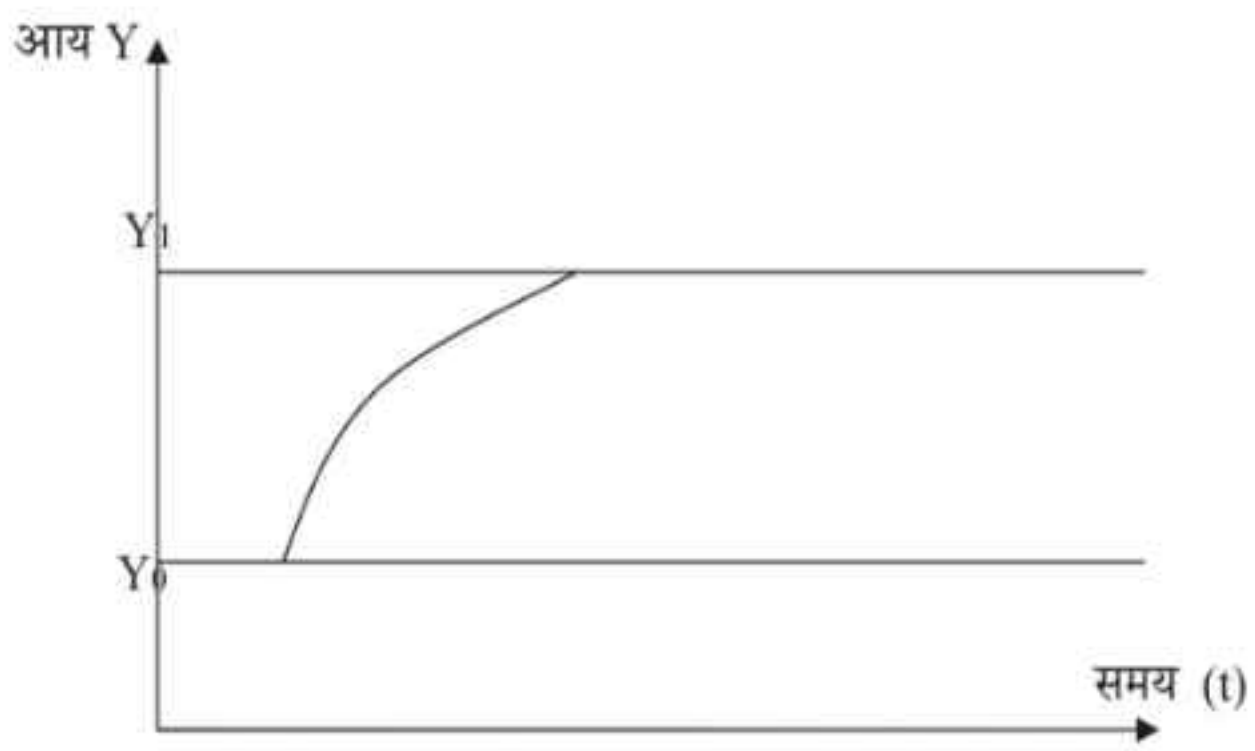

द्वितीय प्रवृत्ति - अवमन्दित चक्रों वाला पथ:-इस प्रकार का पथ तब प्राप्त होता है जबकि त्वरक का मान शून्य से लेकर पॉच के बीच होता है तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति का मान शून्य से लेकर इकाई के बीच होता है जैसा कि चित्र-1 के क्षेत्र B द्वारा प्रदर्शित है। इस स्थिति में गुणक तथा त्वरक दानों क्रियाशील होते हैं परन्तु दानों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया अपेक्षाकृत कमजोर होती है। इसीलिए इस स्थिति में निवेश व्यय में परिवर्तन होने पर आय में परिवर्तन तो होता है और इसमें उतार-चढ़ाव भी उत्पन्न होता है। परन्तु गुणक-त्वरक के बीच होने वाली अन्तःक्रिया कमजोर होने के कारण आय में उत्पन्न होने वाला उतार-चढ़ाव धीरे-धीरे कम होता जाता है जैसा कि चित्र-3 में प्रदर्शित किया गया है।

चित्र-3

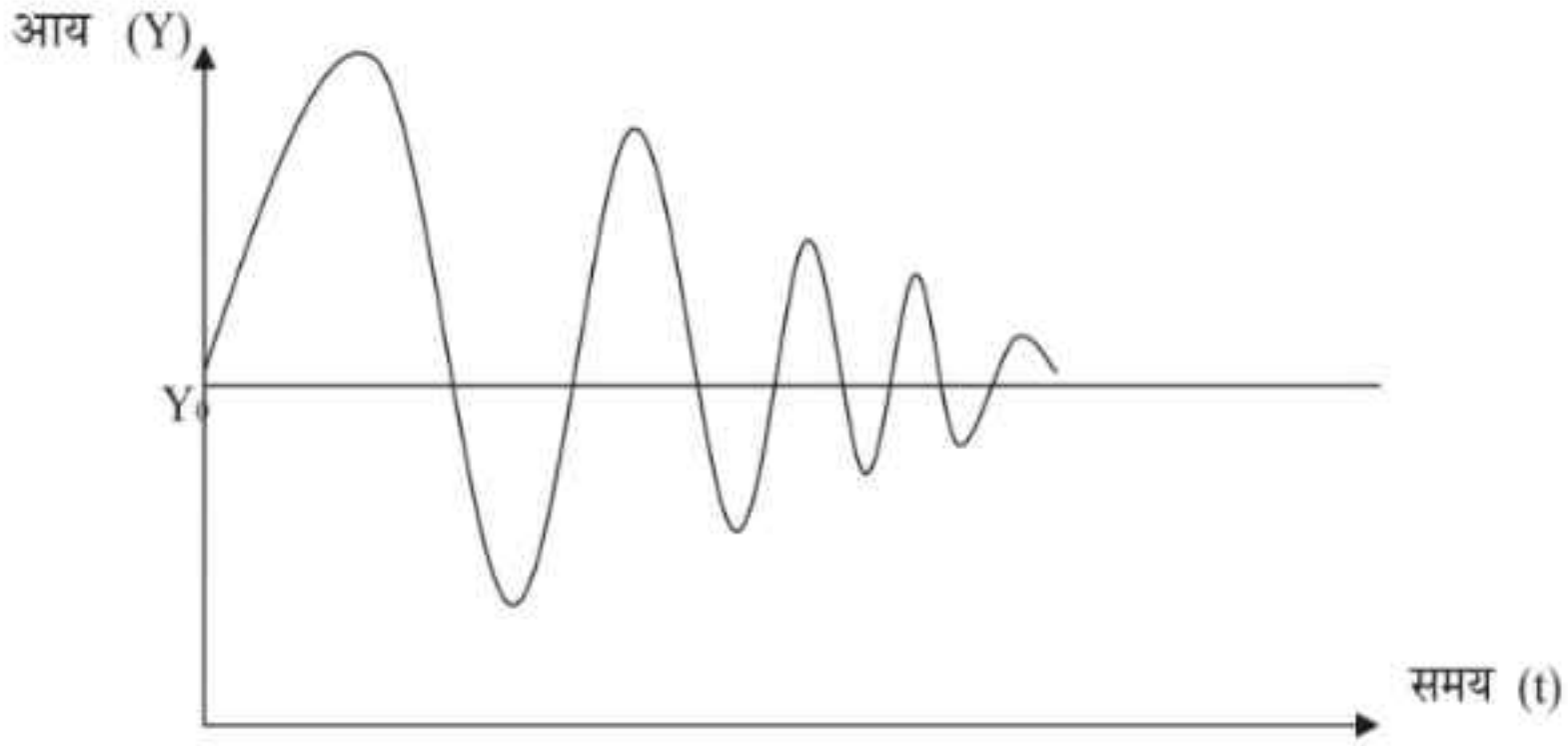

तृतीय प्रवृत्ति - नियमित चक्रों वाला पथ:- इस प्रकार का पथ तब प्राप्त होता है जबकि त्वरक तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति के मान ऐसे होते हैं जिससे गुणक तथा त्वरक दानों क्रियाशील होते हैं और दानों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया मजबूत होती है। इसीलिए इस स्थिति में निवेश व्यय में परिवर्तन होने पर आय में परिवर्तन तो होता है और इसमें उतार-चढ़ाव भी उत्पन्न होता है और इस स्थिति में गुणक-त्वरक के बीच होने वाली अन्तःक्रिया इतनी मजबूत होती है कि यह अन्तःक्रिया आय में नियमित रूप से उतार-चढ़ाव उत्पन्न करती रहती है जैसा कि चित्र-4 में प्रदर्शित किया गया है।

चित्र-4

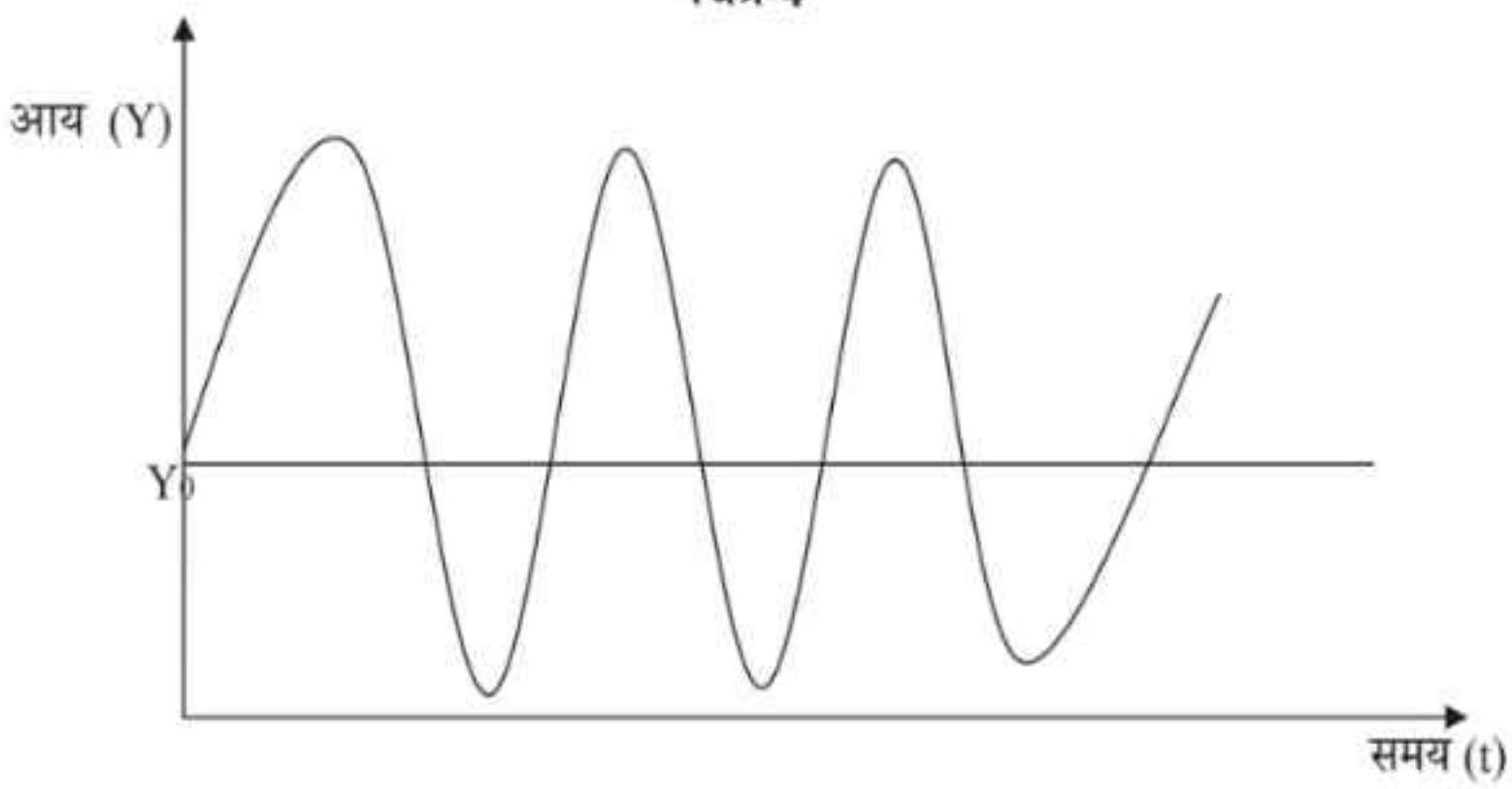

चतुर्थ प्रवृत्ति - विस्फोटक चक्रों वाला पथ:- इस प्रकार का पथ तब प्राप्त होता है जबकि त्वरक का मान इकाई से लेकर पॉच के बीच होता है तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति का मान 0.2 से लेकर इकाई के बीच होता है जैसा कि चित्र-1 के क्षेत्र C द्वारा प्रदर्शित है। ऐसी स्थिति में त्वरक तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति के मान ऐसे होते हैं जिससे गुणक तथा त्वरक दोनों क्रियाशील होते हैं और दोनों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया अपेक्षाकृत अधिक मजबूत होती है। इसीलिए इस स्थिति में निवेश व्यय में परिवर्तन होने पर आय में परिवर्तन तो होता है और इसमें उतार-चढ़ाव भी उत्पन्न होता है। इस स्थिति में गुणक-त्वरक के बीच होने वाली अन्तःक्रिया इतनी अधिक मजबूत होती है कि यह अन्तःक्रिया आय में उतार-चढ़ाव तो उत्पन्न करती ही है और यह उतार-चढ़ाव लगातार बढ़ता जाता है जैसा कि चित्र-5 में प्रदर्शित किया गया है।

चित्र-5

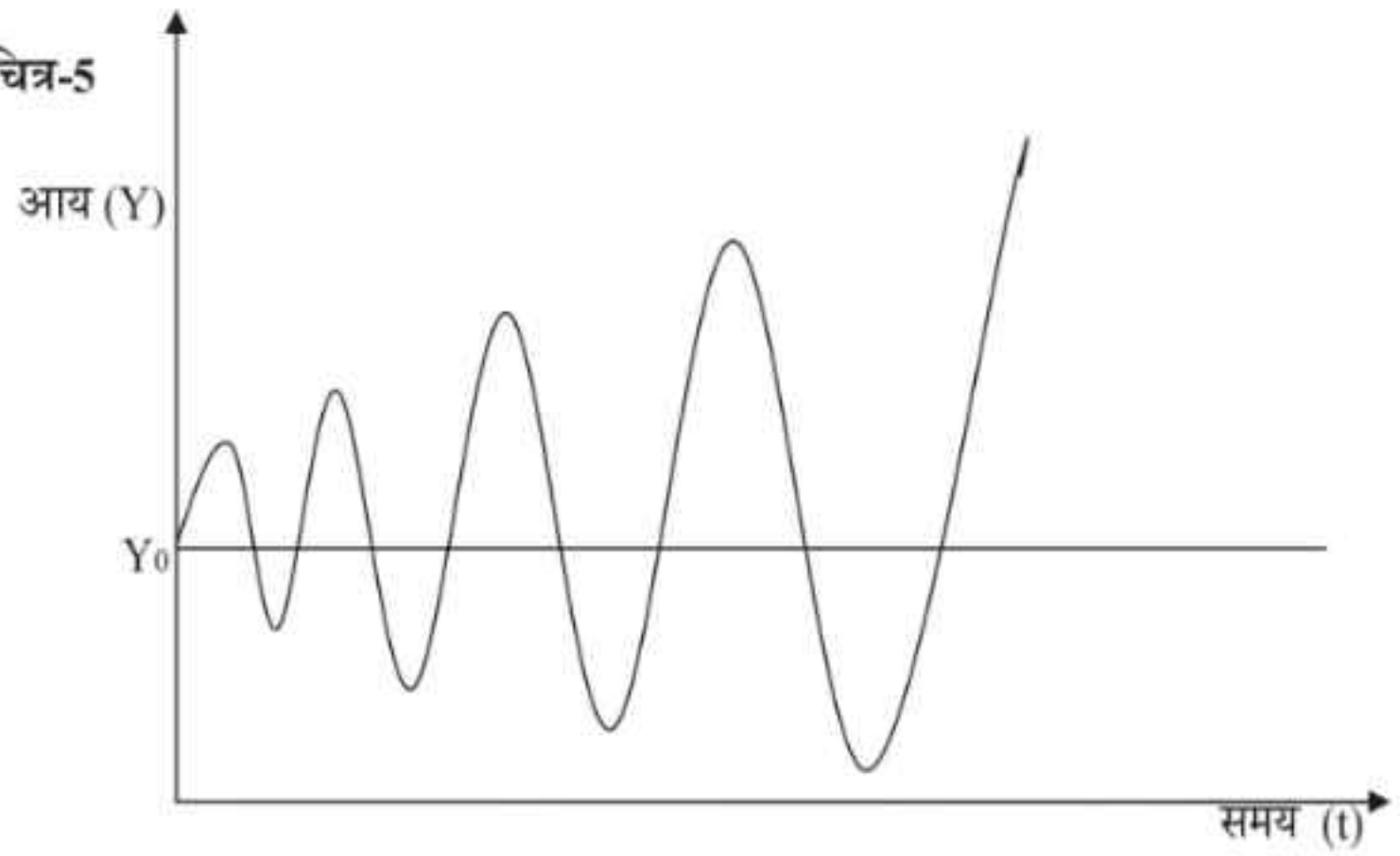

पंचम प्रवृत्ति - विस्फोटक विस्तार वाला पथ:- इस प्रकार का पथ तब प्राप्त होता है जबकि त्वरक का मान इकाई से लेकर पॉच के बीच होता है तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति का मान 0.6 से लेकर इकाई के बीच होता है जैसा कि चित्र-1 के क्षेत्र D द्वारा प्रदर्शित है। ऐसी स्थिति में त्वरक तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति के मान ऐसे होते हैं जिससे गुणक तथा त्वरक दोनों क्रियाशील होते हैं और दोनों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया अत्यन्त ही अधिक मजबूत होती है। इसीलिए इस स्थिति में निवेश व्यय में परिवर्तन होने पर आय में परिवर्तन तो होता है परन्तु इसमें उतार-चढ़ाव उत्पन्न नहीं होता है बल्कि इस स्थिति में गुणक-त्वरक के बीच होने वाली अन्तःक्रिया इतनी अधिक मजबूत होती है कि यह अन्तःक्रिया आय में उत्तरोत्र रूप से वृद्धि प्रदान करती रहती है जैसा कि चित्र-6 में प्रदर्शित किया गया है।

चित्र-6

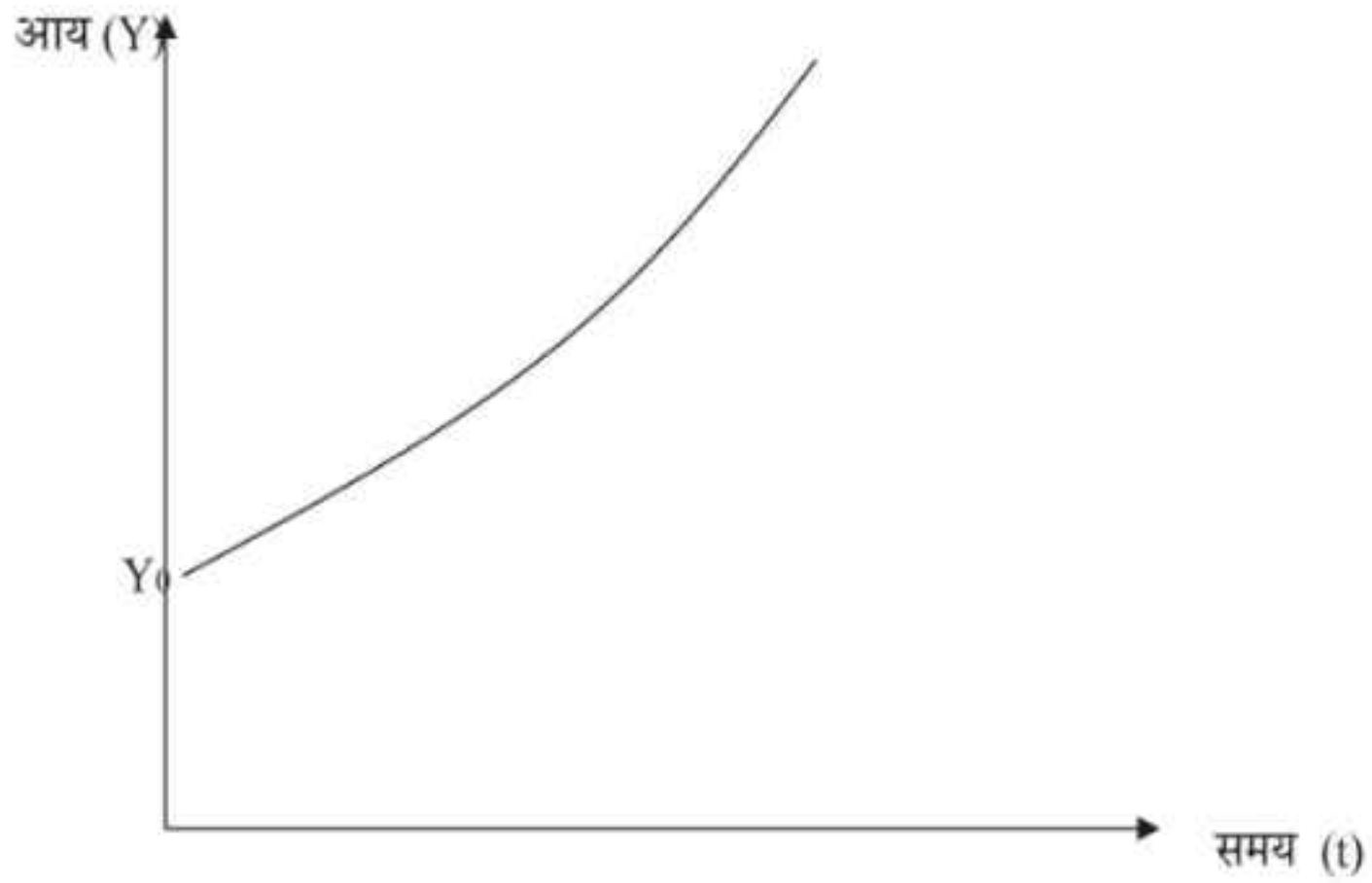

सिद्धान्त की समीक्षा - सैम्युल्सन का सिद्धान्त व्यापार-चक्र की घटना का एक अत्यन्त ही वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त का पूर्ण समर्थन किया है। परन्तु अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की त्रुटियों का उल्लेख करते हुए आलोचना किया है। इनमें कुछ आलोचनायें निम्नवत् हैं-

1. यह सिद्धान्त गुणक तथा त्वरक की यान्त्रिक अवधारणा पर आधारित है। इसलिए इस सिद्धान्त की यह आलोचना किया जाता है कि व्यापार-चक्र का यह सिद्धान्त एक यन्त्रिक व्याख्या प्रस्तुत करता है जबकि व्यावहारिक जगत में आर्थिक क्रियायें इतने यान्त्रिक ढ़ग से सम्पन्न नहीं होती है।
2. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रस्तुत विश्लेषण में उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति तथा त्वरक के मान को स्थिर मान लिया गया है। परन्तु वास्तव में इनके मान आय में परिवर्तन होने के साथ-साथ परिवर्तित होते रहते हैं। अतः यह सिद्धान्त केवल लघु उतार-चढ़ाव के अध्ययनों पर ही लागू हो सकता है।
3. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत जिन विभिन्न चक्रों का उल्लेख किया गया है उनकी अवधि की लम्बाई के सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बताया गया है।
4. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत जिन विभिन्न चक्रों का उल्लेख किया गया है वे प्रवृत्तिहीन अर्थव्यवस्था में स्थिर स्तर के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं जो कि वास्तविकता से परे है। क्योंकि अर्थव्यवस्था प्रवृत्तिहीन नहीं बल्कि वृद्धि की प्रक्रिया में रहती है।

5. इस सिद्धान्त की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र के उत्पन्न होने के कारण को तो स्पष्ट करता है परन्तु इसकी विभिन्न अवस्थाओं की कोई व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता। अर्थात् इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह नहीं स्पष्ट किया गया कि समृद्धि की अवस्था किस प्रकार आगे बढ़ती है तथा किस प्रकार मन्दी की अवस्था उत्पन्न होती है तथा कैसे पुनरूत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।
6. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत उतार-चढ़ाव की प्रक्रिया में किसी उपरी तथा निचली सीमा का उल्लेख नहीं किया गया है।

अभ्यास प्रश्न

1- निम्न कथनों मे से सत्य या असत्य छॉटिये:-

(क) गुणक का मान इकाई से अधिक होता है। (सत्य/असत्य)

(ख) गुणक केवल धनात्मक दिशा में कार्य करता है। (सत्य/असत्य)

(ग) गुणक का मान उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति से निर्धारित होता है। (सत्य/असत्य)

(घ) त्वरक ऋणात्मक दिशा में भी क्रियाशील होता है। (सत्य/असत्य)

(ड) त्वरक के क्रियाशीलन के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग में अतिरिक्त क्षमता विद्यमान होनी चाहिए। (सत्य/असत्य)

(च) व्यापार-चक्र की घटना की व्याख्या के लिए गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया पर आधारित विचार का प्रतिपादन हैन्सन ने किया। (सत्य/असत्य)

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

(क) गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया को ----- ने विकसित किया। (हिक्स/सैम्युल्सन/हैन्सन)

(ख) त्वरक के क्रियाशीलन के लिए केवल ---------उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता विद्यमान होनी चाहिए। (उपभोक्ता/पूँजीगत)

(ग) सैम्युल्सन द्वारा प्रस्तुत व्यापार-चक्र का सिद्धान्त एक----------सिद्धान्त है। (मौद्रिक/अमौद्रिक)

(घ) सैम्युल्सन ने अपने मॉडल में आय की --------प्रवृत्तियों का उल्लेख किया। (तीन/चार/पॉच)

(ड) सैम्युल्सन ने अपने मॉडल मे t समय के उपभोग को --------समय के आय के रूप मे व्यक्त किया।(t/t-1/t+1)

30.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत संक्षेप में गुणक तथा त्वरक की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए गुणक तथा त्वरक के बीच अन्तःक्रिया को समझाया गया। इस अन्तःक्रिया से यह स्पष्ट होता है कि गुणक तथा त्वरक एक साथ क्रियाशील होकर आय में उतार-चढ़ाव की प्रवृत्ति को उत्पन्न करते हैं। गुणक तथा त्वरक की अन्तःक्रिया के माध्यम से ही सैम्युल्सन ने व्यापार-चक्र की घटना को स्पष्ट करने का प्रयास किया। वस्तुतः उन्होनें अपने विश्लेषण में गुणक तथा त्वरक की अन्तःक्रिया के आधार पर कुल पॉच प्रकार के आय के प्रवृत्तियों को प्राप्त किया। ये पॉच प्रकार की प्रवृत्तियां हैं- चक्रहीन पथ, अवमन्दित चक्रों वाला पथ, नियमित चक्रों वाला पथ, विस्फोटक चक्रों वाला पथ तथा विस्फोटक विस्तार वाला पथ।

30.8 शब्दावली

विस्थापित: इसका तात्पर्य किसी एक स्थिति का दूसरे स्थिति पर स्थानान्तरित होने से होता है। जैसे इस इकाई में इस शब्द को इस अर्थ के लिए प्रयोग किया गया है कि आय के सन्तुलन का एक स्तर स्थानान्तरित होकर दूसरे सन्तुलन स्तर पर पहुँच जाता है।

तात्कालिक: इस शब्द का अभिप्राय 'तुरन्त' शब्द से होता है। जैसे इस इकाई में इस शब्द को इस अर्थ के लिए प्रयोग किया गया है कि निवेश में परिवर्तन का आय पर उत्पन्न होने वाला गुणक प्रभाव सम्पूर्ण रूप से तुरन्त घटित नहीं होता है बल्कि कई चरणों में घटित होता है।

अनवरत्: इस शब्द का अभिप्राय 'लगातार' से होता है। जैसे इस इकाई में इस शब्द को इस अर्थ के लिए प्रयोग किया गया है कि गुणक प्रक्रिया के अन्तर्गत आय के स्तर में परिवर्तन तो होगा परन्तु इस परिवर्तन की प्रक्रिया लगातार जारी नहीं रहेगी अपितु एक नये सन्तुलन स्तर को प्राप्त करके रूक जायेगी।

व्युत्पन्न:- जब किसी एक गुण का अस्तित्व किसी दूसरे गुण के कारण होता है तो यह प्रभाव 'व्युत्पन्न' कहलाता है। जैसे इस इकाई में इस शब्द को इस अर्थ के लिए प्रयोग किया गया है कि पूजीगत वस्तुओं की मॉग का अपने आप में काई अस्तित्व नहीं होता है बल्कि इनकी मॉग उपभोक्ता वस्तुओं के मॉग को पूरा करने के लिए किया जाता है।

अवमन्दित:- इस शब्द का अर्थ धीरे-धीरे मन्द पड़ने से होता है। जैसे इस इकाई में इस शब्द को इस अर्थ के लिए प्रयोग किया गया है कि आय में होने वाला उतार-चढ़ाव धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगता है। जैसा कि सैम्युल्सन के मॉडल के द्वितीय प्रवृत्ति में प्रदर्शित किया गया है।

उत्तरोत्तर: इस शब्द का अर्थ 'आगे बढ़ते हुए क्रम में' से होता है। जैसे इस इकाई में इस शब्द को इस अर्थ के लिए प्रयोग किया गया है कि गुणक प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ता है वैसे-वैसे उपभोग में होने वाला परिवर्तन आगे बढ़ते हुए क्रम में कम होता जीता है।

अतिरिक्त क्षमता: इस शब्द का अर्थ 'आवश्यकता से अधिक क्षमता' से होता है। इस इकाई में इस शब्द का प्रयोग एक उद्योग विशेष की उत्पादन क्षमता के लिए किया गया है। जैसे उपभोग वस्तुओं के उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता विद्यमान नहीं होने का यह अभिप्राय है कि इस उद्योग में जितनी वस्तुएं उत्पादित किया जा सकता है वे सब बाजार में खप जाएं। उदाहरण के लिए यदि उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग में 1000 इकाई वस्तुएं उत्पादित की जा सकती हैं तो बाजार में इन वस्तुओं की मॉग भी 1000 इकाई के बराबर होनी चाहिए। यदि बाजार में इन वस्तुओं की मॉग 1000 इकाई से कम जैसे कि 800 इकाई के बराबर है तो इसका तात्पर्य यह है कि उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग में अतिरिक्त क्षमता विद्यमान है।

30.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (क) असत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्य, (घ) असत्य, (M) असत्य, (च) सत्य

(2) (क) सैम्युल्सन, (ख) पूँजीगत, (ग) अमौद्रिक, (घ) पॉच, (M) ज.1

30.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Samuelson, Paul (1939): *Interaction Betweenthe Multiplier Analysis and the Principle of Acceleration,* Review of Economics and Statistics, vol 21 pp 75-78.
- Mueller, M.G.(1978): *Readings in Macroeconomics,* Surjeet Publications, New Delhi.
- Ackely G. (1978): *Macro Economics – Theory and Policy*, Macmillan, New York.
- Poindexter, J.C. (1981): *Macroeconomics,* CBS College Publishing, Japan

30.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Ahuja H.L. (2010): *Principles of Macro Economics*, S Chand, New Delhi.
2. Jhingan M.L. (2004): *Macro Economic Theory*, Vrinda publications, Delhi.

3. Seth M.L. (2001): *Macroeconomics*, Laxksmi Narain Agarawal Educational Publishers, Agra.
4. Rana, K.C. and K.N. Verma (2004): *Macro Economic Analysis*, Vishall Publishing Co., Jalandhar, India.
5. झिंगन एम एल ;2007द्धः समष्टि अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन, दिल्ली।

30.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गुणक की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उस प्रक्रिया को समझाइए जिसके माध्यम से गुणक प्रभाव कार्य करता है।
2. त्वरक की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। साथ ही साथ उन दशाओं को भी स्पष्ट कीजिए जो त्वरक के क्रियाशीलन के लिए आवश्यक होती हैं।
3. गुणक तथा त्वरक के बीच अन्तःक्रिया की विवेचना कीजिए तथा इस अन्तःक्रिया को एक गणितीय उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।
4. गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया पर आधारित सैम्यल्सन के व्यापार चक्र के सिद्धान्त की विवेचना प्रस्तुत कीजिए। क्या आप इस बात से सहमत हैं कि यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र की उचित व्याख्या करने में सफल है ?

इकाई 31- हिक्स का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त

इकाई संरचना

31.1 प्रस्तावना
31.2 उद्देश्य
31.3 हिक्स का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त
31.3.1 सिद्धान्त के आधारभूत घटक
31.3.2 सिद्धान्त की मान्यताएं
31.3.3 हिक्स का मॉडल
31.3.4 व्यापार-चक्र की व्याख्या
31.4 सारांश
31.5 शब्दावली
31.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
31.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
31.8 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
31.9 निबन्धात्मक प्रश्न

31.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने व्यापार-चक्र के सैम्युल्सन के सिद्धान्त का अध्ययन किया जो गुणक-त्वरक की अन्तःक्रिया पर आधारित है। यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र की घटना का एक अत्यन्त ही वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण प्रस्तुत करता है , फिर भी यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र की घटना की उपयुक्त व्याख्या करने में असफल माना जाता है। इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र के उत्पन्न होने के कारण को तो स्पष्ट करता है परन्तु इसकी विभिन्न अवस्थाओं की कोई स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता है। हिक्स ने व्यापार-चक्र का जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया वह भी गुणक-त्वरक की अन्तःक्रिया पर ही आधारित है परन्तु इस सिद्धान्त की विशेष ता यह है कि यह सिद्धान्त सैम्युल्सन के सिद्धान्त की उपरोक्त त्रुटियों का निराकरण करते हुए इसे और अधिक विकसित स्वरूप प्रदान करता है। इस इकाई के अन्तर्गत हिक्स के व्यापार-चक्र के सिद्धान्त की विस्तार पूर्वक विवेचना किया जायेगा।

31.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

- बता सकेंगे कि व्यापार-चक्र की व्याख्या के सन्दर्भ में हिक्स ने सैम्युल्सन के विचार में क्या-क्या सुधार किया।
- बता सकेंगे कि हिक्स का सिद्धान्त किन मूलभूत मान्यताओं पर आधारित है।
- समझा सकेंगे कि आर्थिक उतार-चढ़ाव की प्रक्रिया में व्यापार-चक्र की ऊपरी तथा निचली सीमा का निर्धारण किस प्रकार से होता है।
- समझा सकेंगे कि व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाएं कैसे उत्पन्न होती हैं तथा किस प्रकार आगे बढ़ती हैं और किस प्रकार ऊपरी एवं निचला मोड़ बिन्दु प्राप्त होता है।

31.3 हिक्स का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त

जे0 आर0 हिक्स ने 1956 में अपनी पुस्तक ''ए कान्ट्रीब्यूशन टू द थ्योरी ऑफ द ट्रेड साइकिल'' में गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया के आधार पर व्यापार-चक्र के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। व्यापार-चक्र की व्याख्या के सन्दर्भ में हिक्स ने जो विचार प्रस्तुत किया उसमें वे सैम्युल्सन के इस विचार से तो सहमत थे कि व्यापार-चक्र की घटना गुणक तथा त्वरक के बीच अन्तःक्रिया का ही परिणाम होती है परन्तु वे आर्थिक उतार-चढ़ाव के प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में सैम्युल्सन द्वारा प्रस्तुत किये गये निष्कर्षों से सहमत नहीं थे। वस्तुतः सैम्युल्सन ने जो मॉडल विकसित किया वह लघु उतार-चढ़ाव के अध्ययनों पर ही लागू होता है जबकि हिक्स ने जो मॉडल विकसित किया वह एक वृद्धिशील अर्थव्यवस्था में होने वाले उतार-चढ़ाव के अध्ययनों पर लागू होता है। हिक्स ने व्यापार-चक्र का जो सिद्धान्त प्रस्तुत

किया उसकी एक प्रमुख विशेष ता यह भी है कि वह गुणक-त्वरक की अन्तःक्रिया के आधार पर ही व्यापार-चक्र के प्रत्येक अवस्थाओं की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करता है । हिक्स का सिद्धान्त सैम्युल्सन के सिद्धान्त के ऊपर निम्न अर्थों में एक सुधार है-

1. सैम्युल्सन के सिद्धान्त के अन्तर्गत जिन विभिन्न चक्रों का उल्लेख किया गया है वे एक स्थिर सन्तुलन पथ के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं जबकि हिक्स ने जो सिद्धान्त प्रस्तुत कियाउसकेअन्तर्गत निर्मित चक्र एक वृद्धिमान पथ के इर्द-गिर्द घूमते है।
2. सैम्युल्सन ने अपने सिद्धान्त में जिन पॉच प्रकार के चक्रों का उल्लेख किया उनमें से चार प्रकार के चक्रों - चक्रहीन पथ, अवमन्दित चक्र, नियमित चक्र तथा विस्फोटक विस्तार वाले पथ की सम्भावना से हिक्स ने असहमति प्रकट किया । हिक्स ने केवल 'विस्फोटक चक्रों' वाले चक्र की सम्भावना को ही स्वीकार किया । परन्तु उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि इस प्रकार के उतार-चढ़ाव भी एक 'ऊपरी' (सीलिंग) तथा 'निचली' (फ्लोर) सीमा के भीतर ही होंगे जबकि सैम्युल्सन ने इस प्रकार के किसी सीमा का उल्लेख नहीं किया।
3. हिक्स ने व्यापार-चक्र के सिद्धान्त में आर्थिक समृद्धि के घटकों का समावेश किया।

31.3.1 सिद्धान्त के आधारभूत घटक :-हिक्स ने अपने विश्लेषण को प्रमुख रूप से तीन घटकों के आधार पर प्रस्तुत किया। ये तीनों घटक हैं-

1. कीन्स द्वारा प्रतिपादित गुणक विश्लेषण।
2. जे0 एम0 क्लार्क द्वारा प्रतिपादित त्वरक सिद्धान्त।
3. हैरोड द्वारा प्रतिपादित संवृद्धि विश्लेषण का मॉडल जिसके अन्तर्गत हैरोड ने तीन प्रकार के संवृद्धि दरों - 'वांछनीय संवृद्धि दर', 'वास्तविक संवृद्धि दर' तथा 'प्राकृतिक संवृद्धि दर'का उल्लेख किया। 'वांछनीय संवृद्धि दर' वह संवृद्धि दर होती है जो निवेशकों को संतुष्ट कर देती है क्योंकि यह संवृद्धि दर बचत-निवेश के संतुलन के अनुरूप होती है। वस्तुतः हिक्स ने अपने विश्लेषण में 'वांछनीय संवृद्धि दर' के आधार पर ही आर्थिक उतार-चढ़ाव की प्रक्रिया को स्पष्ट किया क्योंकि उनका विचार था कि गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया वांछनीय संवृद्धि दर के इर्द-गिर्द आर्थिक उतार-चढ़ाव का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

31.3.2 सिद्धान्त की मान्यताएं - हिक्स ने अपने विश्लेषण को निम्नलिखित मान्यताओं आधार पर प्रस्तुत किया-

1- अर्थव्यवस्था प्रगतिशील है जिसमें स्वायत्त निवेश में एक स्थिर गति से वृद्धि होती रहती है और अर्थव्यवस्था गतिमान सन्तुलन में बना रहता है।

2- बचत तथा निवेश गुणांक, अर्थात् बचत की सीमान्त प्रवृत्ति तथा त्वरक, इस प्रकार हैं कि सन्तुलन की स्थिति में एक बार विचलन होने पर यह विचलन अर्थव्यवस्था को सन्तुलन से और दूर ले जाता है। वस्तुतः हिक्स के इस धारणा का आधार हैरोड का आर्थिक संवृद्धि के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया विचार था। हैरोड ने अपने आर्थिक संवृद्धि के मॉडल में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि संवृद्धि की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था संतुलन के पथ पर बने रह सकती है परन्तु इस संतुलन में थोड़ा सा भी विचलन होने पर यह विचलन अर्थव्यवस्था को संतुलन से और दूर ले जाता है।

3- प्रावैगिक घटक जैसे- पूँजी संचय, तकनीकी प्रगति, जनसंख्या वृद्धि इत्यादि आर्थिक क्रियाएं स्वायत्त निवेश पर लगातार अपना प्रभाव उत्पन्न करते रहते हैं।

4- सैम्युल्सन की ही तरह हिक्स ने भी अपने मॉडल में उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (α) तथा त्वरक (β) के मान को स्थिर माना।

5- हिक्स ने अपने मॉडल में इस धरणा को शामिल किया कि अर्थव्यवस्था में होने वाले उतार-चढ़ाव एक सीमा - 'ऊपरी' (सीलिंग) तथा 'निचली' (फ्लोर) सीमा के भीतर ही होते हैं। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि 'ऊपरी' (सीलिंग) सीमा का निर्धारण पूर्ण रोजगार की सीमा के कारण होता हैं क्योंकि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर से आगे विस्तार नहीं कर सकती है। 'निचली' (फ्लोर) सीमा के सन्दर्भ में हिक्स ने यह विचार व्यक्त किया कि इसका निर्धारण त्वरक के क्रियाशीलन की प्रकृति में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है। इस सन्दर्भ में हिक्स ने यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया कि संकुचन की अवस्था में गुणक तो विपरीत (ऋणात्मक) दिशा में क्रियाशील रहता है जबकि त्वरक का क्रियाशीलन रूक जाता है।

31.3.4 हिक्स का मॉडल:- हिक्स ने अपने मॉडल को हैरोड द्वारा प्रस्तुत किये गये निम्नलिखित संवृद्धि समीकरण के आधार पर विकसित किया -

$$g = s/\upsilon$$

जहॉ पर s सीमान्त बचत की प्रवृत्ति अर्थात् बचत गुणांक को तथा υ पूँजी उत्पाद अनुपात अर्थात निवेश गुणांक को व्यक्त करता है और g उत्पादन में वृद्धि दर को व्यक्त करता है। अतः

$$g = (Yt - Yt\text{-}1)/ Yt$$

$$St = sYt$$

$$It = \upsilon(Yt - Yt\text{-}1) \text{----------} (1)$$

जहॉ पर Y_t तथा Y_{t-1}, क्रमशः t तथा t-1 समय के उत्पादन, S_t, t समय के बचत को I_t, t समय के निवेश को व्यक्त करता है। वस्तुतः I_t प्रेरित निवेश को व्यक्त करता है तथा υ त्वरक गुणांक को

व्यक्त करता है। हैरोड ने अपने आर्थिक संवृद्धि के मॉडल में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि संवृद्धि की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था संतुलन के पथ पर बने रह सकती है परन्तु इस संतुलन में थोड़ा सा भी विचलन होने पर यह विचलन अर्थव्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न करेगा। परन्तु अस्थिरता का पथ क्या होगा ? हैराड का मॉडल इस प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम नहीं हो सका। हिक्स के अनुसार इसका प्रमुख कारण हैराड का निवेश फलन है जो समीकरण (1) द्वारा व्यक्त किया गया है। इस निवेश फलन में निवेश तथा उत्पादन के बीच समय पश्चता को नहीं माना गया क्योंकि t समय के निवेश को t समय ही के उत्पादन में होने वाले परिवर्तन के फलन के रूप में व्यक्त किया गया है।

हिक्स ने अपने मॉडल में निवेश तथा उत्पादन के बीच समय पश्चता को माना तथा t समय के निवेश को t-1 समय के उत्पादन में होने वाले परिवर्तन के फलन के रूप में व्यक्त किया जो कि व्यावहारिकता के निकट है। अतः हिक्स ने अपने मॉडल में निम्न प्रकार के निवेश फलन को शामिल किया-

$$It = \upsilon(Yt\text{-}1 - Yt\text{-}2) \text{----------} (2)$$

उपभोग फलन के सन्दर्भ में सैम्युल्सन की ही तरह हिक्स ने भी अपने मॉडल में समय पश्चता की अवधारणा को शामिल करते हुए उपभोग फलन को निम्न रूप में व्यक्त किया-

$$Ct = \alpha Yt\text{-}1 \quad \text{----------} (3$$

जहाँ पर α उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति को व्यक्त करता है।

उपभोग फलन तथा निवेश फलन के उपरोक्त स्वरूप के आधार पर हिक्स ने अपने मॉडल के अन्तर्गत निम्न समीकरण को प्रस्तुत किया-

$$\mathbf{Yt = (1\text{-}s + \upsilon)Yt\text{-}1 - \upsilon Yt\text{-}2 \text{ ----------}(4)}$$

समीकरण **(4)** एक अवकलन समीकरण (डिफ्रेंस इक्वेशन) है। वस्तुतः हिक्स ने एक गणितीय विश्लेषण के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि आय के किन्हीं दो प्रारम्भिक स्तर (Y0) तथा (Y1) ज्ञात हों तो बचत गुणांक (s) तथा निवेश गुणंक (υ) के दिए गये मानों के लिए समीकरण **(4)** के द्वारा आय के पथ का निर्धारण किया जा सकता है। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि निवेश गुणंक (υ) का मान बहुत कम होने पर आय का पथ कीन्स के संतुलन अर्थात् चक्रहीन पथ की तरह होगा जबकि निवेश गुणंक (υ) के अधिक मान के लिए आय का ऐसा पथ प्राप्त होगा जो संतुलन से दूर होता जायेगा तथा विस्फोटक चक्र उत्पन्न होगा। यदि निवेश गुणंक (υ) का मान मध्यम स्तर का हो तो आय का ऐसा पथ प्राप्त होगा जिसमें चक्र तो उत्पन्न होंगें परन्तु इन चक्रों की लम्बाई धीरे-धीरे कम होती जायेगी। हिक्स ने अपने मॉडल में निवेश गुणांक (υ) के अधिक मान (1 से अधिक) को मानते हुए विस्फोटक चक्र वाले पथ की संभावना को ही स्वीकार किया। परन्तु साथ ही साथ उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ये विस्फोटक चक्र भी एक सीमा के भीतर ही उत्पन्न होंगे।

31.3.5 व्यापार-चक्र की व्याख्या

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि हिक्स ने अपने मॉडल के अन्तर्गत यह माना कि अर्थव्यवस्था वृद्धिमान अवस्था में एक संतुलन पथ पर आगे बढ़ती रहती है। जब तक निवेश में एक स्थिर गति से वृद्धि होती रहती है, अर्थव्यवस्था गतिमान सन्तुलन में बनी रहती है। परन्तु समस्या तब उत्पन्न होती है जब स्वायत्त निवेश में परिवर्तन हो जाय। क्योंकि निवेश में परिवर्तन होने पर संतुलन में विचलन उत्पन्न होगा और यह विचलन अर्थव्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न करेगा। परन्तु हिक्स ने अपने मॉडल में स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष को प्राप्त किया कि अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होने वाली यह अस्थिरिता इस रूप में होगी कि अर्थव्यवस्था एक सन्तुलन पथ के इर्द-गिर्द उतार-चढ़ाव करती रहेगी।

हिक्स ने अपने मॉडल को एक चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जिसे चित्र-1 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में क्षैतिज अक्ष पर समय तथा उर्ध्व अक्ष पर उत्पादन एवं निवेश के लघुगुणक मानों को दर्शाया गया है। चूँकि रेखाओं H, L, E तथा F की प्रवृत्ति ऊपर बढ़ने की है इसलिए ये सभी रेखाएं सतत रूप से हाने वाली संवृद्धि को प्रदर्शित करती हैं। रेखा F पूर्णरोजगार की संवृद्धि रेखा को व्यक्त करती है जबकि रेखा E उस संतुलन संवृद्धि रेखा को व्यक्त करती है जिस पर अर्थव्यवस्था प्राकृतिक रूप से आगे बढ़ती रहती है। रेखा L संवृद्धि की प्रक्रिया में उस निम्नतम संवृद्धि दर को व्यक्त करती है जिसके नीचे अर्थव्यवस्था आ ही नहीं सकती। रेखा H दीर्घकालीन निवेश में विस्तार की रेखा को व्यक्त करती है। हिक्स ने अपने मॉडल में यह उल्लेख किया कि रेखा म् वस्तुतः हैराड के वांछनीय संवृद्धि दर को व्यक्त करती है और इसका निर्धरण निवेश की दर अर्थात् रेखा H के आधार पर किया जाता है। जिसका अभिप्राय यह है कि रेखा H द्वारा प्रदर्शित निवेश की दर अर्थव्यवस्था को केवल उस संतुलन पर ही बनाये रखने के लिए पर्याप्त है जो रेखा E द्वारा प्रदर्शित है। **चित्र-1**

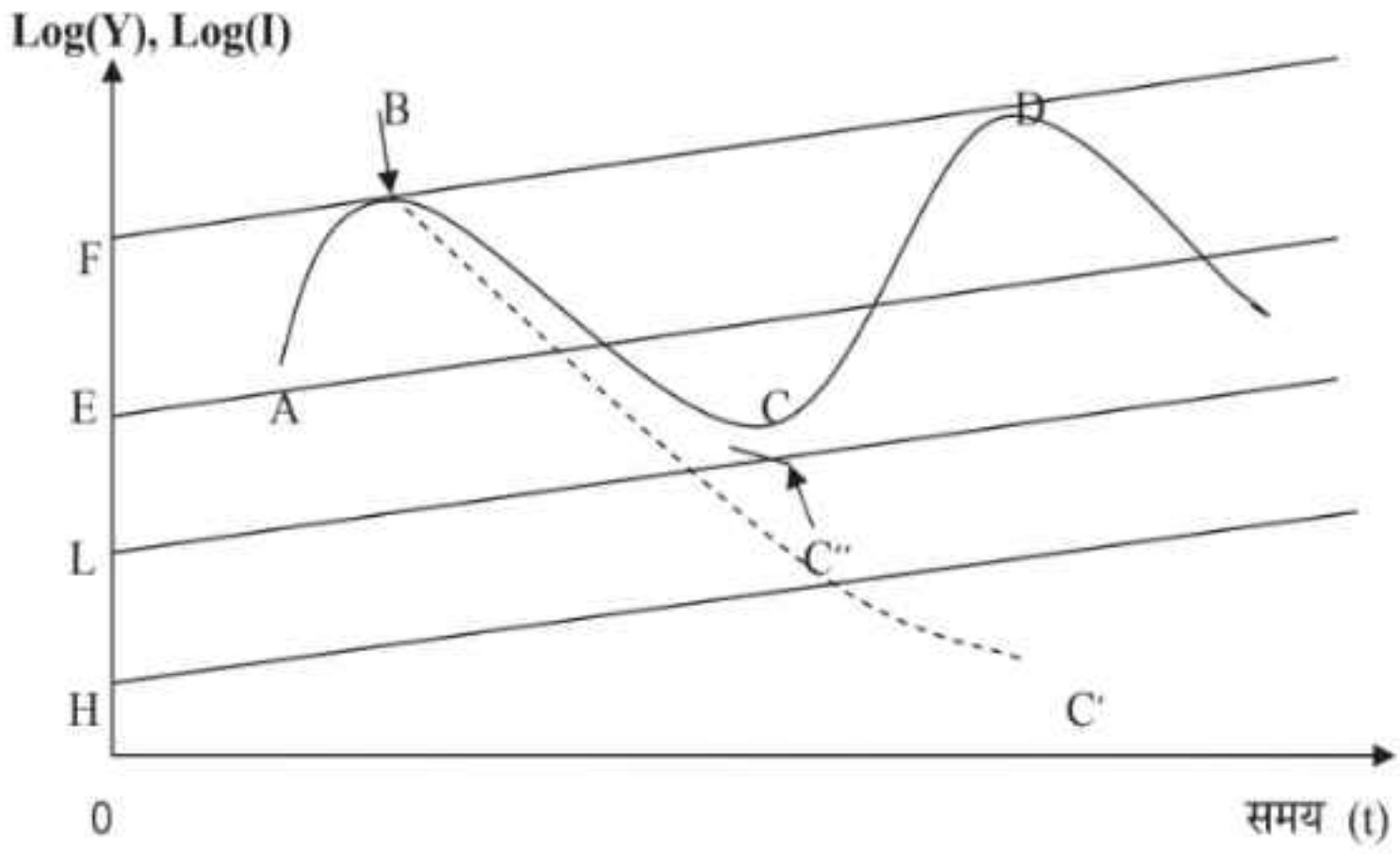

प्रश्न यह उठता है कि अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होने वाली अस्थिरता किस प्रकार व्यापार-चक्र के स्वरूप को धारण करती है अर्थात् किस प्रकार समृद्धि की अवस्था आगे बढ़ती है ? किस प्रकार 'ऊपरी' (सीलिंग) सीमा का निर्धारण होता है ? किस प्रकार संकुचन की अवस्था आगे बढ़ती है ? कैसे 'निचली' (फ्लोर) सीमा का निर्धारण हाता है और किस प्रकार पुनरूत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है ? हिक्स के मॉडल के अन्तर्गत इन प्रश्नों का उत्तर निम्न प्रकार से दिया जा सकता है-

समृद्धि की अवस्था:- हिक्स ने अपने मॉडल में समृद्धि की अवस्था के प्रारम्भ होने के लिए स्वायत्त निवेश में होने वाली वृद्धि को उत्तरदायी माना। क्योंकि यदि निवेश में वृद्धि हो जाय तो गुणक प्रभाव के फलस्वरूप आय पर विस्तारकारी प्रभाव उत्पन्न हो जायेगा। चूँकि उपभोग आय से निर्धारित होता है इसलिए आय में वृद्धि होने के कारण उपभोग मॉग प्रेरित हो जायेगी। उपभोग मॉग में वृद्धि होने से त्वरक का क्रियाशीलन प्रारम्भ हो जायेगा जिसके फलस्वरूप निवेश प्रेरित होगी। निवेश व्यय में वृद्धि होने से पुनः गुणक प्रभाव क्रियाशील होगा और आय पर विस्तारकारी प्रभाव उत्पन्न हो जायेगा। आय में होने वाली वृद्धि पुनः उपभोग मॉग को प्रेरित करेगी। उपभोग मॉग में वृद्धि होने से पुनः त्वरक प्रभाव के कारण निवेश में वृद्धि हो जायेगी। इस प्रकार समृद्धि की अवस्था में गुणक तथा त्वरक दोनो धनात्मक दिशा में कियाशील रहते हैं और विस्तार की प्रक्रिया को संचयी स्वरूप प्रदान करते हैं तथा आय को एक विस्फोटक पथ पर ले जाते है जैसा कि चित्र-1 में AB पथ द्वारा प्रदर्शित है। वस्तुतः हिक्स ने अपने विश्लेषण में गुणक तथा त्वरक के इस परस्पर क्रियाशीलन को 'अतिगुणक' की संज्ञा से संबोधित किया तथा इस प्रभाव को 'लीवरेज प्रभाव' के रूप में प्रस्तुत किया।

ऊपरी (सीलिंग) सीमा का निर्धारण:- हिक्स ने अपने विश्लेषण में यह स्पष्ट किया कि विस्तार की प्रक्रिया में गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया संचयी रूप से उत्पादन तथा आय के स्तर को लगातार ऊपर की तरफ ले जाते हैं परन्तु उत्पादन तथा आय के विस्तार की यह प्रक्रिया अन्तहीन नहीं होती है। इसका कारण यह है कि यद्यपि कि विस्तार की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था के उत्पादन क्षमता में विस्तार होता रहता है परन्तु यह उस गति से नहीं हो पाता जिस गति से उत्पादन तथा आय में विस्तार होता रहता है। अतः उत्कर्ष की अवस्था में गुणक तथा त्वरक के बीच अन्तःक्रिया आय तथा उत्पादन पर विस्फोटक स्थिति तो उत्पन्न करती है परन्तु पूर्णरोजगार द्वारा निर्धारित सीमा के कारण ऐसा हो नहीं पाता है। वस्तुतः इस सन्दर्भ में हिक्स कहते हैं कि, ''मैं कीन्स का अनुसरण करते हुए यह मान लेता हूँ कि कोई बिन्दु ऐसा होता है जिस पर प्रभावी मॉग के सापेक्ष उत्पादन लोच रहित हो जाती है''। अतः पूर्ण रोजगार की सीमा ही विस्तार ही प्रक्रिया पर अंकुश उत्पन्न करती है और इसी स्थिति पर विस्तार की ऊपरी सीमा का निर्धारण होता है।

संकुचन की अवस्था:- जब अर्थव्यवस्था पूर्णरोजगार के स्तर अर्थात् ऊपरी सीमा को स्पर्श कर लेती है तो अर्थव्यवस्था में संकुचन की अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। परन्तु अवनति की प्रक्रिया

तुरन्त प्रारम्भ नहीं होती अपितु कुछ अवधि तक अर्थव्यवस्था शिखर पर रेंगती रहती है। ऐसा होने के लिए हिक्स ने दो कारणों को उत्तरदायी माना। एक तो विस्तार की अवधि में किया गया प्रेरित निवेश और दूसरा, प्रेरित निवेश तथा उत्पादन के बीच समय पश्चता का लागू होना। हिक्स ने यह भी विचार व्यक्त किया कि निवेश क्रिया में समय पश्चता की अवधि जितनी ही अधिक होगी अर्थव्यवस्था उतनी ही अधिक देर तक शिखर पर रेंगती रहेगी। एक तथ्य उल्लेखनीय है कि जब अर्थव्यवस्था शिखर पर रेंगती है तो उस अवस्था में आय में होने वाली वृद्धि घटती जाती है और इसलिए निवेश की मात्रा भी घटती जाती है। अतः अर्थव्यवस्था शिखर पर ज्यादा अवधि के लिए नहीं रह सकती क्योंकि, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि निवेश वृद्धि की प्राकृतिक दर (जो H रेखा से प्रदर्शित है) अर्थव्यवस्था को शिखर स्तर पर बनाये रखने के लिए पर्याप्त नहीं होती है। इसलिए नीचे की ओर झुकाव शुरू हो जाता है और यहीं से अर्थव्यवस्था में संकुचन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। संकुचन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् निवेश में कमी होने के कारण आय में कमी होती है और आय में होने वाली कमी के कारण निवेश में भी कमी होती है। इस प्रकार यह क्रम आगे बढ़ता रहता है और संकुचन की प्रक्रिया संचयी रूप धारण कर लेती है। संकुचन के अवस्था के सम्बन्ध में हिक्स ने एक महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किया कि यह अवस्था विस्तार की अवस्था से अपेक्षाकृत अधिक लम्बी होती है।

निचली सीमा (फ्लोर) का निर्धारण:- संकुचन की अवस्था में आय में लगातार कमी होने के कारण आय का पथ धरातल की तरफ अग्रसर हो सकता है जैसा कि चित्र-1 में BC' पथ द्वारा प्रदर्शित है। परन्तु हिक्स ने अपने मॉडल में इस पथ की संभावना को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि आय अथवा उत्पादन में होने वाली गिरावट, L रेखा द्वारा प्रदर्शित सीमा से नीचे नहीं हो सकती और इसी सीमा को हिक्स ने विस्तार की 'निचली' (फ्लोर) सीमा कहा। इसके निर्धारण के लिए हिक्स ने त्वरक के क्रियाशीलन की प्रकृति में परिवर्तन को उत्तरदायी माना। इस सन्दर्भ में हिक्स ने यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया कि संकुचन की अवस्था में गुणक तो विपरीत (ऋणात्मक) दिशा में क्रियाशील रहता है परन्तु त्वरक का क्रियाशीलन रूक जाता है। इसलिए इस अवस्था में अर्थव्यवस्था चित्र-1 में प्रदर्शित BC'' पथ पर अग्रसर होगा और इस पथ का निर्धारण कीन्स (अथवा कॉन) के गुणक सिद्धान्त द्वारा होगा। संकुचन की अवस्था में आय के पथ को और अधिक स्पष्ट करते हुए हिक्स ने यह कहा कि चूँकि रेखा L की प्रवृत्ति ऊपर उठने की है इसलिए पथ BC'' बिन्दु C से ही ऊपर की तरफ उठने लगेगी और यही बिन्दु C ही संकुचन की निचली सीमा होगी।

पुनरूत्थान:- चूँकि बिन्दु C से अर्थव्यवस्था ऊपर की तरफ उठने लगती है इसलिए इस बिन्दु पर त्वरक का क्रियाशीलन प्रारम्भ हो जाता है और निवेश प्रेरित होता है। निवेश प्रेरित होने से गुणक भी धनात्मक दिशा में क्रियाशील हो जाता है और यहीं से पुनरूत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। गुणक तथा त्वरक दोनों धनात्मक दिशा में क्रियाशील होकर पुनरूत्थान की प्रक्रिया को संचयी स्वरूप प्रदान करते हैं और आय को एक विस्फोटक पथ पर ले जाते है जैसा कि चित्र-1 में CD पथ

द्वारा प्रदर्शित है। बिन्दु D पर पहुँचने के पश्चात् अर्थव्यवस्था पुनः नीचे की ओर झुक जाती है और संकुचन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

सिद्धान्त की समीक्षा- उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि हिक्स का सिद्धान्त गुणक-त्वरक अन्तःक्रिया के आधार पर व्यापार-चक्र की प्रत्येक अवस्थाओं तथा स्थितियों का अत्यन्त ही स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करता है। इतना ही नहीं बल्कि यह सिद्धान्त व्यापार-चक्र की व्याख्या में आर्थिक समृद्धि के घटकों का समावेश करते हुए एक ऐसा मॉडल प्रस्तुत करता है जो एक वृद्धिशील अर्थव्यवस्था में होने वाले उतार-चढ़ाव के अध्ययनों पर लागू होता है। इसीलिए आर्थिक साहित्य के अन्तर्गत हिक्स के सिद्धान्त को सैम्युल्सन के सिद्धान्त के एक विकसित स्वरूप के रूप में स्वीकार किया जाता है। फिर भी इस सिद्धान्त की भी कुछ त्रुटियां हैं जिनके आधार पर अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की आलोचना किया है। इनमें से कुछ आलोचनायें निम्नवत् हैं-

1-सैम्युल्सन के सिद्धान्त की ही तरह यह सिद्धान्त भी गुणक तथा त्वरक की यान्त्रिक अवधारणा पर आधारित है। इसलिए इस सिद्धान्त की यह आलोचना की जाती है कि व्यापार-चक्र का यह सिद्धान्त एक यन्त्रिक व्याख्या प्रस्तुत करता है जिसमें व्यावसायिक निर्णयों एवं व्यापार प्रत्याशाओं की भूमिका की उपेक्षा किया गया है। यद्यपि कि इस सिद्धान्त में निवेश की भूमिका को शामिल किया गया है फिर भी इस मॉडल में निवेश, व्यावसायिक निर्णय पर आधारित होने के बजाय एक गणितीय सूत्र पर आधारित है।

2-सैम्युल्सन के सिद्धान्त की ही तरह इस सिद्धान्त के अन्तर्गत भी उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति तथा त्वरक के मानों को स्थिर मान लिया गया है। परन्तु वास्तव में इनके मान आय में परिवर्तन होने के साथ-साथ परिवर्तित होते रहते हैं।

3-हिक्स के सिद्धान्त में स्वायत्त निवेश में निरन्तर एक स्थिर गति से होने वाली वृद्धि की मान्यता की भी आलोचना की गयी है। जैसे कि शूम्पिटर ने यह विचार व्यक्त किया कि संभव है कि तकनीकी नवप्रवर्तन के कारण स्वयं स्वायत्त निवेश में उतार-चढ़ाव होते रहते हैं।

4-ड्यूसनबरी तथा लुण्डबर्ग जैसे अर्थशास्त्रियों नें हिक्स द्वारा स्वायत्त तथा प्रेरित निवेश के बीच किये जाने वाले भेद की आलोचना किया है। लुण्डबर्ग ने यह विचार व्यक्त किया कि अल्पकाल में प्रत्येक निवेश स्वायत्त होता है तथा इसकी अधिकांश मात्रा दीर्घकाल में प्रेरित बन जाती है।

5-हिक्स के मॉडल की इस आधार पर भी आलोचना किया जाता है कि इस मॉडल में आर्थिक वृद्धि की क्रिया को स्वायत्त निवेश पर निर्भर मान लिया गया है। इस सन्दर्भ में स्मिथीज ने यह विचार व्यक्त किया कि स्वायत्त निवेश को बाह्य कारक मान लेने के कारण हिक्स का मॉडल व्यापार-चक्र की पूर्ण व्याख्या करने में असफल रहा है। स्मिथीज ने यह विचार व्यक्त किया कि वस्तुतः आर्थिक वृद्धि का स्रोत व्यवस्था के भीतर होना चाहिए।

6-हिक्स के मॉडल की ड्यूसनबरी ने इस आधार पर भी आलोचना किया कि इस मॉडल में शिखर अर्थत् ऊपरी सीमा की जो व्याख्या किया गया है वह संकुचन अर्थात् मन्दी के प्रारम्भ होने की समुचित व्याख्या करने में समर्थ नहीं है।

7-हिक्स के मॉडल के अन्तर्गत निचले मोड़ बिन्दु की व्याख्या को भी विश्वासप्रद नहीं माना गया है। हिक्स के अनुसार स्वायत्त निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप ही निचला मोड़ बिन्दु उत्पन्न होता है जबकि हैरोड ने इस तर्क पर सन्देह व्यक्त किया कि मन्दी के तल पर स्वायत्त निवेश में वृद्धि होगी। उनका विचार था कि मन्दी तो स्वायत्त निवेश को प्रोत्साहित करने के बजाय कम कर सकती है।

8-हिक्स के मॉडल की इस बात के लिए भी आलोचना किया जाता है कि विस्तार की अवस्था की अपेक्षा संकुचन की अवस्था अधिक लम्बी होती है।

9-हिक्स के मॉडल की इस बात के लिए भी आलोचना किया जाता है कि उन्होंने अपने मॉडल में मौद्रिक कारकों की उपेक्षा किया।

अभ्यास प्रश्न

1- निम्न कथनों मे से सत्य या असत्य छाँटिये:-

(क) हिक्स का सिद्धान्त केवल लघु चक्रों की व्याख्या प्रस्तुत करता है। (सत्य/असत्य)

(ख) हिक्स का सिद्धान्त उतार-चढ़ाव की किसी सीमा का उल्लेख नहीं करता है। (सत्य/असत्य)

(ग) हिक्स ने प्रेरित निवेश तथा आय के बीच समय पश्चता को स्वीकार किया। (सत्य/असत्य)

(घ) व्यापार-चक्रों की ऊपरी सीमा का निर्धारण पूर्ण रोजगार से होता है। (सत्य/असत्य)

(ड) हिक्स के मॉडल में अर्थव्यवस्था मूल रूप से सन्तुलन में बनी रहती है। (सत्य/असत्य)

(च) हिक्स के मॉडल में त्वरक ऋणात्मक दिशा में क्रियाशील होता है। (सत्य/असत्य)

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

(क) हिक्स का मॉडल ----- के सिद्धान्त पर आधारित है। (हैरोड /कीन्स/हैन्सन)

(ख) हिक्स ने अपने मॉडल में गुणक तथा त्वरक के मानों को---------माना। (स्थिर/परिवर्तनशील)

(ग) हिक्स द्वारा प्रस्तुत व्यापार-चक्र का सिद्धान्त एक----------सिद्धान्त है। (मौद्रिक/अमौद्रिक)

(घ) हिक्स ने अपने मॉडल में सैम्युल्सन द्वारा प्रस्तुत --------चक्रों को स्वीकार किया। (अवमन्दित/विस्फोटक/नियमित)

(ड) हिक्स ने अपने मॉडल मे t समय के उपभोग को --------समय के आय के रूप मे व्यक्त किया।(t/t-1/t+1)

31.4 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत प्रमुख रूप से यह स्पष्ट किया गया कि हिक्स ने व्यापार-चक्र का जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया वह भी गुणक-त्वरक की अन्तःक्रिया पर ही आधारित है परन्तु इस सिद्धान्त की विशेष ता यह है कि यह सिद्धन्त एक वृद्धिशील अर्थव्यवस्था में होने वाले उतार-चढ़ाव की व्याख्या करने में सफल है। हिक्स ने सैम्युल्सन द्वारा वर्णित आय के विभिन्न प्रवृत्तियों में से केवल 'विस्फोटक चक्रों' वाले प्रवृत्ति की सम्भावना को ही स्वीकार किया परन्तु उन्होंने अपने मॉडल में प्रदर्शित किया

कि इस प्रकार के चक्र भी एक 'ऊपरी' (सीलिंग) तथा 'निचली' (फ्लोर) सीमा के भीतर ही उत्पन्न होंगे।

31.5 शब्दावली

गतिमान सन्तुलनः जब अर्थव्यवस्था के सभी चर परिवर्तनशील होते हुए भी संतुलन में बने रहते हैं तो ऐसी स्थिति को गतिमान संतुलन कहा जाता है। वस्तुतः इसका अभिप्राय उस स्थिति से होता है जिसमें सभी चरों में एक समान दर से परिवर्तन होता है।

प्रावैगिक घटकः इसका अभिप्राय उन सभी घटकों से होता है जो अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन व्यवहार को निर्धारित करते हैं। वस्तुतः इसके अन्तर्गत उन सभी घटकों को शामिल किया जाता है जो दीर्घकाल से सम्बन्धित होते हैं जैसे- जनसंख्या, तकनीकी, पूँजी संचय इत्यादि।

स्वायत्त निवेशः इसका अभिप्राय उन सभी निवेश से होता है जो आय में होने वाले परिवर्तन से स्वतन्त्र होते हैं। अर्थात् आय में परिवर्तन होने पर यदि निवेश में परिवर्तन न हो तो वह निवेश स्वायत्त निवेश कहलाता है।

प्रेरित निवेशः इसका अभिप्राय उन सभी निवेश से होता है जो आय में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर होते हैं। अर्थात् आय में परिवर्तन होने पर यदि निवेश में परिवर्तन हो जाय तो वह निवेश प्रेरित निवेश कहलाता है।

उत्कर्षःइसका अभिप्राय अर्थव्यवस्था में होने वाले उत्तरोत्तर रूप से विस्तार की अवस्था से होता है।

अवनतिः इसका अभिप्राय अर्थव्यवस्था में होने वाले उत्तरोत्तर रूप से संकुचन की अवस्था से होता है।

31.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (क) असत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्य, (घ) सत्य, (ड) सत्य, (च) असत्य

(2) (क) हैरोड , (ख) स्थिर, (ग) अमौद्रिक, (घ) विस्फोटक, (ड) t-1

31.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Hicks, J.R. (1956): *A Contribution to the Theory of the Trade Cycle.*

Shackle, G.L.S. (1965): *A Scheme of Economic Theory.*

Surrey, M.J.C. (1976): *Macroeconomic Themes,* Oxford University Press.

Dernburg, T.F. and D.M. McDougall (1963): *Macroeconomics.*

Ackely G. (1978): *Macro Economics – Theory and Policy*, Macmillan, New York.

31.8 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

Ahuja H.L. (2010): *Principles of Macro Economics*, S Chand, New Delhi.

Jhingan M.L. (2004): *Macro Economic Theory*, Vrinda publications, Delhi.

Seth M.L. (2001): *Macroeconomics*, Laxksmi Narain Agarawal Educational Publishers, Agra.

Rana, K.C. and K.N. Verma (2004): *Macro Economic Analysis*, Vishall Publishing Co., Jalandhar, India.

झिंगन एम एल ;2007द्धः समष्टि अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन, दिल्ली।

31.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- हिक्स के सिद्धान्त की प्रमुख बातों का उल्लेख करते हुए इसकी आधारभूत मान्यताओं को स्पष्ट कीजिए।

2- हिक्स का व्यापार चक्र का सिद्धान्त सैम्युल्सन के सिद्धान्त के ऊपर एक सुधार है। इस तथ्य को स्पष्ट कीजिए।

3- गुणक-त्वरक की क्रियाशीलता के आधार पर व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

4- व्यापार-चक्र के सन्दर्भ में हिक्स के मॉडल की समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 32:- काल्डर का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त

इकाई संरचना

32.1 प्रस्तावना
32.2 उद्देश्य
32.3 रेखीय बचत तथा निवेश फलन
32.4 अरेखीय बचत तथा निवेश फलन
32.5 काल्डर का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त
32.5.1 सिद्धान्त के आधारभूत घटक
32.5.2 सिद्धान्त की मान्यताएं
32.5.3 व्यापार-चक्र की व्याख्या
32.6 सारांश
32.7 शब्दावली
32.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
32.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
32.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
32.11 निबन्धात्मक प्रश्न

32.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों के अन्तर्गत व्यापार-चक्र की व्याख्या के लिए जिन सिद्धान्तों का अध्ययन किया गया उन सिद्धान्तों में एक प्रमुख त्रुटि यह है कि इन सभी सिद्धान्तों में व्यापार-चक्र के विशलेश ण के अन्तर्गत पूँजी संचय के उत्पन्न होने वाले प्रभाव की उपेक्षा की गयी। काल्डर ने व्यापार-चक्र का जो मॉडल विकसित किया उसकी सबसे प्रमुख विशेष ता यह है कि यह मॉडल इस त्रुटि को दूर कर देता है। काल्डर ने बचत और निवेश की कीनीसियन विचारधारा के आधार पर व्यापार-चक्र के मॉडल को निर्मित किया। उनके अनुसार चक्र दबाओं का प्रभाव है जो अर्थव्यवस्था की नियोजित बचत और निवेश को समानता की ओर ले जाता है तथा नियोजित बचत एवं निवेश के बीच का अन्तर ही चक्रों को उत्पन्न करता है। परन्तु काल्डर ने अपने मॉडल में एक आवश्यक शर्त का उल्लेख किया कि चक्र उत्पन्न होने के लिए बचत तथा निवेश फलन का स्वरूप अरेखीय होना चाहिए। प्रश्न यह उठता है कि रेखीय तथा अरेखीय बचत एवं निवेश फलन क्या होते हैं ? इनकी क्या विशेष ताएं होती हैं ? अतः काल्डर के मॉडल पर विचार करने से पहले इनको समझना होगा।

32.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

- बता सकेंगे कि रेखीय बचत तथा निवेश फलन की क्या विशेष ता होती है।
- बता सकेंगे कि अरेखीय बचत तथा निवेश फलन की क्या विशेष ता होती है तथा आर्थिक अस्थिरता को स्पष्ट करने में ये फलन किस प्रकार सहायक होते हैं।
- बता सकेंगे कि काल्डर के आधारभूत घटक क्या हैं तथा यह सिद्धान्त किन मूलभूत मान्यताओं पर आधारित है।
- समझा सकेंगे कि आर्थिक उतार-चढ़ाव की प्रक्रिया का काल्डर का मॉडल किस प्रकार व्याख्या प्रस्तुत करता है।

32.3 रेखीय बचत तथा निवेश फलनः

रेखीय बचत एवं निवेश फलन का तात्पर्य ऐसे फलनात्मक सम्बन्ध से होता है जिसके अन्तर्गत आय के सभी स्तरों पर बचत तथा निवेश की सीमान्त प्रवृत्ति स्थिर रहती है। इसका अभिप्राय यह है कि आय में परिवर्तन होने पर बचत तथा निवेश में स्थिर गति से परिवर्तन होता है। चित्र 1-अ में रेखीय बचत फलन तथा चित्र 1-ब में रेखीय निवेश फलन को दर्शाया गया है।

चित्र 1-अ

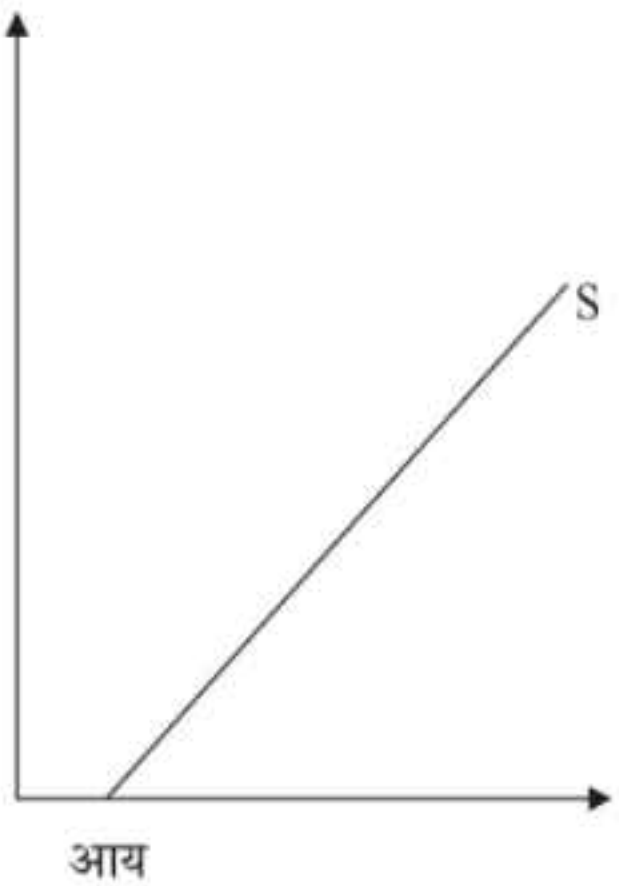

चित्र 1-ब

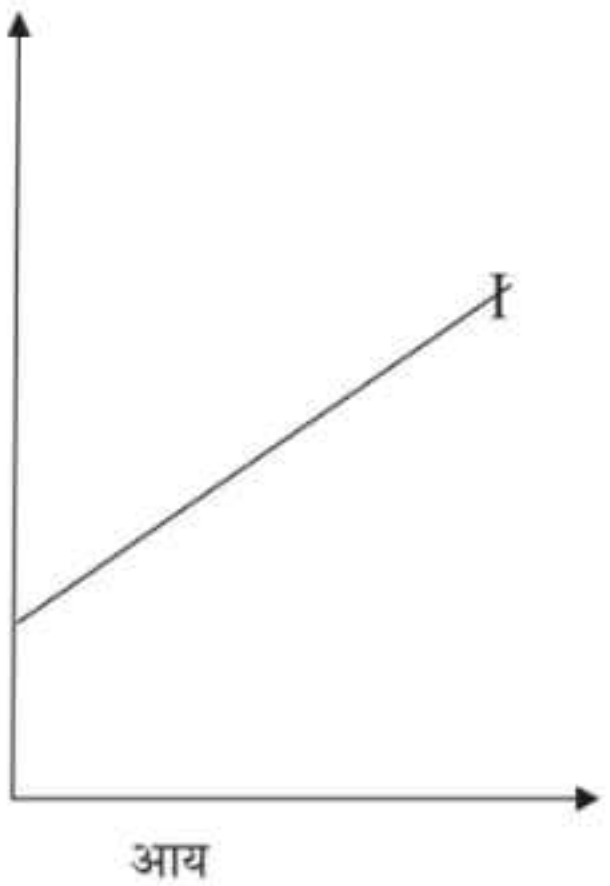

रेखीय बचत-निवेश फलन की एक प्रमुख विशेष ता यह होती है कि इनके आधार पर जो संतुलन प्राप्त होता है वह 'एकल संतुलन' की प्रकृति का होता है जैसा कि चित्र संख्या 2-अ तथा 2-ब में प्रदर्शित है। क्योंकि, दोनों ही चित्रों यह से स्पष्ट है कि केवल एक ही बिन्दु ऐसा है जहाँ पर बचत तथा नवेश आपस में बराबर हैं तथा यह स्थिति Y0 आय के स्तर पर प्राप्त होती है। परन्तु, दोनों चित्रों में एक अन्तर है और वह यह कि पहले चित्र में बचत फलन की ढाल निवेश फलन की ढाल से अधिक है जबकि दूसरे चित्र में निवेश फलन की ढाल बचत फलन की ढाल से अधिक है। अर्थात् चित्र 2-अ में $\delta S/\delta Y > \delta I/\delta Y$ जबकि है चित्र 2-ब में $\delta I/\delta Y > \delta S/\delta Y$ की स्थिति है। इसका परिणाम यह होता है कि चित्र 2-अ में जो संतुलन प्रदर्शित किया गया है वह 'स्थिर संतुलन' को व्यक्त करता है जबकि चित्र 2-ब में जो संतुलन प्रदर्शित किया गया है वह 'अस्थिर संतुलन' को व्यक्त करता है।

इसका कारण यह है कि चित्र 2-अ में संतुलन स्थिति (Y0) के दायीं तरफ निवेश की मॉग बचत की पूर्ति से कम है। अतः अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न होने पर संतुलन स्थिति (Y0) के दायीं तरफ की स्थिति आय पर संकुचन उत्पन्न करेगी और आय को संतुलन स्थिति (Y0) की तरफ अग्रसर करेगी। दूसरी तरफ संतुलन स्थिति ;ल्0द्ध के बायीं तरफ निवेश की मॉग बचत की पूर्ति से अधिक है। अतः अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न होने पर संतुलन स्थिति (Y0) के बायीं तरफ की स्थिति

आय पर प्रसार उत्पन्न करेगी और आय को संतुलन स्थिति (Y0) की तरफ अग्रसर करेगी। अतः चित्र 2-अ में प्राप्त संतुलन स्थिर प्रकृति का है।

दूसरी तरफ चित्र 2-ब में संतुलन स्थिति (Y0) के दायीं तरफ निवेश की माँग बचत की पूर्ति से अधिक है। अतः अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न होने पर संतुलन स्थिति (Y0) के दायीं तरफ की स्थिति आय पर प्रसार उत्पन्न करेगी और अर्थव्यवस्था को संतुलन स्थिति (Y0) से और दूर ले जायेगी। दूसरी तरफ संतुलन स्थिति (Y0) के बायीं तरफ निवेश की माँग बचत की पूर्ति से कम है। अतः अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न होने पर संतुलन स्थिति (Y0) के बायीं तरफ की स्थिति आय पर संकुचन उत्पन्न करेगी और अर्थव्यवस्था को संतुलन स्थिति (Y0) से और दूर ले जायेगी। अतः चित्र 2-ब में प्राप्त संतुलन अस्थिर प्रकृति का है।

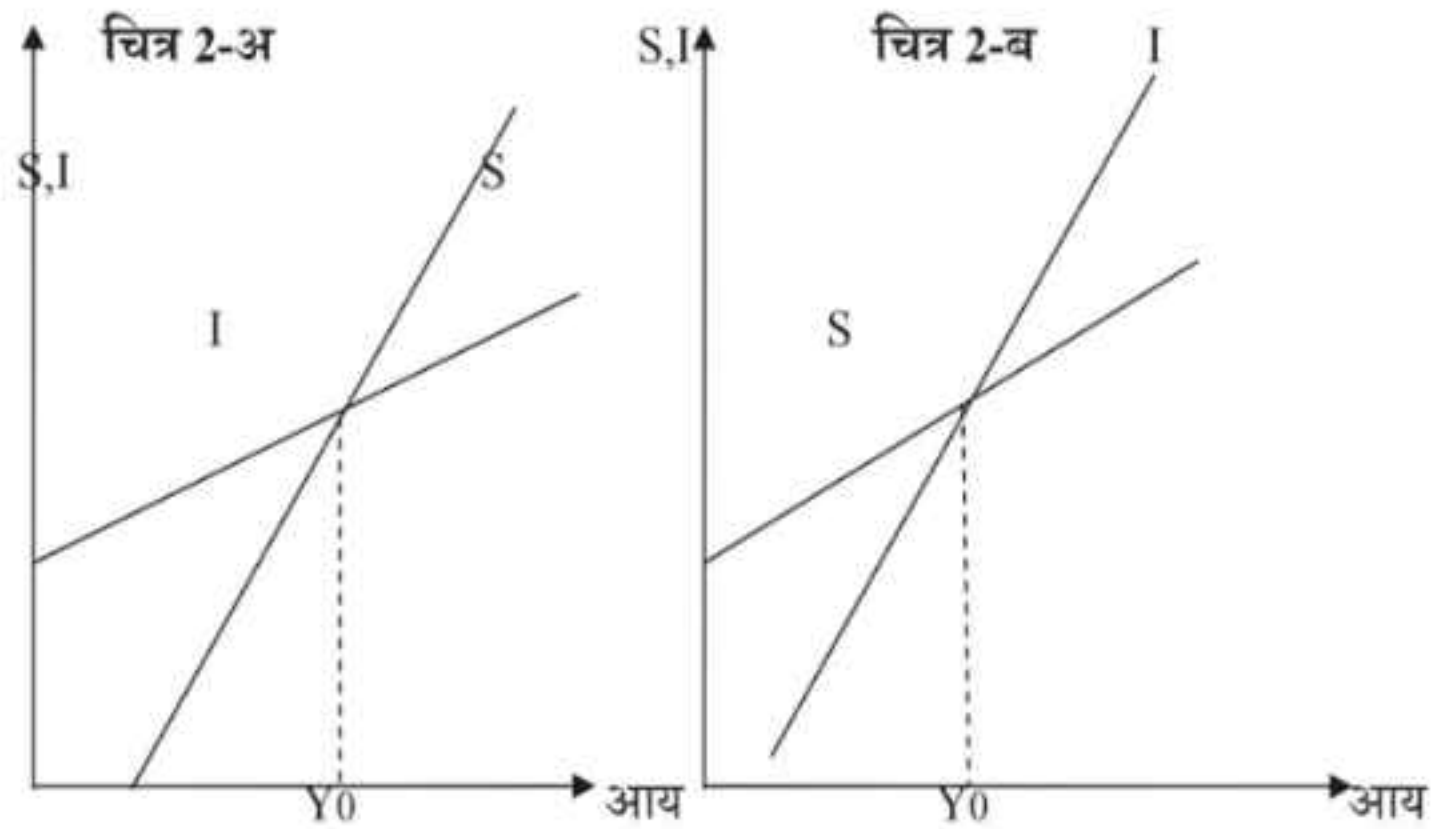

इस प्रकार चित्र 2-ब से यह स्पष्ट है कि जब बचत तथा निवेश फलन रेखीय प्रकृति के होंगे तो अर्थव्यस्था में असंतुलन होने पर अस्थिरता तो उत्पन्न होगी परन्तु यह अस्थिरता चक्रीय परिवर्तन के रूप में नहीं होगें ।

32.4 अरेखीय बचत तथा निवेश फलनः

अरेखीय बचत एवं निवेश फलन का तात्पर्य ऐसे फलनात्मक सम्बन्ध से होता है जिसके अन्तर्गत आय के विभिन्न स्तरों पर बचत तथा निवेश की सीमान्त प्रवृत्ति परिवर्तित होती रहती है। इसका अभिप्राय यह है कि आय में परिवर्तन होने पर बचत तथा निवेश में परिवर्तनशील गति से परिवर्तन होता है। चित्र 3-अ में अरेखीय बचत फलन तथा चित्र 3-ब में अरेखीय निवेश फलन को दर्शाया गया है। चित्र 3-अ प्रदर्शित करता है कि आय के अत्यन्त निम्न स्तर पर बचत की सीमान्त प्रवृत्ति ($\delta S/\delta Y$) ज्यादे है जबकि आय के मध्य स्तर पर यह अपेक्षाकृत कम हो जाती है और आय के

उच्च स्तर पर यह पुनः अधिक हो जाती है। जिसका अभिप्राय यह है कि आय के सामान्य स्तरों पर बचत में वृद्धि कम दर से होती है जबकि आय के निम्न एवं उच्च स्तरों पर बचत में वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक दर से होती है।

चित्र 3-ब प्रदर्शित करता है कि निवेश की सीमान्त प्रवृत्ति ($\delta S/\delta Y$) आय के निम्न स्तर पर अत्यन्त कम है जबकि आय के मध्य स्तर पर यह अपेक्षाकृत अधिक है और आय के उच्च स्तर पर यह पुनः यह कम हो जाती है। जिसका अभिप्राय यह है कि आय के सामान्य स्तरों पर निवेश में वृद्धि अधिक दर से होती है जबकि आय के निम्न एवं उच्च स्तरों पर निवेश में वृद्धि अपेक्षाकृत कम दर से होती है। इसको स्पष्ट करते हुए काल्डर ने यह मत व्यक्त किया कि आय के निम्न स्तर पर अर्थव्यवस्था में अप्रयुक्त क्षमता ज्यादे होती है जो निवेशकों को निवेश के लिए हतोत्साहित करती है। निवेश फलन का मध्य भाग आय में प्रसार की अवस्था को व्यक्त करता है जिसके अन्तर्गत निवेशकों को प्राप्त होने वाले लाभ की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए यह अवस्था निवेशकों को ज्यादा निवेश के लिए प्रोत्साहित करती है। आय के उच्च स्तर पर, जैसे ही पूर्णरोजगार की प्राप्ति हो जाती है, निवेश की लागत बढ़ने लगती है और इसके फलस्वरूप निवेश क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होता है।

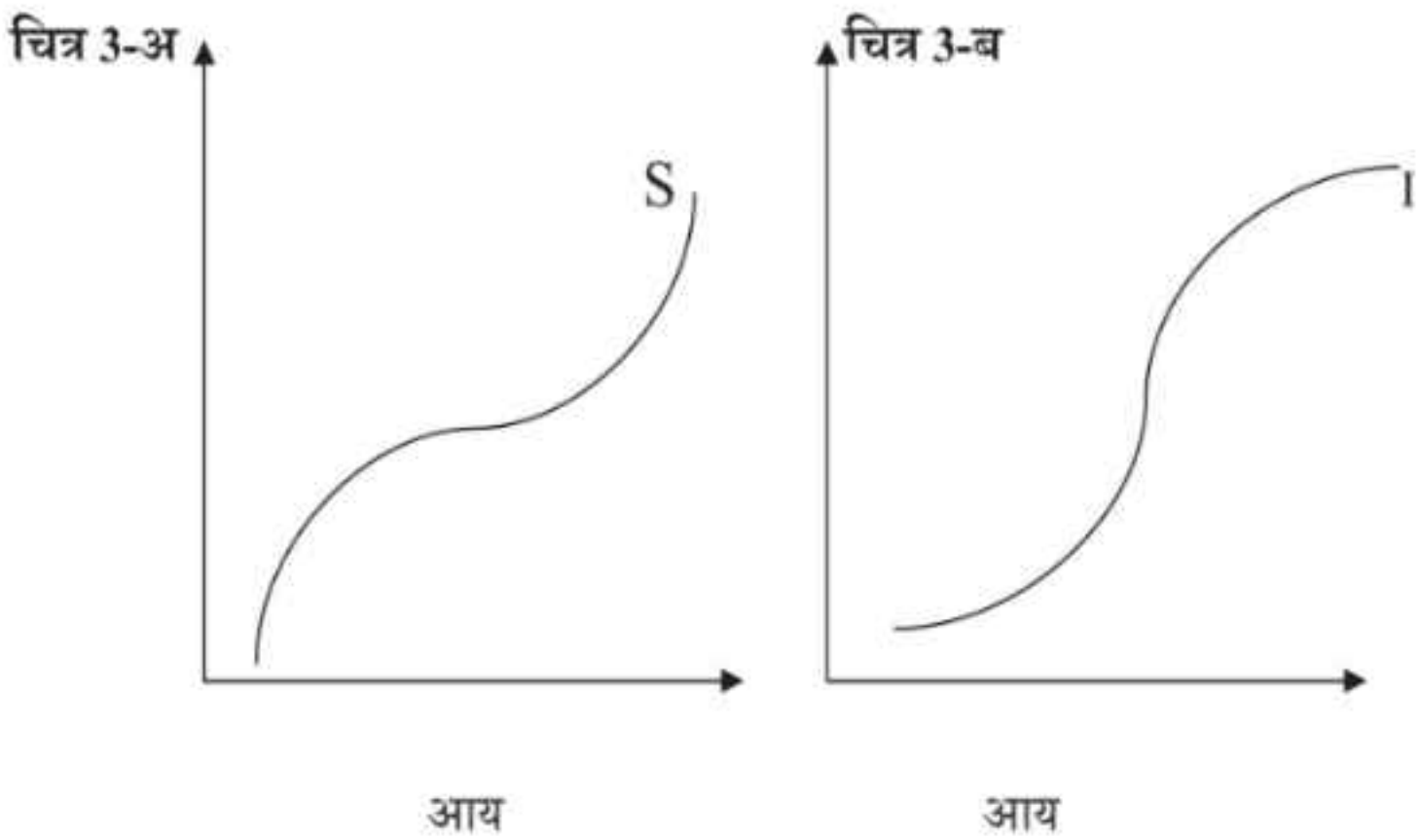

32.5 काल्डर का व्यापार-चक्र का सिद्धान्त

निकोलस काल्डर ने बचत और निवेश की कीनीसियन विचारधारा के आधार पर व्यापार-चक्र के मॉडल को निर्मित किया। उनके अनुसार चक्र दबाओं का प्रभाव है जो अर्थव्यवस्था की नियोजित बचत और निवेश को समानता की ओर ले जाता है तथा नियोजित बचत एवं नियोजित निवेश के बीच का अन्तर ही अर्थव्यवस्था में चक्रीय परिवर्तनों को उत्पन्न करता है। काल्डर ने अपने मॉडल

में चक्रों के उत्पन्न होने के लिए प्रमुख रूप से पूँजी स्टॉक में होने वाले परिवर्तन को ही उत्तरदायी माना तथा इसी के आधर पर व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या प्रस्तुत किया। काल्डर ने अपने मॉडल में अरेखीय बचत तथा निवेश फलन के आधार पर चक्रीय परिवर्तनों की व्याख्या प्रस्तुत किया।

32.5.1 सिद्धान्त के आधारभूत घटक- काल्डर ने व्यापार-चक्र का जो अपना मॉडल विकसित किया वह दो प्रमुख घटकों पर आधारित है। ये दो घटक निम्नलिखित हैः-

- बचत तथा निवेश फलन की प्रकृतिः काल्डर ने अपने मॉडल में चक्रीय परिवर्तनों की व्याख्या अरेखीय बचत तथा निवेश फलन के आधार पर किया।
- पूँजी संचय की प्रक्रियाः काल्डर ने वस्तुतः पूँजी संचय की प्रक्रिया के आधार पर ही व्यापार-चक्र के विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या प्रस्तुत किया।

32.5.2 सिद्धान्त की मान्यताएं

1-काल्डर ने अपने मॉडल में बचत तथा निवेश दोनों को आय तथा पूँजी स्टॉक के फलन के रूप में व्यक्त किया। अर्थात्

$$I = f(Y,K)$$

$$S = f(Y,K)$$

जहाँ पर I तथा S क्रमशः निवेश एवं बचत को और Y तथा K क्रमशः आय एवं पूँजी स्टॉक को व्यक्त करते हैं। f फलनात्मक संबन्ध को व्यक्त करता है।

2-काल्डर ने अपने मॉडल में यह माना कि निवेश तथा बचत दोनों आय से धनात्मक रूप में सम्बन्धित हैं। अर्थात् आय में वृद्धि होने पर निवेश तथा बचत दानों में वृद्धि होती है जबकि आय में कमी होने पर निवेश तथा बचत दानों में कमी होती है। गणितीय रूप में इस मान्यता को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

$$\delta I/\delta Y > 0, \quad \delta S/\delta Y >$$

3- निवेश तथा बचत का पूँजी स्टॉक के साथ सम्बन्ध के सन्दर्भ में काल्डर ने यह धारणा व्यक्त किया कि पूँजी स्टॉक बचत से तो धनात्मक रूप से सम्बन्धित होता है जबकि निवेश के साथ इसका सम्बन्ध ऋणात्मक होता है। अर्थात् पूँजी स्टॉक में वृद्धि होने पर बचत में तो वृद्धि होती है परन्तु निवेश में कमी होती है। दूसरी तरफ पूँजी स्टॉक

में कमी होने पर बचत में तो कमी होती है परन्तु निवेश में वृद्धि होती है। गणितीय रूप में इस मान्यता को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

$$\delta I/\delta K < 0, \quad \delta S/\delta K > 0$$

32.5.3 व्यापार-चक्र की व्याख्या:-काल्डर ने अपने मॉडल में अरेखीय बचत तथा अरेखीय निवेश फलन पर एक साथ विचार किया और इसके माध्यम से व्यापार-चक्र की घटना को स्पष्ट करने का प्रयास किया। सर्वप्रथम उन्होंने यह स्पष्ट किया कि यदि अरेखीय बचत तथा अरेखीय निवेश फलन पर एक साथ विचार किया जाय तो बचत तथा निवेश के बीच जो संतुलन प्राप्त होगा वह 'बहुल संतुलन' की प्रकृति का होगा जैसा कि चित्र-4 में प्रदर्शित है। चित्र में बचत तथा निवेश के बीच तीन संतुलन की स्थितियां A, B तथा C प्राप्त हैं। परन्तु एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि बिन्दु A तथा B स्थिर संतुलन को व्यक्त करते हैं जबकि बिन्दु C अस्थिर संतुलन की स्थिति को व्यक्त करता है। (इसका कारण यह है कि बिन्दु A तथा B पर $\delta S/\delta Y > \delta I/\delta Y$ जबकि है बिन्दु C पर $\delta I/\delta Y > \delta S/\delta Y$ की स्थिति है और चित्र 2-अ तथा 2-ब में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यदि $\delta S/\delta Y > \delta I/\delta Y$ तो प्राप्त संतुलन स्थिर प्रकृति का होगा जबकि यदि $\delta I/\delta Y > \delta S/\delta Y$ तो प्राप्त संतुलन अस्थिर प्रकृति का होगा।)

चित्र-4 में प्रदर्शित स्थिति के द्वारा आर्थिक क्रियाओं में उत्पन्न होने वाले उतार-चढ़ाव को समझा जा सकता है। यदि अर्थव्यवस्था में आय का स्तर (Y_0) से कम है या Y1 तथा Y2 के बीच है तो ऐसी परिस्थिति में निवेश की मॉग बचत की पूर्ति से अधिक होगी। दूसरी तरफ यदि अर्थव्यवस्था में आय का स्तर Y0 से अधिक है या Y0 तथा Y1 के बीच है तो ऐसी परिस्थिति में निवेश की मॉग बचत की पूर्ति से कम होगी। यदि अर्थव्यवस्था में आय का प्रारम्भिक स्तर Y1 है तो इससे थोड़ा सा भी विचलन होने पर आय में संकुचन अथवा विस्तार उत्पन्न होगा। जैसे, यदि आय का स्तर Y1 से कम हो जाय तो ऐसी परिस्थिति में, चूँकि निवेश की मॉग बचत की पूर्ति से कम है, आय में संकुचन उत्पन्न होगा और यह संकुचन की प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक आय का स्तर Y0 पर, अर्थात् स्थिर संतुलन A की स्थिति पर नहीं पहुँच जाता। इसी प्रकार, यदि आय का स्तर Y1 से अधिक हो जाय तो ऐसी परिस्थिति में, चूँकि निवेश की मॉग बचत की पूर्ति से अधिक है, आय में प्रसार उत्पन्न होगा और यह प्रसार की प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक आय का स्तर Y2 पर, अर्थात् स्थिर संतुलन B की स्थिति पर नहीं पहुँच जाता।

चित्र-4

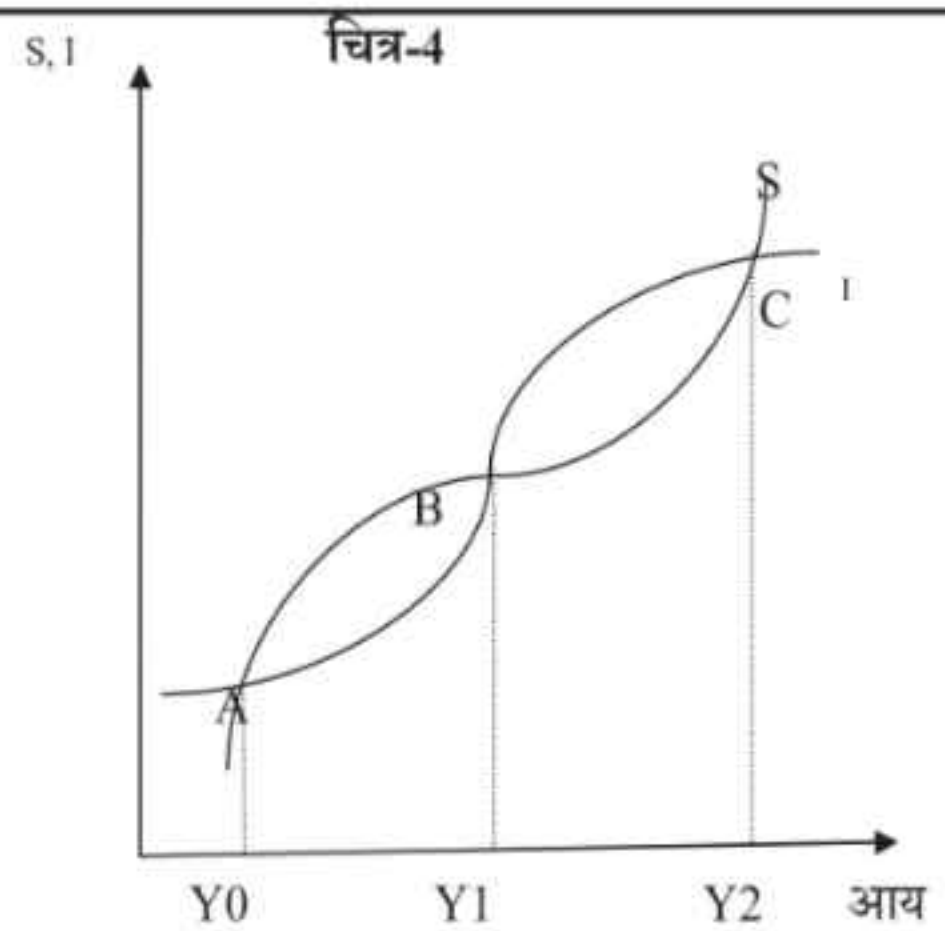

काल्डर ने यह विचार व्यक्त किया कि चित्र-4 में प्रदर्शित प्रक्रिया चक्रीय परिवर्तनों को पूरी तरह से स्पष्ट नहीं करते हैं। अपने विश्लेषण के अन्तर्गत उन्होंने यह विचार प्रस्तुत किया चक्रीय परिवर्तनों को पूरी तरह से स्पष्ट तभी किया जा सकता है जब दीर्घकाल में A तथा B, जो अल्पकाल में स्थिर संतुलन को व्यक्त करते हैं, अस्थिर संतुलन के रूप में परिवर्तित हो जाएं। उनका यह मानना था कि ऐसा तभी संभव है जब 'पूँजी संचय की प्रक्रिया' पर विचार किया जाय। क्योंकि पूँजी स्टॉक में परिवर्तन बचत तथा निवेश में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। पूँजी स्टॉक में परिवर्तन का बचत तथा निवेश पर उत्पन्न होने वाले प्रभाव को काल्डर ने बचत तथा निवेश फलनों में विववर्तन के माध्यम से प्रदर्शित किया जैसा कि चित्र 5-अ तथा 5-ब में प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 5-अ

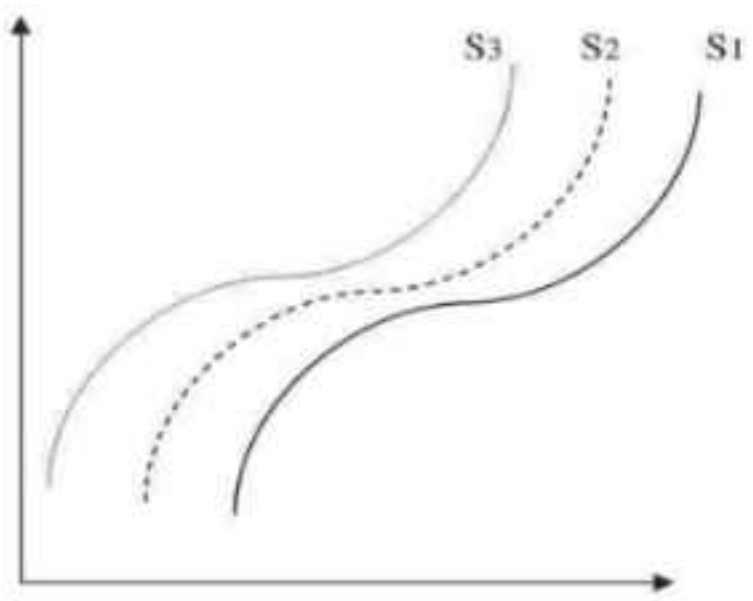

चित्र 5-ब

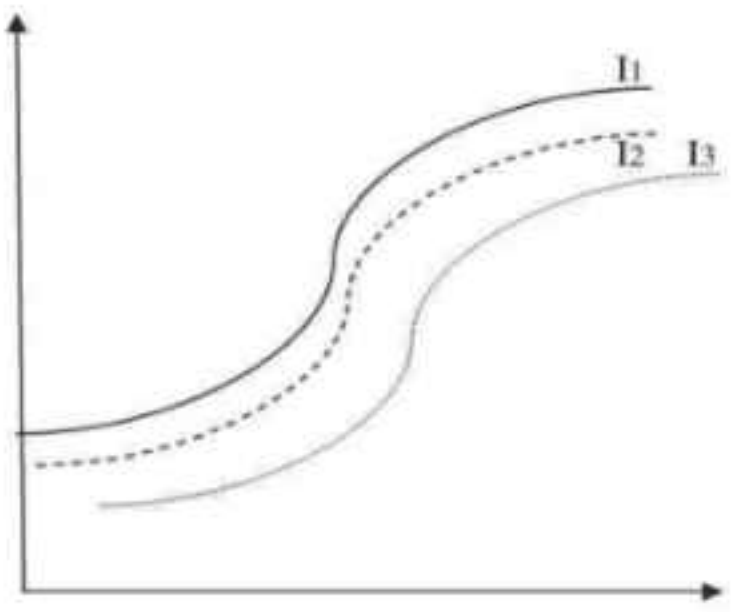

चित्र 5-अ में पूँजी स्टॉक में परिवर्तन का बचत पर उत्पन्न होने वाले प्रभाव को जबकि चित्र 5-ब में पूँजी स्टॉक में परिवर्तन का निवेश पर उत्पन्न होने वाले प्रभाव को प्रदर्शित किया गया है। इन चित्रों में पूँजी स्टॉक की 100, 200 तथा 300 इकाईयों के सापेक्ष बचत फलनों को क्रमशः S1, S2 एवं S3 से व्यक्त किया गया है जबकि निवेश फलनों को क्रमशः I_1, I_2 एवं I_3 से व्यक्त किया गया है। इन चित्रों से स्पष्ट है कि पूँजी स्टॉक में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है बचत फलन तो ऊपर की तरफ विववर्तित होता है जबकि निवेश फलन नीचे की तरफ विववर्तित होता है। इसका कारण यह है कि काल्डर ने अपने मॉडल में यह माना कि पूँजी स्टॉक बचत से तो धनात्मक रूप से सम्बन्धित होता है जबकि निवेश के साथ इसका सम्बन्ध ऋणात्मक होता है। बचत फलन तथा निवेश फलन के पूँजी स्टॉक के सापेक्ष इस व्यवहार के आधार पर व्यापार-चक्र के विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

संकुचन की अवस्था - यदि मान लिया जाय कि अर्थव्यवस्था आय के एक ऊँचे स्तर (Y_2) पर है। प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार आय का स्तर संकुचित होकर Y_2 स्तर के नीचे गिरता है ? चूँकि विस्तार की प्रक्रिया में, जिसके माध्यम से आय का Y_2 स्तर प्राप्त होता है, पूँजी स्टॉक की मात्रा में वृद्धि होती रहती है। अतः इसका प्रभाव यह होता है कि बचत में तो वृद्धि होती है जबकि निवेश में कमी होती है। बचत तथा निवेश में होने वाले इन परिवर्तनों को चित्र-6 में बचत फलन तथा निवेश फलन में विववर्तन के माध्यम से व्यक्त किया गया है। काल्डर ने अपने मॉडल में यह प्रदर्शित किया कि बचत तथा निवेश फलनों में होने वाले विववर्तन ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं कि बचत तथा निवेश के बीच स्थापित संतुलन की प्रकृति स्थिर संतुलन से अस्थिर संतुलन के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह बदली हुयी परिस्थिति आय के स्तर को नीचे की तरफ ले जाती है और अन्ततः आय के एक निम्न स्तर पर संतुलन को स्थापित करती है।

उपरोक्त प्रक्रिया को चित्र-6 के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। इन चित्रों में पूँजी स्टॉक की 100, 200 तथा 300 इकाईयों के सापेक्ष बचत फलनों को क्रमशः S1, S2 एवं S3 से व्यक्त किया गया है जबकि निवेश फलनों को क्रमशः I1, I2 एवं I3 से व्यक्त किया गया है। अतः प्रारम्भिक संतुलन के स्तर पर जबकि आय का स्तर Y2 है तथा पूँजी स्टॉक की मात्रा 100 इकाई के बराबर है। स्पष्ट है कि Y2 एक स्थिर संतुलन के आय को व्यक्त करता है। परन्तु जब पूँजी स्टॉक बढ़कर 200 इकाई के बराबर हो जाता है तो बचत फलन ऊपर की तरफ जबकि निवेश फलन नीचे की तरफ विववर्तित हो जाता है। अतः अब आय का स्तर Y1 पर निर्धारित होता है जो Y2 आय के स्तर से कम है। पुनः जब पूँजी स्टॉक बढ़कर 300 इकाई के बराबर हो जाता है तो बचत फलन और ऊपर की तरफ जबकि निवेश फलन और नीचे की तरफ विववर्तित हो जाता है। अतः अब आय का स्तर Y0 पर निर्धारित होता है जो Y1 आय के स्तर से और कम है।

चित्र- 6

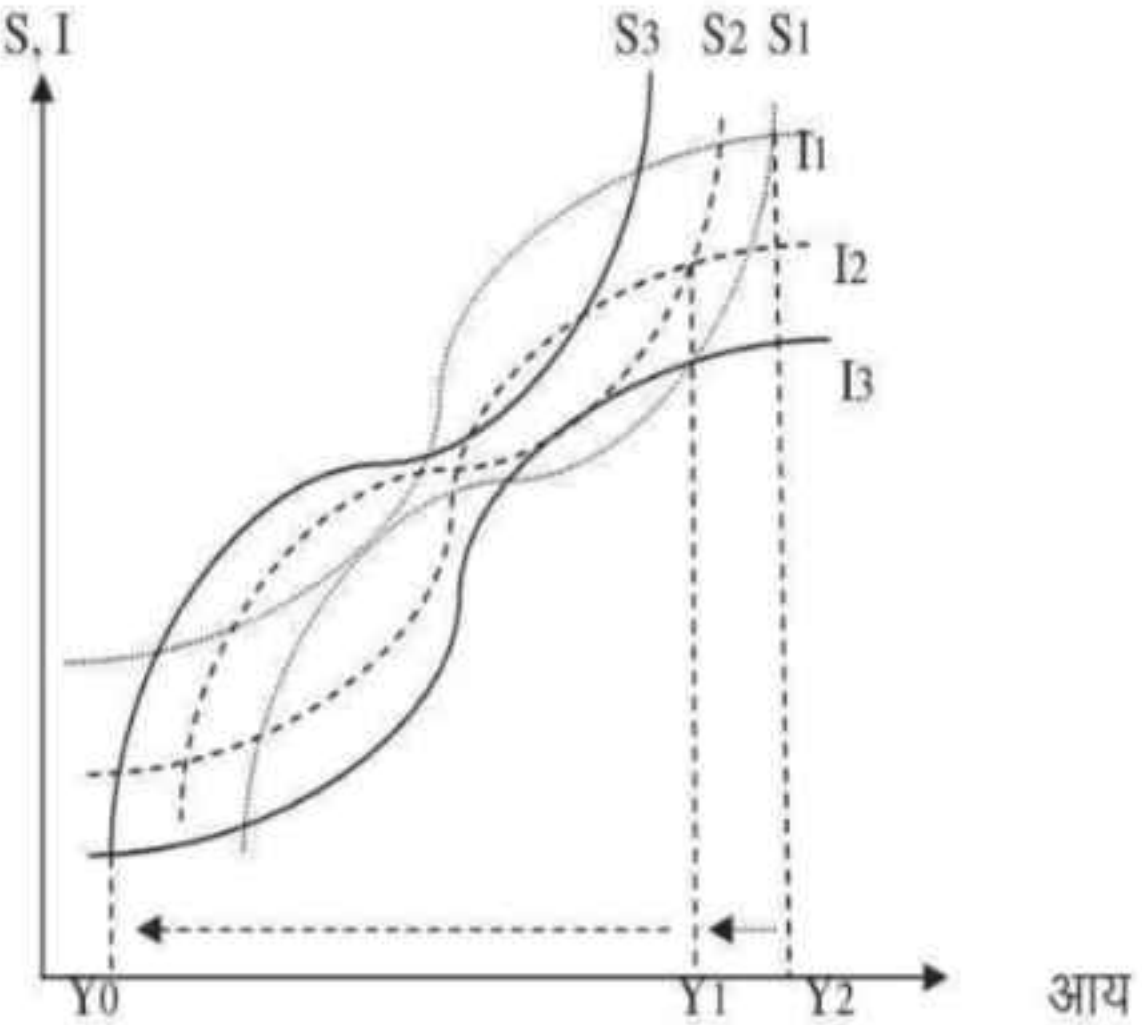

विस्तार की अवस्था:यदि मान लिया जाय कि अर्थव्यवस्था आय के एक निम्न स्तर (Y_0)पर है। प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार आय का स्तर में विस्तार होकर Y_0 स्तर के ऊपर उठता है ? चूँकि संकुचन की प्रक्रिया में, जिसके माध्यम से आय का Y_0 स्तर प्राप्त होता है, पूँजी स्टॉक की मात्रा में कमी होती रहती है। अतः इसका प्रभाव यह होता है कि बचत में तो कमी होती है जबकि निवेश में वृद्धि होती है। बचत तथा निवेश में होने वाले इन परिवर्तनों को चित्र-7 में बचत फलन तथा निवेश फलन में विववर्तन के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

चित्र-7 में प्रारम्भिक संतुलन के स्तर पर जबकि आय का स्तर Y_0 है तथा पूँजी स्टॉक की मात्रा 300 इकाई के बराबर है। स्पष्ट है कि Y_0 एक स्थिर संतुलन के आय को व्यक्त करता है। परन्तु जब पूँजी स्टॉक घटकर 200 इकाई के बराबर हो जाता है तो बचत फलन नीचे की तरफ जबकि निवेश फलन ऊपर की तरफ विववर्तित हो जाता है। अतः अब आय का स्तर Y_1 पर निर्धारित होता है जो Y_0 से अधिक है। पुनः जब पूँजी स्टॉक घटकर 100 इकाई के बराबर हो जाता है तो बचत फलन और नीचे की तरफ जबकि निवेश फलन और ऊपर की तरफ विववर्तित हो जाता है। अतः अब आय का स्तर Y_2 पर निर्धारित होता है जो Y_1 से और अधिक है।

चित्र-7

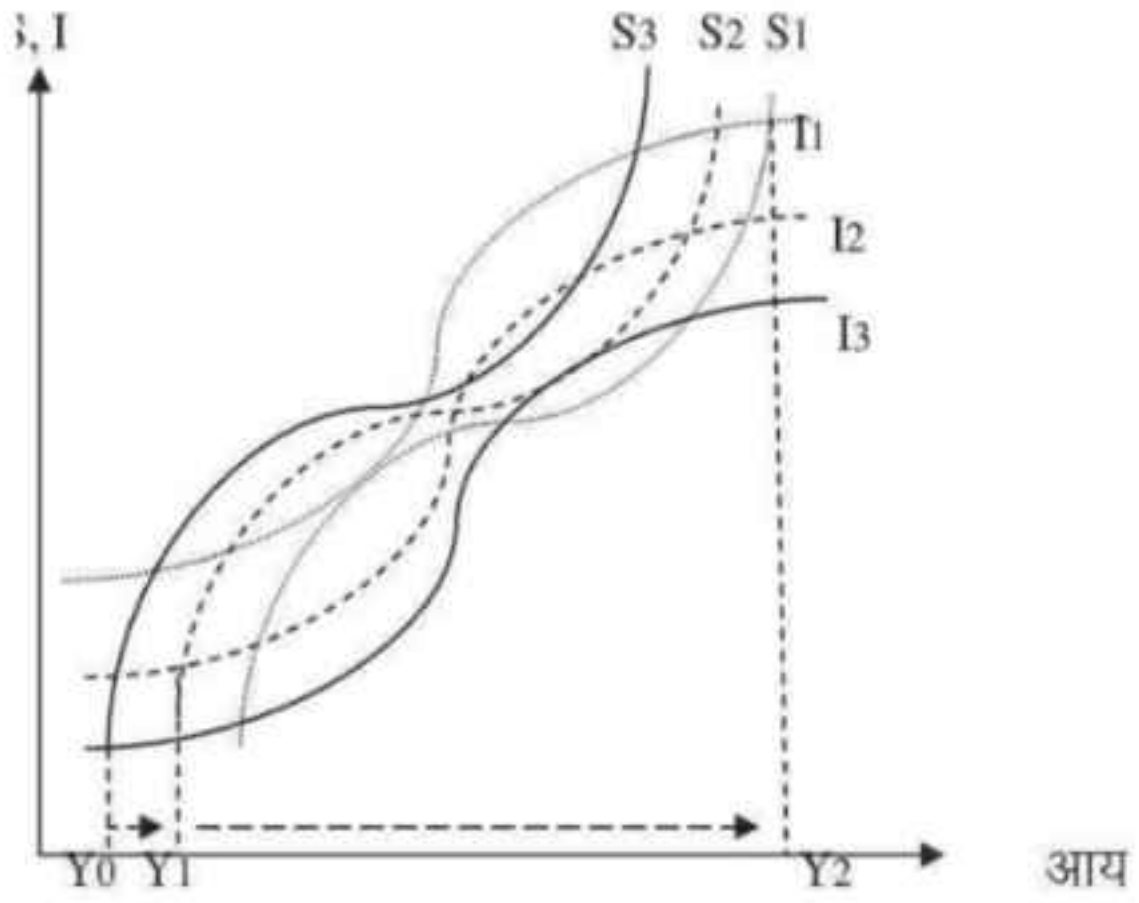

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि काल्डर के मॉडल में पूँजी संचय तथा विसंचय की प्रक्रिया ही बचत फलन तथा निवेश फलन में विववर्तन के माध्यम से आर्थिक क्रियाओं में संकुचन तथा विस्तार की अवस्था को उत्पन्न करते हैं।

सिद्धान्त की समीक्षा:-उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि काल्डर ने व्यापार-चक्र का एक ऐसा मॉडल विकसित किया जो स्व-जनित कारकों के आधार पर चक्रीय परिवर्तनों की व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोंण से इस सिद्धान्त को उन सिद्धान्तों की तुलना में एक उत्तम सिद्धान्त माना जाता है जो चक्रीय परिवर्तनों की व्याख्या बाह्य कारकों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। फिर भी इस सिद्धान्त की भी कुछ त्रुटियां जिनके आधार पर इसकी आलोचना की जाती है। ये आलोचनाएं निम्नवत् हैं:-

1-इस मॉडल के अन्तर्गत चक्रीय परिवर्तनों में संकुचन तथा विस्तार की प्रवस्थाओं में आवर्तीयता तथा समरूपता का अभाव पाया जाता है।

2-यह मॉडल अपने विश्लेषण में अस्पष्ट रूप से गुणक की भूमिका को तो शामिल करता है परन्तु त्वरक की भूमिका की पूरी तरह से उपेक्षा करता है।

3-यह मॉडल भी सैम्युल्सन तथा हिक्स की ही तरह व्यापार-चक्र की व्याख्या में मौद्रिक कारकों की उपेक्षा करता है।

4-यह मॉडल भी सैम्युल्सन तथा हिक्स की ही तरह व्यापारिक प्रत्याशाओं की व्यापार-चक्र पर उत्पन्न होने वाले प्रभावों को अपने विश्लेषण में शामिल नहीं करता है।

अभ्यास प्रश्न

1- निम्न कथनों मे से सत्य या असत्य छॉटिये:-

(क) काल्डर का सिद्धान्त रेखीय बचत फलन के आधार पर चक्रीय परिवर्तनों की व्याख्या प्रस्तुत करता है। (सत्य/असत्य)

(ख) अरेखीय बचत फलन में बचत की सीमान्त प्रवृत्ति स्थिर होता है। (सत्य/असत्य)

(ग) काल्डर के मॉडल में बचत, पूँजी स्टॉक से धनात्मक रूप से सम्बन्धित होती है। (सत्य/असत्य)

(घ) काल्डर के मॉडल में निवेश, पूँजी स्टॉक से धनात्मक रूप से सम्बन्धित होती है। (सत्य/असत्य)

(ड) काल्डर के मॉडल में निवेश, आय से धनात्मक रूप से सम्बन्धित होती है। (सत्य/असत्य)

2- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

(क) काल्डर का मॉडल ----- के सिद्धान्त पर आधारित है। (हैरोड /कीन्स/हैन्सन)

(ख) काल्डर ने अपने मॉडल में ----- बचत फलन को शामिल किया। (रेखीय/अरेखीय)

(ग) काल्डर द्वारा प्रस्तुत व्यापार-चक्र का सिद्धान्त ------- कारक पर आधारित सिद्धान्त है। (आन्तरिक/बाह्य)

(घ) रेखीय बचत-निवेश फलन केवल -----संतुलन को स्थापित करते हैं। (एकल/बहुल)

(ड) काल्डर का मॉडल अपने विश्लेषण में -------को शामिल करता है।(गुणक ध्त्वरकध्गुणक तथा त्वरक दानों)

32.6 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत प्रमुख रूप से काल्डर के मॉडल के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया कि बचत तथा निवेश में उत्पन्न होने वाला असंतुलन किस प्रकार से चक्रीय परिवर्तनों को उत्पन्न करता है। वस्तुतः काल्डर ने अपने मॉडल में यह स्पष्ट किया कि बचत तथा निवेश में उत्पन्न होने वाला असंतुलन चक्रीय परिवर्तन तभी उत्पन्न करेगा जब बचत फलन तथा निवेश फलन का स्वरूप

अरेखीय होगा। साथ ही साथ काल्डर ने यह स्पष्ट किया कि चक्रीय परिवर्तनों को उत्पन्न करने के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी कारक पूँजी संचय (विसंचय) की प्रक्रिया होती है।

32.7 शब्दावली

एकल संतुलनः जब किसी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत दी गयी दशाओं में एक ही संतुलन की स्थिति प्राप्त हो तो वह संतुलन एकल संतुलन कहलाता है।

बहुल संतुलनः जब किसी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत दी गयी दशाओं में एक से अधिक संतुलन की स्थिति प्राप्त हो तो वे संतुलन बहुल संतुलन कहलाते हैं।

स्थिर संतुलनः जब किसी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत संतुलन की प्रकृति इस प्रकार की हो कि उसमें विचलन होने पर पुनः संतुलन प्राप्त करने की प्रवृत्ति पायी जाती हो तो वह संतुलन स्थिर संतुलन कहलाता है।

अस्थिर संतुलनः जब किसी आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत संतुलन की प्रकृति इस प्रकार की हो कि उसमें विचलन होने पर पुनः संतुलन प्राप्त करने की प्रवृत्ति न पायी जाती हो तो वह संतुलन अस्थिर संतुलन कहलाता है। अर्थात् अस्थिर संतुलन के अन्तर्गत प्रणाली में थोड़ा सा भी विचलन होने पर प्रणाली संतुलन से दूर होती जाती है।

स्व-जनित कारकः स्व-जनित कारकों का अभिप्राय उन कारकों से होता है जो प्रणाली के अन्तर्गत ही उत्पन्न होते हैं। जैसे इस इकाई के अन्तर्गत चक्रीय परिवर्तनों को उत्पन्न करने वाला कारक पूँजी संचय (विसंचय) की प्रक्रिया प्रणाली के अन्तर्गत ही विस्तार तथा संकुचन की अवस्था में ही उत्पन्न होता है।

पूँजी विसंचयः पूँजी स्टॉक में वृद्धि की प्रक्रिया पूँजी संचय कहलाती है जबकि पूँजी स्टॉक में कमी की प्रक्रिया पूँजी विसंचय कहलाती है।

32.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (क) असत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्य, (घ) असत्य, (ड) सत्य

(2) (क) कीन्स, (ख) अरेखीय, (ग) आन्तरिक, (घ) एकल, (ड) गुणक

32.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kaldor, N. (1963): *Essays on Economic Growth and Stability,* Chapters 8 and 9.

2. Shackle, G.L.S. (1965): *A Scheme of Economic Theory.*
3. Dernburg, T.F. and D.M. McDougall (1963): *Macroeconomics.*
4. Ackely G. (1978): *Macro Economics – Theory and Policy*, Macmillan, New York.

32.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Ahuja H.L. (2010): *Principles of Macro Economics*, S Chand, New Delhi.
2. Jhingan M.L. (2004): *Macro Economic Theory*, Vrinda publications, Delhi.
3. Seth M.L. (2001): *Macroeconomics*, Laxksmi Narain Agarawal Educational Publishers, Agra.
4. Rana, K.C. and K.N. Verma (2004): *Macro Economic Analysis*, Vishall Publishing Co., Jalandhar, India.
5. झिंगन एम एल 2007 समष्टि अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन, दिल्ली।

32.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रेखीय तथा अरेखीय बचत एवं निवेश फलनों की विशेष ताओं को उपयुक्त आरेखों की सहायता से समझाइए।
2. ''अरेखीय बचत एवं निवेश फलन की चक्रीय परिवर्तनों की व्याख्या के लिए उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करते है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. चक्रीय परिवर्तनों को उत्पन्न करने में पूँजी संचय के प्रक्रिया की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
4. व्यापार-चक्र के सन्दर्भ में काल्डर के मॉडल की समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत कीजिए।